निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व

महाकवि निराला-संबंधी ४५ लेखों और १ नाटक का महत्वपूर्ण संग्रह]

संपादक

डा॰ प्रेमनारायण टंडन, पी-एच. डी.

'रसवंती'-संपादक

निवेदन

महाकवि निराला के हतस्तब्धकारी निधन के उपरांत, उनकी पुण्य स्मृति में स्व-संपादित 'रसवंती' का एक विशेषांक निकालकर उनके प्रति 'रसवंती'-परिवार की हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की थी। यह विशेषांक 'व्यक्तित्वांक', 'कृतित्वांक' और 'परिशिष्टांक' नाम से तीन खंडों में फरवरी से जून, १९६२ तक प्रकाशित हुआ था। तीनों खंडों में प्रकाशित रचनाओं में से चुने हुए लेख लेकर यह संकलन प्रस्तुत किया जा रहा है। मुझे विश्वास है कि महाकवि के व्यक्तित्व और कृतित्व, दोनों को समझने में इससे पर्याप्त सहायता मिलेगी और हिंदी-जगत इसका स्वागत करेगा।

—संपादक

सूची

(क) व्यक्तित्व खंड

(ख) कृतित्व खंड

(ग) परिशिष्ट

महाकवि निराला

निराला जी उन महाप्राण सज्जनों में से थे जो सागर के समान विशाल बहुमुखी जीवन धारण करते हैं और उस जीवन-सागर का जब जब मन्थन होता है तब विष तो स्वतः पी जाते और अमृत जगत को दान में दे दिया करते हैं। हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य है कि निराला जी ने असमय ही अपना नश्वर शरीर त्याग दिया परन्तु अपने भौतिक जीवन-काल में भी उन्होंने इतनी समृद्धि वाग्देवी के चरणों में अर्पित कर दी है जो न केवल उन्हें यशःशरीर से चिरंजीवी बनाये रखेगी किन्तु हिन्दी को भी भारतीय साहित्य और विश्वसाहित्य में कुछ नये निराले रत्न दे सकने की क्षमता प्रदान करेगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि निराला जी का व्यक्तित्व बड़ा सशक्त और बड़ा अद्भुत था। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश में बैसवाड़ा क्षेत्र के निवासी थे परन्तु उनके पिता प्रवासी होकर बङ्गाल के महिषादल तालुके में बस गये थे। वहीं श्री निराला जी का जन्म हुआ। महिषादल के राजघराने में, जो स्वतः प्रवासी कान्यकुब्जों का घराना था और जहाँ श्री निराला जी के पिता मुलाजिम थे, श्री निराला जी का शैशव बीता। परन्तु वह राजसी ऐश्वर्य निराला जी के सम्मानी व्यक्तित्व को न बाँध पाया, न झुका ही पाया। उन्होंने पूरी स्वेच्छा से और पूरी दृढ़ता के साथ माता सरस्वती का ही वरद पुत्र होना पसन्द किया और इसीलिए उन्होंने कभी भी लक्ष्मीपुत्र बनने अथवा कहाने की इच्छा तक नहीं की। सरस्वती-पूजा (वसन्त पंचमी) के उज्ज्वल पक्ष में उनका जन्म हुआ था अतः वे तो जन्मजात सरस्वती-पुत्र थे ही। अतएव लक्ष्मी के प्रति यदि उनका विरक्ति-भाव आजीवन बना रहा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं

रायगढ़ के स्वर्गीय राजा चक्रधरसिंह जी के मन में एक बार यह उमंग आई कि हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ आलोचक, सर्वश्रेष्ठ कवि और सर्वश्रेष्ठ कहानीकार की वे नियमित रूप से आर्थिक सेवाएँ कर सकें तो उनका अहोभाग्य। यह लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व की बात है। आलोचकों में आचार्यप्रवर महावीर प्रसाद जी द्विवेदी चुने गये, कहानीकारों में श्री प्रेमचन्द जी और कवियों में निराला जी। प्रेमचन्द जी ने तो शिष्टतापूर्ण उत्तर लिख भेजा कि उन्हें इस प्रकार बन्धन से अब मुक्त ही रखा जाय, परन्तु निराला जी के पास हम दोनों के पारस्परिक सुहृद जब वह पत्र लेकर गये तब वे पत्र हाथ में लेकर मित्र से इधर-उधर की चर्चा करते रहे और उनका हाथ आप ही आप उस पत्र को मोड़माड़ कर टुकड़े-टुकड़े करता रहा। मित्र महोदय विदा होने के समय जब पत्र का उत्तर माँगने लगे तब जैसे सोते से जागकर निराला जी ने कहा 'अरे, उस पत्र उनका उत्तर ? ओह, वह पत्र तो अब टुकड़े-टुकडे हो गया ! बस, यही उत्तर आप मेरी ओर से पहुँचा दीजियेगा।' यह थी उनकी अर्थ के विषय में निःस्पृहता।

दो-चार बार मुझे उनके दर्शनों का सौभाग्य मिल चुका है। एक बार प्रयाग में रायगढ-नरेश के साथ जहाँ मैं ठहरा हुआ था वहाँ उन्होंने दर्शन देने की कृपा की। राजासाहब उस समय दोपहर का विश्राम कर रहे थे। श्री निराला जी लगभग एक घण्टे तक मुझसे भाँति-भाँति की चर्चाएँ करते रहे परन्तु संकेत देने पर भी उन्होंने राजा साहब से मिलने की कोई इच्छा न प्रकट की। सहसा चर्चा के बीच ही वे उठ खड़े हुए और कहने लगे, 'चूल्हे पर पकने के लिये मांस चढ़ा आया हूँ। विलम्ब होने पर वह कहीं जल न जाय'। मेरे भावों में उन्हें कोई परिवर्तन न देख पड़ा तब वे कुछ आश्चर्यान्वित होकर ठहर गये और पूछ ही बैठे कि मुझसा सात्विक ब्राह्मण इस उक्ति को चुपचाप बरदाश्त कैसे कर गया। मेरा उत्तर पाकर उन्होंने आत्म-विश्लेषण की जो दो चार बातें स्वगतकथन की भाँति कह सुनाईं वे उनके जीवन को समझने के लिये बड़ी महत्वपूर्ण थीं। उन्होंने कहा कि वे भी एक राजदरबार में राजकुमारों की भाँति पाले गये थे और यदि चाहते तो अपनी प्रतिभा के बल पर ऊँचे से ऊँचे ओहदेदार होकर यथेष्ट समृद्धि और सम्मान प्राप्त कर सकते थे, परन्तु उन्होंने दूसरा ही मार्ग चुना। यह निर्द्वन्द्वता का ऐसा मार्ग है जिसमें शिष्ट कहे जाने वाले सामाजिक नियमों का भी कोई बन्धन नहीं है। नियमध्वजियों को छेड़ने में उन्हें मजा आ जाया करता है। इसीलिये

उन्होंने मांस पकाने की बात कह मेरी आलोचनाओं की प्रतीक्षा की थी। वे कुछ उदास से होकर कहने लगे कि बङ्गाल का वैभव त्याग कर जब वे बैसवाड़े के अपने गाँव में अर्थाभाव के दिन बिता रहे थे तब ऐसा भी समय आया जब भोजनों का अभाव रहा, अपनी धर्मपत्नी का उपचार तक न करा सके, किसी की सहानुभूति और किसी का सहयोग भी दुर्लभ रहा, परन्तु उन्होंने न किसी से वैर बाँधा, न किसी की खुशामद की। वज्र का कलेजा करके अपनी निर्द्वन्द्वता और अपने आत्मसम्मान को रत्ती भर भी झुकने नहीं दिया।

यह था निराला जी का व्यक्तित्व। उन्होंने महिपादल के राजसी वैभव को त्यागकर रामकृष्ण मिशन का त्यागमय वातावरण स्वीकार किया। इस प्रकार भौतिकता का आध्यात्मिकता से मेल कराकर उन्होंने अपनी प्रतिभा को इन दोनों से समन्वित, किन्तु इन दोनों से विलक्षण मार्ग अपनाने के लिये 'मतवाला' का माध्यम लिया और यही की वह कली खिलाई जिसने हिन्दी-काव्य-सौरभ की दिशा ही बदल दी। जड़ प्रकृति की वस्तु मे चेतन नारी के भावों की अभिव्यक्ति करके उनका अनायास उदात्तीकरण करा देना और भाषा की गद्यात्मक भूमिका में पद्यात्मक सौकुमार्य की अभिव्यक्ति करके काव्यलोक में उनका अनायास नवीनीकरण करा देना, उस 'जुही की कली' की विशिष्टता थी। वही प्रथम कविता थी जिसने मुझ सरीखे अनेकों को निराला का प्रथम परिचय दिया। हिन्दी संसार को एक नई दिशा मिली; एक नया निर्माता मिला। फिर तो निराला जी की कलम से कई स्वच्छन्द छन्द अवतीर्ण हुए। उनके शब्दों ने वह ध्वन्यात्मकता दिखाई कि एक-एक शब्द एक-एक काव्य बन गया, एक-एक चित्र बन गया। उनके बादल राग की पंक्तियाँ देखी जायँ, जान पड़ता है कि शब्द-शब्द में बादलों की गड़गड़ाहट और पानी का बरसना भरा है। निराला जी की बहुमुखी प्रतिभा ने अनेक क्षेत्रों का संस्पर्श किया है, परन्तु क्षुद्र से क्षुद्र और महान से महान—कुकुरमुत्ता से लेकर तुलसीदास और राम की शक्तिपूजा तक—कोई भी विषय उनकी उदात्त आध्यात्मिकता के विपरीत नहीं हो पाया। सब पर उनकी अमिट छाप पड़ी हुई है।

निराला जी का जितना गहन चिन्तन चला करता था उसके अनुकूल पौष्टिक आहार उन्हें नियमित रूप से मिल नहीं पाया; इसीलिये वह भीमकाय महाप्राण पिछले अनेक वर्षों से कभी-कभी कुछ

मानसिक असन्तुलन की अवस्था में हो जाया करता था। हमने एक बार उस अवस्था में भी उनके दर्शन किए थे। हमने अनुभव किया कि उस असन्तुलन में भी उनके अनवरुद्ध अहं का एक अद्भुत सन्तुलन विद्यमान था। अपने हृदयस्थ कवि को वे विश्वकवीन्द्र रवीद्र अथवा योगिराज अरविन्द से कम दर्जे का साधक मान ही नहीं सकते थे। सरस्वती के ध्यानमग्न को हीन कहा भी कैसे जाय! यों, सरलता उनमें इतनी थी कि गाँव के लड़के जब उनके नाम के साथ उनकी प्रख्याति और उनके गाँव की तुक मिलाकर 'निराला मतवाला गढ़ाक्वाला' के नारे लगाते हुए उन्हें चिढ़ाने का प्रयत्न करते तो वे प्रेमभरी मुस्कुराहट ही उन्हें अर्पित कर आगे बढ़ जाते थे।

हमने एक बार पं० नन्दकिशोर जी शुक्ल वाणीभूषण महोदय से सुना था कि पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने यह कह कर कविता लिखना छोड़ दिया था कि अब उस क्षेत्र में अप्रतिद्वन्द्विता का सामर्थ्य रखनेवाला "निराला" उदित हो चुका है। वह जो हो, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि साहित्य के क्षेत्र में निर्माण के नये मार्ग परिष्कृत करने वालों में निराला जी अप्रतिद्वन्द्वी रहे हैं। वे असमय ही रुग्ण न हो जाते तो हिन्दी संसार उनसे न जाने कितनी और न जाने कैसी कैसी रत्नराशियाँ प्राप्त करता। फिर भी, जितना वे दे गये वह भी बहुत मूल्यवान् है।

चिन्तन की गङ्गा और भावना की यमुना का संगम अपने हृदय में सँजोये वे प्रयाग की भूमि पर जीवित तीर्थराज के समान विराजमान थे। हजारों की थैलियाँ कंकड़ियों की तरह लुटा देने वाले और पाँच की जगह पचास रुपये फेंक देने वाले वे अपने मुहल्ले के मिठाई वालों, पान वालो, इक्के वालों तक में इतने प्रसिद्ध थे कि उनके नाम पर कभी भी कोई भी वस्तु बिना दाम मँगवाई जा सकती थी। जाड़ों की रातों में अभ्यागत को अपना बिस्तर ही नहीं, अपना कमरा तक देकर खुली छत में निरावरण रहकर रात बिता देना, भले ही फिर चाहे महीनों तक वे रुग्ण बने रहें, उनके लिए सामान्य बात थी। यह था उनका हृदय। और "साहित्यिक सन्निपात" के अनर्गल प्रलाप के "रियाँ मियाँ चियाँ" तक में माया, ब्रह्म और जीव का स्पष्टीकरण प्रत्यक्ष कर देना, यह था उनका मस्तिष्क और चिन्तन। बंगला और संस्कृत के पण्डित तथा अँग्रेजी के अच्छे जानकार रहते हुए भी उन्होंने हिन्दी ही को सर्वभाव से अपनाया और उसकी प्रतिष्ठा-रक्षा के लिए महात्मा गांधी तक से भी एक बार उलझ बैठे थे व

अपने लिए नहीं, किन्तु हिन्दी साहित्य के लिए जिये और उनके निधन से उनके आत्मीयों ही की नहीं, किन्तु समग्र भारतीय वाङ्मय की अपार क्षति हुई है। परन्तु दैवी विधान में मनुष्य का वश ही क्या! संभव है, अब वहाँ के कवि-समाज में उनके से नव-पथ-निर्माता की आवश्यकता आ पड़ी हो। मत्त हाथी के पैरों के नीचे आते आते कवि गङ्ग ने कहा था कि उन्हें लिवा ले जाने के लिये गणेश जी (गजानन जी) भेजे गये हैं। कदाचित इसी प्रकार इस कवि पुङ्गव को ले जाने के लिये हार्निया भेजी गई हो।

कवि का पंच भौतिक शरीर पंचभूतों में मिल चुका, किन्तु अक्षरों के व्यूह में सुरक्षित उनका अक्षर-शरीर अनेकों वर्षों तक अनेकों को प्रेरणाएँ देता रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

दीनबन्धु 'निराला'

महाकवि रहीम के प्रसिद्ध दोहे की यह एक पंक्ति महाकवि निराला पर सटीक बैठती है—"जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय।" निराला सचमुच दीनों को ही बराबर लखते थे और उन्हें लखते-लखते वे भी दीनबन्धु के समान हो गये थे। दीनबन्धु के समान न हुए होते तो समस्त हिंदी संसार में आज उनकी जैसी लोकप्रियता दीख पड़ती है वैसी आज तक किसी साहित्यकार की नहीं दीख पड़ी थी। सर्वत्र उनकी अर्चना बड़ी श्रद्धा से हो रही है। बड़े-बड़े धुरंधर महारथी साहित्य-संसार से चले गये, किसी को निराला के समान सार्वजनिक सम्मान नहीं मिला। अपने जीवन-काल में भी वे साहित्यानुरागियों के लिए आकर्षणकेन्द्र और श्रद्धा-भाजन बने रहे। मृत्यु के बाद भी उनका सादर स्मरण विविध प्रकार से किया जा रहा है। यह उनके पुण्याचरण का ही प्रभाव है। पुण्यशील के पास सब विभूतियाँ आप ही आप आती हैं। दीनबन्धुता से बढ़कर पुण्य-शीलता और है ही क्या? दीनबन्धु भगवान को सन्तुष्ट करने का सर्वोत्तम उपाय दीनों का सच्चा बन्धु होना ही है। निराला भी सच्चे अर्थ में दीनबन्धु थे। अपनी शक्ति के अनुसार वे जीवन-पर्यन्त दीन-दुखियों की सेवा-सहायता करते रहे। जहाँ सेवा-सहायता में समर्थ न हो सके वहाँ हार्दिक सहानुभूति का ही उपयोग करके सन्तोष पाया। पर हर घड़ी उनके मन में दीनों की सेवा-शुश्रूषा की कामना जागती ही रही।

परमात्मा ने उनकी मनोवृत्ति और प्रकृति समझकर ही उन्हें सबसे पहले श्रीरामकृष्ण-मिशन की सेवा में नियुक्त किया था और उन्होंने भी 'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि' को अक्षरशः चरितार्थ किया। परमहंस श्रीरामकृष्णदेव के बेलूड़-मठ (कलकत्ता) में प्रति वर्ष परमहंस जी और स्वामी विवेकानन्द जी की जयन्तियों तथा पुण्यस्मृति-तिथियों पर वहाँ

दरिद्रनारायण को विधिवत् भोजन कराया जाता था। मिशन की शाखा विवेकानन्द-सोसाइटी के विद्वान संन्यासियों के साथ 'समन्वय'-सम्पादक निराला जी भी जाया करते थे। उस विराट आयोजन के कार्यक्रमों में निराला केवल दरिद्रनारायण को भोज्य पदार्थ वितरित करने का ही काम अपने जिम्मे लेते थे। कँगलों के खिलाने में उनकी गहरी लगन देख लोग मुग्ध हो रहते थे। वहाँ अधिकतर वंगीय भद्र समाज ही जुटता था और निराला मातृभाषा की तरह बँगला-भाषा बोलकर समागत समाज को आप्यायित कर देते थे। वे वंगीय समाज में दूध-मिसरी की तरह घुल-मिल जाते थे स्वाभाविक रीति से बँगला बोलनेवाला व्यक्ति शीघ्र ही बंगाली बन्धुओं का आत्मीय बन जाता है। अच्छी अँगरेजी और 'खाँटी' बँगला बोलने के कारण ही वहाँ के समाज में भी वे पूर्णतः समादृत थे। वंगभाषा के साहित्य में उनकी पैठ किसी विचक्षण बंगाली से भी कम न थी। उस समाज के लोग आग्रहपूर्वक उनसे कवीन्द्र रवीन्द्र के गीत गवाकर सुनते और तृप्त होते थे।

भगवद्विभूतियाँ उन्हें खूब मिली थीं। आकर्षक रूप, लम्बे-तगडे डीलडौल का शरीर, व्यायाम के अभ्यास से सुघटित स्वास्थ्य, विलक्षण मेधाशक्ति, ललित मनहर कण्ठ, दयार्द्र हृदय, चिन्तनशील मस्तिष्क, उद्भावना-शक्ति-सम्पन्न बुद्धि सब कुछ भगवान ने उन्हें भरपूर दिया था। बडी-बडी सुहावनी-लुभावनी आँखें, दमकती दाड़िम-दशनावली, घुँघराली अलकावली, लघु मुखविवर, पतले-पतले अधर, पतली-पतली बाँकी अँगुलियाँ, प्रशस्त वक्षस्थल, सब तरह सिरजनहार ने उन्हें सँवारा था। जिस मण्डली में बैठ जाते थे, उसे अपने भव्य व्यक्तित्व से जगमगा देते थे। उनकी जुल्फे टकटकी बाँध लेती थीं। कविता-पाठ की भावभंगी श्रोताओं के हृद्गत भावो को उद्दीप्त कर देती थी। 'मतवाला'-मण्डल (कलकत्ता) में एक बार एक धनी-मानी वंगीय परिवार से उनके विवाह का प्रस्ताव भी आया था। पर वे तो एकपत्नीव्रत थे। उनके पास तो युवती छात्राएँ भी साहित्यिक उद्देश्य से आती थीं। छात्र भी आते थे। पर वे किसी छात्रा से वार्तालाप करते समय आँखें बराबर नहीं करते थे। कामिनी-काञ्चन का त्याग करके वे गृहस्थाश्रम में ही संन्यासी बने रहे। यदि उन दिनों मोहक पदार्थों के प्रति उनके मन में आसक्ति होती तो उन्हें हस्तगत करनेवाले गुण उनमें पर्याप्त थे। किन्तु सांसारिक सुखभोगों की वासनाएँ उनकी पत्नी के साथ ही विलीन हो गईं। कंचन की कामना कभी उनके भीतर झाँकने भी न पाई द्रव्य के लिए उनका करतल प्रवाहक्षत्र मात्र था उनका

ध्येय कभी रहा ही नहीं। धन उनके पास अतिथि के समान अल्पावधि तक ही टिकने आता था। अगर हजार आया तो डेढ़ हजार के खर्च का चिट्ठा पहले से तैयार है। अभावग्रस्तों के अभाव उनके दिमाग के दायरे में मँडराते रहते थे। भर पेट खाने के लिए तरसने वाले निकौड़िये से लेकर मेहनत-मशक्कत करनेवाले मजदूर तक उनकी निगाहों में बसे हुए थे और जब कभी उनके मन-माफिक अर्थलाभ हो जाता, वे तुरन्त उन मरभुक्खों की ओर दौड़ जाते। 'जिनके लहहिं न मंगन नाहीं, ते नर बर थोरे जग माहीं'—उन्ही थोड़े लोगों में वे भी एक थे।

'मतवाला'-मण्डल में भिखमंगी की समस्या पर और अखबारों में छपे इस विषय के समाचारों या लेखों पर जब कभी बातचीत होती थी, यदि निराला वहाँ उपस्थित रहते, बड़े आवेश में वे अपने युक्तियुक्त तर्क उपस्थित करते। वे देश में फैली हुई आर्थिक विषमता पर शब्दास्त्रसाधन करते समय उग्रतम साम्यवादी प्रतीत होते थे। यद्यपि हृष्टपुष्ट भिक्षुकों के प्रति उनकी सहानुभूति भी उन्मुख नहीं थी तथापि असमर्थ या अपाहिज भिखारियों की दयनीय दशा के लिए वे शासन और समाज की ही तीव्र आलोचना किया करते थे। लँगड़े, लूले, अंधे, कोढ़ी और निकम्मे दीन-दुखियों पर ही उनकी दृष्टि अटकती थी, फिर तो वे अपनी वास्तविक परिस्थिति को बिलकुल भूल जाते थे। कलकत्ता सदृश महानगर की सडकों की दोनों पटरियों पर वे ढूँढ़ते फिरते थे कि वस्तुत: कौन बेचारा कैसी दुर्गति में है। उनका अधिकांश अवकाश-काल दीनों की दुनिया में ही बीतता था। वहाँ फुटपाथों पर भिखारियों के सिवा बहुतेरे निराश्रित गरीब और कुली-कबाड़ी भी रात में पड़े रहते हैं। उनके लिए बीडी, 'मूढ़ी', भूजा चना, मूँगफली आदि खरीदकर वितरण करनेवाला उस धनकुबेरों की महानगरी में निराला के सिवा दूसरा कोई न देखा गया। बड़े-बड़े सेठ धनीधोरी रात में भी उन पटरियों से गुजरते थे, पर कहीं-कहीं कभी दो-चार पैसे फेंकनेवाले भले ही दीख जायँ, निराला की तरह उन दीनों से आत्मीयता स्थापित करनेवाले ढूँढ़े भी नहीं मिल सकते थे। उस महानगर में नाना प्रकार के मनोरंजन के साधन हैं। क्या उन्हें उपलब्ध करने के लिए निराला को पैसों की कमी थी? किन्तु उनका मनोरंजन तो दीन-दुखियों को सुख पहुँचाने से ही होता था। कोई मित्र उन्हें सिनेमा-थिएटर भले ही ले जाय, उनके पैसे तो भूखे-रूखे गरीबों की सेवा में ही लगने पर अपनी सार्थकता समझते थे।

निराला केवल शहरों या बाजारों और स्टेशनों के अन्दर मिलने वाले दीन जनों पर ही ध्यान नहीं देते थे, अपने गाँव और पड़ोस के गरीब गृहस्थों की सहायता का भी ध्यान रखते थे। उनके गाँव और जिले के भी कई आदमी उनकी उदारता या दानशीलता की कहानी सुनकर उनके पास आ धमकते थे। अतिथि भी उनके विचित्र भाँति के होते थे। परिचितों और कुटुम्बियों के अतिरिक्त ऐसे लोग भी कलकत्ता तक दौड़ लगाकर उनका पीछा करते थे, जो उनसे किसी न किसी प्रकार का लगाव जोड़कर उनके शील-सौजन्य से लाभ ऐंठ लेते थे। भोजन के सिवा कपड़े-जूते की माँग तो होती ही थी, चलते समय राहखर्च की फर्माइश भी होती थी। देखनेवालों को भले ही यह नागवार मालूम होता हो, पर निराला की शान्ति नहीं भंग होती थी। उनकी शान्ति तो तभी भंग होती थी जब किसी जरूरतमन्द की मदद नहीं कर पाते थे। किसी आदमी को अपने से अनुचित लाभ उठाते देखकर भी उनके धैर्य को ठेस नहीं लगती थी। दूसरों के अभाव को अपने ऊपर ओढ़ लेने से भी उनका शान्त-गम्भीर हृदय कभी विचलित होता नहीं देखा गया। अगर कोई कहता भी था कि आप इतना खटराग क्यों पालते हैं, ऐसे पर-मुण्डे फलाहार करनेवालों को टरकाया कीजिए, तो मुस्कुराकर ही रह जाते थे। उनको भला सीख कौन दे सकता था? वे तो स्वयं ही नीति और धर्म के मर्मज्ञ व्यक्ति थे।

यह विशेषता निराला में ही देखी गई कि अपनी आवश्यकताओं को भुलाकर दूसरों की आवश्कताओं को दूर करने के लिए परेशानियाँ और कठिनाइयाँ झेलने में अधीर नहीं होते थे। उन्हें अपने खाने-पीने या कपड़े-लत्ते की कभी चिन्ता ही नहीं हुई। अच्छा कपड़ा-जूता भी कुछ ही दिनों तक उनके पास टिकता था। तोशक-रजाई तक किसी को दे डालने में तनिक हिचक न होती थी। न उनके पास कुञ्जी रह पाती थी और न कभी कपड़े या रुपये-पैसे रखने के लिए कोई ट्रंक या बक्स ही खरीदा। गद्दे या लिहाफ की परवा न करके जैसे-तैसे सो रहे और उतने ही में आराम से दिन गुजार लिये। सुन्दर पलँग या शानदार कुर्सी-मेज की कभी कामना ही नहीं की। जिस कमरे में रहना है उसकी सजावट का कभी सपना भी न देखा। यद्यपि उन्होंने 'मतवाला'-संपादक के अविरल स्नेह के प्रसाद-स्वरूप अच्छे से अच्छे कपड़े और तेल-फुलेल तथा खान-पान का सुख अच्छी तरह भोग लिया, तथापि अपनी कमाई के पैसों से कभी भोग-विलास की सामग्री नहीं बेसाही। कलकत्ता छोड़ने पर जब वे लखनऊ और प्रयाग में रहे तब भी व मस्त-मौला फकीर की तरह ही जीवन-यापन करते रहे

जहाँ-कहीं रहे, आस-पास के दूकानदारों को मुँहमाँगा दाम देकर निहाल कर दिया। इक्के-ताँगेवाले भी उनकी दरियादिली से परिचित थे और उन्हें देखते ही दूसरे के साथ तय किया हुआ भाड़ा छोड़कर उन्हें साग्रह बिठा लेते थे। अड़ोस-पड़ोस के गरीब उनसे इतने अधिक उपकृत रहते थे कि उन्हें राह-चलते देख असीसने लगते थे। याचकों के लिए तो वे कल्पतरु थे ही, अपने मित्रों के लिए भी मुक्तहस्त दोस्त-परस्त थे। मित्रों, परिचितों और अतिथियों के स्वागत-सत्कार का वैसा हौसला अब देखने में नहीं आ रहा।

बहुत-से लोगों को निराला-संबंधी ये बातें अतिरंजित जान पड़ेंगी। पर मैं तो निराला के साथ बरसों रहकर उनके प्रति दिन के जीवन-क्रम को बहुत ही निकट से देख चुका हूँ और उनके स्नेहभाजन के रूप में उनका प्रगाढ़ स्नेह भी पाता रहा हूँ। किन्तु आधुनिक युग में ऐसी बातों को अतिशयोक्ति समझने वाले सज्जन यह सोचें तो सही कि भूखे को देखते ही अपने आगे की परसी हुई थाली उसके सामने रख देनेवाले कितने महानुभाव आज के समाज को विभूषित करते हैं। निराला खुद मामूली कपड़ों में गुजर करके गरीब को अपने नये कपड़े दे डालते थे और जाड़े में भी पुराने कम्बल के सहारे जिन्दगी बसर करके अपना नया लिहाफ तक गरीब को उढा देते थे। इस तरह के आचरण के लोग साहित्यजगत् में तो नहीं देखे गये हैं। जिस व्यक्ति में अन्यान्य लोगों से जो अधिक विशिष्ट गुण हो उनका स्मरण न करना-कराना ईश्वर की दी हुई वाणी को व्यर्थ करना है।

महामानव निराला

निराला जी का व्यक्तित्व विभिन्न तत्वों के सम्मिश्रण से उद्भूत था। वे प्रलयंकारी रुद्र के मानों साक्षात अवतार थे—पूरे मस्तमौला, फक्कड़, अपरिग्रही एवं गरलपेयी। उन्होंने हिंदी की रक्षा एवं उन्नयन के लिए जीवन के प्रभात में ही जो गरल-पान प्रारम्भ किया वह आमरण चलता रहा। जो कडुवा घूँट साहित्यिक जीवन के प्रवेश-काल में उन्हें मृत्युञ्जयी प्रतीत हुआ, अन्त में वही मानापमान बनकर उन्हें खूब सालता रहा। वे मानसिक रूप से विशृंखलित हो समाज से सर्वथा विलग हो गये। यों कहिए कि उनकी जीवनधारा ही बदल गई।

प्रतिशोध ने अन्त में विराट रूप धारण कर उनके मस्तिष्क पर विजय प्राप्त की। वे अत्यंत उग्र और कटु बन गये। जिस परिवार में उनका जन्म हुआ था, जिसके प्रति वे अत्यंत निष्ठावान थे, वे उसके भी शत्रु बन गये। जिस सांसारिकता ने उन्हें पत्नी, पुत्र, पुत्री तथा भाई-चारे से जोड़ रखा था, उससे भी उन्होंने क्रमशः विदा ली। गेरुए वस्त्र पहन कर वे संन्यासी हो गये और दर दर की ठोकरें खाने लगे। इसी में उन्हें रस मिलने लगा। कहाँ मस्ती के दिनों के वे राजसी ठाट-बाट, कहाँ समुचित भोजन-वस्त्र के लिए परमुखापेक्षी बनना! बाध्य होकर उन्हें यह करना पड़ा हो, ऐसी बात नहीं। स्वेच्छया उन्होंने इस प्रकार की जीवन-चर्या को अंगीकार किया। ऐसा करने में उनकी अन्तश्चेतना ही उनकी पथदर्शिका बनी। सम्भवतः उनके उपनाम 'निराला' ने अपने को सार्थक करना चाहा था और निराला' के साथ वह धन्य हो गया। उनकी हर एक चीज निराली रही।

भरमार रहती। हाँ, यदि कोई नवोदित कवि या लेखक अपनी रचना लेकर उनकी सम्मत्यर्थ उपस्थित होता तो वे सरसरी निगाह से उसे पढ़कर तुरन्त अपनी सम्मति लिखा देते अथवा दो-चार दिन बाद फिर बुलाते। मज़ा तो तब देखने में आता जब वे उस कृति को फिर उसी प्रकार देखना प्रारम्भ करते। तात्पर्य यह कि निराला जी को इसके लिए तनिक भी सिरदर्द नहीं रहता था कि अमुक लेखक की अमुक रचना बिना सम्मति लिखे पड़ी है और उस पर यथाशीघ्र सम्मति लिखनी होगी। इस मामले में वे पूर्ण मुक्त थे; परन्तु ऐसे बहुत कम ही अवसर आते जब वे किसी को अन्तिम रूप से निराश करते थे।

वे स्वयं भी कवितायें लिखने में कोई सक्रिय कदम नहीं उठाते थे। इसे आश्चर्य ही समझें कि उन्होंने इन ९२ वर्षों में 'अर्चना', 'आराधना' तथा 'गीत गुंज' के लिए लगभग २०० गीत किस प्रकार लिखे। जब पत्र-पत्रिकाओं की ओर से अनेक आग्रहपूर्ण पत्र आ जाते तो बहुत पसीजने पर ही कोई गीत लिखा करते थे और तब शीघ्र ही उसे वहाँ भिजवा देते थे। फिर तो क्रमशः वे दस-पाँच गीत लिख डालते और तब बहुत दिनों तक लेखनी को विश्राम दिये रहते। जिस सम्पादक या जिस पत्रिका से वे पूर्व परिचित न होते उसके लिए कविता देने या भेजने में हिचकते अवश्य थे, परन्तु पारिश्रमिक न प्राप्त होने पर परवाह भी नहीं करते थे। स्कूल तथा कालेजों की पत्रिकाओं के लिए अपनी रचना देते समय वे विद्यार्थियों से अपनी पूरी पूरी मिन्नत करा लेते थे। नाराज होने पर सौ-पचास रुपये पारिश्रमिक माँग बैठते थे। मुझे स्मरण है, मैंने एक बार अपने जनपद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'अन्तरवेद' के लिए उनकी एक रचना के लिए उन्हें पच्चीस रुपये दिये तो उन्होंने झट से नई कविता लिखा दी। बिना पैसे अपनी कवितायें न देने की उनकी आदत पड़ गई थी। कुछ पत्रिकाओं में वे अपने गीत प्रायः भिजवा देते थे,और जब पारिश्रमिक का रुपया मिलता तो इष्ट-मित्रों को दावत दिया करते थे।

निराला जी का सर्वाधिक ध्यान नाना प्रकार के पकवानों को बनाने तथा विविध प्रकार के वस्त्रों को खरीदकर पहनने-पहनाने की ओर जाता था। उनका अधिकांश समय नित्य प्रति बनने वाले भोजन की रूपरेखा बनाने एवं उसे पकाने में बीतता। जब वे अधिक बीमार होते तब तो परवशता रहती। अन्यथा चारपाई के पास ही अँगीठी पर रोटी, दाल, चावल, तरकारी या मांस पका लेते। स्वस्थ रहने पर कभी कभी वे स्वयं रसोई में बैठ कर भोजन पकाने लगते अन्यथा वहीं कुर्सी पर बैठे बैठे

निर्देशन किया करते थे। जिस दिन कोई विशिष्ट चीज बनाते, उस दिन कतिपय अन्तरंग मित्रों को खाने के लिए आमन्त्रित कर आते। क्या मजाल कि उनमें से कोई 'न' कर दे।

निराला जी के मन में कपड़ों के लिए विशेष आकर्षण रहा है। कम्बल, चद्दर तथा कुर्ते बहुत प्रिय रहे हैं। जाड़े के आने पर प्रति वर्ष वे कई सुन्दर सुन्दर कम्बल खरीदते, हम सबों को दिखलाते और फिर ऐसी जगह दान दे आते, जिसकी चर्चा वे किसी से कभी न करते। गर्मियों में सूती चादरें अथवा लुंगियाँ खरीद कर उसी प्रकार 'व्यवहार' चलाते। जेब में पैसे न रहने पर भी जान-पहचान वाले बजाजों के यहाँ से इन वस्तुओं को लेकर सीधे दान कर आते अथवा कुछ दिनों तक प्रयोग करने के पश्चात दे देते। इन वस्तुओं को दान देते समय वे लोगों की आवश्यकताओं तथा अपनी मनोवृत्ति पर ही ध्यान देते थे। कभी-कभी वे ऐसे लोगों को दान देते जो विकट परिस्थिति में फँस जाते थे। एक बार प्रयाग के नगर प्रमुख को ही अपनी सारी पोशाक दे दी थी। दुलाई भराकर दान देना प्रतिवर्ष के कार्यों में सम्मिलित था। कभी कभी अपनी ओढ़नेवाली रजाई तक दे आते थे। निराला जी की इस दानवृति को दारागंज का प्रत्येक बच्चा तक जानता है।

निराला जी को जूते खरीदने का भी शौक था। क्या चमड़े के चप्पल-जूते, क्या किरमिच के जूते, ऋतु के अनुसार खरीदकर पहनते, परन्तु कुछ दिनों बाद वे अचानक उनके पाँव से गायब दिखाई पड़ते।

निराला जी की मित्रमंडली बड़ी विचित्र थी। यह जातिपाँति, ऊँचनीच का कोई विचार करके नहीं चुनी गई थी, जो भी व्यक्ति उनकी विभिन्न रुचियों के अनुकूल मिला, वे उसके हो गए। इन मित्रों के यहाँ वे जाते, उन्हें दावतों में बुलाते, उनके साथ बैठकर गाते-बजाते और उन्हें समस्त सम्मान प्रदान करते। दारागंज के अनेक पण्डे, नाई, अहीर उनके दोस्त थे।

निराला जी का ही द्वार ऐसा था जो सबके लिए समान रूप से अहर्निश खुला रहता था। कोई भी व्यक्ति उनके कमरे में प्रविष्ट हो सकता था और अपनी बात कह सकता था; निराला जी के बारे में यथारुचि बातें कर सकता था। निराला जी सबों से प्रसन्नतापूर्वक ही मिलने का प्रयास करते, अन्यथा वे स्पष्ट रूप से कह देते कि मैं मिलने के मूड में नहीं हूँ, फिर आयें।

उनके यहाँ पत्रों का ताँता लगा रहता था। कोई लेखिका लिखती कि वह उनके हस्ताक्षरों से युक्त एक फोटू चाहती है तो कोई नवयुवक कवि अपने कविता-संग्रह पर उनकी सम्मति की कामना करता। बहुत से नौसिखिया टूटी-फूटी रचनाएँ पत्र के साथ लिखकर भेजते रहते। परन्तु निराला जी उन पत्रों को तहाकर रखते जाते थे। न तो उन्हें पढ़ते और न उत्तर ही देते थे। बहुत दिनों बाद मन मचलने पर एक-आध पत्र का उत्तर मुझे बुलाकर लिखा देते। जिन पुस्तकों पर स्वयं सम्मति न लिखना चाहते उन्हें मुझे देते हुए उन पर अपनी सम्मति लिखकर प्रेषक के पास भेजने की आज्ञा दे दिया करते थे। इस प्रकार से मेरे पास ऐसी कई दर्जन पुस्तकें अब भी सुरक्षित हैं।

आगन्तुकों एवं अतिथियों के प्रति उनके व्यवहार को देखते ही बनता। जो केवल दर्शनार्थ प्रविष्ट होते, उन्हें कभी-कभी मुसीबत भी सहनी पड़ती थी। अकारण ही उन पर निराला जी का आक्रोश टूट पड़ता और श्रद्धावान से श्रद्धावान व्यक्ति की पूत भावनाओं को ठेस लगे बिना न रहती। एकाध बार मैंने देखा कि निराला जी के प्रश्न अत्यन्त अमानुषिक-जैसे होते, यथा—आप किसकी अनुमति से किसको ढूँढ़ने आये हैं? 'निराला' को? वे यहाँ नहीं रहते। परन्तु अधिकांश दर्शकों से वे बड़े ही सौजन्य से मिलते। उनके विषय में पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करते और स्वयं भी कुछ कहते। कुछेक को चाय के समय चाय और नाश्ते के समय नाश्ता भी कराते थे।

जिन व्यक्तियों से उनका पूर्व परिचय होता था उनकी आवभगत बड़े ढंग से करते थे—सचमुच मानों उनके यहाँ मेहमान आ गया हो। चाय, भोजन, शयन, सब का प्रबन्ध अपने हाथों से करते। वे यह भरसक प्रयत्न करते कि आतिथ्य उच्चकोटि का हो। कुछ दिनों पूर्व जब आचार्य शिवपूजन सहाय जी पटने से यहाँ उन्हें देखने आये थे तो अपनी रुग्णावस्था में भी निराला जी अतिथि के प्रति सचेष्ट रहे।

एक बात जो सबों को सदैव खटका करती थी वह यह थी कि महाकवि कभी-कभी आवश्यकता से भी कम बोला करते। उनके अतिथि या पास बैठने वाले को ऊब होने लगती, और कभी कभी वे ऐसी असम्बद्ध बातें करने लगते कि श्रोता विकट स्थिति में फँस जाता। उनके स्वभाव की सबसे बड़ी विचित्रता थी अपनी कही बात को सर्वोपरि रखते हुए सबों के द्वारा उसी की पुष्टि चाहना। वे यह कभी नहीं चाहते थे कि कोई उनकी बात काटे जो भी वे कहें स्वीकार्य हो जो उनके स्वभाव से परिचित हो

चुके थे ऐसी बातों को उस क्षण अवश्य मान लिया करते, भले ही बाद में कार्य-रूप में परिणत न करें। इससे निराला जी को संतोष होता था, वे अपना सम्मान समझते थे।

निराला जी के जिस 'मूड' को लेकर साहित्यिक जगत में बड़ी चर्चा रही है, उससे लोगों में भ्रम भी खूब फैला है। शीघ्र निर्णय निकालने के प्रयास में अधिकांश लोगों ने उन्हें विक्षिप्त समझा और अनेक तर्क उपस्थित करने पर भी वे यह मानने को तैयार नहीं कि निराला स्वस्थ भी थे। यह 'मूड' अधिकांशतः निराला जी के "स्वगतभाषण" को ही लक्षित करता था। परन्तु उनका यह स्वगतभाषण या अन्तर्नाद कोई नवीन चीज नहीं थी। बाल्यकाल से लेकर आजीवन कष्ट झेलते रहने के फलस्वरूप उनके मस्तिष्क में ऐसे कुहासे का जन्म हो चुका था जिसको विदीर्ण करने का प्रयास वे "अन्तर्नाद" के रूप में करते रहे। 'समन्वय' के सम्पादन-काल में वेदान्त साहित्य के अध्ययन एवं स्वामी शारदानन्द जी महाराज के प्रभाव से वे अपनी सुधबुध खो चुके थे। सांसारिकता से परे, गूढ़ चिन्तन के समय तो वे पूर्ण स्वस्थ रहते, परन्तु जैसे ही पारिवारिक या सांसारिक प्रसंग ध्यान में आता कि उनके विचार अन्तर्मुखी न रहकर उबल पड़ते जो उनके स्वगतभाषण का कारण बन जाते। यह क्रम उनके जीवन के अन्तिम क्षणों तक चलता रहा।

अँगुलियाँ उठाकर नभ की ओर संकेत करना, आँखों से मुस्काना, व्यंग्य की भावभंगिमा एवं अट्टहास द्वारा पूर्ण प्राकट्य उनके स्वगतभाषण की विशेषताएँ थीं जो एक सामान्य विक्षिप्त प्राणी में भी देखी जाती हैं। सम्भवतः ऐसी दशाओं के कारण अधिकांश व्यक्ति उन्हें विक्षिप्त समझते रहे। परंतु निराला जी तो कलाकार थे, कवि थे और थे आत्मविस्मृत। उनके स्वगतभाषण के समय पास बैठे व्यक्ति को ऐसा भास होता कि उसके लिए कुछ कह रहे हों; परन्तु वह उसके लिए नहीं, अपने अन्तर्द्वन्द्व के प्रति होता था। वे इसकी परवाह कभी नहीं करते थे कि सुननेवाला उनके विषय में क्या धारण बनायेगा। फिर उनमें निरालापन कहाँ रह जाता!

निरालाजी को अफसरी बू, सरकारी दिखावा या पद-प्रदर्शन बिल्कुल प्रिय न था। अपने को 'मजदूर' कहते और इसीलिए श्रमजीवी साहित्यकारों के प्रति उनकी निष्ठा थी। इसीलिए वे अफसरी लिबास में आये हुए बड़े से बड़े पदवाले व्यक्ति को दुत्कारने में चूकते न थे। एक ओर जहाँ साहित्यिक व्यक्तियों के रूप में डा० राजेंद्रप्रसाद, जवाहरलाल नेहरू या सम्पूर्णानन्द जी

का वे पूर्ण समादर करते, वहीं राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री या मुख्य मंत्री के रूप में उनकी आलोचना भी करते। उन्हें प्रायः शिकायत रहती कि इस सरकार ने उन्हें निरुपाय बना दिया है, उनकी लाखों की सम्पत्ति पानी में चली गई है, आदि आदि। वे खुलकर सरकार का विरोध करते थे और पदाधिकारियों से भेंट होने पर खरीखोटी सुनाने में छकु उठा नही रखते थे।

निराला जी में स्मरण शक्ति की अभूतपूर्व क्षमता थी। वे बहुत वर्षों पूर्व देखे किसी भी व्यक्ति को पहचानने या बहुत पहले पढ़ी गई किसी बात को याद करके बताने में अत्यन्त पटु थे। कभी कभी ऐसी घटनाओं के कारण अनेक व्यक्तियों ने इन्हें 'सर्वज्ञ' जैसी पदवियाँ प्रदान की थीं।

निराला जी की संगीतप्रियता एवं समय समय पर तुलसी, कालिदास, शेक्सपियर एवं रवि बाबू की रचनाओं का सस्वर पाठ उनके पास बैठनेवालों को अत्यन्त रुचिकर लगता। कभी-कभी वे उन रचनाओं का अर्थ भी स्पष्ट कर दिया करते थे। निराला जी का अँग्रेजी के प्रति विशेष आकर्षण हो गया था; परन्तु अन्य कई भाषाओं में भी उनकी रुचि थी। वे प्रायः अँग्रेजी की पुस्तकें पढ़ते और अँग्रेजी में बोलते थे। अँग्रेजी की उच्चारणविधि पर वे बड़ा ध्यान देते थे। गलत बोलनेवाले को सही उच्चारण के लिए प्रेरित भी करते रहते।

विगत १२ वर्षों में अनेक प्रयत्न करने पर भी उन्होंने दारागंज की उस सँकरी गली में स्थित. कलामंदिर को नहीं छोड़ा, जिसके कारण उनका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन खराब हो रहा था। बारम्बार यही कहते—मरते समय अब कहाँ जायँ। अन्तिम बार जब हर्नियाँ के उतर जाने से प्राण-संकट आ गया तब भी वे अस्पताल जाने के लिए राजी नहीं हुए। उनके समस्त कथन अन्तिम निर्णय के रूप में होते थे जिन पर वे दृढ़ रहते थे। 'न दैन्यं न पलायनं' उनके जीवन का मूलाधार था।

निराला के प्रेमियों को उनका साहित्य भी उतना ही रुचिकर लगेगा जितना आकर्षक उनका व्यक्तित्व था। हम यों भी कह सकते हैं कि उनकी कृतियों में उनका व्यक्तित्व इस प्रकार घुलामिला है कि उन्हें समझने के लिए व्यक्ति निराला का सम्यक् ज्ञान अत्यावश्यक है। ऐसा ज्ञान हमें निरालाजी द्वारा लिखित स्वसम्बन्धी अंशों के आधार पर उपलब्ध होगा। महाकवि की अविस्मरणीय घटनाएँ उनके साहित्य को बल प्रदान करेंगी।

निराला : जीवन और साहित्य

निराला का जन्म अवध के एक गाँव, गढ़ाकोला में कान्यकुब्ज ब्राह्मण पंडित रामसहाय त्रिपाठी की द्वितीय पत्नी की पवित्र कोख से सन् १८९६ में हुआ। जन्मतिथि के सम्बन्ध में मुझे संदेह है, किन्तु ऐसा प्रसिद्ध है कि वसंत पंचमी के दिन उनका जन्म हुआ था। पंडित रामसहाय त्रिपाठी बंगाल के मेदिनीपुर जिले में, महिषादल नामक रियासत में, १०० सिपाहियों के ऊपर "जमादार" थे। बचपन में ही निराला जी की माता का स्वर्गवास हो गया। अतः पिता की देखरेख में उनका पालन-पोषण हुआ। महिषादल में निराला के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। महिषादल के जीवन के भी दो भाग हैं—प्रथम, पिता की मृत्यु से पहले का जीवन और दूसरा, वह जीवन जब, निराला जी ने महिषादल में स्वयं नौकरी की।

महिषादल के प्रथम जीवन का मुख्य विवरण यह है कि निराला जी बंगला स्कूल में, तत्पश्चात् हाई स्कूल में पढ़ते रहे और बैसवाडे से आए हुए लोगों से बैसवाड़ी सीखते रहे। रामायण (तुलसीदास) का गायन भी चलता था। दिलचस्प बात यह थी कि निराला जी ने संगीत के साथ साथ घुड़दौड़ और कुश्ती भी सीखी थी। राजासाहब के हारमोनियम पर बालक निराला स्वर-साधना किया करते थे। पंडित रामसहाय कठोर प्रकृति के व्यक्ति थे; "टिपीकल" बैसवाड़ी व्यक्तित्व था। गलती होने पर निराला पर कड़ी मार पड़ती थी। लेकिन पितृभक्त निराला उसे सहते थे और कुल्लीभाट से यह प्रमाणित होता है कि निराला जी जब काफी बड़े हो गये थे, तब भी पिता जी पीटा करते थे और तब भी निराला मार सहते थे।

इस प्रकार निराला जी में "बँगला" और "बैसवाडी" व्यक्तित्व का एक साथ परिपाक मिलता है [illegible] अक्खड़ता साहस दृढ़ता और पुरु

किंतु स्नेह मिलने पर अपने प्राण की भी बाजी लगा देता है । निराला जी में मृत्यु तक ये गुण सुरक्षित थे । 'शिवा जी का पत्र', 'एक बार बस और नाच तू श्यामा', 'बादलराग', 'राम की शक्तिपूजा', 'जागो फिर एक बार' आदि रचनाएँ बैसवाड़ीय रक्त और रज का ही गुणात्मक परिवर्तन हैं । दूसरी ओर निराला जी की 'प्रेम और सौंदर्य' से सम्बन्धित रचनाओं में 'बँगला भावुकता', रवीन्द्रवादी रहस्यवाद अथवा विवेकानन्दीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है । यह विभाजन बहुत स्थूल लगता है, किन्तु 'सम्भतः' यह उपयुक्त है । काव्य एक संकुल मानसिक स्थित का फल है । अतः यह स्पष्ट है कि किसी रचना में अवधीय या बंगीय स्वभाव को सर्वथा अलग अलग करके देखना अवैधानिक होगा ।

स्वयं निराला जी ने अपने अवधीय स्वभाव का वर्णन किया है—"मैं बचपन से ही आजादी पसन्द था । दबाव नहीं सह सकता था, खास तौर पर वह दबाव, जिसकी वजह न मिलती हो" । निराला जी ने एक उदाहरण भी दिया है, जिससे उनके विद्रोह का एक स्वरूप स्पष्ट होता है । निराला जी को कभी कभी उनके पिता जी बंगाल से "गढ़ाकोला" ले जाया करते थे । जब वह आठ वर्ष के थे, तब निराला को यज्ञोपवीत के लिए गढ़ाकोला ले जाया गया । गढ़ाकोला के तालुकेदार पंडित भगवानदीन दुबे ने एक वेश्या बैठा ली थी, उससे उन्हें तीन लड़के और एक लड़की थी । लड़कों में से एक का जनेऊ भी किया गया था, जिसमें जमींदार के दबाव से कुलीन ब्राह्मण भी शामिल हुए थे; किन्तु दुबे जी की मृत्यु के बाद गाँव के ब्राह्मणों ने वेश्यापुत्रों का हुक्का-पानी बन्द कर दिया । प्रतिशोधवश वेश्यापुत्र कुलीनों के घरों की पोल खोला करते थे । निराला जी जनेऊ होने के पहले वेश्यापुत्रों के यहाँ कभी कभी खा-पी लिया करते थे । किन्तु जनेऊ होने पर भी उन्होंने खाना-पीना बन्द नहीं किया; क्योंकि वेश्यापुत्रों ने निराला को उलाहना दिया था—"अभी तुम हमारे यहाँ का खाते हो, जनेऊ हो जायगा, न खाओगे"[1]। गाँव वालों ने निराला के पिता से शिकायत की । पिता जी आग बबूला हो गए—

"एक तो सिपाही आदमी, फिर हृष्ट-पुष्ट, इस पर व्यक्तिगत और जातिगत अपमान, जाते ही मुझे पकड़ कर फौजी प्रहार जारी कर दिया । मारते वक्त पिता जी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाए हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं ! मैं भी स्वभाव

१. कुल्ली भाट ।

न बदल पाने के कारण, मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी।''

इतनी पिटाई की भी परवा न कर निराला जी ने वेश्यापुत्र के हाथ का पानी पीना बन्द नहीं किया। किन्तु दुबारा निराला की शिकायत होने पर "कुलीन" ब्राह्मणों ने पिता जी को सामाजिक बहिष्कार की धमकी दी। इस अवसर पर पिता के स्वभाव पर निराला ने स्वयं प्रकाश डाला है— ''ओज की मात्रा पिता जी में उनसे (कुलीन कनौजियों से) अधिक थी। फिर मुखिया ने ये बातें डाँट के साथ कही थीं। व्यक्तिगत बात को व्यक्तिगत रूप देते हुए पिता जी ने कहा—'तू हमारा पापी बन्द करेगा! तू पासी का है, गाँव में जा और पूछ, तेरी लड़की पटने में एक दो तीन चार कर रही है—हम अपनी आँखों देख आए हैं। शहर में होते तो देखते हम, कितने आदमियों को बंबे का पानी और डाक्टर की दवा छुड़ाते हो'—मुखिया का थूक सूख गया''।

ऐसे धाकड़ ब्राह्मण के पुत्र थे, निराला जी। पिता को पुत्र के शरीर और विद्या पर गर्व भी कम नहीं था। चौदह वर्ष में निराला का विवाह "मनोहरादेवी" से कर दिया गया। कुल्लीभाट में निराला ने अपने मधुरतम जीवन-प्रसंग का उल्लेख किया है। दो वर्ष बाद सोलहवीं साल में निराला का गौना हुआ। मनोहरादेवी तेरह वर्ष की थीं। गाँव की दृष्टि से— "दामाद जवान, बिटिया जवान"। किंतु अप्रत्याशित संकट निराला के साथ बचपन से ही सम्बद्ध हो गया था। गौना पीछे हुआ, गाँव में प्लेग पहले फैला। फलतः गाँव के बाहर फूँस के झोपड़े में निराला ने "सुहागरात" मनाई जिसका रोचक वर्णन निराला ने कुल्लीभाट में दिया है। लेकिन पाँचवें दिन प्लेग के भय से मनोहरा देवी विदा हो गईं। किन्तु निराला जी को ससुराल बुलाया गया। निराला जी गए। ससुराल चलने पर पिता जी बोले—

''ससुराल जाव। लेकिन यहाँ से तिगुना खाना..........रूह, रूह की मालिश करना रोज, होश दुरुस्त हो जाएँगे।''

अतः निराला ने पिता की मार ही नहीं खाई, पिता का स्नेह और उनका पुत्रविषयक गर्व भी पाया था। वस्तुतः जब तक निराला के पिता जीवित रहे, तब तक निराला को कष्ट नहीं हुआ। निराला ने ससुरालयात्रा का बहुत रोचक वर्णन किया है—''बाहर खाई पार करते ही ऐसा झोंका

किन स्नेह मिलने पर अपने प्राण की भी बाजी लगा देता है। निराला जी में मृत्यु तक ये गुण सुरक्षित थे। शिवा जी का पत्र एक बार बस और नाच तू श्यामा', 'बादलराग', 'राम की शक्तिपूजा', 'जागो फिर एक बार' आदि रचनाएँ बैसवाड़ीय रक्त और रज का ही गुणात्मक परिवर्तन हैं। दूसरी ओर निराला जी की 'प्रेम और सौंदर्य' से सम्बन्धित रचनाओं में 'बँगला भावुकता', रवीन्द्रवादी रहस्यवाद अथवा विवेकानन्दीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है। यह विभाजन बहुत स्थूल लगता है, किन्तु 'समग्रतः' यह उपयुक्त है। काव्य एक संकुल मानसिक स्थित का फल है। अतः यह स्पष्ट है कि किसी रचना में अवधीय या बंगीय स्वभाव को सर्वथा अलग अलग करके देखना अवैधानिक होगा।

स्वयं निराला जी ने अपने अवधीय स्वभाव का वर्णन किया है—"मैं बचपन से ही आजादी पसन्द था। दबाव नहीं सह सकता था, खास तौर पर वह दबाव, जिसकी वजह न मिलती हो"। निराला जी ने एक उदाहरण भी दिया है, जिससे उनके विद्रोह का एक स्वरूप स्पष्ट होता है। निराला जी को कभी कभी उनके पिता जी बंगाल से "गढ़ाकोला" ले जाया करते थे। जब वह आठ वर्ष के थे, तब निराला को यज्ञोपवीत के लिए गढ़ाकोला ले जाया गया। गढ़ाकोला के तालुकेदार पंडित भगवानदीन दुबे ने एक वेश्या बैठा ली थी, उससे उन्हें तीन लड़के और एक लड़की थी। लड़कों में से एक का जनेऊ भी किया गया था, जिसमें जमींदार के दबाव से कुलीन ब्राह्मण भी शामिल हुए थे; किन्तु दुबे जी की मृत्यु के बाद गाँव के ब्राह्मणों ने वेश्यापुत्रों का हुक्का-पानी बन्द कर दिया। प्रतिशोधवश वेश्यापुत्र कुलीनों के घरों की पोल खोला करते थे। निराला जी जनेऊ होने के पहले वेश्यापुत्रों के यहाँ कभी कभी खा-पी लिया करते थे। किन्तु जनेऊ होने पर भी उन्होंने खाना-पीना बन्द नहीं किया; क्योंकि वेश्यापुत्रों ने निराला को उलाहना दिया था—"अभी तुम हमारे यहाँ का खाते हो, जनेऊ हो जायगा, न खाओगे"[1]। गाँव वालों ने निराला के पिता से शिकायत की। पिता जी आग बबूला हो गए—

"एक तो सिपाही आदमी, फिर हृष्ट-पुष्ट, इस पर व्यक्तिगत और जातिगत अपमान, जाते ही मुझे पकड़ कर फौजी प्रहार जारी कर दिया। मारते वक्त पिता जी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाए हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं! मैं भी स्वभाव

---

१. कुल्ली भाट।

न बदल पाने के कारण, मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी।"

इतनी पिटाई की भी परवा न कर निराला जी ने वेश्यापुत्र के हाथ का पानी पीना बन्द नहीं किया। किन्तु दुबारा निराला की शिकायत होने पर "कुलीन" ब्राह्मणों ने पिता जी को सामाजिक बहिष्कार की धमकी दी। इस अवसर पर पिता के स्वभाव पर निराला ने स्वयं प्रकाश डाला है— "ओज की मात्रा पिता जी में उनसे (कुलीन कनौजियों से) अधिक थी। फिर मुखिया ने ये बातें डाँट के साथ कही थीं। व्यक्तिगत बात को व्यक्तिगत रूप देते हुए पिता जी ने कहा—'तू हमारा पापी बन्द करेगा! तू पासी का है, गाँव में जा और पूछ, तेरी लडकी पटने में एक दो तीन चार कर रही है—हम अपनी आँखों देख आए हैं। शहर में होते तो देखते हम, कितने आदमियों को बंबे का पानी और डाक्टर की दवा छुड़ाते हो'—मुखिया का थूक सूख गया"।

ऐसे धाकड़ ब्राह्मण के पुत्र थे, निराला जी। पिता को पुत्र के शरीर और विद्या पर गर्व भी कम नहीं था। चौदह वर्ष में निराला का विवाह "मनोहरादेवी" से कर दिया गया। कुल्लीभाट में निराला ने अपने मधुरतम जीवन-प्रसंग का उल्लेख किया है। दो वर्ष बाद सोलहवें साल में निराला का गौना हुआ। मनोहरादेवी तेरह वर्ष की थीं। गाँव की दृष्टि से— "दामाद जवान, बिटिया जवान"। किंतु अप्रत्याशित संकट निराला के साथ बचपन से ही सम्बद्ध हो गया था। गौना पीछे हुआ, गाँव में प्लेग पहले फैला। फलतः गाँव के बाहर फूँस के झोपड़े में निराला ने "सुहागरात" मनाई जिसका रोचक वर्णन निराला ने कुल्लीभाट में दिया है। लेकिन पाँचवें दिन प्लेग के भय से मनोहरा देवी विदा हो गईं। किन्तु निराला जी को ससुराल बुलाया गया। निराला जी गए। ससुराल चलने पर पिता जी बोले—

"ससुराल जाव। लेकिन यहाँ से तिगुना खाना.........रूह, रूह की मालिश करना रोज, होश दुरुस्त हो जाएँगे।"

अतः निराला ने पिता की मार ही नहीं खाई, पिता का स्नेह और उनका पुत्रविषयक गर्व भी पाया था। वस्तुतः जब तक निराला के पिता जीवित रहे, तब तक निराला को कष्ट नहीं हुआ। निराला ने ससुरालयात्रा का बहुत रोचक वर्णन किया है—"बाहर खाई पार करते ही ऐसा झोंका

आया कि एक साथ कुंडलिनी जैसे जग गई, फिर भी पैर पीछे नहीं पड़े बंगाल की वीरता और प्रेमासक्ति बैक कर रही थी। "गुड़ीगड़ता" वे डंडे की तरह गुड़ा, लेकिन स्पोर्टस्मैन था, झड़बेर की झाड़ी तक पहुँचते पहुँचते अड़ गया। देह गर्दबर्द हो गई। मुँह में क्रीम लगायी थी, घाव पर जैसे आयडोफार्म पड़ा.........कड़ाई से पैर आगे बढ़ाया, ठकाका जूते ने कॉंकर के धोके से ठोकर ली और मुँह खोल दिया।"

वस्तुतः यह ससुरालयात्रा ही निराला के जीवन में मधुरतम अध्याय था। उसके बाद की कथा अत्यधिक करुण है।

डलमऊ स्टेशन के पास 'शेरअंदाजपुर' नामक गाँव में (जिला फतेहपुर) निराला की ससुराल थी। अवध का इलाका राजा जयचन्द के समय में कन्नौज राज्य में शामिल था। जयचन्द के समय के 'डलमऊ' का वर्णन निराला जी ने प्रभावती उपन्यास में किया है और इस उपन्यास से "डलमऊ" अमर हो गई है। "कुल्लीभाट" में भी जयचन्द के समय के ध्वंसावशेषों का निराला जी ने उल्लेख किया है। "यमुना के प्रति" कविता निराला जी इसी लिए लिख सके कि उनमें अतीत के गौरव को स्मरण करने की बचपन से ही प्रवृत्ति थी। अतः गद्य में प्रभावती और पद्य में "यमुना के प्रति" एक ही मानसिक स्थिति को दो अभिव्यंजनाएँ हैं। जिसे आजकल आंचलिकता कहा जाता है, उसके लिए निराला के उपन्यासों को ध्यान से पढ़ना चाहिए, किन्तु हिंदी की शोध के 'इंस्पेक्टरों' और 'कोतवालों' का यह हाल है कि एक सज्जन ने जब एक विश्वविद्यालय में "आंचलिक उपन्यासों" पर रूपरेखा भेजी तो उनसे कह दिया गया कि हिंदी में अभी आंचलिक उपन्यास इतने नहीं हैं कि उन पर शोध ग्रन्थ लिखा जा सके। मानो, निराला, प्रेमचंद और प्रसाद के उपन्यासों में आंचलिकता मिलती ही नहीं। ऐसे लोगों की दृष्टि में आंचलिक उपन्यास लेखक केवल स्वतंत्रता के बाद ही उत्पन्न हुए हैं, अस्तु।

निराला ने यद्यपि कुल्लीभाट में मसखरे मूड में ससुराल-प्रसंग लिखा था, लेकिन फिर भी वह उनके मरुस्थल जैसे जीवन में "नखलिस्तान" सा लगता है—

"मैं हर्षित हो आँख बन्द किए आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। सबका भोजन-पान समाप्त हो जाने पर मंद गति से संसार के समस्त छंदों को परास्त करती हुई उनकी पुत्री भीतर आई"।

"चंद्रिका (नौकर) ने दरी बिछायी, रूह की शीशी ले आया।

मैं चित लेट गया और छाती दिखाकर कहा, यहाँ लगाओ—ससुर जी सूँघते-सूँघते बाहर निकल आए, और सूँघते और आँखें तिलमिलाते हुए बोले—अरघानें उठ रहीं हैं, बच्चा ! इतना अतर-फुलेल न लगाया करो, हूरें पकड़ती हैं ।"

"घर भर का भोजन हो जाने पर कल की तरह आज भी श्रीमती जी आईं । लेकिन गति में छन्द नहीं बजे । पान दिया, पर दृष्टि में अपनापन न था । मैं एक तरफ हट गया, उनकी आधी जगह खाली कर दी । बेमन पैर दबाकर लेटीं । उन्होंने कहा—"इत्र की इतनी तेजबदबू है कि शायद आँख नहीं लगेगी" (इसके बाद निराला जी ने मनोहरादेवी को और भी रुठाने के लिए मछुए की स्त्री की कहानी सुनाई कि किस प्रकार उसे रानी के बाग में नींद नहीं पड़ी थी) । "तो मैं मछुआइन हूँ ?"—श्रीमती जी गर्म होकर बोलीं—"यह मैं कब कहता हूँ" ? "तो मैं भी मछली-कलिया खाती हूँ ?" मैंने बहुत ठंडे दिल से कहा—"इसमें खाने की कौन सी बात है ? बात तो सूँघने की है । अपने बाल सूँघो, तेल की ऐसी चीकट और बदबू है कि कभी कभी मुझे मालूम देता है कि तुम्हारे मुँह पर कै कर दूँ ।" श्रीमती जी बिगड़ कर बोलीं—"तो क्या मैं रंडी हूँ, जो हर वक्त बनाव-सिंगार के पीछे पड़ी रहूँ"..........श्रीमती जी जैसे बिजली के जोर से उठकर बैठ गईं, बोलीं—"तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो लो, मैं जाती हूँ ।"

प्रायः निराला के जीवन-प्रसंगों में मनोहरादेवी द्वारा निराला जी को हिंदी पढ़ने के उपदेश की चर्चा हुई है.। किंतु केवल काव्यकृतियाँ पढ़ने और उनकी गद्य की पुस्तकों से अपरिचय के कारण यह भुला दिया गया कि 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' में अनुरागवती रत्ना और सीता द्वारा तुलसीदास और राम प्रेरणा पाते हैं । उसका आधार है, कुल्लीभाट में वर्णित निराला का मनोहरादेवी से मिलन । हरिऔध उपाध्याय के प्रियप्रवास में विप्रलंभ शृंगार करुण रस में परिणत होता हुआ दीखता है । क्या कारण है कि निराला के विप्रलंभ से सम्बन्धित रचनाओं में शृंगार करुण में परिवर्तित होकर अपना महत्व नहीं खो बैठता ? कारण यह है कि निराला के अपने जीवन के अनमोल क्षणों में मनोहरादेवी का सहवास-सुख भी आया था और मनोहरादेवी के उस अल्पकालिक सहवास के समाप्त हो जाने पर, कवि ने मनोहरादेवी के शृंगार और सुख को अलौकिक और रहस्यवादी रूप में आदर्शीकृत कर दिया । रत्ना और सीता की प्रेरक भूमिका के मूल में मनोहरादेवी की निम्नलिखित चर्चा ही है

"श्रीमती जी दिल से अच्छी तरह जानती थीं, बिना कांता के एक रात इनकी पार नहीं हो सकती और आधुनिक प्रेमियों की तरह जिस शब्द-न्यास से यह मुझसे पेश आते हैं, यह दूसरा विवाह हरगिज न करेंगे यानी मैं उन्हें छोड नहीं सकता। बात सही थी। दिन भर विराग रहता था। रात में श्रीमती जी को देखने के साथ अनुराग में परिणत हो जाता था।............श्रीमती जी पूरे अधिकार में नहीं आ रही थीं। वह समझती थीं कि मैं और चाहे कुछ होऊँ, हिन्दी का पूरा गँवार हूँ........मुझे श्रीमती जी की विद्या की पूरी थाह नहीं थी। एक दिन बात लड़ गई। मैंने कहा—"तुम हिंदी हिंदी करती हो, हिंदी में क्या है ?" उन्होंने कहा—"जब तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं है........तुम खड़ीबोली का क्या जानते हो.... ....श्री मती जी पूरे उच्छ्वास में खड़ीबोली के धुरन्धरों का नाम गिनाती गईं।"

हिंदी साहित्य के लिए यह घटना सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। निराला जी इसके बाद खड़ीबोली के कवि बने। निराला जी सोलह पार करके ससुराल गए थे, यानी सन् १९१२-१३ में निराला को यह उपदेश मिला था और यही समय था जब 'सरस्वती' अपने पूर्ण वैभव पर थी। सन् १३ में ही रवींद्र को नोबुल पुरस्कार मिला था और प्रसाद जी की नवीन ढंग की रचनाएँ 'इन्दु' में निकल रही थीं। किंतु निराला-साहित्य में प्रसाद के 'इन्दु' की चर्चा कहीं नहीं मिलती। अतः निराला ने अपना स्वतंत्र मार्ग बनाया। 'कुल्लीभाट' के अनुसार निराला ने हिंदी व्याकरण अच्छी तरह सीखने के पहले ही, शायद सर्वप्रथम "जूही की कली" लिखी जो सन् १६ में 'सरस्वती' से अस्वीकृत होकर, सम्भवतः सर्वप्रथम 'माधुरी' के प्रथम वर्ष के अंकों में छपी (द्रष्टव्य, "परिमल" की भूमिका)। इसके बाद 'मतवाला' प्रकाशित हुआ था और उसमें निराला की रचनाएँ निकलने लगीं।

मनोहरादेवी की मृत्यु उक्त घटना के छः वर्ष बाद हो गई; जब निराला जी २२ वर्ष के थे अर्थात् सन् १९१८ ई० के लगभग। "जूही की कली" में यौवन की जो उमंग दिखाई पड़ती है, वह बाद की रचनाओं में क्यों नहीं मिलती ? बाद में विद्रोह है, क्रांति है, विरह है, अतीत की याद है, रहस्यमय अनुभव है, किंतु "जुही की कली" में नायक की निपट निठुराई और जिस "कठोर आलिंगन" का वर्णन है, वह आगे क्यों नहीं मिलता ? मेरा अनुमान है कि "जुही की कली" और "तुम और मैं" आदि के बाद

निराला जी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते गए, क्योंकि प्रेम का लौकिक आधार मनोहरादेवी का स्वर्गवास हो चुका था। मनोहरादेवी धरोहर के रूप में एक पुत्र और एक पुत्री दे गयी थीं और स्वयं कवि को जीवन भर के लिए कठोर संसार से अकेला लडने के लिए छोड़ गयी थीं। सोलह-सत्रह साल के बाद ही निराला का भग्य-विपर्यय हुआ, यह कहानी अत्यधिक करुण है, किन्तु इससे निराला जी के "वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि" जैसे स्वभाव और साहित्य पर भी प्रकाश पड़ता है।

यह अद्‌भुत लगता है कि निराला जी कच्ची उमर में अनेक मृत्युओं को देखकर भी पागल नहीं हुए और जब वह यश उपलब्ध कर चुके, तब पागल हो गए, यह तथ्य विचित्र लगता है। इस तथ्य की एक कुंजी इस वाक्य में है—"सोलह-सत्रह साल की उम्र से भाग्य में जो विपर्यय शुरू हुआ, वह आज तक रहा। लेकिन मुझे इतना ही हर्ष है कि जीवन के उसी समय से मैं जीवन के पीछे दौड़ा, जीव के पीछे नहीं। इसीलिए शायद बच जाऊँगा। जीव के पीछे पड़ने वाला बड़े-बड़े मकान, राष्ट्र-चमत्कार और जादू से प्रभावित होकर जीवन से हाथ धोता है, जीवन के पीछे चलनेवाला जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ नहीं होता।"

इस वक्तव्य से मैं यह अनुमान करता हूँ कि पिता, भाई, भावज, भतीजे आदि की मृत्यु के बाद निराला निराश नहीं हुए, जीवन से लड़ते रहे; क्योंकि वह साहित्य के द्वारा उस विशिष्टता को प्राप्त करना चाहते थे, जिससे समाज की सेवा भी होती है और बदले में कवि को सम्मान और स्नेह भी मिलता है। इस आशा ने निराला को बचाए रखा। फिर प्राण के आधार के लिए पुत्र और पुत्री भी थी। किंतु जब उस विशिष्टिता को निराला ने प्राप्त कर लिया और देखा कि समाज वैसा का वैसा ही जड़ है और इस रक्तदान करके की गई सेवा के बदले में उपेक्षा, भर्त्सना, अपमान और क्षोभ मिला है तो कवि इस द्वितीय आघात को नहीं सह सका। वह प्रकृति के कोप को सह गया, किंतु समाज की जड़ता को नहीं सह सका। आर्थिक विषमता और ऊपरी हाव-भावों पर आधारित समाज ने निराला की संवेदना पर इतना अधिक भार डाला कि कवि अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। स्वप्न भंग होने पर मनुष्य या तो आत्महत्या करता है या पागल हो जाता है अथवा अवसरवादी बन जाता है। निराला जिन अस्थियों से बने थे, वे चूर चूर हो सकती थीं, किन्तु झुक नहीं सकती थीं। अतः कवि विषमताग्रस्त और जातिग्रस्त समाज के अनुभव में अपनी ललकार से मौलिक

परिवर्तन न देखकर, अपनी उन्मादित अवस्था में ही रमने लगा, जहाँ न बंधन है, न विषमता, न अपमान, न राग, न द्वेष। जिस अवस्था को लौकिक स्तर पर कवि न पा सका, उसे वह अपनी उन्मादग्रस्त कल्पना के बल से भोगने लगा। यही निराला का पागलपन था किन्तु इस अवस्था तक पहुँचने के पहले ही कहानी दारुण है।

मनोहरादेवी के उपदेश के बाद पाँच वर्षों की अवधि में निराला 'कवि' बने और इस बीच कई बार ससुराल आना-जाना भी हुआ।

सर्वप्रथम निराला ने पिता जी को खोया। निराला ने महिषादल में ही नौकरी कर ली। उसके बाद सन् १९१८ में मनोहरा देवी इन्फ्लुएन्जा के प्रकोप से कालकवलित हो गईं। तार मिलते ही निराला ससुराल को भागे। "स्त्री का प्यार उसी समय मालूम दिया, जब वह स्त्रीत्व छोड़ने को थी। ससुराल पहुँचने पर मालूम हुआ, स्त्री गुजर चुकी है।" इस इंफ्लुएंजा ने दादाजाद बड़े भाई के भी प्राण ले लिए। घर पहुँचते-पहुँचते भाई की लाश देखने को मिली। रास्ते में चक्कर आ गया। सिर पकड़कर बैठ गया"। भाभी बीमार पड़ीं। उनके चार लड़के और एक दूध पीती बच्ची थी। उनका बड़ा लड़का निराला जी के साथ बंगाल में रहता था। घर में चाचा जी मालिक थे। भाई के बाद चाचा बीमार पड़े। भाभी गुजर गईं। उनकी दूध पीती बच्ची भी चल बसी। चाचा ने भी दम तोड़ दिया। इस प्रकार घर के सब बड़े सदस्य मृत्यु को प्राप्त हुए। निराला के सिर पर, चार दादा के लड़कों और दो अपने बच्चों का भार था। दादा के बड़े बच्चे की उम्र १५ वर्ष, और निराला की लड़की सरोज की उम्र १ वर्ष! "चारों ओर अँधेरा नजर आता था"।

इस स्थिति में नौकरी ही एकमात्र सहारा थी; किन्तु निराला के मन में आत्मसम्मान की भावना आवश्यकता से अधिक थी और यही उनकी "विशिष्टता" का कारण थी; और यही उनके असंतुलन का भी कारण बनी। निराला अंधविश्वासों के विरोधी थे। वह न केवल कनौजिया ब्राह्मणों की मूर्खता और व्यर्थ उच्चभाव के विरुद्ध लड़ते थे, अपितु वह राजा साहब के यहाँ एक साधु के अंधविश्वास के विरुद्ध भी लड़े। अपनी चीजें नीलाम करके और नौकरी छोड़कर भतीजे के साथ गाँव लौट आए। कितनी कठिन परिस्थिति थी! और उधर साहित्य के क्षेत्र की दशा का भी निराला ने वर्णन किया है

"मैं बेकार था। 'सरस्वती' से कविता और लेख वापस आ जाते थे। एक-आध चीज छपी थी। प्रभा में मालूम हुआ, बड़े बड़े आदमियों के लेख-कविताएँ छपती हैं। एक दफा आफिस जाकर बातचीत की, उत्तर मिला—इसमें भारतीय आत्मा, राष्ट्रीय पथिक, मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों की कविताएँ छपती हैं,.......मुँह लटका कर लौट आया"।

किन्तु निराला हतप्रभ नहीं हुए। कुछ समय के बाद निराला की धाक जम गई—"कुछ ही दिनों में कविता-क्षेत्र में जैसे चूहे लग जाएँ, इस तरह कवि-किसानों और जनता-जमींदारों में मेरा नाम फैला। पुराने स्कूल वालों ने मोर्चा बन्दी की और लड़ाई छेड़ दी। पर हार पर हार खाते गए"।

निराला की प्रसिद्धि का कारण था, नूतन मुक्त छन्द और नूतन सौंदर्य-बोध। निराला के पूर्व, प्रसाद जी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त और रूपनारायण पांडेय अतुकान्त छन्दों का प्रयोग कर चुके थे; किन्तु छन्द को केवल प्रवाह पर आधारित करके, उसे सर्वथा नियममुक्त करना निराला का ही कार्य था। उनके मुक्तछन्द "पढ़ने की कला" पर आधारित थे, गण, वर्ण और मात्राओं पर नहीं। इसके सिवा वह मोहक चित्रों और मनोहर भावों की सृष्टि कर उन्हें व्यापक चित्रों और अनन्त भावनाओं में लीन कर देते थे; द्विवेदीयुग की स्थूल उपदेशवादी या सहज आवेगवादी प्रवृत्ति के विरुद्ध इस नूतन सौन्दर्यबोध ने सहज ही शिक्षित समाज का ध्यान आकर्षित कर लिया। किन्तु प्रश्न जीविका का भी साथ चल रहा था। अतः पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की सिफारिश पाकर निराला जी विवेकानन्द मिशन के पत्र 'समन्वय' के सम्पादक-मंडल में कार्य करने लगे। कुछ समय बाद उन्हें सेठ महादेवप्रसाद के "मतवाला" में काम करना पड़ा। वस्तुतः सेठ जी निराला को बहुत स्नेह देते रहे। 'मतवाला' से निराला का बहुत अधिक प्रचार हुआ। निराला जी ने इसी अवधि में विवेकानन्द मिशन के सम्पर्क के कारण अद्वैतवाद पर प्रौढ़ लेख लिखे और विवेकानन्द की ही तरह अद्वैतवाद के द्वारा देश को स्वतंत्रता की प्रेरणा दी। निराला अद्वैतवाद के अनुरसणकर्त्ता रहकर भी 'मिशन' के अनुयायियों के चमत्कारों का बराबर विरोध करते रहे। उन्होंने एक कहानी में एक बाबा द्वारा अपने ऊपर सम्मोहन का भी वर्णन किया है। पर निराला जी बच निकले।

और निराला का सयोग भी आगे न चल सका वह

परिवर्तन न देखकर, अपनी उन्मादित अवस्था में ही रमने लगा, जहाँ न बंधन है, न विषमता, न अपमान, न राग, न द्वेष। जिस अवस्था को लौकिक स्तर पर कवि न पा सका, उसे वह अपनी उन्मादग्रस्त कल्पना के बल से भोगने लगा। यही निराला का पागलपन था किन्तु इस अवस्था तक पहुँचने के पहले ही कहानी दारुण है।

मनोहरादेवी के उपदेश के बाद पाँच वर्षों की अवधि में निराला 'कवि' बने और इस बीच कई बार ससुराल आना-जाना भी हुआ।

सर्वप्रथम निराला ने पिता जी को खोया। निराला ने महिषादल में ही नौकरी कर ली। उसके बाद सन् १९१८ में मनोहरा देवी इंफ्लुएन्जा के प्रकोप से कालकवलित हो गईं। तार मिलते ही निराला ससुराल को भागे। "स्त्री का प्यार उसी समय मालूम दिया, जब वह स्त्रीत्व छोड़ने को थी। ससुराल पहुँचने पर मालूम हुआ, स्त्री गुजर चुकी है।" इस इंफ्लुएंजा ने दादाजाद बड़े भाई के भी प्राण ले लिए। घर पहुँचते-पहुँचते भाई की लाश देखने को मिली। रास्ते में चक्कर आ गया। सिर पकड़कर बैठ गया"। भाभी बीमार पड़ीं। उनके चार लड़के और एक दूध पीती बच्ची थी। उनका बड़ा लड़का निराला जी के साथ बंगाल में रहता था। घर में चाचा जी मालिक थे। भाई के बाद चाचा बीमार पड़े। भाभी गुजर गईं। उनकी दूध पीती बच्ची भी चल बसी। चाचा ने भी दम तोड़ दिया। इस प्रकार घर के सब बड़े सदस्य मृत्यु को प्राप्त हुए। निराला के सिर पर, चार दादा के लड़कों और दो अपने बच्चों का भार था। दादा के बड़े बच्चे की उम्र १५ वर्ष, और निराला की लड़की सरोज की उम्र १ वर्ष! "चारों ओर अँधेरा नजर आता था"।

इस स्थिति में नौकरी ही एकमात्र सहारा थी; किन्तु निराला के मन में आत्मसम्मान की भावना आवश्यकता से अधिक थी और यही उनकी "विशिष्टता" का कारण थी; और यही उनके असंतुलन का भी कारण बनी। निराला अंधविश्वासों के विरोधी थे। वह न केवल कनौजिया ब्राह्मणों की मूर्खता और व्यर्थ उच्चभाव के विरुद्ध लड़ते थे, अपितु वह राजा साहब के यहाँ एक साधु के अंधविश्वास के विरुद्ध भी लड़े। अपनी चीजें नीलाम करके और नौकरी छोड़कर भतीजे के साथ गाँव लौट आए। कितनी कठिन परिस्थिति थी! और उधर साहित्य के क्षेत्र की दशा का भी निराला ने वर्णन किया है

"मैं बेकार था। 'सरस्वती' से कविता और लेख वापस आ जाते थे। एक-आध चीज छपी थी। प्रभा में मालूम हुआ, बड़े बड़े आदमियों के लेख-कविताएँ छपती हैं। एक दफा आफिस जाकर बातचीत की, उत्तर मिला—इसमें भारतीय आत्मा, राष्ट्रीय पथिक, मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों की कविताएँ छपती हैं,.......मुँह लटका कर लौट आया"।

किन्तु निराला हतप्रभ नहीं हुए। कुछ समय के बाद निराला की धाक जम गई—"कुछ ही दिनों में कविता-क्षेत्र में जैसे चूहे लग जाएँ, इस तरह कवि-किसानों और जनता–जमींदारों में मेरा नाम फैला। पुराने स्कूल वालों ने मोर्चा बन्दी की और लड़ाई छेड़ दी। पर हार पर हार खाते गए"।

निराला की प्रसिद्धि का कारण था, नूतन मुक्त छन्द और नूतन सौंदर्य-बोध। निराला के पूर्व, प्रसाद जी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त और रूपनारायण पांडेय अतुकान्त छन्दों का प्रयोग कर चुके थे; किन्तु छन्द को केवल प्रवाह पर आधारित करके, उसे सर्वथा नियममुक्त करना निराला का ही कार्य था। उनके मुक्तछन्द "पढ़ने की कला" पर आधारित थे, गण, वर्ण और मात्राओं पर नहीं। इसके सिवा वह मोहक चित्रों और मनोहर भावों की सृष्टि कर उन्हें व्यापक चित्रों और अनन्त भावनाओं में लीन कर देते थे; द्विवेदीयुग की स्थूल उपदेशवादी या सहज आवेगवादी प्रवृत्ति के विरुद्ध इस नूतन सौन्दर्यबोध ने सहज ही शिक्षित समाज का ध्यान आकर्षित कर लिया। किन्तु प्रश्न जीविका का भी साथ चल रहा था। अतः पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की सिफारिश पाकर निराला जी विवेकानन्द मिशन के पत्र 'समन्वय' के सम्पादक-मंडल में कार्य करने लगे। कुछ समय बाद उन्हें सेठ महादेवप्रसाद के "मतवाला" में काम करना पड़ा। वस्तुतः सेठ जी निराला को बहुत स्नेह देते रहे। 'मतवाला' से निराला का बहुत अधिक प्रचार हुआ। निराला जी ने इसी अवधि में विवेकानन्द मिशन के सम्पर्क के कारण अद्वैतवाद पर प्रौढ़ लेख लिखे और विवेकानन्द की ही तरह अद्वैतवाद के द्वारा देश को स्वतंत्रता की प्रेरणा दी। निराला अद्वैतवाद के अनुसरणकर्त्ता रहकर भी 'मिशन' के अनुयायियों के चमत्कारों का बराबर विरोध करते रहे। उन्होंने एक कहानी में एक बाबा द्वारा अपने ऊपर सम्मोहन का भी वर्णन किया है। पर निराला जी बच निकले।

और निराला का संयोग भी आगे न चल सका वह

विज्ञापन, लेखन, अनुवाद आदि से अपना कार्य चलाते रहे। आश्चर्य का विषय यह है कि इस आर्थिक विपन्नता में भी कवि अपने साहित्यिक स्तर की रक्षा कैसे करता रहा! फिर भी कलकत्ते से हटना पड़ा और सन् १९२८ में निराला जी लखनऊ में रहने लगे। सन १९२९ में उनका "परिमल" प्रकाशित हुआ। दुलारेलाल भार्गव की प्रेरणा से उनका प्रथम कहानी-संग्रह 'लिली' और 'अप्सरा' उपन्यास भी 'गंगापुस्तकमाला' से प्रकाशित हुए। यह "पल्लव-आँसू" काल था। इन दोनों रचनाओं ने प्रसाद और पन्त को अत्यधिक ख्याति दी थी। 'परिमल' के बाद यह स्पष्ट हो गया कि निराला, पन्त और प्रसाद जी से भी प्रौढ़ कवि हैं। उनकी शब्द-साधना प्रौढ़तर और सघन है, वहाँ लाक्षणिक वैचित्र्य उतना नहीं है जितना सघन शब्दावली में निविड़भावोर्मियों को चित्रित करने का प्रयत्न है। उसके अतिरिक्त निराला ने "बादल राग", "जागो फिर एक बार", 'भिक्षुक' जैसी रचनाओं में 'पल्लव', 'गुञ्जन' और 'आँसू' काल की मात्र रोमानी भावना के विरुद्ध राष्ट्रीय और यथार्थवादी रचनाएँ दीं। निश्चित रूप से प्रसाद और पन्त में यह वैविध्य और पौरुष नहीं था। इसके सिवा निराला के व्यक्तित्व का आकर्षण और भी अधिक था। पन्त और प्रसाद उतने विवादास्पद व्यक्ति नहीं बने, जितने निराला जी बन गए थे। इसलिए भी निराला के प्रति आकर्षण अधिक था।

इसके बाद निराला की 'साहित्य-सम्मेलन' से टक्कर हुई और उन्हें पुराणपन्थी ब्रजभाषा-रसिकों के वाणों का सामना करना पड़ा। सनातनियों से वर्तमान धर्म और "साहित्यिक सन्निपात" शीर्षक लम्बा विवाद चला। इसी साहित्यिक संग्राम में अनेक लांछनाओं के निराला जी शिकार हुए। सन् ३० से ३५ तक कलकत्ते के प्रसिद्ध पत्र "विशाल भारत" द्वारा निराला जी पर कीचड़ उछाली गई। इसी बीच सन् ३५ में निराला की विवाहिता पुत्री का देहान्त हो गया, जिसे देखकर वह मनोहरादेवी की व्यथा को भूले रहते थे। हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोकगीत, "सरोज के प्रति" है। निराला इसमें कला की चिन्ता न कर केवल कवि के रूप में हैं और भावनाएँ अपना प्रकृत पथ अपनाकर चली हैं:—

दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ, आज जो नहीं कही
कन्ये! गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

जिसने पिता, पत्नी, भाई, भाभी की मृत्यु पर भी संयम न खोया, उसका धैर्य पुत्री की मृत्यु पर नहीं रह सका। कालिदास की सुन्दरतम पंक्तियाँ शकुन्तला की विदा के समय पर कही गयी हैं, इसी तरह निराला की मार्मिकतम पंक्तियाँ "सरोज की स्मृति" में कही गयी हैं। भारतवर्ष की दो श्रेष्ठ रचनाओं में, इस प्रकार, एक बेटी की विदा पर है तो दूसरी उसकी मृत्यु पर !

ऐसा प्रतीत होता है कि 'सरोज की स्मृति' निराला की सहनशक्ति की चरम सीमा थी। कवि ने "तुलसीदास" और "राम की शक्ति-पूजा" तक अपने संतुलन की रक्षा की और "जूही की कली" से प्रारंभ होनेवाला काव्य इन कृतियों में आकर अपनी चरम विकासावस्था पर पहुँच गया; किन्तु इनके बाद निराला पूर्णतः विद्रोही कलाकार बन गया। समाजवाद के अध्ययन ने नवीन साहित्यिक समझ दी, यद्यपि कवि में अद्वैतवादी ज्ञान और भावविभोरता के स्तर भी यथावत् रहे। फलतः कवि ने 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला', 'नए पत्ते' में विद्रोह व्यक्त किया; रस के स्थान पर व्यंग्य का विकास किया और अर्चना में भावविभोरता को अभिव्यक्ति दी। इनके अतिरिक्त अपनी कहानियों और 'अलका' और 'निरुपमा' जैसे उपन्यासों में उसने समाज को कठोर यथार्थवादी दृष्टि से देखा।

निराला जी के जीवन में इस प्रकार सन् १८९६ से सन् ३५ तक एक सोपान पूरा होता हुआ दिखाई पड़ता है, और घटनाओं और रचनाओं में स्पष्टतः देखा जा सकता है। जैसे युद्ध में भयानक चोट खाकर वीर गिर पड़ता है, उसी प्रकार "सरोज की मृत्यु" पर वह घायल होकर एक बार गिरता हुआ दिखाई पड़ता है। पश्चात घुटना टेक कर जब कवि उठ बैठता है तो वह व्यंग्य की बौछारों से समाज पर द्विगुणित बल से प्रहार करता है। यदि सन् ४० के बाद कवि विनोदवृत्ति में अत्यधिक विकास कर लेता तो यह सम्भव था कि वह पागल न होता। किन्तु यह सम्भावना मात्र है। हारा हुआ व्यक्ति विनोद से अपने को बचा सकता है। विनोद या हास्य अहंकार की अतिशयता को कम करता है, किन्तु निराला में विनोद से वीरता की मात्रा अधिक थी। बंगाल से अधिक उनके शरीर में बैसवाड़े के किसान का ओज था। अतः अत्यधिक संवेदनशीलता ने उनकी वीरता को अंतर्मुखी कर दिया और फिर जैसे समाज पर पड़नेवाले आघात वह स्वयं अपने ऊपर ही करने लगा !

कुछ तो दुनिया की ही फितरत में   थी

कुछ तो संसार के अत्याचार और कुछ कवि की अत्यधिक संवेदन (हस्सैस) प्रकृति इन दोनों ने निराला को पागल बना दिया और अपनी अर्धचेतनावस्था में जब कवि अँगरेजी में ही बोलने और लिखने की प्रतिज्ञा कर चुका था, तब जैसे वह अपने से ही प्रतिशोध ले रहा हो, मानों अपने आप से ही कह रहा हो—"निराला! यदि तू ने हिन्दी में न लिखकर इतने श्रम और प्रतिभा का प्रयोग अँगरेजी भाषा में किया होता तो क्या तेरी उपेक्षा होती? क्या तुझे इतना आर्थिक अभाव सहना पड़ता?"

आज भी यह प्रश्न हिन्दी के हर लेखक के सम्मुख है। और यह तब तक रहेगा जब तक हिन्दी रचनाओं के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद की सरकार या बड़ी बड़ी संस्थाओं की ओर से व्यवस्था नहीं होती। इधर कुछ अनुवाद हुए हैं, केवल उन लेखकों के, जो पहले से ही ख्यातिप्राप्त हैं और जिनके सम्मुख आर्थिक अभाव का प्रश्न नहीं है। हिन्दी के निरालाओं की प्रतिभा का तभी पूर्णतः विकास होगा जब उनकी अच्छी रचनाओं और आलोचनाओं को अँगरेजी आदि में शीघ्र अनुवाद करके उनके लेखकों को विश्व-साहित्य में शामिल कर दिया जाय। विश्वविद्यालय यह कार्य कर सकते हैं, शिक्षामंत्रालय यह कार्य कर सकते हैं। किन्तु "निराला" की बलि ले लेने पर भी यदि हम आज जाग्रत नहीं होते तो यह निश्चय है कि या तो कवि और लेखक उच्च स्तर की वस्तु न देकर प्रचलित रुचि का ध्यान कर लिखेंगे, जैसा कि आज हो रहा है, अथवा निराला की तरह जीवन भर अपनी शक्ति का हवन कर अन्त में पागल हो जाएँगे अथवा उस अवसरवाद का विकास होगा जिसमें कविता के नाम पर चमत्कारवाद या सस्ते गीतों का प्रचार होगा, और आलोचना के नाम पर चाटुतोषिणी टीकाओं और व्याख्याओं का! निराला की मृत्यु व्यवसायवाद और अवसरवाद के विरुद्ध एक चुनौती है। क्या हम इसे स्वीकार करेंगे?

'निराला' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

निराला जी के पिता पं० रामसहाय जी उन्नाव (उत्तर प्रदेश) के गढ़ाकोला ग्राम के निवासी थे, किन्तु जीविका-वश, बाद में, बंगाल के महिषादल राज्य में जा बसे थे, और वहीं संवत् १९५१ वि० में निराला का जन्म हुआ। बंगाल में उत्पन्न होने के कारण सहजतया ही आपकी प्रारंभिक शिक्षा बंगला और संस्कृति में हुई और इन्हीं भाषाओं में आपने प्रारंभिक कवितायें भी लिखीं। बंगला के प्रसिद्ध लेखक श्री हरिपद घोषाल ने आपको अंग्रेजी की शिक्षा दी। तेरह वर्ष की आयु में विवाह होने पर आपने अपनी धर्मपत्नी से हिन्दी सीखी और रामचरितमानस का अध्ययन कर उसमें ज्ञान की प्रौढ़ता प्राप्त की। तब से आप हिन्दी में कविता करने लगे। १६ वर्ष की आयु में लिखी हुई आपकी प्रथम रचना 'जूही की कली' ने ही आपकी मुक्तता, स्वच्छन्दता, नूतनता और महा-प्राणता के परिचय के साथ ही आपकी भावी महानता का संकेत दे दिया था।

निराला जी का बाह्यरूप कठोर, परन्तु अन्तर अत्यन्त करुणार्द्र था। भारतीय संस्कृति अपनी समस्त कोमलता के साथ आपके रक्त में प्रवाहित हो रही थी। निराला का जीवन विषमताओं, त्याग, तपस्या, बलिदान और पौरुष की कहानी रहा। अल्प वय में ही उन्होंने माता-पिता का शाश्वत वियोग देखा, विवाह के पाँच वर्ष बाद ही एक-प्राणा पत्नी का अवसान, फिर एकमात्र पुत्री सरोज का असमय निधन, और जन्म भर आर्थिक संकट, तो भी वे अपने प्राण-रस से हिन्दी को सींचते रहे। हिन्दी के लिए निराला मिट गए और मिटकर ही अमर हो गए। वे हिन्दी में अद्वितीय स्थान रखते हैं और हिन्दी साहित्याकाश के सर्वाधिक प्रकाश-मान नक्षत्र हैं।

निराला जी अनेक विधाओं के रचयिता थे । उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास आदि सब में एक सी सफलता पाई, और सभी में ढेरों रचनायें कीं । उनके अनेक काव्य-ग्रंथ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । 'परिमल' उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह है, किन्तु फिर भी उसने हिन्दी काव्य को एक नई दिशा, एक नई गति दी है। छन्द, भाषा, भाव—सभी में वह प्रगतिशील रहा है । 'विधवा', 'भिक्षुक', 'दीन', 'वह तोड़ती पत्थर' आदि कविताएँ अत्यन्त करुणार्द्र हैं । 'अनामिका' में भी यही करुणा बह रही है । 'गीतिका' में संगीतरागों तथा रूपचित्रों की प्रचुरता है ।

प्रकृति भी मानव-रूप में चित्रित हुई है । 'प्रिय यामिनी जागी' का चित्र अत्यन्त चित्ताकर्षक है । 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका' की रंगीनी बाद वाली कविताओं में नहीं मिलती । इन कविताओं में वे जनता के दुख-दर्द की कहानी कहने लगे । 'गीतिका' के 'झपताल' 'रम्माच' को छोड़कर कजली गाने लगे । वे जन-कवि बन गए और देश की दुर्दशा दिखलाने लगे । 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा' और 'बेला' की कविताओं को प्रगतिवाद की विजय-दुंदुभी समझना अनुचित न होगा । इनमें निर्धनता और दुरवस्था के वास्तविक कारण तक पहुँचने का प्रयास किया गया है, और व्यंग्य का स्वर प्रधान हो गया है । 'तुलसीदास' निराला के काव्योत्कर्ष को प्रदर्शित करता है । तुलसीदास का यह उदात्त भावनापूर्ण चित्र निराला की भाषा-शैली के सौष्ठव से युक्त एक प्रसिद्ध छायावादी प्रबंध काव्य है । 'अणिमा' संग्रह में शुक्लजी, महादेवी वर्मा, विजयलक्ष्मी पंडित आदि पर प्रशस्तियाँ हैं । 'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नये पत्ते' में उनके व्यंग्य बिखरे हैं । 'मास्को डायलाग्ज', 'गर्म पकौड़ी', 'प्रेम-संगीत', 'रानी और कानी' आदि कविताओं में सामाजिक दोषों पर तीव्र व्यंग्य-प्रहार किया गया है । सामाजिक 'अपरा' काव्य-संग्रह में निराला की चुनी हुई कविताओं का संकलन हुआ है । परिस्थितियों और संघर्ष-चित्रण में निराला ने गद्य का प्रयोग किया है । निबंधों में उनकी आलोचनाशक्ति दिखाई देती है । श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय से उन्होंने कहा था, 'देखते नहीं, मेरे पास एक कवि की वाणी, कलाकार के हाथ, पहलवान की छाती और फिलासफर के पैर हैं ।' तब पाण्डेयजी ने 'संवेदनशील हृदय' और मिलाकर उनका व्यक्तित्व पूरा कर दिया । इस प्रकार निरालाजी कवि, कलाकार, पहलवान, दार्शनिक और भावुक—इन पाँचों की पुंजीभूत मूर्ति थे । इसी विचित्र व्यक्तित्व-समन्वय के कारण निराला निराले हैं अपने ढंग के अकेले हैं, और अपनी भावोकता में अत्यल्प जन-अभिगम्य हैं

निराला जी की प्रतिभा बहुमुखी थी, जैसे कि उनका पक्ष बहुपक्षीय था। अनेक भाषाओं का ज्ञान, दार्शनिक-चिंतन का पांडित्य, उच्चवर्गीय संस्कृति का वातावरण, संकटों का निर्मम प्रहार, स्वभाव का फक्कड़पन और संतों का-सा निर्द्वन्द्व निस्पृह जीवन इन सबने उन्हें निराला ही रूप दे दिया था। हिन्दी में एक मात्र निराला ही शुद्ध साहित्योपजीवी कवि थे।

श्री रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की वेदान्त-धारा का उनपर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था, और इसी से उनकी कविता में सबसे प्रबल स्वर वेदान्त का ही है। वेदान्त के चिन्तन के फलस्वरूप कवि में अवश्यंभावतया ही तीव्र विरक्ति अथवा जगत के प्रति उदासीनता का भाव लक्षित होता है। यह देखकर कि 'जो-जो आये थे, चले गए, मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब भले गए,' वह नियति-नटी की क्रीडा, विश्वमाया के प्रपञ्च और सृष्टि की नश्वरता के प्रति उपेक्षामय हो जाता है, किन्तु क्षणभंगुरता कवि में निराशा का नहीं, हतोत्साहिता का नहीं, पौरुष का, सवर्धोत्प्रेरक उत्साह का संचार करती है, क्योंकि दर्शन के प्रभाव से कवि जय-पराजय, सुख-दुःख, आशा-निराशा, सभी में ब्रह्म-व्याप्ति देखता है और इन सभी का पर्यवसान भी ब्रह्म में ही देखता है—

जीवन की विजय, सब पराजय,
चिर अतीत आशा. सुख, सब भय
सब में तुम, तुममें सब तन्मय।

यही कारण है कि जब छायावाद के अन्य कवि निराशावादी हैं, निराला जी ही एक मात्र आशावादी हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 'निराला जी का हृदय कवि है, मस्तिष्क दार्शनिक है।' वेदान्त तो उनकी गुरती में भी आ जाता है। उनकी पकौड़ियाँ भी वेदान्त के तत्व को उपस्थित करती हैं। उनकी दार्शनिकता भावना-प्रधान भी है और चिन्तन-प्रधान भी। उनका कवित्व पुष्ट और सबल है।

निराला जी की यह दार्शनिकता बौद्धिक श्रममात्र नहीं है, इसमें संघर्ष-निरत जीवन की व्यावहारिकता भरी हुई है। स्वामी विवेकानन्द स्वयं भी व्यावहारिक वेदान्ती थे, और उनके वेदान्त की प्रमुख विशेषता शक्ति, करुणा और सेवा है। अतः जब निराला ने उन्हें अपनाया, तो वेदान्त को प्रगतिशीलता के आधार-रूप में भी प्रस्तुत कर दिया।

यही वेदान्त निराला के रहस्यवाद का भी मूलाधार है। आत्मा

और परमात्मा के माधुर्य मिलन को रहस्यवाद कहते हैं। रहस्यवाद क इस सामान्य धारणा से यदि हम माधुर्यभाव, प्रमी-प्रेमिका-प्रणय-भाव के चिन्तन स बदल दें तो हमें निराला का रहस्यवाद प्राप्त होता है। रसता और रामात्मकता का पूर्ण निर्वाह करते हुए भी उन्होंने अपने में स्त्रीत्व का आरोप नहीं किया। वे कबीर, मीरा और महादेवी की भाँति अपने को 'हरि की बहुरिया' नहीं कहते, वरन् वे वेदोपनिषत् के चिन्तन-क्रम के अनुसार आत्मा-परमात्मा, दोनों को पुल्लिंग मानते हैं, क्योंकि आत्मा परमात्मा का ही अंश है। निराला के रहस्यवाद का सर्वोत्तम बोध कराने वाली सर्वोत्कृष्ट कलात्मक कविता 'तुम और मैं' है, जिसमें ब्रह्म और जीवन की पूर्ण अभिन्नता व्यक्त की गई है—

तुम तुंग हिमालय श्रृंग,
　　और मैं चंचल गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास,
　　और मैं कान्त कामिनी-कविता ॥……आदि

रामकृष्ण-मिशन में कार्य करने के कारण आप स्वामी विवेकानन्द की विचार-धारा से प्रभावित हुए, जिससे विवेकानन्दीय वेदान्त आपकी रचनाओं में मिलता है, जिसकी प्रमुख विशेषता शक्ति, करुणा और सेवा है। उनके चिन्तन ने उन्हें जो विरक्ति और उदासीनता दी, वह केवल सृष्टि की क्षणभंगुरता का बोध कराकर उन्हें उसके प्रपंच से ऊपर उठने की प्रेरणा तो दे सकी किन्तु उन्हें कर्तव्य-विरत करने वाली हतोत्साहिता से अभिभूत न कर सकी। इस प्रकार, जबकि अन्य छायावादी कवि निराशावादी हैं, निराला महान् आशावादी थे।

निराला सर्वजन-कल्याण के कार्य में दत्त-रुचि रहे। अत: देश की दयनीय अवस्था—दीनता, हीनता, रुग्णता और निरवलम्बता—देखकर वे करुणार्द्र हो जाते थे और फलतः उनका काव्य भी करुण रस से आप्लावित है। उनकी 'विधवा', 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'दीन' आदि कवितायें अत्यन्त करुणोत्सिक्त हैं। 'क्रूर-काल-ताण्डव की स्मृति रेखा-सी' ये मानवमूर्तियाँ हमारी समाज-व्यवस्था के खोखलेपन पर व्यंग्य भी करती हैं।

निरालाजी देश की परतन्त्रता और तज्जन्य विषाद का चित्रण करते हुए उस दयनीय स्थिति से छुटकारा दिलाने के लिए अपनी कविता को करुण रस से अभिसिक्त कर सामाजिक विषमताओं और राजनीतिक हीनताओं का बोध कराते हुए अपने दर्शन में भी उद्बोधन की लहर ला

सके । इतना ही नहीं, उनका प्रत्येक कार्य, उनका प्रत्येक विचार और उनका प्रत्येक भाव, संक्षेप में, उनकी समस्त साधना ही देश के लिए थी। राष्ट्र के जागरण के हेतु उन्होंने अतीत का गौरव-गान किया—उस अतीत का जिसने चिरकाल तक विश्व को ज्ञान दिया और प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व किया । 'यमुना', 'दिल्ली', 'सहस्राब्दि', 'पंचवटी-प्रसंग' में अतीत से प्रेरणा ली गयी है और 'राम की शक्ति पूजा', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'जागरण', 'उद्‌बोधन' आदि कविताओं में ओज-संचार के द्वारा देश के लिए बलिदान हो जाने के भाव भरे गये हैं ।

जैसे निराला ने नारी के चित्र प्रकृति के उपकरणों से सजाये हैं वैसे ही प्रकृति को भी मानवीकरण के द्वारा भावचलित कर दिया है। प्रकृति को नारी रूप में उतारा गया है, जो निरीक्षण, अनुभूति और कल्पना के संबद्ध प्रयोग से अपूर्व आभा-संपन्न हो गई है। 'जूही की कली' आदि प्रकृति के स्थिर चित्र हैं, तो 'सन्ध्या-सुन्दरी' आदि गति-चित्र हैं। 'बादल' में वे कल्पना की रंगीन उडान खींचते हैं और ध्वन्यर्थ-व्यंजना का पूरा ध्यान रखते हैं—

'ऐ अटूट पर फूट टूट पडने वाले उन्माद
विश्व - विभव को लूट-लूट लडने वाले अपवाद
ऐ विप्लव के प्लावन

निरालाजी की कविताओं में वातावरण की सजीवता परम आकर्षक रूप में अंकित हुई है। अभिलेख्य विषय के आसपास की समस्त वस्तुओं का प्रभाव और उनकी पारस्परिक प्रतिक्रिया का वे सम्यक् चित्रण करते हैं। 'यामिनी जागी', 'जूही की कली', 'संध्या-सुन्दरी', 'बादल राग', 'शरत्पूर्णिमा की बिदाई'—सभी में समस्त वातावरण को सजीव रूप में अंकित कर दिया गया है।

निरालाजी की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी विद्रोह-भावना जो भाषा, छन्द, साहित्य, समाज, जीवन, सभी में बंधन, बाधा, शोषण और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने को उन्हें प्रस्तुत करती रही। और वे भैरवी का आह्वान करते हैं—'एक बार बस और नाच तू श्यामा' और दलित मानव को स्वयं अपनी दुर्दशा हटाने के लिए प्रतिबुद्ध कर देते हैं—

जल्द - जल्द पैर बढ़ाओ, आओ आओ।
आज अमीरों की हवेली—

किसानों की होगी पाठशाला
धोबी पासी चमार तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।
—बेला

'निरालाजी जीवन की चतुर्दिक भावनाओं के कवि हैं।' उन्होंने आत्मा-परमात्मा, प्रकृति, प्रेम, दैन्य, समाज, व्यंग्य आदि सभी विषयों पर भावुकता की समस्तता के साथ कविता की है। इसी से उनके काव्य-विषय और कविताओं के शीर्षक इतनी भिन्नता रखते हैं। निराला के लिए तो जीवन ही एक कला बन गया था। सौन्दर्य का साक्षात्कार और इसके अतिरिक्त और सब त्याज्य, यही निराला का जीवन-स्वरूप रहा। सौन्दर्य ही यहाँ शक्ति है और शक्ति ही सौन्दर्य है। शक्ति और सौन्दर्य का यह समन्वय कला की स्वतन्त्रता तथा आत्म-निर्भरता का उद्भावक अग्रदूत बन गया। निराला—'हिन्दी कविता की बाह्य-कला में स्वतन्त्रता के एक सूत्रधार हैं।'

छन्दों के मुक्तवन्ध, कल्पना की उन्मुक्त उडान, भाव का स्वतंत्र उद्वेलन और भाषा का अकृत्रिम समन्वय, ये सब निराला का निरालापन दिखाने के लिए पर्याप्त हैं। उन्होंने मुक्त छन्द में कविता की, जिसे छोटे-बडे पदों के कारण कुछ लोग उपहास करते हुए रबडछन्द, केंचुआ छन्द कहने लगे थे फिर भी निराला के काव्य में जो संगीत-शक्ति और स्फूर्ति है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। छन्दों को मात्रादिक की नाप-जोख से मुक्ति दिलाकर निराला ने कवियों का मार्ग प्रशस्त, सरल और सुगम कर दिया। वैसे उन्होंने अलग-अलग बहरों की गजलें भी लिखी थीं।

निराला की भाषा भावानुवर्तिनी है—जो गंभीर प्रभावों के लिए संस्कृतमयी, सामान्यता के लिये सारल्यमयी, और व्यंग्यादिक सामाजिक उद्देश्यों के लिए यत्किञ्चित उर्दू-संपृक्त भी हो जाती है। मनोविज्ञान-विवेचन के समय उनकी शब्दावली जटिल है और व्यंग्यादिक में तो अंग्रेजी के शब्दों को भी उन्होंने कला-पूर्ण ढंग से जड़ दिया है।

निराला जी की कविता में अस्पष्टता का दोषारोपण किया जाता है, परन्तु यह कठिनाई भाषा की क्लिष्टता, शैली की दुरूहता और भावों की अपरिपक्वता के कारण नहीं है और न केशव की भाँति अलंकार और

पांडित्य के प्रदर्शन की झोंक के कारण है, वरन् उन्मुक्त स्वतंत्र वातावरण में विचरण करने के कारण है। परम्पराओं से बहुत आगे बढ़ कर, नव-नव मार्ग निर्माण करने और स्वच्छंदतया उन पर बढ़ने के कारण वे परम्परा-निष्ठ आलोचकों को दुरूह प्रतीत होते हैं।

विद्यमान कवि-बृहत्रयी में निराला अग्रगण्य हैं। यही एक कवि है जिसका छायावाद न तो स्त्रैणता से लाञ्छित हुआ है और न नैराश्य-तिमिर तथा पलायन-भावना से अभिभूत ही, जो प्राय: प्रारंभ से ही प्रगति का अग्रदूत और उल्काधारी रहा है। वर्तमान कवियों में प्राण और शक्ति का संचार निराला ने ही किया है।

निराला का व्यक्तित्व—एक मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि

असाधारण असंगतियों के रहस्यमय घटाटोप में अपनी निर्बन्ध स्वच्छन्द विद्युच्छटा बिखेरने वाले महाप्राण निराला का सम्पूर्ण जीवन ही एक अनूठा व्यंग्यकाव्य है। व्यंग्य में उसने जन्म लिया, व्यंग्य में उसका विकास हुआ और व्यंग्य में ही उसका अन्त हुआ। भाग्य पारिवारिक जीवन पर वज्रपात करता रहा; समाज आर्थिक अवस्था को खोखला करता रहा और आलोचक साहित्यिक वेग को अवरुद्ध करने में लगा रहा; परन्तु इन अनेकमुखी परिस्थितियों के उपहास और परिहास का उत्तर कवि ने सदैव उन्मुक्त भैरव अट्टहास से दिया। इस अट्टहास में अहन्ता का आवेश नहीं वरन् एक उग्र स्वाभिमान का स्वर था; आतंक का आवेग नहीं, वरन् एक तीव्र आत्मविश्वास का संदेश था; कलियों को मसल डालने का क्रूर उद्वेग नहीं, वरन् झंझावातों को झकझोर डालने का उद्दाम ओज झाँक रहा था। 'विप्लव के बादल' की भांति निरंतर सिर ऊँचा करके चलने वाले ने कभी किसी प्रभंजन के सामने सिर झुकाना सीखा ही नहीं। कोई भी बहिरंग बाधा उसके व्यक्तित्व के उच्छृंखल प्रवाह की सीमारेखा बाँधने में समर्थ नहीं हुई। जहाँ वह बढ़ना चाहता था वहाँ उसे कोई रोक नहीं सका और जहाँ उसने रुकना चाहा वहाँ से एक इन्च भी उसे कोई खींच नहीं सका। किसी की चुनौती उसने अस्वीकार नहीं की चाहे वह किसी व्यक्ति की रही हो चाहे किसी स्थिति की। अहंकारियों के सिर पर पैर रखकर सीना ताने अकड़कर चलने में उसे आनन्द आता था और इस प्रवृत्ति के मूल में भी उसकी प्रकृतिगत उद्दण्डता नहीं वरन् असंख्य पीड़ितों और दलितों की अनजानी अनसुनी मर्मान्तिक गाथा की स्मृति की निरंतर जागरूकता विद्यमान थी। बाधाविहीन छन्द के समान उसकी अल्हड़ मुद्रा अपनी प्रत्येक भंगिमा में मानों पुकार पुकार कर कहती थी कि नियमों को जाम

चुका हूँ फिर भी नियम तोड़ रहा हूँ, देखूँ तो सही कौन दम्भी नियामक मेरी निरंकुशता का बरबस नियमन करने का दुस्साहस करता है ! यह असीम निरंकुशता भी नियम के अतिवाद की जीती-जागती प्रतिक्रिया थी जो स्वतः अनेक प्रत्यक्ष विषम अनुभूतियों का परिणाम थी।

निराला का कवित्व मूलबद्ध आस्थाओं को तोडफोड़ कर असंतुलित वेग से उभरती हुई विक्षुब्ध कुण्ठाओं को खुलकर बोलने का अवकाश देता हुआ भी अपने आप में दृष्टि से दूर कहीं अतल गहराई में प्रतिष्ठित सुकुमार निष्ठाओं का आकाश भी छिपाये हुए है जिसका अनूठा शृंगार मानों कवि द्वारा जानबूझकर 'हिरण्यमय पात्र से पिहित मुखवाले सत्य' के आनंद की भाँति रहस्यमय रखा गया हो। ऐसा लगता है कि कवि ने अपनी चेतना के सभी धरातलों पर प्रवाहित होनेवाले स्वरों को छूट दे दी थी कि वे जब चाहें अपनी मस्ती में स्वतन्त्र होकर गूँजें, उन्हें किसी विशेष कृत्रिम संगति में बँधकर चलने का बंधन नहीं है। यही करण है कि उनके गीतों में कहीं उनका चेतन बोलता है, कही अचेतन और कहीं अवचेतन, और जहाँ जो बोलता है खुलकर बिना एक दूसरे की मर्यादा की परवाह किए बोलता है। जाने कितनी वैयक्तिक एवं सामाजिक गुत्थियाँ अपनी अनगिन मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर चढ़ती-उतरती उनके उद्‌गारों में उद्‌घाटित हुई है और यह निर्णय करना कठिन है कि कवि ने अपनी चित्तवृत्ति को केन्द्रित कहाँ कर रखा था। सम्भव है, एक विशिष्ट केन्द्र बनकर अपनी भावधारा की उड़ान को एक परिधि में बाँध देना भी कवि को अपनी सहज प्रकृति के अनुकूल न जान पड़ा हो। 'भूधर भूधर को थर्रा देनेवाले मन्द्र वज्र स्वर, से 'वन के तरु-तरु पादप-पादप' तन को भर देने और 'झर झर झर झर धारा झर कर पल्लव पल्लव पर नवजीवन' बरसानेवाले घन के होला इस कवि की वाणी इसीलिए अपने प्रत्येक असंयम में असीमित लोकमंगल और अपने प्रत्येक आक्रोश में अखण्ड सामाजिक क्रांति का संकेत जुटाती चलती है।

यह सत्य है कि निराला के जीवन का आचार-पक्ष असंतुलित और विचार-पक्ष अनियंत्रित रहा है और यह स्वीकार करने में किसी को संकोच नहीं होना चाहिए कि उनकी अपनी अनेक अपूर्णताएँ, दुर्बलताएँ और विवशताएँ भी थीं जो अपने आप में असाधारण थीं और इससे भी अधिक असाधारण तथ्य यह है कि उन्होंने कभी भी उन पर पर्दा डालने का प्रयास नहो किया वरन उनको खुलकर अनेक द्वारों से उद्‌घाटित करते रहे

उनके जीवन की कटुताओं की सामाजिक रूपरेखा बहुत कुछ उनकी इस असामान्य प्रवृत्ति में भी निहित है। इस असामान्य प्रवृत्ति को कहाँ तक किन्हीं बहिरंग संसर्गों ने जन्म दिया और कहाँ तक उनकी निजी धारणाओं ने, यह कहना कठिन है। यह बात प्रायः बहुत बल देकर कही जाती है कि उनके आसपास बैठने-उठनेवाले कुछ विशेष मनचले स्वार्थी साथियों ने उनके जीवन को असंतुलित बना दिया; परन्तु इसके साथ इस प्रसंग का दूसरा पक्ष भी विचारणीय है और वह यह कि निराला जी जिस फौलादी व्यक्तित्व के थे उसकी नमनशीलता अथवा सरलता की रेखाओं को खोजकर उन्हें प्रभावित कर लेना साधारण जीवट का काम नहीं था। कभी न झुककर चलनेवाली इस हस्ती की मस्ती को बाधित कर देने की क्षमता स्वयं उनको ही छोड़कर और किसी में नहीं हो सकती थी। यह बात दूसरी है कि कहीं कहीं उन्होंने स्वयं किसी व्यक्ति अथवा स्थिति को छूट दे दी हो और उसको अपनाने के लिए ही जान-बूझकर लुढ़कने का अभिनय किया हो। एक ही स्वभाव में व्यापार-वैचित्र्य के अनेक उदाहरण उनके जीवन और काव्य में बिखरे पड़े हैं।

निराला छायावाद-युग के कबीर थे। वैसे ही फक्कड़, वैसे ही मस्तमौला, वैसी ही झाड़-फटकार, वैसी ही ललकार, वैसी ही पुकार और वैसी ही प्रगाढ़ तन्मयता दोनों के व्यक्तित्व और कृतित्व में दृष्टिगोचर होती है। अपने अपने युग की सीमाओं में दोनों ही क्रांति के अग्रदूत थे। अपने युग की चेतना को जर्जर करनेवाली अन्धरूढ़ियों के प्रति असहिष्णुता की अभिव्यक्ति देने में दोनों की ही वाणी बेलगाम रही। अपने युग के शासन और पाण्डित्य के प्रति दोनों ही असंकोचशील रहे। दोनों ही बाहर से उग्र और भीतर से सुकुमार थे। युग की दलित संत्रस्त मानवता की कराह के प्रति दोनों ही करुणार्द्र थे और यह करुणार्द्रता दोनों की ही तीखी व्यंग्योक्तियों के पीछे विद्यमान है। दोनों ही वेश से गृहस्थ और रहनी में विरक्त से रहे। अहंकारी को चिढ़ानेवाली गर्वोक्तियों की घोषणा की प्रवृत्ति दोनों में थी। दार्शनिक चिन्तन और आध्यात्मिक प्रेरणा के स्वर दोनों के ही काव्य में गूँजते रहे। लोकप्रसादन न करते हुए भी लोक को कायल करने की दृढ़ता दोनों में दिखती है। दाम को दोनों हाथ उलीचने की आदत दोनों में थी। अपनी अपनी भावभूमि पर दोनों ही विहंगम मार्ग के पथिक भी कहे जा सकते हैं। अन्तर केवल एक है और वह यह कि कबीर जान में संत और   में कवि थे और निराला जान में कवि

और अनजान में सन्त थे। कबीर के युग ने कवि कबीर को नहीं पहचाना और निराला के युग ने सन्त निराला को नहीं पहचाना।

जो लोग निराला को कुंठाग्रस्त और कुंठाओं से पराजित विक्षिप्त मात्र मानते रहे हैं उनका निराला के लिए प्रस्तुत 'सन्त' विशेषण पर चौंकना स्वाभाविक है। उनके लिए निराला में संत के दो ही तीन असाधारण लक्षणों का संकेत कर देना पर्याप्त होगा। आस्तिकता भरा दृढ़ स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास, अपरिग्रह और अतिशय उदारता सन्त के अत्यन्त शक्तिशाली गुण हैं। युग की किसी भी बाधा के समक्ष घुटने न टेकने की आत्मनिर्भरता, संकट काल में भी प्रदत्त सुविधा को अस्वीकार करने का साहस, अपने को अकिंचन रखकर भी सहर्ष अपना सर्वस्व अभावपीड़ितों के लिए न्यौछावर कर देने की बेढब विवशता हँसी-खेल नहीं है। वित्तैषणा से परे उठकर बढ़ती हुई आवश्यकताओं के इस युग में बरबस अभाव को वरण करते हुए दूसरे के अभावों को हरण करनेवाला निर्भीक स्वाभिमानी सन्त नहीं तो और क्या होगा ? हाँ, इतना अवश्य है कि असंवेदनशीलता के प्रति भी शीलवान होने की और अनौचित्य के प्रति भी क्षमावान होने की 'सज्जनता' को अपने युग के लिए वे 'सन्त' की दुर्बलता मानते रहे। कुण्ठाओं की कोई भी विषमता उनके बाहर से परोक्ष पर भीतर से प्रबल इस 'संत' रूप को अभिभूत नहीं कर सकेगी। आज नहीं तो कल निराला के विक्षेप-बहुल व्यक्तित्व के आवरण में छिपे हुए 'सन्त' की आत्मा का साक्षात्कार समीक्षकों को होगा—इसमें सन्देह नहीं।

निराला का काव्य आरम्भ से अन्त तक पौरुष का काव्य है। यह पौरुष देशकाल, भाव और रस के अनुकूल बदलती हुई शृंगार-सज्जा के साथ प्रस्फुटित हुआ है। इस पौरुष को प्रसारभूमि देने वाले शैली-वैविध्य एवं प्रयोग-वैचित्र्य से उनकी प्रतिभा सहज ही समृद्ध रही है। अपनी पहली रचना 'जूही की कली' में ही उसने कलासृष्टि का चरम उत्कर्ष झलका देने-वाली विलक्षण कान्ति दे दी है। छायावाद की नौका का यह कर्णधार सुकुमार होने के साथ साथ अतीव कठोर भी था यद्यपि उसकी यह कठोरता कहीं भी सहचर सुकुमारों पर रूठी नहीं और सदैव उनकी सुकुमारता की संरक्षिका बनी रही।

व्यक्ति-रूप में संस्कारबद्ध न होते हुए भी निराला अपने काव्य में युग के सांस्कृतिक नवजागरण के वैतालिक थे। व्यक्तिगत आहार-विहार में शैव-शाक्त होते हुए भी काव्यगत विचारभूमि में वे एक निष्ठावान

वैष्णव थे। प्रत्यक्ष रूप में राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग न लेते हुए भी काव्य में राष्ट्रीय चेतना को मुखर करनेवाले निःस्पृह देशभक्त थे। स्व स्वर में विद्रोह की ज्वाला जगानेवाली वाणी अपने प्रत्येक आरोह-अवरो में एक प्रच्छन्न माधुर्य लिये चलती थी। परस्पर विरोधी लक्षणों को आत्म सात् करने वाले निराला के जीवन के साथ ही साथ उनका काव्य भी विरोधाभास अलंकार का सजीव अवतार था। कवि और भक्त, दार्शनिक और रसिक, विद्रोही और सुधारक, अहम्मन्य और तन्मय उनके व्यक्तित्व के आकाश में अपना अपना अवकाश बनाते हुए ऐसी स्वच्छन्दता से आसीन हैं मानों एक को दूसरे की सीमा में हस्तक्षेप करने का अधिकार ही न हो, सभी अपनी निरंकुशता में निर्द्वन्द्व हैं। यही स्वच्छन्दता और निरंकुशता ही मानों सबका सम्बन्धसूत्र बनी हुई है।

वैविध्य और वैचित्र्य से सम्पन्न निराला के कवित्व की आत्मा मूलतः करुणा का शृंगार करनेवाले व्यंग्य की काया में निवास करती रही है। यही करुणा कहीं उनकी निश्छल भक्तिभावना के उद्‌गारों में, कहीं उनकी ओजस्विनी जागरण गीतियों में, कहीं उनकी विभोरकारिणी व्यथासिक्त सौन्दर्यरेखाओं में, कहीं दारुण दयनीय पीड़ा की गाथाओं और कहीं खीझ-भरी भर्त्सनाओं की अटपटी भंगिमाओं में अभिव्यंजित है। युग के यथार्थ से जूझते हुए व्यक्ति के आदर्श की जय-पराजय, ललक और तड़प, मनुहार और चीत्कार, अनुताप और अट्टहास उनके काव्य में सर्वत्र व्यंग्य-रूप में मुखर हैं। उनका यह व्यंग्य अपनी बहिरंग कटुता में भी एक अंतरंग माधुर्य छिपाये हुए चला है। तभी तो युग की पगध्वनि युग-कवि के मोहक संगीत की हिलोर बनकर प्रकट हो सकी है।

निराला के काव्य की प्राणस्वरूपा करुणा दलित की कराह पर उठी हुई आर्त भक्त की पुकार है जिसकी बड़ी समर्थ अभिव्यंजना उनके निम्नलिखित गीत में हुई है :—

दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आये
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा।
हरे तन-मन प्रीति पावन
मधुर हो मुख मनोभावन,
सहज चितवन पर तरंगित
हो तुम्हारी किरण तरुणा।

देख वैभव न हो नत सिर
समुद्धत मन सदा हो स्थिर
पार कर जीवन निरन्तर
रहे बहती भक्ति - वरुणा ।

'दलित जन पर' भगवान की करुणा के आवाहन में 'देख वैभव न हो नत सिर' में 'दीनता' को एक उदात्त स्वाभिमान में रूपान्तरित करने की प्रार्थना ने करुणभाव को भी एक भव्य ओजस्विता का गौरव प्रदान कर दिया है । साथ ही कवि की 'भक्ति-वरुणा' में करुणा की अनुभूति एक विवशता की स्थितिमात्र बनकर नहीं वरन् एक उदात्तशक्ति बन कर प्रगट हुई है—इस तथ्य की ओर भी संकेत प्रत्यक्ष है ।

निर्भीक आत्म-समर्पण और अखण्ड विश्वास-वैभव की महिमा से मण्डित भक्ति-भावना के आवेश में लिपटे हुए, धरती के यथार्थ पर व्यंग करते हुए पौरुष को अलंकृत करनेवाला निम्नलिखित गीत भी द्रष्टव्य है—

दे मैं करूँ वरण
जननि, दुखहरण पद-राग-रंजित मरण ।
भीरुता के बँधे पाश सब छिन्न हों,
मार्ग के रोध विश्वास से भिन्न हों,
आज्ञा, जननि, दिवस-निशि करूँ अनुसरण ।
लांछना इन्धन हृदय-तल जले अनल,
भक्ति-नत-नयन मैं चलूँ अविरत सबल
पार कर जीवन-प्रलोभन समुपकरण ।
प्राण-संघात के सिंधु के तीर मैं,
गिनता रहूँगा न, कितने तरंग हैं,
धीर मैं ज्यों समीरण करूँगा तरण ।

एक ओर 'दुख हरण पद राग रंजित मरण' में कवि का *जगन्माता के प्रति 'भक्तिनत-नयन' समर्पण का भाव झलक रहा है तो दूसरी ओर 'भीरुता..................छिन्न हों' में दुर्वह अभीरुता तथा 'मार्ग के.................भिन्न हों' में अविचल अवरोधभेदक विश्वास की दृढ़ता का वेग फूट रहा है । 'लांछना इन्धन हृदय तल जले अनल' में लोकापमान एवं लोकापवाद को दग्ध कर देनेवाली अन्तर्ज्वाला तथा 'पारकर..................समुपकरण' में जीवन के अनेक आर्थिक एवं औपचारिक प्रलोभनों की सीमाओं को

तोड़कर सचरित होनेवाले कविचैतन्य के धीर समीरण जैसे नित्य जागरूक स्पन्दन का स्वर विद्यमान है।

१९२० ई० में रचित 'मातृवन्दना' शीर्षक गीत के अन्तर्गत मानवीय स्वार्थों की बलि देकर बाधाओं को झेलते हुए जीवन के समस्त श्रम द्वारा क्लेशयुक्त तन देकर मातृभूमि को मुक्त करने की प्रेरणा जिस करुणा-क्रान्ति-मिश्रित शैली में व्यक्त हुई है उससे निराला जी के कवित्व के अन्तरंग में ओतप्रोत देश-भक्ति की प्रबलता का पता चलता है—

नर जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ
मेरे श्रम संचित सब फल।
जीवन के रथ पर चढ़कर
सदा मृत्यु-पथ पर बढ़कर
महाकाल के भी खर शर सह
सकूँ, मुझे तू कर दृढ़तर,
जागे मेरे उर में तेरी
मूर्ति अश्रु-जल-धौत विमल
कल से पाकर बल बलि कर दूँ
जननि जन्म-श्रम-संचित फल।
बाधाएँ आयें तन पर,
देखूँ तुझे नयन-निर्भर,
मुझे देख तू सजल दृगों से
अपलक उर के शतदल पर,
क्लेशयुक्त, अपना तन दूँगा,
मुक्त करूँगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि
सफल श्रेय-श्रम-संचित फल।

'जागे मेरे उर में तेरी मूर्ति अश्रु-जल धौत विमल' के एक एक शब्द में वन्दिनी भारतमाता की करुण मुद्रा और उसे निरख कर उपासक कवि के उर में जगनेवाली राष्ट्रीय वेदना की विह्वलता छाई हुई है।

गीतों की झंकार के पीछे राष्ट्र-प्रेम की प्रगाढ़ता को छिपाये हुए स्वच्छंद गायक निराला को सामाजिक यथार्थ की कटुताओं के बीच जिस

भव होता रहा है उसकी भी मार्मिक अभिव्यक्ति उन्हों
"र परोक्ष अपरोक्ष रूप में की है और इन अभिव्यक्तियों
क पीड़ा और प्रतिक्रिया वस्तुतः एक वर्ग-विशेष के दाँवपें
बलखाते सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मूल्यों की प्रतारणा क
है। 'बन बेला' शीर्षक गीत की निम्नलिखित पंक्तियं
ने इस दिशा में कवि के संकेत बड़े ही स्पष्ट शब्दों में व्यक्त

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार।
सोचा न कभी
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी।
इस तरह बहुत कुछ
आया निज इच्छित स्थल पर
बैठा एकान्त देखकर
मर्माहत स्वर भर।
फिर लगा सोचने यथासूत्र—'मैं भी होता
यदि राजपुत्र—मैं क्यों न सदा कलंक ढोता,
ये होते जितने विद्याधर मेरे अनुचर,
मेरे प्रसाद के लिए विनत-सिर उद्दत-कर,
मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर,
सम्मिलित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
जीवन चरित्र
लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र।
इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
होता मैं, शिक्षा पाता अरब-समुद्र-पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पण्डित
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल-चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा गा गर्दभ-मर्दन-स्वर
हिन्दी सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो डगमग

मैं पाता खबर तार में त्वरित समुद्र-पार
लार्ड के लाड़लों को देता दावत, विहार
इस तरह खर्च केवल सहस्र-षट मास मास
पूरा कर आता लौट योग्य निज पिता पास
वायुयान से, भारत पर रखता चरणकमल
पत्रों के प्रतिनिधि-दल में मच जाती हलचल,
दौड़ते सभी, कैमरा हाथ, कहते सत्वर
निज अभिप्राय, मैं सभ्य मान जाता झुककर
होता फिर खड़ा इधर को मुख कर कभी उधर,
बीसियों भाव की दृष्टि सतत नीचे ऊपर
फिर देता दृढ़ सन्देश देश को मर्मांतिक

× × ×

उक्त पंक्तियों में राजपुत्रों और लक्षपतिपुत्रों को आर्थिक सुविधाजन्य सामाजिक प्रतिष्ठा का, वास्तविकता से आँख मूँदे जन-प्रतिनिधियों की बाहरी तड़क-भड़क में भूली भटकी जनता की बौद्धिक एवं मानसिक अकिंचनता का तथा साहित्यिक दायित्व का भार ढोनेवालों के स्वाभिमान-हीन भोलेपन का जो उन्मुक्त उद्घाटन किया गया है उस पर निराला जी की उस पारदर्शिनी एवं मर्मभेदिनी दृष्टि की यथार्थता की छाप प्रत्यक्ष है जिससे किसी का बच निकलना कठिन था। दस पैसे में राष्ट्रीय गीत के नाम पर आकृत जनों की प्रशस्तियाँ गाने वालों पर जो व्यंग्य किया गया है वह अपने तीखेपन में भी एक ऐतिहासिक तथ्य—साहित्यिक मानदण्डों की अवहेलना का कटु सत्य—छिपाये है।

'सरोज-स्मृति' शीर्षक कविता में युग के बढ़ते हुए आर्थिक मूल्यों तथा घटते हुए सांस्कृतिक मूल्यों की असंगति की व्यंजना कवि की अपनी अर्थनिरपेक्ष नैतिकता के चित्रण में और भी सजीव हो गयी है। दिवंगत कन्या के शोक से पीड़ित पिता के उद्गारों के बीच कवि की अर्थपरांमुखता और साथ ही उसकी कारणभूत परिस्थितियों की निष्ठुरता का जो आभास मिलता है वह अपने आप में एक गहरी टीस लिये हुए है। कवि के रूप में सफल व्यक्ति पिता के रूप में अपनी असफलता एवं निरर्थकता पर प्रलाप करता हुआ कहता है—

धन्ये मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित कर न सका।

जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित काय।
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
सुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख।
क्षीण का न छीना कभी अन्न,
मैं रख न सका वे दृग विपन्न,
अपने आँसुओं अतः बिम्बित
देते हैं अपने ही मुख-चित।

'क्षीण का अन्न कभी न छीनने वाले' उदारचेता कवि ने यहाँ पर निर्धनों के शोषण के बल पर सुखी होने वाले धनिकों पर व्यंग करते हुए दलित वर्ग के प्रति सहज संवेदना की सबल अभिव्यक्ति की है। आर्थिक पथ पर अनर्थ लखकर 'स्वार्थ-समर' हारते रहने की बात भी भारतीय समाज की आर्थिक व्यवस्था पर जाने कितने प्रश्नसूचक चिह्न लगा रही है। इस आर्थिक विषमता के साथ हिन्दी-प्रेम के संबंध का जो संकेत कवि ने उक्त कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में दिया है वह भी अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है—

सोचा है नत हो बार बार—
यह हिन्दी का स्नेहोपहार,
यह नहीं हार मेरी, भास्वर
यह रत्नहार-लोकोत्तर वर।

आर्थिक जीवन की हार को अपनी हार न मानकर उसे हिन्दी का स्नेहोपहार और लोकोत्तर भास्वर रत्नहार मानकर अपनानेवाले कवि ने यहाँ पर भारतेन्दु के 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' वाले आदर्श को एक नवीन सप्राणता प्रदान करते हुए अपनी करुण व्यंग्योक्ति के सहारे यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित किया है।

१९४२ ई० में रचित 'स्नेह निर्झर बह गया है' शीर्षक गीत में भी कवि के चतुर्दिक व्याप्त उपेक्षा एवं ममत्वहीनताभरी उदासीनता के उस वातावरण की बड़ी हृदयद्रावक अभिव्यंजना हुई है जिससे उस महाप्राण का व्यक्तित्व आजीवन जूझता रहा—

आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है—'अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ—
जीवन ढह गया है।
दिये हैं मैंने जगत को फूल फल
किया है अपनी प्रभा से चकित-चल,
पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल—
ठाट जीवन का वही
जो ढह गया है।
अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बह रही है हृदय पर केवल अमा,
मैं अलक्षित हूँ, यही
कवि कह गया है।

काश स्वार्थ के अवगुण्ठनों से घिरी हुई गहन अन्धकार में बन्द युग की आँखें लक्षित आवरणों के पीछे झाँकते सीधे-टेढ़े रागों को अलापते उस 'अलक्षित' कवि की संकेतभरी भंगिमाओं को निहार सकतीं।

निराला के गद्य-ग्रंथ

संस्कृत में एक उक्ति यह है कि गद्य कवियों की कसौटी है। यह एक विचित्र बात है कि हिंदी के लगभग सभी प्रमुख छायावादी—और तत्पश्चात् प्रगतिवादी और प्रयोगवादी—कवियों पर यह उक्ति पूरी तरह से चरितार्थ होती है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, बच्चन, दिनकर, अज्ञेय, माखनलाल चतुर्वेदी, धर्मवीर भारती आदि सभी कवि सुन्दर और महत्वपूर्ण गद्य-लेखक हैं। कविता के माध्यम से उनके जिन भावों और विचारों की सफल अभिव्यक्ति नहीं हो पाती उनकी ही अभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने गद्य का सहारा लिया है। भावनाओं और विचारों के भिन्न-भिन्न स्वरूपों की अभिव्यक्ति के लिए इन सबको भिन्न-भिन्न विधाओं को अपनाना पड़ा। गर्व का विषय है कि जिसने जो भी उठाया उसी में सफल रहा और सफलता उच्च कोटि की मिली। कवि सदैव, चौबीसों घंटे, कवि मात्र ही नहीं रह सकता; और आज का कवि तो कविमात्र होने पर जीवित ही नहीं रहने पायेगा। उसके व्यक्तित्व और चेतना का बहुमुखी होना युग की आवश्यकता है, और तब उसके व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न रूप साहित्य के भिन्न-भिन्न रूपों के द्वारा अभिव्यंजित होते हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर निराला के गद्य-साहित्य का महत्त्व हमारे सामने विशेष रूप से प्रकट होता है। वह उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्षों पर प्रकाश डालता है। यदि निराला ने गद्य-साहित्य न प्रस्तुत किया होता तो उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनके साहित्य के माध्यम से न उभर पाता।

निराला का गद्य साहित्य निम्नलिखित है:—

उपन्यास—(१) अप्सरा, (२) अलका, (३) प्रभावती, (४) निरुपमा, (५) चोटी की पकड़, (३) काले कारनामे और (७) चमेली। 'चमेली' निराला जी

की अधूरी कृति है। उसका एक ही परिच्छेद 'रूपाभ' पत्रिका में निकला था। उसके बाद लेखक उसे पूरा करने की मनोवृत्ति में न आ सका। 'काले कारनामे' एक छोटा-सा उपन्यास है जो बहुत हद तक व्यक्ति और समाज की ढोंगी और अवांछित प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखकर लिखा गया था। उपन्यास साहित्य में उनकी प्रथम कृति है अप्सरा (१९३१ ई०) जिसमें 'वेश्या की समस्या' उठाई गई है। इस उपन्यास की नायिका है कनक जिसकी नृत्य-संगीत में भारत-प्रसिद्ध माता सर्वेश्वरी उसकी गंधर्व जाति का पुनरुद्धार कराना चाहती है और इस लक्ष्य को सामने रखकर उसे पठन-पाठन तथा नृत्य-संगीत में पारंगत कराना चाहती है। कुमार नामक एक नवयुवक एक अँग्रेज डी० एस० पी० से उसकी रक्षा करता है। कनक-कुमार एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। कनक और कुमार के मित्र चन्दन के प्रयत्नों के फलस्वरूप कुमार डी० एस० पी० हैमिल्टन के कुचक्र से बचता है और कनक तथा कुमार का मिलन होता है। इस उपन्यास की मुख्य विशेषताएँ हैं—संयोग तत्व की अधिकता, कल्पित घटनाओं की बहुलता, रूप और भावनाओं का काव्यात्मक वर्णन, साधारण कथावस्तु, नारी हृदय का चित्रण, सुन्दर चरित्र-चित्रण, वेश्याओं में भी उच्चतम भावनाओं की उपस्थिति आदि। एक आलोचक के अनुसार, इसके प्रकाशन से "प्रथम बार साहित्य के मुख पर प्रणय-हास मिला।"

'अप्सरा' लिखने के कारण निराला जी पर उनके कुछ मित्रों और आलोचकों ने कुछ छींटा-कशी की थी। सम्भवतः उसी से प्रेरित होकर उन्होंने १९३३ में 'अलका' नामक उपन्यास प्रकाशित कराया। इसकी नायिका शोभा पर तालुकेदार मुरलीधर की कुदृष्टि पड़ती है। अरक्षित और अनाश्रिता शोभा को एक वृद्ध सज्जन के यहाँ आश्रय और आत्म-निर्भरता का पाठ मिलता है। उसके निराश किन्तु निःशुल्क शिक्षादान में निरत पति को कूटनीति के कारण जेल जाना पड़ता है जहाँ से लौटकर वह मजदूरों में कार्य करने लगता है। यहीं उसकी अलका से भेंट होती है जिसे आगे चलकर एक रात मुरलीधर भगा ले जाना चाहता है और जो मुरलीधर की ही पिस्तौल से, जिसे एक लड़की छल से उससे उसे मारने के लिए प्राप्त कर लेती है, उसे मार डालती है। इस उपन्यास की विशेषताएँ हैं—गाँव की जनता और उस पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन, मोहक रूप-चित्रण, पात्रों में विशिष्टता का अनुभव, काव्यतत्व प्रधान भाषा-शैली, नाटकीय तत्व, आकस्मिकता और संयोग का आश्रय, आदर्शवादी दृष्टिकोण, और व्यंग्य। श्रीशिवनारायण श्रीवास्तव के कथानुसार, "अपनी त्रुटियों

के होते हुए भी यह उपन्यास अच्छा बन पड़ा है।" तत्पश्चात् उनक 'चोटी की पकड़' नामक उपन्यास निकला। इस उपन्यास में जमींदारों का विलासी जीवन चित्रित किया गया है। रुपये वालों का अनैतिकतापूर्ण जीवन और ऐसे वातावरण में पलनेवाली महिलाओं की चरित्रहीनता भी देखने को मिलती है। सुन्दर चित्रण, नवीनता का आकर्षण, बंगाल प्रांत के संपन्न और विभिन्न जीवन के चित्र, और व्यंग्यप्रधान लाक्षणिक भाषा इस उपन्यास के गुण हैं। के० सी० सौनरिक्सा के अनुसार, "हिंदी के गद्य और कथा साहित्य के विकास के मार्ग पर (यह) मील के एक पत्थर की तरह है।" १९३६ ई० में निराला ने 'प्रभावती' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित कराया जिसमें मध्य युग का सामन्ती जीवन मुखरित हो उठा है। डा० रामचन्द्र तिवारी के अनुसार, "इसमें इतिहास कम, कल्पना अधिक है।" सौनरिक्सा जी के अनुसार, "यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासों में एक नयी दिशा है। जाति, वंश, रंग-रूप, धन, अधिकार आदि के लिए लालच और इन सबका अभिमान चित्रित है और व्यक्तिगत वीरता, विकृत वीर-पूजा, विदेशी आक्रमण आदि भी मिलता है। १९३६ ई० में ही 'निरुपमा' का भी प्रकाशन हुआ जो उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। निरुपमा इस उपन्यास की नायिका है और कृष्णकुमार नायक। यामिनीराय को खल नायक अर्थात् नायक के प्रतिद्वंद्वी के रूप में माना जा सकता है। उपन्यास सुखान्त है और रायबाबू को (पाठकों की दृष्टि से काफी मनोरंजक) दण्ड मिल जाता है। डा० तिवारी के कथनानुसार निरुपमा की "विवशता, उदारता एवं मानसिक संघर्ष" के चित्रण में "पूर्ण कलात्मकता" और "कुमार के चरित्र की दृढ़ता" में पर्याप्त आकर्षण है। श्री शिवनारायण श्रीवास्तव की विवेचना इस उपन्यास में कथा-सौष्ठव, भावानुभूति, सामाजिक यथार्थ, रमणीयता, गम्भीर प्रेम, बंगाली भावुकता, नाटकीय स्थितियाँ, अनेक रमणीय, प्रभावपूर्ण, मर्मस्पर्शी और मनोरंजक स्थल, समाज के अनेक स्वाभाविक खंड चित्र, ग्राम्य वातावरण, सजीव व्यंग्य, सप्राणपात्र, मानसिक द्वन्द्व और अन्तर्व्यथा, नवीन सामाजिक व्यवस्था की ओर संकेत, व्यावहारिक और पात्रानुकूल भाषा तथा बंगला के उपन्यासों का-सा आनंद है।

निराला के उपन्यास चरित्र प्रधान, उज्ज्वल नारी चरित्र वाले, प्रेम प्रधान, सामाजिक समस्याओं से परिपूर्ण, सुन्दर आलंकारिक भाषा, भावानुकूल शैलीवाले और आकर्षक एवं मनोरंजक हैं। इस संबंध में सौनरिक्सा जी का यह कथन भी ध्यान दिये जाने के योग्य है कि हिंदी

कथा-साहित्य में pseudo-romantic अर्थात आंशिक रूप से रोमांटिक और make believe middle class heroes and heroines अर्थात मध्यवर्ग के प्रतीयमान नायक-नायिकाओं को प्रथम बार अवतरित कराने का दायित्व निराला के ऊपर है। कुछ भी हो, निराला के अन्दर "उपन्यास लिखने की कला और प्रतिभा दोनों थीं।"

प्रायशः हिंदी के सभी उपन्यासकार कहानियाँ अवश्य लिखते रहे हैं और साहित्य-विषयक किसी भी प्रकार के सामर्थ्य में निराला किसी से भी कम नहीं थे। उन्होंने भी कहानियाँ लिखी हैं। कहानी रचना की ओर उनका ध्यान इस बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक में ही गया था। उन्ही के कथनानुसार उन्होंने लगभग २० कहानियाँ लिखीं। उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ 'मतवाला' नामक पत्रिका में समय-समय पर निकला करती थीं। आगे चलकर उनके चार कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए—लिली (१९३६ ई०), सखी (१९३५ ई०), सुकुल की बीबी (१९३१ ई०) और चतुरी चमार (१९४५ ई०)। पद्मा और लिली, ज्योतिर्मयी, कमला, श्यामा, अर्थ, प्रेमिका-परिचय, परिवर्तन, हिरनी, सुकुल की बीबी, गजानन शास्त्रिणी, कला की रूपरेखा, क्या देखा और चतुरी चमार आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ मूलतः सामाजिक हैं। इनमें राजनीति, धर्म, कला, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार, वेश्या, अनियंत्रित और उच्छृंखल प्रेम, पति-पत्नी का प्रेममय जीवन आदि विषयों पर चर्चा की गई है। इन कहानियों का भाव पक्ष अत्यंत सबल है। प्रायः सभी आलोचकों का यही मत है कि इन कहानियों की कला उच्चतम कोटि की नहीं है। इनसे मनोरंजन होता है और विचारों को उत्तेजना भी मिलती है। इनमें वर्णन और चित्रण की प्रधानता है। कला की दृष्टि से ये कहानियाँ प्रेमचन्द स्कूल की लगती हैं। इनमें इतिवृत्तात्मकता है। घटना के विकास में कोई विशेष चमत्कार नहीं पाया जाता। पात्र अधिकांशतः मध्यम तथा उच्च वर्ग के हैं। चरित्र पर प्रायः घटनाओं के ही द्वारा प्रकाश डाला जाता है। लेखक का दृष्टिकोण बहुत-कुछ यथार्थवादी है। व्यंग्य और हास्य प्रचुर मात्रा में है। उदार शब्द कोश के साथ-साथ भाषा में साहित्यिकता प्रायः पायी जाती है। चतुरी चमार निराला की सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

निराला के गद्य साहित्य में दो रेखाचित्र भी हैं। सामान्य पाठक को ये हास्य और व्यंग्य प्रधान बड़ी कहानी के रूप में दिखलाई पड़ सकते हैं और वह इनको चतुरी चमार के साथ-साथ रख सकता है इन चित्रो

से व्यक्तित्व उभरता है। 'कुल्ली भाट' १९३९ ई० में प्रकाशित हुआ था। हास्यपूर्ण ढंग से घटनाओं का वर्णन कर कर के लेखक कुल्ली भाट के जीवन और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है। क्रियाप्रधान हास्य कम है, कथन प्रधान हास्य अधिक। उदाहरण के रूप में इसके दो हास्यप्रधान स्थल उपस्थित किये जा रहे हैं। नायक अपने एक मित्र के यहाँ अत्यन्त आवश्यक कार्य से गया। वे कनकौआ (पतंग) उड़ाते रहे, और बिना मुड़े हुए बोले—देख ही रहे हैं कि अभी फ़ुर्सत नहीं। नायक ने डिप्टी साहब के आने की झूठी बात कही और परिणाम यह हुआ कि वे तुरन्त काम खत्म करके साथ हो लिए। अपने घर आकर नायक ने सही बात बतलाई और स्पष्ट कह दिया कि जैसा मेरा आना-जाना व्यर्थ रहा, वैसा आपका। दुःख न कीजिएगा। जाइए, कनकौआ उड़ाइए। एक दूसरा हास्य देखिए। सास ने पूछा—भैया, मेरी लड़की आपको पसंद आई। उत्तर मिला—मुझे उसे देखने का अभी तक सौभाग्य ही न मिला। मैं जाता था तो दिया बुझा दिया जाता था। एकाध बार दियासलाई लेकर गया और जलायी तो उसने मुँह फेर लिया और आस-पास के लोग खाँसने लगे !! डा० रामचंद्र तिवारी का कहना है कि 'कुल्लीभाट' में निराला जी ने पूरे समाज पर बड़ा गहरा व्यंग्य किया है और श्री सौनरिक्सा जी का विचार है कि 'कुल्लीभाट' एक अनोखी जीवन-कहानी है और कम से कम हिंदी साहित्य में तो यह बेजोड़ ही है।

निराला जी का लिखा हुआ दूसरा रेखाचित्र है बिल्लेसुर बकरिहा। इसमें अवध का ग्रामीण जीवन चित्रित किया गया है। इसमें गाँव वालों के अन्दर पाये जानेवाले अंध विश्वास, ढोंग-ढकोसले, गरीबी, संकुचित दृष्टिकोण, मूढ़ता और वासना की भूख आदि का जैसे—यथार्थवादी दृष्टिकोण से ही चित्रण किया गया है। विधवाओं और निराश्रिताओं की करुण कथाएँ मर्मस्पर्शी ही नहीं, मर्म को बेधनेवाली हैं। यहाँ निराला की अनुभूति मार्मिक रूप में मुखरित हो उठी है। डा० रामचन्द्र तिवारी का कथन है—इसकी भाषा की सजीवता और व्यावहारिकता तो हिंदी गद्य-साहित्य में अकेली है।

निराला की लिखी हुई आलोचनाएँ दो रूपों में मिलती हैं—(१) महान कवियों पर लिखी गई आलोचनाएँ और (२) निबंध रूप में लिखी गई आलोचनाएँ। प्रथम प्रकार की पुस्तकें दो हैं— (१) रवीन्द्र कविता कानन और (२) पन्त और पल्लव। रवीन्द्र कविता कानन (१९२८ ई०)

उनकी प्रथम आलोचना कृति है। निराला साहित्यिक बँगला और व्यवहृत बँगला, दोनों खूब अच्छी तरह जानते थे। संस्कृत और अँग्रेजी के साहित्यों का भी पर्याप्त अध्ययन और मनन किया था। उपर्युक्त पुस्तक में रवीन्द्रनाथ टैगोर के साहित्य की बारीकियों को बड़ी ही विद्वता और कुशलता के साथ समझाया गया है। 'पन्त और पल्लव' छपी सन् १९४९ ई० में लेकिन लिखी बहुत पहले गई थी। इसमें दो बातें स्पष्ट हैं—(१) निराला की पंत से अप्रसन्नता और (२) बड़ी ही विद्वत्ता, बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि और बड़ी ही निर्भीकता के साथ पंत के 'पल्लव' संग्रह की कुछ कविताओं पर, 'पल्लव' की भूमिका में व्यक्त अनेक विचारों पर और पंत की काव्य-संबंधी मौलिकता तथा सामर्थ्य पर तुलनात्मक और विवेचनात्मक ढंग से विचार किया गया है। उनके आलोचनात्मक लेखों में भी चिन्तन की सूक्ष्मता, मनन की गंभीरता, अध्ययन की व्यापकता, विचार स्वातंत्र्य और निराला का अपना पर्याय अर्थात् निर्भीकता बराबर मिलती है। श्रीरामप्यारे मिश्र का कथन है—"उनकी आलोचना के कशाघातों की प्रताड़ना ऊँचे तबके के राष्ट्रसेवियों या सुविदित यशस्वी कवियों को भी सरकस के व्याघ्र की भाँति निस्तेज बना देती थी।"

निराला का निबंध-साहित्य भी हिंदी के लिए महत्वपूर्ण सम्पत्ति और गर्व की वस्तु है। हमारे सामने उनके तीन निबंध-संग्रह हैं:—(१) चाबुक, (२) प्रबन्ध पद्म, और (३) प्रबंध प्रतिमा। 'चाबुक' उनका प्रथम निबन्ध संग्रह है। इसका प्रणयन १९२३ ई० के आसपास हुआ था। इसमें ९ निबंध हैं। उनका विषय साहित्य है। एक निबंध वर्णाश्रम धर्म की वर्त्तमान स्थिति पर है। आलोचनात्मक होते हुए भी इन निबंधों में कटुता और तीखेपन का प्रायः अभाव है। उनके दूसरे निबंध संग्रह 'प्रबंध पद्म' का प्रकाशन १९३४ ई० में हुआ था। इसमें भी विचारात्मक साहित्यिक निबंध हैं। भाषा भावों की अनुगामिनी है। उर्दू के शब्दों का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक हुआ है। बहस का आनंद मिलता है। विचार और विवेचन में सूक्ष्मता है। आलोचना, दार्शनिकता, साहित्य और राष्ट्र, नारी आदि विषय हैं, ध्येय है ज्ञानवृद्धि और साहित्य का महत्व-प्रचार। तीसरा निबंध-संग्रह 'प्रबंध प्रतिमा' १९४० ई० में प्रकाशित हुआ था। इसके लेख विचारप्रधान हैं। लेखक की निर्भीकता स्पृहणीय है। टैगोर, गाँधी, तुलसी, पन्त आदि सभी पर बुद्धि चली है। तीखा मजाक और चुभनेवाले व्यंग्य दर्शनीय हैं। विषय के सभी पक्षों पर विचार किया गया है। जहाँ कोई गंभीर बात कही गई है वहाँ 'ध्यान दीजिए' आदि वाक्यांशों के द्वारा लेखक पाठकों को

सचेत कर देता है। कभी-कभी भाषण-कला का भी आनन्द मिलता है विवाद, संभाषण, संस्मरण आदि अनेक विधाएँ उभरी हैं। हास्य और व्यंग्य की कमी नहीं है। हिंदी साहित्य, हिंदू समाज और उनकी उन्नति के लिए विचार-विनिमय लक्ष्य है। शुद्ध विवेचनात्मक निबंध भी इस संग्रह में हैं। अधिकार-समस्या, सामाजिक पराधीनता, मेरे गीत और कला, प्रांतीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद, नेहरू जी से दो बातें आदि निबंध इसमें हैं। मेरा विचार है कि यह निराला जी का सर्वश्रेष्ठ निबंध-संग्रह है।

निराला के गद्य-साहित्य में केवल ललित ही नहीं, उपयोगी साहित्य भी है। उन्होंने ध्रुव, भीष्म और राणाप्रताप की जीवनियाँ लिखी हैं; परिव्राजक, श्रीरामकृष्ण कथामृत (४ भाग), विवेकानन्द के व्याख्यान और राजयोग का प्रणयन किया है; आनंदमठ, कपाल कुण्डला, चंद्रशेखर, दुर्गेशनन्दिनी, कृष्णकांत का बिल, युगलांगुलीय, रजनी देवी, चौधरानी, राधारानी, विष वृक्ष और राजसिंह आदि बंकिम बाबू के उपन्यासों के अनुवाद भी प्रस्तुत किये; खड़ी बोली में रामचरितमानस लिखना प्रारम्भ किया; महाभारत भी लिखा; तथा हिन्दी-बंगला-शिक्षा, रस-अलंकार, वात्स्यायन कामसूत्र, और तुलसीकृत रामचरित मानस की टीका भी लिखी। उनके द्वारा प्रस्तुत दो नाटकों—समाज और शकुंतला—का भी उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही साथ हमें इस बात को भी न भूलना चाहिए कि उन्होंने 'समन्वय' और 'मतवाला' नामक पत्रों का संपादन भी किया था।

'आज' के निराला स्मृति अंक (२८ अक्तूबर, '६१ ई०) में प्रकाशित निम्नलिखित दो लेखकों के विचार निराला के गद्य साहित्य पर सुन्दरतम ढंग से प्रकाश डालते हैं। श्री चन्द्रबलीसिंह का कथन है—"निराला का यथार्थवादी गद्य-साहित्य उनकी कविता की तरह ही संघर्षों के बीच उनके अपराजेय व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है।.......निराला का गद्य साहित्य राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, हर तरह के गुरुडम के विरुद्ध चुनौती-भरी आवाज है। उसमें निराला की तेजस्विता और दर्प है..........निराला ने जिस तरह आखिरी साँस तक तपकर, उसकी आहुति देकर, लघुता के बीच पाई जानेवाली महानता के मान की रक्षा की उसे समझने में निराला के गद्य साहित्य से बहुत मदद मिलती है।"

जगदीश चन्द्र माथुर का निम्नलिखित विचार निराला के गद्य साहित्य के प्रति अर्पित सत्य और सुन्दर प्रशस्ति है:—

"निरालाजी ने कविताएँ तो दी हीं, एक ऐसी चीज भी दी जिसने उस समय हिन्दी साहित्य को चकाचौंध कर दिया। वह था उनका ललित गद्य !............कौन जानता था कि अभिजात संस्कृतमयी भाषा का अधिकारी कवि धरती की गन्ध से सुवासित, चौराहे और चौपाल की उच्छृंखल किन्तु चित्रोपम वर्णावलियों को इस सहज भाव से हिन्दी गद्य में आरोपित कर सकेगा। गद्य पन्त, प्रसाद, महादेवी, सभी ने लिखा है, किन्तु निराला-जैसा गद्य उस युग में चमत्कार था—महादेव धूर्जटी का यह धूलि-धूसरित रूप !............"

सच है, यदि निराला का गद्य-साहित्य न होता तो हिंदी कई दृष्टियों से दीन-हीन-विपन्न होती !

सच है, यदि निराला का गद्य-साहित्य न होता तो उनकी साहित्यिक चेतना, साहित्यिक प्रतिभा, साहित्यिक सामर्थ्य, अनुभूति और व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष एवं स्वरूप अव्यक्त रह जाता !!

सच है, यदि यह न होता तो बहुत-कुछ न होता !!!

रेखा-चित्र-कला और निराला

रेखा-चित्र एक अभिनव गद्य-विधा है। साहित्यकार की चित्रकार बनने की अदम्य भावना ने इसे जन्म दिया है। जैसे चित्रकार कुछ उभरी और कुछ हल्की रेखाओं के संयोग से किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना का रूपांकन करता है, ठीक वैसे ही रेखा-चित्रकार शब्दों के सहारे उन्हें मूर्त्ति-मंत करता है। कुछ समीक्षक इसमें रंगों के भरे जाने की बात कहते हैं जो उचित नहीं है। रेखा-चित्र की सार्थकता तो रेखाओं के द्वारा आकार उपस्थित करने में ही है। हाँ, उन्हीं सीमित रेखाओं के माध्यम से अधिका-धिक भाव व्यक्त करना लेखक की कला-प्रवीणता है। अतः मूर्त्तिमत्ता इस कला की पहली विशेषता है। यहाँ मूर्त्तिमत्ता का आशय स्थूलता अथवा स्थिरता न होकर मूर्त्त विधान-मात्र से है।

इसकी दूसरी विशेषता है—यथार्थ-चित्रण। आधुनिक समग्र गद्य-विधाएँ इस बात में रेखा-चित्र से समता रखती हैं; क्योंकि यथार्थ की ठोस एवं कठोर अभिव्यक्ति के लिए ही गद्य का जन्म हुआ है। फिर भी इस उद्देश्य की पूर्ण सार्थकता रेखा-चित्र में ही उपलब्ध होती है। यही एक ऐसी अकेली विधा है जिसमें कल्पना का किंचित स्पर्श भी सौंदर्य के विपरीत अर्थ देता है; जब कि अन्य विधाओं में उसका कुछ न कुछ अंश श्रीवर्द्धन में सहायता करता है। अतः अकल्पित यथार्थ की सबसे अधिक मुखर अभिव्यक्तिमयी मूक कला ही रेखा-चित्र है। यहाँ प्रेरणा, सृजन और लक्ष्य, तीनों सम्पृक्त रहते हैं। इसलिए देश, काल और पात्र-सम्बन्धी किंचित अनौचित्य इसमें अक्षम्य है।

व्यंग्य इसकी एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है, अन्यथा चित्र उपस्थित करना तो काव्य का प्रसिद्ध गुण है ही—यह और बात है कि वह

रगीन होता है । तीर की कनी की तरह इसक व्यग्य चुभने वाल होत हैं । इसीलिए भाषा की सामर्थ्य इसका एक मात्र आधार है ।

उपन्यास और कहानी के लिए जो गत्यात्मकता आवश्यक मानी जाती है, वह रेखा-चित्र के लिए नहीं । आलोचक 'स्थिरता' उसके लिए आवश्यक मानते हैं; किन्तु कुशल कलाकार गत्यात्मक पदार्थों को भी चित्रित कर सकता है । अतः रेखा-चित्र जैसी उन्मुक्त कला में स्थिरता अथवा गतिशीलता (इतिवृत्तात्मकता) के ग्रहण अथवा बहिष्कार का आग्रह हमारे मत में, अनपेक्षणीय है ।

जिस कला में यथार्थ उभरता है, उसकी प्रेरणा भी यथार्थ से ही मिलती है । 'स्केच' किसी अप्रत्यक्ष व्यक्ति या वस्तु का नहीं खींचा जाता । प्रेरणा का सम्बन्ध हृदय की भावात्मिक वृत्ति से है । अर्थात् भावना जहाँ अनुकूलता पाती है, अथवा योग्यता पाती है—वहीं से प्रेरणा ग्रहण करती है । अतः रचयिता का व्यक्तित्व भी रेखाओं में उतर कर बोलता है । यानी केवल वस्तु-चित्रण नहीं होता, भाव-चित्रण भी होता है—रंगों के माध्यम से नहीं, रेखाओं के माध्यम से ।

रेखा-चित्रकार की दृष्टि कैमरे के लेंस की भाँति सीमित परन्तु सूक्ष्म और पैनी होती है । वह दृष्टिरूपी लेंस की परिधि में आनेवाले अर्थात् दृश्य-स्वरूप का ही सूक्ष्म अंकन करता है, अदृश्य का नहीं ; क्यों कि अदृश्य के अंकन में कल्पना की आवश्यकता होती है जो रेखा-चित्र के क्षेत्र से सर्वथा निष्कासित है । फोटोग्राफ की तरह उसमें लम्बाई और चौड़ाई होती है, मोटाई नहीं—अर्थात् यह चित्र-कला है, मूर्त्तिकला (स्थूल) नहीं, यद्यपि मोटाई या स्थूलता का आभास इन रेखाओं से—चित्र ही की तरह—अवश्य हो जाता है ।

'सीमित दृष्टि' व्यक्ति-चित्रण के क्षेत्र में रेखा-चित्र को जीवनी से पृथक् करती है और 'फोटोग्राफिकता' कहानी और उपन्यास से । कुछ कहने-सुनने के लिए पात्रों की सृष्टि आवश्यक नहीं, लेखक ही बहुत काफी है—यह वृत्ति रेखाचित्र को नाटक नहीं बनने देती; अन्यथा वह तो 'पाठकों के हृदय-मंच पर खेला जाने वाला नाटक ही होता है' ।

वैसे सभी विधाएँ रेखा-चित्र में आंशिक रूप से संगमित रहती हैं—काव्य की रसात्मकता, निबंध की भावुकता, नाटक की अभिनेयता, कहानी की संक्षिप्तता, जीवन-चरित की जागरूकता, संस्मरण की विश्वसनीयता,

उपन्यास की जिज्ञासा आदि के संयोग से जो आकार उपस्थित होता है—वही तो रेखा-चित्र है। इसलिए स्वयं लेखकीय प्रतिभा और व्यक्तित्व में भी इसी प्रकार की विविधता का संगम अपेक्षित है। 'निराला', हिंदी में, इस दृष्टि से रेखा-चित्र-निर्माण के एकान्त अधिकारी थे।

इस विधा की परिधि क्या हो—यह विवाद का विषय है। हमारे मत में चित्र की परिधि कर्ता की बाहों से अधिक नहीं हो सकती। इसलिए सीमा निश्चित करना ठीक नहीं है। लम्बी कहानी की तरह यह विधा भी विस्तृत हो सकती है। परंतु उपन्यास की सीमा छूने से इसकी मुक्ति अमर्यादित होकर अपना ही वैशिष्ट्य खो देगी।

महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का रेखाचित्र 'बिल्लेसुर बकरिहा' एक लम्बी कहानी की भाँति है। उसमें इतिवृत्तात्मकता भी है, परन्तु अपने अकल्पित यथार्थ, तीक्ष्ण व्यंग्य, लेखक की अत्यधिक वैयक्तिकता, देश-काल का सचेत अंकन, भाषा की अकृत्रिमता तथा रूपांकन के कारण यह एक रेखा-चित्र ही है।

सारी पुस्तक पढ़ने पर बिल्लेसुर का जो चित्र उभरता है, वह है कि बिल्लेसुर कठिनाइयों और संघर्षों का अभ्यस्त एक ऐसा सतर्क व्यक्ति है जो अपनी निर्भीकता और अरसिकता के कारण न तो कभी किसी से पराजित होता है और न कठिनाइयों में निराश ही। अर्थ ही उसके लिए धर्म है, वही काम्य है और वही मोक्ष है। संक्षेप में, उसका जीवन अर्थ की धुरी पर घूमनेवाला चक्र है। इसी के लिए वह बर्दवान जाकर सत्तीदीन 'सुकुल' की भैंस चराने और चिट्ठियाँ बाँटने से लेकर गाँव में खेती करने और बकरी चराने तक के विभिन्न कार्य करता है। अपनी सतर्कता के कारण वह सर्वत्र सफल होता है। यदि उसके आसपास का वातावरण इतना दूषित न होता कि वह ऐसा करने के लिए बाध्य हो, तो संभवतः उसकी ये वृत्तियाँ निन्दनीय होतीं। परन्तु दुनियाँ ने 'हीउसे' ऐसा बना दिया कि वह सबको संदेह की दृष्टि से देखने का अभ्यस्त हो गया और 'दूध का जला छाँछ भी फूँक-फूँक कर पीता है'—वाली उक्ति उसके जीवन में घटित हो गई। विवाह के सम्बन्ध में त्रिलोचन ने जो धोखेबाजी की उसी ने बिल्लेसुर को विवश किया कि वह मन्नी की सास की बात भी खूब जाँच ले और सहज ही विश्वास न करे। इसी प्रसंग में उसके कुशल सांसारिक होने का पता लगता है।

वह अपने रास्ते आता और अपने ही रास्ते जाता है। उसने कभी किसी का बुरा न किया, न सोचा; लेकिन कहीं भी अपनी हानि नहीं होने दी। त्रिलोचन के सब 'पासे' बेकार कर दिए—बैल बिल्लेसुर ने खरीदे नहीं, ब्याह के मामले में सच्चाई का भेद लगाकर टरका दिया, कुछ अर्थ-प्राप्ति की दृष्टि से जमींदार को साथ लेकर आया था, सो भी खाली हाथ लौटा दिया।

उसका चरित्र नारियों के सम्बन्ध में दुर्बल नहीं है। जगन्नाथ जी के दर्शन करने के साल भर बाद भी जब सत्तीदीन सुकुल की बीबी के बच्चा नहीं हुआ तो वह देवता पर कुपित हुई और दिव्य शक्ति को छोड़कर मनुष्य-शक्ति की पक्षपातिनी बन गई। यह मनुष्य-शक्ति बिल्लेसुर था। उसे यह जानकर ग्लानि हुई और वहाँ से भाग खड़ा हुआ। इस स्थिति का लाभ न उठाकर उसने अपने चरित्र की दृढ़ता प्रमाणित की है।

प्रतिशोध लेने का उसका अपना अलग ढंग है—'गाँव वाले दिल का गुबार बिल्लेसुर को 'बकरिहा' कहकर निकालने लगे, जवाब में बिल्लेसुर बकरी के बच्चों के वही नाम रखने लगे जो गाँव वालों के नाम थे।'

धर्म—जैसा पहले कहा गया है—उसके लिए 'अर्थ-पूर्ति' का साधन है—'सास को दिखाने के लिए बिल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे। भोजन करके उठते वक्त हाथ में ले लेते थे'.........जहाँ धर्म ने साधन बनने से इन्कार किया वहीं उसने उसे महावीर जी के सिर की तरह तोड़कर छिटका दिया।

बिल्लेसुर के परंपरागत संस्कारों और उसके स्वभावगत औचित्य को प्रकट करने के लिए पृष्ठभूमि में उसके तीन भाइयों—मन्नी, ललई और दुलारे, सत्तीदीन सुकुल, उसकी पत्नी, त्रिलोचन, मन्नी की सास, गंगादीन तथा गाँव वालों के आंशिक चित्र खींचे गए हैं। संकट के समय कोई द्वार पर झाँकता नहीं और जब ब्याह के समय प्राप्ति की आशा होती है तो ये हाल हैं—'नाई रोज तेल लगाने और बाल बनाने को पूछने लगा। कहार एक रोज आकर अपने आप दो घड़े पानी भर गया। बोहना बत्ती बनाने के लिए रुई की चार पिंडियाँ दे गया। चमार आकर पूछ गया कि ब्याह के जोड़े नरी के बनाए या मामूली? चौकीदार पासी रोज आधी रात को हाँक लगाता हुआ समझा जाने लगा कि पूरी रखवाली कर रहा है। गंगावासी एक दिन दो जोड़े जनेऊ दे गया। एक दिन भट्टजी आए और सीता-स्वयंवर के कुछ कवित्त और भूषण की अमृत वाणी सुना गए गर्ज यह कि इस

समय कोई नहीं चूका ।' 'स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती' का कितना सुन्दर उदाहरण है !

निराला जी का बहुत-सा समय गाँवों में बीता था, अतः ग्रामीण जीवन का उन्हें सूक्ष्म अध्ययन था । यही कारण है कि ग्राम-चित्रण में कहीं असंगति नहीं आने पाई है । आचार, विचार, व्यवहार, भाषा, सभी में ग्रामीणता मुखर है । इतिवृत्तात्मकता भी रेखांकन की सहायक बन गई है । आरंभ से अंत तक बिल्लेसुर का चरित्र एकसमान अर्थात् स्थिर है ।

अन्विति यहाँ बहुत अधिक है—वातावरण, व्यक्ति, घटनाएँ, भाषा, सभी शक्ति भर मूल चित्र को उभारते हैं । दीनानाथ के द्वारा जब दीनानाथ (बकरे) की हत्या कर दी जाती है तब बिल्लेसुर की मनःस्थिति का चित्रण करने के लिए कितने अनुकूल वातावरण का सृजन किया गया है—'सूरज डूब गया । बिल्लेसुर की आँखों में शाम की उदासी छा गई । दिशाएँ हवा के साथ साँय-साँय करने लगीं । नाला बहा जा रहा था, जैसे मौत का पैगाम हो । लोग खेत जोतकर धीरे-धीरे घर लौट रहे थे जैसे घर की दाढ़ के नीचे दबकर पिस मरने के लिए । चिड़ियाँ चहक रही थीं, अपने-अपने घोंसले की डाल पर बैठी हुई, रो-रो कर साफ कह रही थीं, रात में, घोंसले में जंगली बिल्ले से हमें कौन बचाएगा ?' थोडे से शब्दों और संकेतों से सारा वातावरण उपस्थित और चित्रित कर देने का कौशल लेखक में अत्यधिक है—'सत्तीदीन की स्त्री ने किये उपकार की निगाह से बिल्लेसुर को देखा । बिल्लेसुर खूराक और चार-पाँच का महीना सोचकर अपने दीनत्व को दबा रहे थे । इतने से आगे बहुत-कुछ करेंगे, सोचते हुए उन्होंने सत्तीदीन की स्त्री से हामी की आँखें मिलाईं । जमादार गम्भीर भाव से उठकर हाथ-मुँह धोने लगे ।' लेखक अभीष्ट अर्थ और वांछित लक्ष्य को उभारने में समस्त उपकरण जुटाने की सामर्थ्य रखते हैं । कला का नियम भी यही है कि प्रत्येक उपकरण मूल लक्ष्य को उठाए, अपना ही राग न अलापे । इस दृष्टि से 'बिल्लेसुर बकरिहा' सफल रेखा चित्र है जबकि लेखक का दूसरा रेखा-चित्र 'कुल्लीभाट'—असफल । वहाँ लेखक का व्यक्तित्व बिलकुल अलग हो गया, कहीं-कहीं वही प्रधान भी हो गया है । वस्तुतः लेखक का व्यक्तित्व कुल्ली की रेखाओं में ही उतरता तो 'कुल्ली भाट' इस कृति से श्रेष्ठ होता, क्योंकि जितने तीक्ष्ण और बेधक व्यंग्य उसमें हैं, इसमें नहीं । 'बिल्लेसुर बकरिहा' के व्यंग्य केवल छूते हैं 'कुल्ली भाट' के व्यंग्य की भाँति बेधते नहीं । लेकिन

में लेखक कहीं सामने नहीं आये; उनका व्यक्तित्व बिल्लेसुर के माध्यम से ही व्यक्त हुआ है। बिल्लेसुर का आचार, उसकी श्रमशीलता, अतिथि सत्कार, वाक्पटुता, चातुर्य, धार्मिकता, संघर्षशीलता, समाज के प्रति उपेक्षा, प्रतिशोध, और यहाँ तक कि उसका घर-बार, वेश-भूषा, सभी में निराला जी की तथास्थिति का बोध होता है। हाँ, उनके विश्व-विश्रुत औदार्य और कवित्व के प्रकट होने का स्थान बिल्लेसुर का चरित्र नहीं था।

बिल्लेसुर जब बन-ठन कर विवाह की चर्चा के लिए निकलते हैं तो लगता है—जैसे निरालाजी अपनी स्वर्ण-जयंती में जा रहे हों, जब गाँव वाले बिल्लेसुर को पानी बंद करने की धमकी देते हैं और वह उसकी दाम्भिक उपेक्षा करता है तो लगता है कि निराला के शब्दों में ही जैसे उसका व्यक्तित्व कह रहा हो—'मैं पानी-पाँडे थोड़े ही हूँ, जो ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे सबको पानी पिलाता फिरूँ' (चतुरी चमार, पृ० १२)। बिल्लेसुर का, सास के सामने अगरासन रखना कुछ वैसी ही औपचारिकता है जैसी पं० पथवारीदीन की पत्नी को यज्ञ कराने के लिए निरालाजी का पंडित बन जाना। इस प्रकार यहाँ लेखक का व्यक्तित्व पृथक् नहीं रहा और न उसने मूल व्यक्तित्व पर अमर बेल बन कर रहने का ही अकलात्मक कार्य किया। कहीं कोई कल्पना नहीं की गई। सर्वत्र शुद्ध यथार्थ प्रकट हुआ है। अतः 'बिल्लेसुर बकरिहा' सब दृष्टियों से एक सफल रेखा-चित्र है।

आकार की दृष्टि से 'कुल्लीभाट' निराला के रेखाचित्रों में सबसे बड़ा है। परन्तु लेखक के पृथक संस्मरण उसमें से हटा दिए जायँ तो बिल्लेसुर बकरिहा ही सबसे बड़ा रेखा-चित्र ठहरता है।

कुल्लीभाट लेखक के श्रद्धेय मित्र पं० पथवारीदीन भट्ट हैं। असंवर्द्धित (unpolished) सत्य ने इस चरित्र को बड़ा मार्मिक बना दिया है। मनुष्य-हृदय की विकासनशील सनातन वृत्ति का सुन्दर दिग्दर्शन यहाँ होता है। रेखा-चित्रकार को कलाकार की तरह ऐसा ही चरित्र अथवा वातावरण चित्रित करना चाहिए जो कला को सार्थकता दे, भावों को उद्दीप्त कर सके; क्योंकि चरित्र का चयन ही इस कला में प्रथम आवश्यक बात है। दूसरी विधाओं में लेखक कल्पना के माध्यम से कला के लक्ष्य को पूर्ण कर लेता है, परन्तु कल्पना-विहीन कृति में 'चयन' बड़ा आवश्यक है। इस दृष्टि से लेखक का यह कथन बड़ा ही सार्थक है—बहुत दिनों की इच्छा—एक जीवन-चरित्र लिखूँ, अभी तक पूरी नहीं हुई; चरित नायक नहीं मिल रहा था। नायक के योग्य गुण पाकर उन्होंने पं० भट्ट की जीवनी लिखी।

यह जीवनी इसलिए नहीं है कि इसमें ब्यौरेवार जीवन-चरित नहीं है आरंभ में दिये गए कैमरे के लेन्स का उदाहरण यहाँ चरितार्थ होता है। त्वरित शैली, रेखाङ्कन के योग्य भाषा और उपयुक्त वातावरण की सृष्टि द्वारा पृष्ठभूमि का अंकन आदि इसे रेखा-चित्र के निकट ला खडा करते हैं।

•

'कुल्ली भाट'—लेखक की ससुराल डलमऊ में रहते थे, वहीं लेखक की उनसे प्रथम भेंट एक इक्के के मालिक के रूप में हुई। पहली दृष्टि में ही लेखक को वे एक 'अदालती सभ्यता के लखनवी युवक' दिखाई पडे। सारा गाँव कुल्ली के चरित्र को शंका की दृष्टि से देखता था। ससुराल में भी 'कुल्ली के इक्के पर आना' एक गंभीर घटना के रूप में लिया गया। हमेशा कठिनाइयों में रुचि लेने वाले युवक (लेखक) सासुजी के मना करने पर भी कुल्ली के साथ किला देखने गए। चन्द्रिका नौकर जो साथ था, उसे रूह लेने के बहाने टरका दिया। कुल्ली का यह प्रथम परिचय लेखक को बडा आकर्षक लगा। दूसरे दिन कुल्ली के घर का मिठाई खाने का निमंत्रण स्वीकार करके—समय पर पहुँचे। सुन्दर गलीचा बिछे पलंग पर लेखक को बिठाया गया, मिठाई खिलाई गई। इत्र दिया गया। फिर लेखक ने देखा कि 'कुल्ली का चेहरा सहसा विकृत हो गया। कुल्ली अधीरता से एक दफे उचके और फिर वहीं रह गए। फिर भरसक प्रेमभरी दृष्टि से देखकर कहा—"दरवाजा बंद करता हूँ।" भोले लेखक ने सोचा कि इसको कोई रोग है। पूछा—"क्या डाक्टर को बुलाऊँ?" कुल्ली ने कहा—"ओह तुम बड़े निठुर हो।" लेखक की समझ में नहीं आया कि इसमें निष्ठुरता की क्या बात है। फिर कुल्ली एकाएक उचके, अबके भरसक जोर लगाकर यह कहते हुए—"मैं जबरजस्ती····" लेखक को हँसी आ गई। कुल्ली ने स्पष्ट किया—"मैं तुमसे प्यार करता हूँ।" लेखक को आश्चर्य हुआ कि यह कहने की क्या आवश्यकता हैं। बड़ी सहजता से बोले—"मैं भी तुम्हें प्यार करता हूँ।" अनुकूल उत्तर पाकर 'प्यार की रस्म' के लिए आह्वान करते हुए कुल्ली बाँहे फैला कर बोले—"तो आओ····" अब भी लेखक के कुछ पल्ले नहीं पड़ा, बोले—"आया तो हूँ।" कुल्ली घुट कर रह गए, नासमझी पर खेद व्यंजक आश्चर्य भरे निराश स्वरों में उन्हें पूछना पड़ा—"तो क्या और कहीं भी नहीं····" इन अजीबोगरीब हरकतों और प्रश्नों ने लेखक को झुँझलाहट से भर दिया। वे झल्लाकर चले आए। फिर जब तक वहाँ रहे, भेंट न हुई (शायद फिर अर्थ समझ गए हों)।

दूसरी बार कुल्ली 'संवेदना' के स्वरूप बनकर लेखक से मिले। डलमऊ में गंगा के निकट, अवधूत टीले पर लेखक की पत्नी, बच्चे तथा परिजनों की मृत्यु पर शोक प्रकट करने आए थे। उन्होंने दार्शनिक की भाँति संवेदना प्रकट की। लेखक को रामगिरि महाराज के मठ में ले गए। अबकी बार वे एक सच्चे मित्र लगे।

तीसरी बार डलमऊ में जब लेखक 'कन्यादाय ग्रस्तों' से घबराकर आए थे तब उनसे जिस कुल्ली की भेंट हुई वे 'राजनीतिक सभ्यता' के प्रतीक थे। त्याग भी किया था, गाँधी जी की बात करते थे। लेखक से कुछ उपदेश लेना चाहते थे। लेखक ने मोक्ष का मार्ग बताया—'गंगा में डूब मरो'। बेचारे कुल्ली परेशान और उदास होकर चल दिए।

इस बार प्रसिद्ध होने पर लेखक गाँव गए तब 'सुधारक कुल्ली' से भेंट हुई। वे एक मुसलमानिन से विवाह करना चाहते थे। समाज बाधक था। वह स्त्री भी कुल्ली पर फिदा थी। लेखक ने इस मामले में दिलचस्पी ली। इस बार मोक्ष का मार्ग नहीं दिखाया। कर्म मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। कहा—अवश्य (मुसलमानिन को) ले आएँ।'

देश में अछूतोद्धार चल रहा था तब पुनः लेखक गाँव गए। वहाँ कुल्ली को साक्षात् 'अछूतोद्धार' के रूप में पाया। कुल्ली अछूत बालकों को बड़े प्रेम से पढ़ाते थे। मुसलमानिन को गाँव वालों के अड़ङ्गों के बावजूद भी ले आए थे। एक दिन लेखक को पाठशाला में ले गए—पाठशाला में बिछे टाट पर अछूत के लड़के श्रद्धा की मूर्ति बने बैठे थे। आँखों से निर्मल रश्मि निकल रही थी। कुल्ली आनंद की मूर्ति साक्षात् आचार्य दिखाई दिये। यह कुल्ली की पूर्ण परिणति थी। चरित्र का पूर्ण विकास था। इस समय उनके चरित्र ने लेखक को यह सोचने को विवश किया कि जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं; जो कुछ किया है, व्यर्थ है; जो कुछ सोचा है, स्वप्न है। कुल्ली धन्य है। कुल्ली न केवल लेखक की, अपितु ग्रामवासियों की, यहाँ तक कि लेखक की सासु जी और साले की श्रद्धा के पात्र हो गए थे। कर्म-मार्ग का यही फल है। कुल्ली में अब इतना आत्मबल आ गया कि वे गाँधी जी की आलोचना भी कर सकते थे। आलोचना खेद व्यंजक थी, ईर्ष्या व्यंजक नहीं; इस लिए महत्वपूर्ण थी। कुल्ली ने कहा—"बस दौरा ही दौरा है; काम क्या होता है ? पहले अछूतों की बात नहीं सोची, अब सरकार ने पेंच लगाया तो दौड़े-दौड़े फिर रहे हैं"। लेखक ने व्यंग्य किया—"अच्छा यह तो बताओ दोस्त, तुमने भी पेंच में पड़कर अछूतों

द्वार सोचा है या नहीं ?" कुल्ली को गुस्सा आ गया। कहा—"मेरे साथ कोई जमात है ? और अगर यही है तो बैठा लें महात्मा जी मुसलमानिन को।" लेखक ने डाँट बताई—"वे बुड्ढे हो गए हैं, अब मुसलमानिन बैठाएँगे ?" कुल्ली शांत हुए जैसे भूल सुधार रहे हों, बोले "एक बात कही।" यहाँ सहायता और सेवा की अदम्य भावना की ओर संकेत करना ही हमारा लक्ष्य है। उन्हें अपने कार्य का कितना गौरव है—यह भी प्रकट होता है। अब कुल्ली में सहायता की भावना अत्यधिक बढ़ गयी थी। गाँव के निरीह अभी अछूतों की बीमारी और लाचारी में मदद करने को रात-दिन तैयार रहते थे।

अंतिम भेंट में एक ड्रामेटिक टर्न होता है—जैसे पर्दा खुलता और कुल्ली बीमार दिखायी देते हैं। पेट के नीचे का हिस्सा सड़ा हुआ है, ऊपर दिव्य कांति है। सारा जीवन जैसे उनकी देह में साकार हो गया था। ठीक उसी जगह जहाँ पहले दिन कुल्ली बैठे थे, आज पड़े दिखे। आज 'वे भाव' यथास्थान कुरूपता को प्राप्त हैं, लेकिन मुख पर नहीं, मुख पर दिव्य कांति क्रीड़ा कर रही है। प्रवेश करते ही ऐसी बदबू आई कि जान पड़ा कि एक क्षण भी नहीं ठहर सकूँगा। हिम्मत करके खड़ा रहा। विद्या और अविद्या का आधा-आधा भाग कुल्ली की देह में पूर्ण रूप से प्रकाशित था। कुल्ली लेखक को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्हीं के शब्दों में उन्होंने अपने जीवन की व्याख्या कर दी—"यह हाल है। बड़ी बदबू मिलती होगी, लेकिन इधर न मिलेगी। दिल के ऊपर मैं नहीं चढ़ने दे रहा। मुझे इसका रूप देख पड़ता है, हृदय के ऊपर मैं बहुत अच्छा हूँ"। सहायता के लिए लेखक ने दौड़-धूप की। डलमऊ कांग्रेस के प्रेसिडेंट के यहाँ गए, वे पक्का मकान बनवा रहे थे। बोले—'पैसे नहीं हैं।' बड़ी मुश्किल से साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से लेखक ने सात रुपये लिए। कुल्ली को नगर के अस्पताल में ले जाया गया, लेकिन बचे नहीं, प्रयाण कर गए। उनकी मुसलमानिन को हवन कराने के लिए सब पंडितों ने मना कर दिया। तब शायद 'निराला' को सबसे पहले—पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी बनना पड़ा। हवन करवाया।

सचमुच रेखाचित्रकार ने अंकन के लिए बेजोड़ पात्र का चयन कया है। मानव चरित्र के ऊर्ध्वमुखी विकास का यह वास्तविक चित्र अपनी प्रभावशीलता में अप्रतिम है। राजनीति और धर्म के ठेकेदारों पर कठोरतम प्रहार किये गए हैं। समाज के सच्चे सेवक सड़ते—मरते हैं, और

ढोगी लोग सुख की साँस लेते हैं पक्के मकान बनवाते हैं । मृत्यु क समय कुल्ली की देह में अपने ही जीवन की व्याख्या दूध और पानी की तरह अद्‌भुत प्रतीकात्मक है ।

रेखाचित्र के अनुकूल भाषा सधी हुई चुस्त है । निरर्थक शब्दों का बहिष्कार किया गया है । कहीं भी अनौचित्य नहीं आ पाया । भाषा की चुस्ती का एक उदाहरण लीजिए—प्रथम बार जब लेखक लखनऊ में पहुँचे तब कुल्ली का क्या स्वरूप था, इसका चित्रण उसकी तड़क-भड़क के अनुरूप शब्दावली में किया गया है—चले । गेट पर टिकिट कलेक्टर के पास एक आदमी खड़ा था । बना-चुना, बिलकुल लखनऊ ठाठ, जिसे बंगाली देखते ही गुण्डा कहेगा । तेल से ज़ुल्फें तर जैसे अमीनाबाद से सिर पर मालिश करा के गया है । लखनऊ की दुपल्लिया टोपी, गोट तेल से गीली सिर के दाहिने किनारे रक्खी । रँगी मूछें । दाढ़ी बनाई । चिकन का कुर्ता । ऊपर वास्केट । हाथ में बेंत । काली मखमलिया किनारे की कलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फैशन से पहनी हुई । पैरों में मेरठी जूते । उम्र पच्चीस के साल-दो-साल इधर-उधर । देखने पर अंदाजा लगाना मुश्किल है कि हिंदू है या मुसलमान ! साँवला रंग, मझे का डील-डौल । साधारण-सी निगाह में तगड़ा और लम्बा ।' एक शब्द भी निरर्थक नहीं है । रेखा-चित्र में अपेक्षित भाषा का आदर्श स्वरूप यहाँ दिखाई देता है । कोई चित्रकार चाहे तो इस आधार पर कुल्ली का वास्तविक चित्र बना सकता है । ग्रामीण जीवन का यथार्थ स्वरूप सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । तीखे और चुभनेवाले व्यंग्य मानवजीवन और भारत की तत्कालीन राजनीतिक अस्वस्थ स्थिति पर किए गए हैं । लेखक के चरित्र संबंधी असम्बद्ध स्थलों को हटा देने पर 'कुल्लीभाट' निस्संदेह सुन्दर रेखा-चित्र बन जाता है ।

'चतुरी चमार' निराला जी के अनुसार कहानी-संग्रह है । आधिक्य के अनुसार नामकरण की दृष्टि से यह ठीक भी है । परन्तु इसमें दो रेखा-चित्र आ गए हैं—(१) चतुरी चमार (२) देवी । दोनों रेखा-चित्र सारे संग्रह में अपनी विशेषता के कारण अलग से पहचाने जा सकते हैं । दोनों चरित्रों के अंकन में लेखक का व्यक्तित्व तन्मयता के साथ समाविष्ट हुआ है । दोनों ही अपनी-अपनी स्थितियों के द्वारा अपने समाज पर तीव्र व्यंग्य है । दोनों का चरित्र अगतिशील है । एक ग्राम्य-जीवन से चुना गया है, अन्य नगर-जीवन से । कटु यथार्थ दोनों चित्रों की विशेषता है । भाषा लेखक की वही चिर-परिचित है । संवादों में कहीं कलाबाजी नहीं है ।

'चतुरी चमार' एक निम्न श्रेणी का चरित्र नायक है जो निराला के अब तक के रेखाचित्रों में अनजान है। वर्ग भेद के बीच पलनेवाले निरीह, मूक, उज्ज्वल-चरित्र श्रमिक का प्रतीक है। जाति का चमार जिसे परंपरा से ब्राह्मण के घर के पिछवाड़े जरा दूर पर, उस स्थान पर रहने का 'अधिकार' मिला है जहाँ गाँव भर के पनालों का जल मिलता है। सारी स्थिति इसी से स्पष्ट है। वर्ग-भेद का यह विषम डंक सारे हिंदुस्तान के ग्रामों को डसे हुए है।

अपनी कला में चतुरी होशियार है। उसके एक जोड़ी जूते जंगल की ऊबड़-खाबड़ धरती पर भी दो हजार कोस चलने का काम दे सकते हैं।

संत-साहित्य का वह 'पंडित चतुर्वेदी' आदि से कहीं अधिक मर्मज्ञ है। उसका हृदय इतना उदार है कि इस ज्ञान कोष को जो चाहे निःशुल्क पा सकता है। लेखक का पड़ोसी है—इसलिए लेखक उससे परिचित है। लेखक ने उसके सुपुत्र 'अर्जुनवा' को पढ़ाने का कार्य लिया है। उसके बदले चतुरी को बाजार से उनके लिए मांस लाना और माह में दो बार चक्की का आटा पिसवाने का काम देना पड़ता है।

प्रासंगिक रूप से यहाँ लेखक ने आम के दिनों में अपने चिरंजीव के आने का उल्लेख भी किया है। आप अर्जुनवा के काका लगते हैं, यद्यपि उमर में काफी छोटे हैं—यह आपका परंपरागत अधिकार जो है। लेखक ने अपने सुपुत्र को प्राचीन परंपरागत ब्राह्मण अथवा उच्चवर्ग के रूप में चित्रित किया है। कहीं-कहीं उसने अपने संस्मरण भी दे डाले हैं, परन्तु वे 'कुल्ली भाट' में दिये गए संस्मरणों की भाँति पृथक् और अनुपयुक्त नहीं लगते। उसमें परिवर्तनशील युग में प्रबुद्ध वर्ग के भीतर की उदार भावना और प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ने के लिए उद्यत होने की प्रवृत्ति दीख पड़ती है।

एक बार चतुरी ने लेखक से शिकायत की—'काका' जमीदार के सिपाही को एक जोड़ा हर साल देना पड़ता है। एक जोड़ा भगतवा देता है, एक पंचमा। जब मेरा ही जोड़ा दो साल चलता है तब ज्यादा लेकर कोई चमड़े की बर्बादी क्यों करे ?'—कहकर डबडबाई आँखों से देखकर जुड़े हाथों से सेवई-सी बटने लगा।' लेखक ने आई हँसी को मुश्किल से रोका, कहा—'चतुरी बाजिब-उल-अर्ज' में पता लगाना होगा। अगर तुम्हारा जूता देना दर्ज होगा तो इसी तरह पुश्त-दर-पुश्त तुम्हें जूते देते रहने

ढोगी लोग सुख की साँस लेते हैं, पक्के मकान बनवाते हैं मृत्यु क समय कुल्ली की दह में अपने ही जीवन की व्याख्या दूध और पानी की तरह अद्भुत प्रतीकात्मक है ।

रेखाचित्र के अनुकूल भाषा सधी हुई चुस्त है। निरर्थक शब्दों का बहिष्कार किया गया है। कहीं भी अनौचित्य नहीं आ पाया। भाषा की चुस्ती का एक उदाहरण लीजिए—प्रथम बार जब लेखक डलमऊ में पहुँचे तब कुल्ली का क्या स्वरूप था, इसका चित्रण उसकी तड़क-भड़क के अनुरूप शब्दावली में किया गया है—चले। गेट पर टिकिट कलेक्टर के पास एक आदमी खड़ा था। बना-चुना, बिलकुल लखनऊ ठाठ, जिसे बंगाली देखते ही गुण्डा कहेगा। तेल से जुल्फें तर जैसे अमीनाबाद से सिर पर मालिश करा के गया है। लखनऊ की दुपलिया टोपी, गोट तेल से गीली सिर के दाहिने किनारे रक्खी। रँगी मूछें। दाढ़ी बनाई। चिकन का कुर्ता। ऊपर वास्केट। हाथ में बेंत। काली मखमलिया किनारे की कलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फैशन से पहनी हुई। पैरों में मैरठी जूते। उम्र पच्चीस के साल-दो-साल इधर-उधर। देखने पर अंदाजा लगाना मुश्किल है कि हिंदू है या मुसलमान! साँवला रंग, मजे का डील-डौल। साधारण-सी निगाह में तगड़ा और लम्बा।' एक शब्द भी निरर्थक नहीं है। रेखा-चित्र में अपेक्षित भाषा का आदर्श स्वरूप यहाँ दिखाई देता है। कोई चित्रकार चाहे तो इस आधार पर कुल्ली का वास्तविक चित्र बना सकता है। ग्रामीण जीवन का यथार्थ स्वरूप सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। तीखे और चुभनेवाले व्यंग्य मानवजीवन और भारत की तत्कालीन राजनीतिक अस्वस्थ स्थिति पर किए गए हैं। लेखक के चरित्र संबंधी असम्बद्ध स्थलों को हटा देने पर 'कुल्लीभाट' निस्संदेह सुन्दर रेखा-चित्र बन जाता है।

'चतुरी चमार' निराला जी के अनुसार कहानी-संग्रह है। आधिक्य के अनुसार नामकरण की दृष्टि से यह ठीक भी है। परन्तु इसमें दो रेखा-चित्र आ गए हैं—(१) चतुरी चमार (२) देवी। दोनों रेखा-चित्र सारे संग्रह में अपनी विशेषता के कारण अलग से पहचाने जा सकते हैं। दोनों चरित्रों के अंकन में लेखक का व्यक्तित्व तन्मयता के साथ समाविष्ट हुआ है। दोनों ही अपनी-अपनी स्थितियों के द्वारा अपने समाज पर तीव्र व्यंग्य हैं। दोनों का चरित्र अगतिशील है। एक ग्राम्य-जीवन से चुना गया है, अन्य नगर-जीवन से। कटु यथार्थ दोनों चित्रों की विशेषता है। भाषा लेखक की वही चिर-परिचित है। संवादों में कहीं कलाबाजी नहीं है।

'चतुरी चमार' एक निम्न श्रेणी का चरित्र नायक है जो निराला के अब तक के रेखाचित्रों में अनजान है। वर्ग भेद के बीच पलनेवाले निरीह, मूक, उज्ज्वल-चरित्र श्रमिक का प्रतीक है। जाति का चमार जिसे परंपरा से ब्राह्मण के घर के पिछवाड़े जरा दूर पर, उस स्थान पर रहने का 'अधिकार' मिला है जहाँ गाँव भर के पनालों का जल मिलता है। सारी स्थिति इसी से स्पष्ट है। वर्ग-भेद का यह विषम डंक सारे हिंदुस्तान के ग्रामों को डसे हुए है।

अपनी कला में चतुरी होशियार है। उसके एक जोड़ी जूते जंगल की ऊबड़-खाबड़ धरती पर भी दो हजार कोस चलने का काम दे सकते हैं।

संत-साहित्य का वह 'पंडित चतुर्वेदी' आदि से कहीं अधिक मर्मज्ञ है। उसका हृदय इतना उदार है कि इस ज्ञान कोष को जो चाहे नि:शुल्क पा सकता है। लेखक का पड़ोसी है—इसलिए लेखक उससे परिचित है। लेखक ने उसके सुपुत्र 'अर्जुनवा' को पढ़ाने का कार्य लिया है। उसके बदले चतुरी को बाजार से उनके लिए मांस लाना और माह में दो बार चक्की का आटा पिसवाने का काम देना पड़ता है।

प्रासंगिक रूप से यहाँ लेखक ने आम के दिनों में अपने चिरंजीव के आने का उल्लेख भी किया है। आप अर्जुनवा के काका लगते हैं, यद्यपि उमर में काफी छोटे हैं—यह आपका परंपरागत अधिकार जो है। लेखक ने अपने सुपुत्र को प्राचीन परंपरागत ब्राह्मण अथवा उच्चवर्ग के रूप में चित्रित किया है। कहीं-कहीं उसने अपने संस्मरण भी दे डाले है, परन्तु वे 'कुल्ली भाट' में दिये गए संस्मरणों की भाँति पृथक् और अनुपयुक्त नहीं लगते। उसमें परिवर्तनशील युग में प्रवृद्ध वर्ग के भीतर की उदार भावना और प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ने के लिए उद्यत होने की प्रवृत्ति दीख पड़ती है।

एक बार चतुरी ने लेखक से शिकायत की—'काका' जमींदार के सिपाही को एक जोड़ा हर साल देना पड़ता है। एक जोड़ा भगतवा देता है, एक पंचमा। जब मेरा ही जोड़ा दो साल चलता है तब ज्यादा लेकर कोई चमड़े की बर्बादी क्यों करे ?'—कहकर डबडबाई आँखों से देखकर जुड़े हाथों से सेवईं-सी बटने लगा।' लेखक ने आई हँसी को मुश्किल से रोका, कहा—'चतुरी बाजिब-उल-अर्ज' में पता लगाना होगा। अगर तुम्हारा जूता देना दर्ज होगा तो इसी तरह पुश्त-दर-पुश्त तुम्हें जूते देते रहने

पड़ेंगे।' चतुरी सोचकर मुस्कुराया: बोला—'अब्दुल-अर्ज' में दर्ज होगा, क्यों-काका ?' लेखक ने स्वीकृति दी। चतुरी अवसर की ताक में था।

गाँव में भी देश व्यापी क्रान्ति की लहर आई। जमींदारों के शोषण-चक्र चले। चतुरी भी पिसा और उस पर मुकदमा दायर किया गया। सब कुछ बिक गया, आखिरी दम तक लड़ता रहा। गाँववालों ने भी मदद से हाथ खींच लिए। पर हारा नहीं; झुका नहीं। एक दिन अदालत से लौट कर हँसते हुए दरिद्र असहाय चतुरी ने लेखक से कहा—'काका! जूता और पुर वाली बात अब्दुल-अर्ज में दर्ज नहीं है।' नैतिकता ही एकमात्र ऐसा मंत्र है जिसे सुरक्षित समझकर भारतीय कृषक और श्रमिक अब तक सन्तुष्ट हैं, प्रसन्न हैं, जी रहे हैं। शोषक वर्ग की नैतिक पराजय और अपनी नैतिक विजय से चतुरी को जितना गर्व, सन्तोष और जितनी प्रसन्नता हुई—उतनी संभवतः मुकदमा जीतकर भी न होती। साथ ही उसे यह संतोष भी हुआ कि मैं तो भले ही पिसा—आने वाली पीढ़ियाँ तो नहीं पिसेंगी।

कहानी में स्थानीयता खूब निखरी है। इसमें देश के संक्रान्तिकालीन ग्राम्य जीवन का चित्र है। किस प्रकार एक वर्ग, इस वर्ग-भेद को मिटाने को आतुर है—लेखक ने अपना चित्र इसी संदर्भ में दिया है—दूसरा रूढ़ियों की जड़े जमाने में व्यस्त है—लेखक के चिरंजीव का चित्र खींचने का यही हेतु है। श्रमिक और कृषक गणों में आत्मविश्वास उत्पन्न हो रहा है। यह उनके सदियों के अंधकार के बाद प्रकाश का स्वर्णिम चरण है। आवश्यक प्रसंगों को उभारा गया है। वस्तु-चित्रण के साथ लेखकीय भावों का श्रेष्ठ सुन्दर संयोग है। भाषा में यत्र-तत्र कुछ दोष आ गए हैं, फिर भी 'चतुरी चमार' एक सफल रेखा-चित्र है।

उपर्युक्त तीनों रेखाचित्रों के माध्यम से तीन विभिन्न प्रकार की समस्याएँ चित्रित की गई हैं। तीनों विशिष्ट व्यक्ति अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'चतुरी चमार' की प्रेरणा में नीच पात्रों को साहित्य में नायकत्व पर प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति प्रधान थी। उसी लड़ी में 'देवी' एक और कड़ी जोड़ती है। इसका चित्रण प्रगतिशील साहित्य की पराकाष्ठा है। सारी दुनिया जिसे पगली और गूँगी कहती है—हमारे लेखक की दृष्टि में वह 'देवी' है। अपनी मूकता और विचित्र चेष्टाओं से वह समाज और राजनीति पर तीव्रतम व्यंग्य करती है। पूर्व विवेचित तीनों चित्र ग्राम-जीवन से गृहीत हैं। 'देवी' नगर-जीवन से चुनी हुई चरित-नायिका है। इसके द्वारा एक साथ जितने मार्मिक व्यंग्य किये गए हैं उसकी सानी में

निराला के 'कुल्ली भाट' के अतिरिक्त दूसरे रेखा-चित्रों को नहीं रखा जा सकता।

लेखक भावनात्मक प्राणी है, और लोगों की भाँति वह 'पगली' को कोरी आँखों से ही नहीं, हृदय की आँखों से देखता है। इसीलिए वह उसके स्याह चेहरे के भीतर से निकलती हुई 'बड़ी तेग भावना' को देख सका है। वह पगली की भाषा समझता है, इसका कारण यह है कि वह उसे पगली नहीं, देवी—अंतर्यामिनी—समझता है जो समाज के आडम्बरपूर्ण आवरण के भीतर भी सत्य को देख लेती, पहचान लेती है और अपनी मूक भाषा में अथवा कभी हँसकर अपने मन की बात प्रकट कर देती है। तत्त्वदर्शि कवि ही उसको समझ सके हैं; इसीलिए स्वयं पगली के व्यक्तित्व को एकाकार कर सके हैं और इतना सशक्त, मार्मिक, कटु यथार्थ साहित्य को दे गए हैं।

देवी को लेखक शक्ति रूपा और नेपोलियन से भी बड़ा समझते हैं। 'वह साँवली थी, दुनिया की आँखों को लुभानेवाला उसमें कुछ नहीं था। दूसरे लोग उसकी रुखाई की ओर रुख न कर सकते थे, पर मेरी आँखों में उसका वह रूप देख पड़ा, जिसे मैं कल्पना में लेकर साहित्य में लिखता हूँ; वह केवल रूप ही नहीं, भाव भी थी।' उसके इंगितों की भाषा के आगे रवीन्द्र का अभिनय भी लेखक को फीका लगा। पगली के एक बच्चा भी था, डेढ़ साल का। उसमें उन्हें भारत का सच्चा रूप दिखाई दिया। लेखक का कवि-हृदय रो पड़ता है—'देश में शुल्क लेकर शिक्षा देने वाले अनेक विश्वविद्यालय हैं। पर इस बच्चे का क्या होगा? इसके भी माँ है! वह देश की सहानुभूति का कितना अंश पाती है? हमारी थाली की बची हुई रोटियाँ जो कल तक कुत्तों को दी जाती थीं! यही हमारी सच्ची दशा का चित्र है।' लेखक के मत में यही पगली हमारे आत्म-बोध के लिए यहाँ सड़क पर, चौराहे पर शिक्षा दे रही है—'यह माँ अपने बच्चे को लेकर बैठी हुई धर्म, विज्ञान, राजनीति, समाज, जिस विषय को भी मनुष्य होकर मनुष्यों ने आजतक अपनाया है, उसी की भिन्न रुचिवाले पथिक को शिक्षा दे रही है।' इसी आधार पर लेखक ने पगली के इर्द-गिर्द उसकी हँसी और मूकसंकेतों के माध्यम से धर्म, राजनीति आदि के जघन्य पक्षों पर आघात किये हैं।

एक दिन नेता जी का जलूस जा रहा था भीड़ के लोग जय जयकार कर रहे थ पगली मुँह मोड़े सिकोड़कर आँखो की पूरी ताकत

से देख रही थी—समझना चाहती थी, वह क्या है ?' भीड़ ने पगली के बच्चे को कुचल दिया। पगली ने बच्चे को उठाया, धूल झाड़ी। अग्नि-नेत्रों से भीड़ को देखती रही। नेता जी जनता से दस हजार की थैली लेकर जरूरी जनहित के कार्यों में खर्च करने के लिए चल दिए। यहाँ राजनीति पर व्यंग्य किया गया है कि जिनका हित प्रधान है, वे तो कुचल दिए जाते हैं और जो कुछ गौण है उसे प्रधान बना दिया जाता है। पगली जैसी निरीह स्त्री की, उसके अर्द्धनग्न बच्चे की सहायता के बढ़कर किस सहायता की कल्पना की जा सकती है ?

धर्म केवल बाह्य प्रदर्शन मात्र रह गया है। रामायण की कथा सुनकर आए व्यक्ति पगली पर टीका-टिप्पणी करते हुए चले जाते हैं। किसी से सक्रिय सहायता करने की नहीं बनती। यदि यही भावना है तो तुलसी कृत रामायण पढ़ने-सुनने का क्या अर्थ है ?

पलटन भी दंभ से जमीन को कुचलती हुई 'प्रदर्शन' करके चली गई। सिपाही जितनी ही जोर से पैरों को उठाते उतनी अधिक जोर से पगली हँस देती थी। उसका हँसना कितना सार्थक था कि वे रक्षक भी उन गुण्डों से पगली को नहीं बचा पाये जो बेचारी के दिनभर इकट्ठे किये पैसों को रात को छीन ले जाते थे। रक्षकों ने भी केवल दम्भी प्रदर्शन के अतिरिक्त किया ही क्या ? निस्सहाय मनुष्य की न धर्म सहायता करता है, न राजनीति, न पलटन।

एक दिन लेखक के एक मित्र ने—मजाक में—संकेत से पगली से दो रुपये माँगे और व्याज देने का आश्वासन दिया। पगली खिल-खिला कर हँसी और कमर से तीन पैसे निकाल कर निःसंकोच देने लगी। पगली ने जो कुछ हँस कर कहा, वह अनेक मुख से भी कदाचित् ही कहा जा सके। जो कुछ उस क्षुद्रा ने किया, शायद ही कुबेर कर सकें। समाज ने उसके पास छोड़ा ही क्या ? हँसी वह संभवतः इसीलिए थी। और उसके पास जो कुछ भी था, सर्वस्व दे दिया। उसकी चेष्टाएँ उच्चकोटि के दार्श-निक से मिलती-जुलती थीं।

एक बार उसकी अनुपस्थिति में उसका बच्चा गिर गया। लेखक ने उठा लिया। मित्र ने कहा—"अरे, यह गंदा रहता है !' मानवीय सहानुभूति (?) अवश्य ही इस व्यंग्य से कराह उठेगी।

प्रकृति भी इस निरीह, मूक असहाय मानवी के प्रति निर्दय हो

उठी। निरन्तर गर्मी की तेज लू, बरसात की मार और शीत का प्रकोप सहते-सहते पगली बहुत अशक्त हो गई। चल फिर भी नहीं सकती थी। अस्पताल ले जाया गया। जिस स्वयंसेवक ने उसको ताँगे पर चढ़ने में मदद की थी, उसकी टाँग में मोटर की टक्कर से चोट लग गई। साधनहीनों, दीनों की सहायता करनेवाले की टाँग भी यह व्यावसायिक दुनिया तोड़ देती है। पगली का बच्चा अनाथालय में भर्ती (!) कर दिया गया—शायद उसके लिए यही विश्वविद्यालय था!

शायद ही देवी से श्रेष्ठ रेखा-चित्र हिन्दी में लिखा गया हो। निराला जी के रेखाचित्रों में भी यह निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ है। उच्चकोटि के चुभनेवाले व्यंग्य, निर्दोष भाषा, सहज शैली—चित्रात्मक शब्द जड़े हुए, सभी दृष्टियों से यह सुन्दर बन पड़ा है। बिल्लेसुर बकरिहा के बाद इसी में लेखक का व्यक्तित्व सबसे अधिक उभरा है।

निराला के सभी रेखा-चित्रों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका व्यक्तित्व चरित-नायक की रेखाओं में उभर आता है। इसके अतिरिक्त चित्रमयी भाषा, तीक्ष्ण व्यंग्य और कल्पनाविहीन या शुद्ध यथार्थ उनकी अन्य विशेषताएँ हैं।

निराला के दो उपन्यास

उपन्यास-परम्परा के प्रकाशस्तंभ महाप्राण के उपन्यास हैं। 'अलका', 'निरुपमा' आदि उपन्यासों में वर्णित नारी के अलकावाद और निरुपमावाद विशिष्टता के ही पर्यायवाची शब्द प्राण हैं। निर्माण का अलकावाद अथवा निर्माणात्मक सामाजिक क्रांति का निरुपमावाद मनुष्य की प्रवुद्ध तंत्रमुक्ति का सुन्दर उज्ज्वल स्वरूप है। अलका की निर्माण-प्रक्रिया केवल एक उपन्यास के एक नारीपात्र की निर्माण-प्रक्रिया नहीं, समाज की सम्पूर्ण इकाई की निर्माण-प्रक्रिया है, जीवन की निर्माण-प्रक्रिया है। पूर्वार्द्ध अलका का तथाकथित पलायन जीवन-संघर्ष-विमुखता नहीं, जीवन के संघर्षों के विरुद्ध पलायन नहीं, नया जीवन प्रारंभ करने की भूमिका है। इस नए जीवन में ही अलकावाद निहित है।

निराला की सम्पूर्ण नारी एक सम्पूर्ण इकाई है—नारीत्व की जागरूक सजगता का प्रतीक! निराला की मुख्य नारियाँ जीवन की विभिन्न शैलियों के पारिभाषिक रूप हैं। निराला की मुख्य नारियों में प्रतीकत्व है।

'अलका' उपन्यास में विजय का प्रबुद्ध ग्राम - स्वराज - यज्ञ तथा 'निरुपमा' उपन्यास में निरुपमा का परिणय छायावादी निराला के लोक-दर्शन के समुज्ज्वल अध्याय हैं। निराला का लोकदर्शन निराला के कथा-साहित्य अथवा 'बेला', 'नए पत्ते' में सन्निहित है। संत विनोबा का सर्वोदय निराला के लोकदर्शन से विशेष भिन्न नहीं है। 'अलका' में वर्णित ग्राम-निर्माण-कार्य निराला के लोकदर्शन-निरूपण का महत्वपूर्ण अंश है। 'अनामिका' और 'परिमल' के सुकवि का लोकदर्शन संकीर्ण आलोचकों के लिए शायद अवहेलना या उपेक्षा का विषय हो सकता है क्योंकि शिल्प में आरोपित की जाती है।

सच तो यह है कि निराला के लोकदर्शन का विस्तृत रूप आज हम संत विनोबा के सर्वोदय-प्रारूप में देख रहे हैं। संत विनोबा के सर्वोदय-प्रारूप-निर्माण में निराला के लोकदर्शन से प्रेरणा और सहायता मिली है। साहित्य में गांधीत्व की प्राण-प्रतिष्ठा करनेवाले साहित्यकारों में निराला अधिकांश लेखकों की अपेक्षा बहुत पहले आते हैं।

स्वराज और सुराज में अन्तर है। सुराज का अर्थ है किसानों का राज ('अलका', पृष्ठ संख्या ५८)। 'अलका' का मँहगू किसानों का राज चाहता है अर्थात् सच्चा सुराज चाहता है। करमुक्त भूस्वामित्व के सम्यक् सिद्धान्त को निरूपित करते हुए निराला का तंत्र मुक्त लोकदर्शन "सबै भूमि गोपाल की", लोक-सिद्धान्त, जनाधारित सिद्धांत को प्रतिपादित करता है। 'अलका' उपन्यास-पुस्तक की 'वेदना' शीर्षक भूमिका से ज्ञात होता है कि 'अलका' उपन्यास सन् '३३ या उसके आसपास लिखा गया था। सन् '३२ में ही करमुक्त भूस्वामित्व का उज्ज्वल सिद्धान्त प्रतिपादित करना निराला की प्रबुद्ध शक्ति के ही कारण संभव हो सका था।

निराला का लोकदर्शन व्यक्ति-निर्माण, नव समाज-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण में सन्निहित है। निराला किसी दल-विशेष के प्रचारक या कार्यकर्त्ता नहीं थे। निराला प्रचलित राजनीति के वृत्त में कभी खड़े नहीं हुए। निराला सेवाग्राम या साबरमती आश्रम के वासी नहीं रहे। निराला संत विनोबा की पदयात्रा टोली में कभी शामिल नहीं हुए। निराला ने चर्खे में हृदय की शांति अथवा लोकशान्ति ढूँढ़ने का प्रयास नहीं किया; किन्तु, उन्होंने सम्यक् मनुष्य-निर्माण का लोकाभिमुख बुद्धत्व अवश्य प्रदान किया। अलका-मंडल की लोकनिष्ठा, ग्रामस्वामित्व, मुक्त तंत्र, जीवन-निर्माण और नारीत्व के अलकाजन्य उन्नयन पर आधारित है।

'निरुपमा' उपन्यास में निरूपित रामपुर क्षुद्र क्षेत्रवाद का कूपमंडूकत्व, संकीर्णता, सम्प्रदायवाद, रूढ़िवादी, दकियानूसी और गतानुगतिक है। आज समाज धर्म-च्यूत है। जाति-धर्म प्रमुख है। 'निरुपमा' उपन्यास के बेनी, गुरुदीन, सीतल, मन्नी आदि पात्र ग्रामीणता और ग्रामवाद के पुष्ठ पोषकों के समक्ष एक विराट् प्रश्नचिन्ह उपस्थित करते हैं। ग्रामीण भारत निरुपमानिरूपित रामपुर है। ग्रामवादी भारत की रामपुर-प्रवृत्ति ग्राम-प्रवृत्ति नहीं, विश्व-प्रवृत्ति नहीं, लोकरक्षण और मनुष्य-रक्षण नहीं, लोकक्षय है, ग्रामीणता का विकलांग रामपुरवाद व्यक्ति और राष्ट्र के भ्रष्ट जीवन की इकाई है प्रतीक है निरुपमा-कुमार-परिणय के प्रति का

८ र्पण मार्गदर्शन की ओर संकेत करता है

व्यक्ति के अन्दर सन्निहित गतानुगतिक रामपुरवाद को आलोक का मार्ग-दर्शन कैसे दिया जाय ? यह मुख्य प्रश्न है । इस प्रश्न के निराकरण में मूलभूत मानव-दर्शन की सफलता निहित है ।

अलका के सम्पूर्णत्व में जीवन और नारीत्व की अलका-सिद्धि, आलोक-सिद्धि, लोक-सिद्धि है । 'अलका' की मुख्य नारी का अलकावाद साहित्य की नारी-भावना में एक अध्याय जोड़ता है । उन्नयन अलका की शोभा है ।

युद्ध और शांति के बीच असमंजस की स्थिति में खड़े संसार को 'अलका' की प्रारंभिक पंक्तियाँ अवश्य हृदयंगम करनी चाहिए । 'अलका' का प्रारंभ मर्मस्पर्शी और हृदयद्रावक है—

'महासमर का अन्त हो गया है, भारत में महाव्याधि फैली हुई है । एकाएक महासागर की जहरीली गैस ने भारत को वर के धुएँ की तरह घेर लिया है, चारो ओर त्राहि-त्राहि, हाय-हाय ।..........गंगा, यमुना, बेतवा, बड़ी-बड़ी नदियों में लाशों के मारे जल का प्रवाह रुक गया है । गंगा का जल जो कभी खराब नहीं हुआ, जिसके माहात्म्य में कहा जाता था, दूसरा जल रख देने पर कीड़े पड़ जाते हैं, पर गंगा के जल में यह कल्मष नहीं मिलता, वह भी पीने के बिल्कुल अयोग्य बताया गया । परीक्षा कर डाक्टरों ने कहा, एक सेर जल में आठवाँ हिस्सा सड़ा मांस और मेद है ।'

विश्व रंगमंच पर युद्ध की अनिवार्य स्थिति उत्पन्न करनेवाले या युद्ध की अनिवार्यता घोषित करनेवाले राष्ट्रों को युद्धोपरांत वातावरण का सम्यक् चित्र स्पष्ट रखना चाहिए । युद्धोपरांत वातावरण का चित्रण 'अलका' के प्रारंभ में अत्यन्त मर्मस्पर्शी हुआ है ।

भग्न व्यक्तित्व पराधीन देश का होता है । उसकी कोई सत्ता नहीं रहती । भारत की पराधीनता की दयनीय विवशता का मार्मिक चित्र 'अलका' उपन्यास के द्वितीय परिच्छेद में अंकित किया गया है—

'सरकारी कर्मचारियों ने घोषणा की, सरकार ने जंग फतह की है, आनन्द मनाओ; सब लोग अपने-अपने दरवाजों पर दिए जलाकर रक्खें । पति के शोक में सद्यः विधवा, पुत्र के शोक में दीर्ण माता, भाई के दुःख में मुरझाई बहन और पिता के प्रयाण से दुखी असहाय बाल-विधवाओं ने दूसरी विपत्ति की शंका कर काँपते हुए शीर्ण हाथों से दिए जला-जलाकर

द्वार पर रक्खे, और घरों के भीतर दुख से उमड़-उमड़कर रोने लगीं। पुलिस घूम-घूमकर देखने लगी, किस घर में शांति का चिन्ह, रोशनी नहीं !'

शांति का यह चिन्ह कितना कारुणिक, हृदयद्रावक और पराधीनता-परवशता से आवृत्त और स्वाभिमान-विमुख है—यह कहने का विषय नहीं।

'अलका' उपन्यास की नायिका स्वयं अलका है जिसके आधार पर ही उपन्यास का नामकरण हुआ है। मुरलीधर खलनायक है। महादेव उपखलनायक है। नायकत्व विजय और अजित में विभाजित कर दिया गया है। किन्तु नायकत्व का गौरव विजय को ही प्राप्त हुआ है। अजित उपनायक अथवा सहयोगी नायक कहा जा सकता है।

पूर्वार्द्ध अलका का नाम शोभा है। 'वह धूप से भी गोरी और फूल से भी खूबसूरत है। आँखें बड़ी-बड़ी, आम की फाँक जैसी, पढ़ी-लिखी, जैसे सुबह की किरण आसमान से उतरी हो' ('अलका', पृ० २५-२६)। शोभा महादेव प्रसाद की कारगुजारी के कारण खलनायक मुरलीधर की कामाग्नि की आहुति बन जानेवाली थी। किंतु, अनुकूल परिस्थितियों के वात्याचक्र के कारण शोभा अलका के रूप में परिवर्तित हुई, नारीत्व का मुख उज्ज्वल हुआ, खलनायकत्व की हत्या हुई। अलका नारीत्व की जागरूकता का प्रतीक है।

विजय का मार्गदर्शन निराला का मार्गदर्शन हैं। विजय का मार्गदर्शन तंत्रमुक्त लोकदर्शन है।

सावित्री नारीत्व का पुनर्मूल्यांकन और पुनर्जागरण है। नारीत्व की परम्परानुमोदित परिधि के प्रति उसे आस्था नहीं है।

खलनायक मुरलीधर के वंशवृक्ष के आधार पर उपन्यासकार ने जमींदारी और जागीरदारी के मुख्य कारणों की ओर संकेत किया है।

मुरलीधर की उपाधि-प्राप्ति-लिप्सा की तुलना श्री उदयराम सिंह के उपन्यास 'भूदानी सोनिया' के जमींदार साहब की उपाधि-लिप्सा से की जा सकती है। मुरलीधर का सम्पूर्ण चरित्र विलासप्रिय भ्रष्ट जमींदारों का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है।

आज बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग में संघर्ष चल रहा है। निराला जीवन में क्रांति को सम्यक् महत्व प्रदान करते हैं। क्रांति को निराला ने वैराट् अर्थों में स्वीकार किया है। निराला का संपूर्ण साहित्य प्रबुद्ध क्रांति

है। क्रांति का अर्थ अन्ध घृणा का प्रचार नहीं है, बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध अन्ध घृणा का प्रचार नहीं है।

बुर्जुआवर्ग में मुरलीधर है और स्नेहशंकर भी। स्नेहशंकर निराला के मानवतावाद का प्रतिनिधि है। विजय और स्नेहशंकर में निराला का मार्गदर्शन प्रतिध्वनित होता है। विजय सर्वहारा वर्ग का युवक है। किंतु, जमींदार स्नेहशंकर में निराला का मार्गदर्शन प्रतिध्वनित होना अस्वाभाविक नहीं, असाधारण विषय है। पंडित स्नेहशंकर में प्रतिध्वनित निराला का मार्गदर्शन लाल क्रान्तिकारियों को नया मार्ग देगा, बाहों पर क्रांति का लाल बिल्ला बाँधकर कलम पकड़नेवाले प्रगतिवादी शिविर के लेखकों को नवीन मार्ग देगा, ऐसी आशा है।

'स्नेहशंकर जी ऊँचे दरजे के शिक्षित हैं।..................ऊँची शिक्षा प्राप्त करने पर भी ऊँचे पदों की प्राप्ति स्वेच्छा से नहीं की। सरस्वती की सेवा में दत्तचित्र रहते हैं।..........स्नेहशंकर जी गाँवों के जमींदार की तरह नहीं, रियाया की तरह रहते हैं। जमींदारी का प्रबन्ध वहीं के किसानों की एक कमिटी करती है। अपनी पुस्तकों की आमदनी से भी वह कभी-कभी किसानों के शिक्षा-विभाग की मदद करते हैं ('अलका', पृ० ३२-३३)।

अलका की नारीत्व-सिद्धि का अधिकांश श्रेय पंडित स्नेहशंकर को ही है। अलका का नामकरण स्नेहशंकर जी ने ही किया ('अलका', पृ० ३९)। अलका के नारीत्व को प्रबुद्ध रूप में पं० स्नेहशंकर का सम्यक् तथा उच्चातिउच्च योगदान रहा है।

'दुख मनुष्य ही झेलते हैं। तू महाशक्ति है। जितना परिचय शक्ति का तूने दिया, उससे अधिक की मृत्यु के सामने भी जरूरत नहीं। भरोसा रख। सदा समझ, भारत की दुखी विधवाएँ महिलाएँ तुझे चाहती हैं। अब तेरी उचित शिक्षा का प्रबन्ध करना हैं' ('अलका', पृ० ४१-४२)।

अलका का मूल स्रोत स्नेहशंकर की इस उक्ति में निहित है। अलका का सम्पूर्ण उत्तरार्द्ध पं० स्नेहशंकर की इन्हीं पंक्तियों के कारण है। स्नेहशंकर जी के कारण शोभा अलका के रूप में परिवर्तित हुई।

पं० स्नेहशंकर के मतानुसार, 'देश की स्वतंत्रता एक भिन्न विषय है; वह केवल राजनीतिक प्रगति नहीं।...............देश की व्यापक स्वतंत्रता को सब तरफ की पुष्टि चाहिए। जब तक सब अंगों से समान पूर्णता नहीं

होती, तब तक स्वतंत्र शरीर संगठित नहीं हो सकता। ('अलका' पृ० ४४)।'

स्वतंत्रता का मार्मिक विश्लेषण पंडित स्नेहशंकर ने प्रस्तुत किय है। स्वतंत्रता का स्वरूप विजय ने अपने ग्रामोत्थान-अभियान में अंकित किया है। बुर्जुआ वर्ग का एक प्रतिनिधि 'अलका' में स्वतंत्रता का विश्लेषण करता है, सर्वहारावर्ग का प्रतिनिधि स्वतंत्रता का स्वरूप ग्रामोत्थान पक्ष में चित्रित करता है। निराला-दर्शन के अध्येताओं के लिए यह कम कौतुक का विषय नहीं है।

पंडित स्नेहशंकर कहते हैं, 'जनता बड़ी असमर्थ होती है। वह मनुष्य को बिना स्याह दाग का ईश्वर भी समझ लेती है जो कमजोर को और भी कमजोर, परावलंबी बना देता है' ('अलका', पृ०)।

जनता की व्यक्तिपूजा-प्रवृत्ति (Hero Worship) और व्यक्तित्व-सिद्धान्त (Personality Cult) के विरुद्ध निराला स्नेह-शंकर के स्वर में उद्घोष करते हैं। नेता मनुष्य नहीं, 'सभी विषयों की संकलित ज्ञान-राशि का भाव नेता है'—'अलका' के स्नेहशंकर की यह स्वीकारोक्ति है। ऐसी मान्यता स्नेहशंकर को मान्यता प्रदान करनेवाले स्रष्टा साहित्यकार निराला की है।

निराला भारतोत्थान-साधन के मूल में प्रवेश करते हैं। व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन में शिक्षा का महत्व निर्विवाद है। क्योंकि, 'जहाँ मस्तिष्क ही न हो, वहाँ नेता की आवाज का क्या असर हो सकता है' ('अलका', पृ० ४८)? इसीलिए, विजय ने किसानों के बच्चों आदि को शिक्षित करने का भार अपने ऊपर ग्रहण किया।

अजित विजय से कहता है, 'तुम ईश्वर पर विश्वास रखते हो, ऐसा जान पड़ता है। मुझे तो ईश्वर के नाम पर अँधेरे के सिवा और कुछ नजर नहीं नजर आता' ('अलका', पृष्ठ ५५)।

'अलका' का नायक ईश्वर पर विश्वास रखता है, किन्तु उपनायक ईश्वर पर विश्वास नहीं करता। क्योंकि, वह ईश्वर पर अविश्वास करता है इसीलिए, ईश्वर के नाम पर साधुत्व के वेश में जनता को वह ठगता है।

अजित कहता है—'कांग्रेस का हाल पूछो मत। यहाँ जो महाशय त्रिवेणी प्रसाद हैं वह दोनों तरफ रेंगते हैं, ऐसे जीव हैं' ('अलका', पृ० ५६)।

कांग्रेस की इस स्थिति की ओर पद्मभूषण श्री राजा

प्रसाद सिंह ने 'गांधी टोपी', 'पुरुष और नारी' आदि में अत्यन्त विश्वसनीय ढंग से संकेत किया है। खेद है, 'अलका' में यह संभव नही हो सका।

"देहात में सिक्का जम सकता है" ('अलका', पृ० ५६)—अजित की यह उक्ति "गाँवों की ओर लौटो" गाधीवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है। लेखक का समाज-दर्शन यहाँ अभिव्यक्त हुआ है।

समाज और राष्ट्र की प्रगति के लिए संगठन अत्यावश्यक है। एकता राष्ट्र की प्रगति के इतिहास का प्रथम अध्याय है।

"………जो भीख भगवान के नाम पर भिक्षुकों को दी जाती है, प्रतिदिन यदि उतना अन्न निकालकर एक हंडी में रख लिया जाय, और महीने के अन्त में गाँव भर का अन्न एकत्र कर बेचा जाय, तो उसी अर्थ से एक शिक्षक रखकर वे अपने बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा दे सकते हैं, जो तमाम दिन व्यर्थ के खेलकूद और लड़ाई-झगड़ों में पार करते रहते हैं। जब तक रियाया अपने अर्थ को पूरी मात्रा में नहीं समझती, तब तक दूसरे समझदार का जुआ उसके कंधे पर रक्खा रहेगा; अज्ञान के अँधेरे गढे से बाहर उजाले में खिले हुए फूलों से दूसरे देशों के किसानों की दशा और सुधार का ज्ञान प्राप्त करना यहाँ के किसानों के लिए बहुत जरूरी है"—('अलका', पृ० ७२-७३)।

निराला का समाज-दर्शन यहाँ अभिव्यक्त हुआ है। ग्राम-निर्माण और ग्राम-शक्ति का सुन्दर मार्ग यहाँ प्रस्तुत किया गया है। संत विनोबा के सर्वोदय पात्र-सिद्धान्त की प्रेरणा क्या निराला के इस समाज-दर्शन से नहीं मिली ?

विजय का ओजपूर्ण, उत्साहवर्द्धक भयमुक्ति सिद्धान्त ('अलका', पृ० ८०) छक्कन, घसीटे, पलटू, चरण आदि दीन ग्रामीणों में नई शक्ति का संचार करता है। बेगार प्रथा के विरुद्ध विजय-अभियान सफलीभूत हुआ, किन्तु इसकी प्रतिक्रिया बाद में जमींदार आदि की निम्नतम कोटि की स्वार्थपरता के फलस्वरूप दूषित कर दी गई। बाद में शुद्ध पश्चाताप की ज्योति जलती है। भारत के किसानों को विजय की आवश्यकता है, 'अलका' के विजय की आवश्यकता है।

'अलका' के साधु-स्वाँग-स्थल अंधविश्वास से ग्रसित जर्जर समाज का निरूपण है अजित के साधुस्वाँग का साधन नहीं साध्य उत्कृष्ट है।

अलका की प्रधान नारी शक्ति है। अलका शक्ति का स्रोत है। वह प्रेरणादायिनी है। वह पुरुष की प्रेरणा का प्रकाशस्तम्भ है।

"पिंजड़े में रहना बड़ा अच्छा, चारा आप मिल जाता है, बेचारा तोता बाजू फटकारने की मिहनत से बच जाता है" ('अलका', पृ० १७४)—शक्ति की देवी अलका की यह व्यंग्योक्ति है। प्रभाकर से पूर्ण परिचय के पूर्व ही प्रभाकर के प्रति यह अलका-उक्ति तूफान को निर्माणात्मक शक्ति का मार्ग देती है। जब शोभा अलका के रूप में परिवर्तित हुई थी, तब पं० स्नेहशंकर ने कहा था—"तू महाशक्ति है!" तीन शब्दों की इस पंक्ति में ही निराला की नारी का जागरूक इतिहास है।

'अलका' के स्नेहशंकर का नारी - रूप 'निरुपमा' की नायिका निरुपमा है। बुर्जुआ वर्ग में स्नेहशंकर और निरुपमा जैसे आदर्श पात्र भी हैं। ये पात्र निराला के मानवतावाद के उज्ज्वल उदाहरण हैं।

'निरुपमा' में प्रवाह, श्लीलता तथा उज्ज्वल औपन्यासिक तत्व हैं।

बंगाल निवासियों की प्रान्तीयता और प्रान्तवादी संकीर्णता का जीवित चित्रण निराला द्वारा मार्मिक ढंग से संभव हुआ है। 'निरुपमा' के यामिनी बाबू का यह कथन—"यह तो मानी हुई बात है कि भारतवर्ष में बंगालियों से बढ़कर कल्चर अपर प्रोविंस के लोगों में नहीं। हिन्दुस्तानी बेचारे लाख पी-एच० डी०, डी० लिट्० हो जायें, कन्धे पर लाठी रखकर चलनेवाली वृत्ति कुछ-न-कुछ रहेगी" ('निरूपमा', पृ० २३)—क्या भारत के कर्णधारों को कुछ सोचने के हेतु विवश नहीं करता?

"अभी बंगालियों का मुकाबिला हिन्दुस्तानी नहीं कर सकते" ('निरुपमा',, पृ० २४)।

'निरुपमा' की नीली में भी यह भाव बद्धमूल है कि वह बंगाली है और कुमार हिन्दुस्तानी है; कि, बंगाली और हिन्दुस्तानी में मौलिक भिन्नता है; कि, हिन्दुस्तानी की अपेक्षा बंगाली श्रेष्ठ हैं। जैसे बंगाल हिन्दुस्तान के बाहर का बहुविज्ञापित, बहुचर्चित सुनहरा देश हो!

बंगाली कहनेवाले बंगलावादियों की बङ्ग-ग्रन्थि के कारण देश का पतन हुआ। देश दुर्बल हुआ। उपन्यास में रामपुर का अबंगाली कामता कहता है—"बंगाली और पुलिस, ये बाप के नहीं होते!" स्पष्ट है, घृणा दोनों ओर है—तथाकथित बंगाली और अ-बंगाली में।

'जातीय ऊँचाई का अभिमान लोगों की नस-नस में भरा हुआ है,

प्रसाद सिंह ने 'गांधी टोपी', 'पुरुष और नारी' आदि में अत्यन्त विश्वसनीय ढंग से अंकित किया है। खेद है, 'अलका' में यह संभव नहीं हो सका।

"देहात में सिक्का जम सकता है" ('अलका', पृ० ५६)—अजित की यह उक्ति "गाँवों की ओर लौटो" गांधीवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है। लेखक का समाज-दर्शन यहाँ अभिव्यक्त हुआ है।

समाज और राष्ट्र की प्रगति के लिए संगठन अत्यावश्यक है। एकता राष्ट्र की प्रगति के इतिहास का प्रथम अध्याय है।

"........जो भीख भगवान के नाम पर भिक्षुकों को दी जाती है, प्रतिदिन यदि उतना अन्न निकालकर एक हंडी में रख लिया जाय, और महीने के अन्त में गाँव भर का अन्न एकत्र कर बेचा जाय, तो उसी अर्थ से एक शिक्षक रखकर वे अपने बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा दे सकते हैं, जो तमाम दिन व्यर्थ के खेलकूद और लड़ाई-झगड़ों में पार करते रहते हैं। जब तक रियाया अपने अर्थ को पूरी मात्रा में नहीं समझती, तब तक दूसरे समझदार का जुआ उसके कंधे पर रक्खा रहेगा; अज्ञान के अँधेरे गढ़े से बाहर उजाले में खिले हुए फूलों से दूसरे देशों के किसानों की दशा और सुधार का ज्ञान प्राप्त करना यहाँ के किसानों के लिए बहुत जरूरी है"—('अलका', पृ० ७२-७३)।

निराला का समाज-दर्शन यहाँ अभिव्यक्त हुआ है। ग्राम-निर्माण और ग्राम-शक्ति का सुन्दर मार्ग यहाँ प्रस्तुत किया गया है। संत विनोबा के सर्वोदय पात्र-सिद्धान्त की प्रेरणा क्या निराला के इस समाज-दर्शन से नहीं मिली ?

विजय का श्रीमार्ग, उत्साहवर्द्धक भयमुक्ति सिद्धान्त ('अलका', पृ० ८०) छक्कन, घमोटे, पल्टू, चरण आदि दीन ग्रामीणों में नई शक्ति का संचार करता है। बेगार प्रथा के विरुद्ध विजय-अभियान सफलीभूत हुआ, किन्तु इसकी प्रतिक्रिया बाद में जमींदार आदि की निम्नतम कोटि की स्वार्थपरता के फलस्वरूप दूषित कर दी गई। बाद में शुद्ध पश्चाताप की ज्योति जलती है। भारत के किसानों को विजय की आवश्यकता है, 'अलका' के विजय की आवश्यकता है।

'अलका' के साधु-स्वाँग-स्थल अंधविश्वास से ग्रसित जर्जर समाज का निरूपण है। अजित के साधुस्वाँग का साधन नहीं, साध्य उत्कृष्ट है।

अलका की प्रधान नारी शक्ति है। अलका शक्ति का स्रोत है। वह प्रेरणादायिनी है। वह पुरुष की प्रेरणा का प्रकाशस्तम्भ है।

"पिंजड़े में रहना बड़ा अच्छा, चारा आप मिल जाता है, बेचारा तोता बाजू फटकारने की मिहनत से बच जाता है" ('अलका', पृ० १७४)—शक्ति की देवी अलका की यह व्यंग्योक्ति है। प्रभाकर से पूर्ण परिचय के पूर्व ही प्रभाकर के प्रति यह अलका-उक्ति तूफान को निर्माणात्मक शक्ति का मार्ग देती है। जब शोभा अलका के रूप में परिवर्तित हुई थी, तब पं० स्नेहशंकर ने कहा था—"तू महाशक्ति है!" तीन शब्दों की इस पंक्ति में ही निराला की नारी का जागरूक इतिहास है।

'अलका' के स्नेहशंकर का नारी-रूप 'निरुपमा' की नायिका निरुपमा है। बुर्जुआ वर्ग में स्नेहशंकर और निरुपमा जैसे आदर्श पात्र भी हैं। ये पात्र निराला के मानवतावाद के उज्ज्वल उदाहरण हैं।

'निरुपमा' में प्रवाह, श्लीलता तथा उज्ज्वल औपन्यासिक तत्व हैं।

बंगाल निवासियों की प्रान्तीयता और प्रान्तवादी संकीर्णता का जीवित चित्रण निराला द्वारा मार्मिक ढंग से संभव हुआ है। 'निरुपमा' के यामिनी बाबू का यह कथन—"यह तो मानी हुई बात है कि भारतवर्ष में बंगालियों से बढ़कर कल्चर अपर प्रोविंस के लोगों में नहीं। हिन्दुस्तानी बेचारे लाख पी-एच० डी०, डी० लिट्० हो जायें, कन्धे पर लाठी रखकर चलनेवाली वृत्ति कुछ-न-कुछ रहेगी" ('निरूपमा', पृ० २३)—क्या भारत के कर्णधारों को कुछ सोचने के हेतु विवश नहीं करता?

"अभी बंगालियों का मुकाबिला हिन्दुस्तानी नहीं कर सकते" ('निरुपमा',, पृ० २४)।

'निरुपमा' की नीली में भी यह भाव बद्धमूल है कि वह बंगाली है और कुमार हिन्दुस्तानी है; कि, बंगाली और हिन्दुस्तानो में मौलिक भिन्नता है; कि, हिन्दुस्तानी की अपेक्षा बंगाली श्रेष्ठ हैं। जैसे बंगाल हिन्दुस्तान के बाहर का बहुविज्ञापित, बहुचर्चित सुनहरा देश हो!

बंगाली कहनेवाले बंगलावादियों की बङ्ग-ग्रन्थि के कारण देश का पतन हुआ। देश दुर्बल हुआ। उपन्यास में रामपुर का अबंगाली क़ामता कहता है—"बंगाली और पुलिस, ये बाप के नहीं होते!" स्पष्ट है, घृणा दोनों ओर है—तथाकथित बंगाली और अ-बंगाली में।

'जातीय ऊँचाई का अभिमान लोगों की नस-नस में भरा हुआ है,

इससे मानसिक और चारित्रिक पतन होता है; हम लोगों के एक दूसरे से न मिल सकने, इस तरह जोरदार न हो पाने का यह मुख्य कारण है।" ('निरुपमा', पृ० २८) ।

तथाकथित बंगाली-हिन्दुस्तानी-विभेद का सशक्त चित्रण उपन्यास साहित्य में पहली बार 'निरुपमा' में हुआ है।

नारी पात्रों में निरुपमा के बाद कमल का ही स्थान आता है। कमल को सहायिका नायिका कहा जा सकता है। कमल कहती है—"विवाह मजाक नहीं, एक जिन्दगी भर का उत्तरदायित्व है—बिना समझे, बिना मन का मिले……('नितपमा', पृ० ४४) ।

कमल से शक्ति प्राप्त कर निरुपमा निश्चय कर लेती है—"विवाह मन का है, मेरा मन जिसे नहीं चाहता, मैं क्यों उससे विवाह करूँ" ('निरुपमा', पृ० ८६) ।

विवाह के प्रति कमल और निरुपमा की इन उक्तियों में निराला का दृष्टिकोण प्रकट हुआ है।

"यामिनी बाबू उसके (निरुपमा के) मनोनीत नहीं हैं, जिससे विवाह करना है। पर उसे मनोनीत कर विवाह करना है ('निरुपमा')। इस पहली पंक्ति में निरुपमा का पूर्वार्द्ध और इस दूसरी पंक्ति में निरुपमा का उत्तरार्द्ध स्पष्ट हो गया है। उपन्यास की परिणति इस दूसरी पंक्ति पर ही आधारित है; निराला के मार्गदर्शन का बड़ा अंश इस दूसरी पंक्ति में सन्निहित है। निराला का मार्गदर्शन जीवन का सच्चा मार्गदर्शन है।

किन्तु "अनिच्छा ही संसार की इच्छा है"('निरुपमा', पृ० १२३)—निरुपमा का यह चिन्तन-प्रारूप भारत की नारी की विवशता का प्रतिरूप है। नारी विवशताओं के वात्याचक्र में रही है। नारी का उन्नयन विवशताओं की हत्या में है। नारी का यह उन्नयन निराला-साहित्य में है, 'निरुपमा' में भी है। विवशता को मैं विराट् अर्थों में स्वीकार करता हूँ।

"नीरू ने अपनी साड़ी की ओर देखा। घृणा हो गई। इसका यामिनी के वस्त्रों से स्पर्श हुआ है।……नीली से रोज की पहननेवाली सादी साड़ी ले आने के लिए कहा। स्वयं स्नानागार चली गई। नहा कर कुल कपड़े वहीं छोड़ दिए। वस्त्र बदलकर हाथ जोड़ कर भगवान को प्रणाम किया और प्रार्थना की कि अब कभी ऐसे दूषित संग में न फँसना पड़े' — निरुपमा' पृ० १३५ ।

अंग्रेजी उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स (Charles Dickens) के बहुचर्चित उपन्यास 'हार्ड टाइम्स' (Hard Times) की नायिका लुइसा (Louisa) का असंगत विवाह उसके पिता के कारण लुइसा की तीव्र घृणा के बावजूद जोसिया बाउंडरबी (Josiah Bounderby) से हो जाता है। किन्तु, विवाह के पूर्व बाउंडरबी जब लुइसा का एक चुम्बन लेता है तब लुइसा बाउंडरबी के प्रति अपनी उग्र और मौन घृणा के कारण अपने कपोलों को इतना ज्यादा रगड़ना प्रारंभ कर देती हो, इतना रगड़ती है, गोया कपोलों पर गड्ढा ही बन जायगा। बाउंडरबी के प्रति लुइसा की जो उग्र और मौन घृणा है, वही उग्र और मौन घृणा यामिनी बाबू के प्रति निरुपमा की है। फर्क केवल यह है कि लुइसा (Louisa) के विपरीत निरुपमा का विवाह यामिनी बाबू से नहीं हुआ। नारी के प्रति निराला की यह संवेदना है, संवेदनात्मक आदर्श है।

कमल अंग्रेजी उपन्यास-लेखिका जेन आस्टिन (Jane Austen) के 'एमा' (Emma) उपन्यास की नायिका एमा (Emma) नहीं है। 'मैच मेकिंग' (Match-making) उसका जीवन-आदर्श नहीं है। निरुपमा और कुमार तथा यामिनी बाबू और मिस दुबे के विवाह-आयोजन में कमल के नारीत्व का सुन्दर माहात्म्य है।

'निरुपमा' के नायक कृष्णकुमार में निराला का व्यक्तित्व प्रतिपादित हुआ है। अपने व्यक्तित्व के अनेक गुणों का प्रतिपादन निराला ने कुमार में किया है। कृष्णकुमार में सशक्त नूतन युग का विश्वास सजग है। "किसी की समझ पर दबाव डाले, उसका ऐसा स्वभाव नहीं" ('निरुपमा', पृ० ९९)।

डा० यामिनी और मिस दुबे के विवाह में यद्यपि जासूसी उपन्यासों जैसी रहस्य-रोचकता है; किन्तु शक्ति की नई नारी कमल के नारीत्व के सुन्दर साहस का यह परिणाम है। निरुपमा और कुमार का विवाह आदर्श है, निरुपमावादी आदर्श है—इस उपन्यास की सिद्धि है।

गाँव के मुखिया की यह उक्ति—"पागल हो, राजा से कोई वैर करता है। अब वे दिन नहीं हैं" ('निरुपमा', पृ० १४८)—ग्रामनिवासियों के हृदय-परिवर्तन या हृदय-शुद्धि का द्योतक नहीं, प्रत्युत शक्ति के समक्ष स्वार्थपरता और विवशतावश रूढ़िवाद का आत्मसमर्पण है।

शारीरिक प्रेमपरक विषय को निराला ने अपने साहित्य का आधार नहीं बनाया। निराला का शुद्ध साहित्य धन-प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं लिखा

गया। यद्यपि श्री अमृत लाल नागर ने निराला के विषय में लिखा है—"कलकत्ते में अपना पेट पालने के लिए उन्होंने दूसरों के नाम से किताबें लिखीं, किसी दूकानदार के घी की महिमा में भी अपनी काव्य-प्रतिभा को 'कमर्शियल' बनाने के दिन भी आरंभ में उन्हें देखने पड़े' ('सहयोगी' साप्ताहिक, कानपुर, ३० अक्टूबर, १९६१ ई०)"।

यह कहाँ तक सत्य है, मैं नहीं जानता। निराला के इस विषय पर पूर्ण रूप से खोज होनी चाहिए, सुव्यवस्थित खोज होनी चाहिए। किंतु, यदि यह सत्य है तो यह निराला के साहित्यकार के लिए नहीं, अस्तित्व-संघर्ष में आत्मनिष्ठापूर्वक रत निराला के लिए नहीं, प्रत्युत् हिंदी साहित्य के इतिहास और हिंदी पाठकों, हिंदी भाषियों के लिए कलंक का विषय है कि निराला को भी वे दिन देखने पड़े।

अलकावाद और निरुपमावाद में निराला का नारी-दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। निराला की प्रबुद्ध लेखनी का नारीत्व अलका, सावित्री, निरुपमा और कमल आदि में स्पष्ट है।

वस्तुतः 'अलका', 'निरुपमा' आदि साहित्य की विशिष्ट कृतियाँ हैं।

निबन्धकार निराला

महाप्राण निराला के व्यक्तित्व को निकट से जानने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला; किन्तु साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य में अंकित होता है इस दृष्टि से कविवर का स्वरूप-दर्शन उनके गीतों, कहानियों एवं उपन्यासों में किया जा सकता है; परंतु उनके स्वभाव की अक्खड़ता, सत्यवादिता, स्पष्टोक्ति, सिद्धांतप्रियता एवं सर्वोपरि रसज्ञता एवं मृदुता के जितने दर्शन उनके निबन्धों में होते हैं, उतने अन्यत्र नहीं। निबन्ध व्यक्ति के चिंतन एवं भावात्मक अनुभूति का लिखित रूप है। निबंध आकार में लघु, सुसंगत एवं आत्मसम्पूर्ण रचना है। निबन्ध चाहे वर्णनात्मक हो, चाहे विचारात्मक या भावात्मक, लेखक उसमें अपना हृदय खोलकर रख देता है। वह अपनी अनुभूति या चिन्तन को निस्संकोच पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है। लेखक और पाठक के बीच सम्बन्ध स्थापित करनेवाला निबंध सबसे सरल और प्रशस्त मार्ग है। निबन्धकार उपदेशक के रूप में स्वयं को श्रोतागणों से पृथक करके विधि-निर्माण का प्रयास नहीं करता। वह तो केवल अपने विचार और भावनायें उन्मुक्त भाव से अपने निबंध में ग्रथित करता है जिसकी युक्तियाँ और तर्क पाठक को अभिभूत करते हैं। निबन्ध में दुराव को कोई स्थान नहीं। निबन्ध में आपसी बातचीत का आनन्द मिलता है और एक सौजन्यपूर्ण घरेलू वातावरण का सृजन होता है।

निराला के निबंधों में उपरोक्त सभी तत्व वर्तमान हैं। अपने निबंधों के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं कहा है—"लेखों में अज्ञान, हेकड़ी, असाहित्यिकता के भी निदर्शन हैं, मैं चाहता तो छपते समय कुछ अंशों में उनकी नोकें मार देता, पर, मनुष्य ज्ञानी नहीं. इसीलिए दुर्बलता की पहचान मैंने रहने दी। इसका दर्शन दुर्बलता न होकर सबलता भी हो सकता है

गया। यद्यपि श्री अमृत लाल नागर ने निराला के विषय में लिखा है—"कलकत्ते में अपना पेट पालने के लिए उन्होंने दूसरों के नाम से किताबें लिखीं, किसी दूकानदार के घी की महिमा में भी अपनी काव्य-प्रतिभा को 'कमर्शियल' बनाने के दिन भी आरंभ में उन्हें देखने पड़े' ('सहयोगी' साप्ताहिक, कानपुर, ३० अक्टूबर, १९६१ ई०)"।

यह कहाँ तक सत्य है, मैं नहीं जानता। निराला के इस विषय पर पूर्ण रूप से खोज होनी चाहिए, सुव्यवस्थित खोज होनी चाहिए। किंतु, यदि यह सत्य है तो यह निराला के साहित्यकार के लिए नहीं, अस्तित्व-संघर्ष में आत्मनिष्ठापूर्वक रत निराला के लिए नहीं, प्रत्युत् हिंदी साहित्य के इतिहास और हिंदी पाठकों, हिंदी भाषियों के लिए कलंक का विषय है कि निराला को भी वे दिन देखने पड़े।

अलकावाद और निरुपमावाद में निराला का नारी-दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। निराला की प्रबुद्ध लेखनी का नारीत्व अलका, सावित्री, निरुपमा और कमल आदि में स्पष्ट है।

वस्तुतः 'अलका', 'निरुपमा' आदि साहित्य की विशिष्ट कृतियाँ हैं।

निबन्धकार निराला

महाप्राण निराला के व्यक्तित्व को निकट से जानने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला; किन्तु साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य में अंकित होता है इस दृष्टि से कविवर का स्वरूप-दर्शन उनके गीतों, कहानियों एवं उपन्यासों में किया जा सकता है; परंतु उनके स्वभाव की अक्खड़ता, सत्यवादिता, स्पष्टोक्ति, सिद्धांतप्रियता एवं सर्वोपरि रसज्ञता एवं मृदुता के जितने दर्शन उनके निबन्धों में होते हैं, उतने अन्यत्र नहीं । निबन्ध व्यक्ति के चिंतन एवं भावात्मक अनुभूति का लिखित रूप है । निबंध आकार में लघु, सुसंगत एवं आत्मसम्पूर्ण रचना है । निबन्ध चाहे वर्णनात्मक हो, चाहे विचारात्मक या भावात्मक, लेखक उसमें अपना हृदय खोलकर रख देता है । वह अपनी अनुभूति या चिन्तन को निस्संकोच पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है । लेखक और पाठक के बीच सम्बन्ध स्थापित करनेवाला निबंध सबसे सरल और प्रशस्त मार्ग है । निबन्धकार उपदेशक के रूप में स्वयं को श्रोतागणों से पृथक करके विधि-निर्माण का प्रयास नहीं करता । वह तो केवल अपने विचार और भावनाये उन्मुक्त भाव से अपने निबंध में ग्रथित करता है जिसकी युक्तियाँ और तर्क पाठक को अभिभूत करते हैं । निबन्ध में दुराव को कोई स्थान नहीं । निबन्ध में आपसी बातचीत का आनन्द मिलता है और एक सौजन्यपूर्ण घरेलू वातावरण का सृजन होता है ।

निराला के निबंधों में उपरोक्त सभी तत्व वर्तमान हैं । अपने निबंधों के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं कहा है—"लेखों में अज्ञान, हेकड़ी, असाहित्यिकता के भी निदर्शन हैं, मैं चाहता तो छपते समय कुछ अंशों में उनकी नोकें मार देता, पर, मनुष्य ज्ञानी नहीं, इसीलिए दुर्बलता की पहचान मैंने रहने दी । इसका दर्शन दुर्बलता न होकर सबलता भी हो सकता है, कारण उस भाषा उस का एक कारण भी तब निकलेगा "

लेखक के ये वाक्य उसके जीवन तथा साहित्य के प्रति सच्चाई के द्योतक है। निबन्धकार अपने विचारों को यथातथ्य रूप में प्रकट करना ही अभीष्ट समझता है। ऐसा करने में कुछ लेखक या नेता उसके विरोधी या आलोचक हो जायेंगे इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं, वह चिन्ता की सीमा से परे चिन्तन में तल्लीन एक ऐसा साधक है जिसकी साधना खुलकर जनता के समक्ष आती है और सहज ही गृहीत होती है। लेखक स्वीकार करता है—"भारत में विचार-शुद्धि के लिए धन ही नहीं, समाज, शरीर और मन भी देना पड़ता है, तब विश्वमानवता की पहचान होती है। हमारे पीड़ित, अशिक्षित, पतित, निराश्रय, निरन्न मानवों का तभी उद्धार होगा, तभी भारत की भारती जाग्रत कही जायगी, तभी उसकी अपनी विशेषता सर उठायगी।"

'प्रबन्ध-प्रतिभा' लेखक के विचारात्मक निबन्धों का संग्रह है जिसमें राजनीतिक, साहित्यिक एवं समाज के बहुविधि विकास एवं चिन्तन की झलक मिलती है। लेखों की सूची विषय विविधिता की द्योतक है। चरखा, गांधी जी से बातचीत, नेहरू जी से बातें, महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर, नाटक-समस्या, अधिकार-समस्या, साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म, रचना-सौष्ठव, भाषा-विज्ञान, बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ, सामाजिक पराधीनता, विद्यापति और चण्डीदास, कविवर श्री चंडीदास, कवि गोविंददास की कुछ कविता, कला के विरह में जोशी-बंधु, हिंदी साहित्य में उपन्यास, वर्तमान हिंदू समाज, प्रांतीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद, मेरे गीत और कला, बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार वर्णना, हमारा समाज—कवि के बहुमुखी चिन्तन के परिचायक हैं। इन सभी निबंधों में लेखक के व्यक्तित्व की सिद्धांतमयता सम्मुख आती है। कहीं भी वह किसी राजनीतिक नेता का, साहित्यिक रचयिता का या सामाजिक परम्परा का इसलिये विरोध नहीं करता कि उससे उसका कुछ व्यक्तिगत हानि या लाभ है; प्रत्युत इसलिए कि उसका उससे सैद्धान्तिक विरोध है। किसी एक व्यक्ति के एक रूप या सिद्धान्त से उसका विरोध हो सकता है तो उसका दूसरा पक्ष कविवर को आकर्षित भी कर सकता है जिसकी वे भरपूर सराहना करते हैं।

निराला का निबन्ध 'गांधी जी से बातचीत' अपने निरालेपन में अद्वितीय है। भाषा एवं राजनीति का दार्शनिक विवेचन करते हुए उनकी भाषा सहज ही गम्भीर एवं व्यंग्य-वाचाल हो जाती है। "साहित्य की स्वतंत्रता कभी भी बाहरी उपकरण को बहुत ज्यादा साथ नहीं ले सकती।

बाहरी वस्तु सापेक्षवाद की तरह रहे, लेकिन किसी की अपेक्षा में वही रहता है जो सत्तावाला है या सत्ता स्वयं अपेक्षा में रहती है जब बहिर्मुख होती है—हमारे यहाँ ज्ञान सापेक्ष नहीं, निरपेक्ष है और 'मृते ज्ञानान्न मुक्तिः' यह सदा सत्य है। इस मन से जाँच करने पर महात्मा जी की कुल क्रियायें एक सापेक्षता लिए हुए हैं।•वे जैसे स्वतन्त्रता के लिए लागू होती हैं वैसे ही महात्मा गांधी के व्यक्तित्व-निर्माण के लिये। उदाहरण में हिंदी को लें। हिंदी राष्ट्रभाषा है। यह आवाज गांधी जी की बलन्द की हुई है + + + + पाठक यह भी जानते हैं कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बतानेवाले गांधी, तिलक के मुकाबले सर उठाते हुए देश के सामने आनेवाले गांधी हिंदी के प्रश्न पर स्वयं बदल गये हैं। उनके इस एक आवाज उठाने के साथ तमाम हिंदी भाषी उनके साथ हो गये। नेता को यही चाहिए++ जिन्होंने हिंदी के द्वारा हिंदी भाषी पन्द्रह करोड़ जनता की भावना जन्य स्वतन्त्रता बात की बात में मार दी। लोग लट्ठ की तरह बकने लगे—हिंदी राष्ट्रभाषा है ++++। वस्तु और विषय की यही पराधीनता है। गांधी जी की यही स्वाधीनता।

इन्दौर में हिंदी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व करने के बाद गांधी जी १९३५-३६ में हिंदी साहित्य सम्मेलन के फिर सभापति होते हैं। यहीं इन्दौर में महात्मा जी ने एक आवाज मारी—कौन है हिंदी में रवींद्रनाथ ठाकुर, जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय ?"

बाद में महात्मा जी लखनऊ आये हिंदी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय का 'दरवाजा खोलने' और निराला जी ने सोचा, 'चूँकि महात्मा जी लखनऊ में टिके हुये थे, इसलिए पता लगाना लाजिमी हो गया कि उन्होंने यह आवाज लगाई या आवाजाकशी की।++++ लेकिन मेरे लिए उस समय महात्मा जी रहस्यवाद के विषय हो गये, कहीं खोजे ही नहीं मिले। अन्ततः निराला जी की महात्मा जी से भेंट हुई। कुछ अंश उद्धृत हैं—"कमरे के भीतर जाने के साथ मेरी निगाह महात्मा जी की आँखों पर पड़ी। देखा, पुतलियों में बड़ी चालाकी है+ + +।

निराला—सभापति के अभिभाषण में हिंदी के साहित्य और साहित्यिकों के सम्बन्ध में जहाँ तक मुझे स्मरण है आपने एकाधिक बार पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम सिर्फ लिया है। इसका हिंदी के साहित्यिकों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, क्या आपने सोचा था ?

महात्मा जी मैं तो हिंदी कुछ भी नहीं जानता।

निराला—तो आपको क्या अधिकार है कि आप कहें कि हिंदी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर कौन है ?

महात्मा जी—मेरे कहने का मतलब कुछ और था।

निराला—यानी आप रवींद्रनाथ का जैसा साहित्यिक हिंदी में नहीं देखना चाहते, प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर का नाती या नोबुल पुरस्कार प्राप्त मनुष्य देखना चाहते हैं, यह ?

मैंने स्वस्थचित्त हो महात्मा जी से कहा—बंगला मेरी वैसी ही मातृभाषा है, जैसी हिन्दी। रवीन्द्रनाथ का पूरा साहित्य मैंने पढ़ा है। मैं आपसे आधा घंटा समय चाहता हूँ कुछ चीज चुनी हुई रवीन्द्रनाथ की सुनाऊँगा और कला का विवेचन करूँगा, साथ ही कुछ हिन्दी की चीजें सुनाऊँगा। महात्माजी—मेरे पास समय नहीं है।

मैं हैरान होकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति को देखता रहा, जो राजनीतिक रूप से देश के नेताओं को रास्ता बतलाता है, बेमतलब पहरों तकली चलाता है, प्रार्थना में मुर्दे गाने सुनता है, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का सभापति है; लेकिन हिन्दी के कवि को आधा घंटा वक्त नहीं देता—अपरिणामदर्शी की तरह जो जी में आता है खुली सभा में कह जाता है, सामने बगलें झाँकता है।"

एक साहित्यिक के दृष्टिकोण से निराला ने खुलकर महात्मा जी की आलोचना की। वही निराला महात्मा जी के निधन पर १२ दिन तक उपवास करते रहे और किसी को कानोंकान खबर नहीं। बहुत दिन बाद बनारस के किसी दैनिक में अपने उपवास का समाचार पढ़कर वे खिन्न हो गये। "मैंने प्रचार के लिये उपवास नहीं किया है। मैंने इसलिये उपवास किया है कि हमारे राष्ट्रपिता को हमारे ही एक भाई ने गोली से मा डाला। इससे हम पर बहुत बड़ा कलंक लग गया है। इस बात का मुझे बड़ा दुख है, मैं इसका प्रायश्चित कर रहा हूँ। मेरे ख्याल से दुष्ट व्यक्ति की हत्या भी निंदनीय है, गाँधी जी तो महान संत और राष्ट्रसेवक थे। उन्हीं के कारण हमारे देश को आजादी मिली। वे हमारे राष्ट्रपिता थे।" कविवर का हृदय सत्य को सहज और निरपेक्ष भाव से ग्रहण करने क क्षमता रखता था, तभी वे जीवनपर्यन्त साधना में संलग्न रहे। साधना उनकी मूक तथा आलोचना वाचाल थी, यद्यपि दोनों के मूल में कल्याणकारी निर्माणकर्त्री करुणा का उत्स था।

'कला के विरह में जोशी-बन्धु' तथा 'साहित्यिक सन्निपात' य

'वर्तमान धर्म' निबन्धों में उनकी सूक्ष्म विवेचना-शक्ति का परिचय तो मिलता ही है साथ ही साहित्यिक आलोचना की व्यक्तित्वप्रधान व्यंग्यात्मक शैली का भी दर्शन होता है। आधुनिक हिन्दी के उस प्रारम्भिक युग में किस प्रकार साहित्यिक मतवाद पनप रहे थे एवं खण्डन-मण्डन की प्राचीन शैली के नवीन संस्कार हो रहे थे, इसका अच्छा परिचय इन निबन्धों में मिलता है। 'विद्यापति और चंडीदास' निबन्ध में कवियों का सरस तुलनात्मक विवेचन किया गया है। साथ ही साहित्य को श्लीलता और अश्लीलता के मानदण्ड से ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है।

"नाटक-समस्या, रचना सौष्ठव एवं भाषा विज्ञान" जैसे निबन्धों में निराला ने साहित्यकार, भावों का उदात्तीकरण, भाषा की अनुरूपता एवं परिष्कार पर अपने विचार प्रकट किये हैं। इसी संग्रह में एक महत्वपूर्ण निवन्ध "मेरे गीत और कला" भी है। इस निबन्ध में भी अनायास ही वे एक जगह अपने गीतों की स्वच्छन्दता का वर्णन करते हुए अपने व्यक्तित्व की बन्धनहीनता की चर्चा कर जाते हैं—"मैं खड़ीबोली का वाल्मीकि नहीं, न 'वाल्मीकि की प्रिये दास यह कैसे तुझको भाया' मेरी पंक्ति हैं, पर 'भयो सिद्ध करि उलटा जापू' अगर किसी पर खप सकता है तो हिन्दी के इतिहास में एकमात्र मुझ पर। कबीर उल्टबाँसी के कारण विशेषता रखते हैं पर वहाँ छन्दों का साम्य है, उल्टबाँसी नहीं; यहाँ छन्द और भाव, दोनों की उल्टी गंगा बहती है।

× × ×

यह सब उलटा-पलट मैंने जानबूझकर नहीं किया, और यह उलटा-पलट है भी नहीं, इससे सीधा और प्राणों के पास तक पहुँचता रास्ता छन्दों के इतिहास में दूसरा नहीं।

× × ×

प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाय—शक्ति, सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुशयता, मृदुलता और छन्द साहित्य की तरफ, यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी सम्बन्ध है तो यह निश्चित रूप से कहा जायगा कि प्राणशक्ति उस भाषा में है अपनी भाषा

निराला—तो आपको क्या अधिकार है कि आप कहें कि हिंदी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर कौन है ?

महात्मा जी—मेरे कहने का मतलब कुछ और था।

निराला—यानी आप रवींद्रनाथ का जैसा साहित्यिक हिंदी में नहीं देखना चाहते, प्रिंस द्वारकानाथ- ठाकुर का नाती या नोबुल पुरस्कार प्राप्त मनुष्य देखना चाहते हैं, यह ?

मैंने स्वस्थचित्त हो महात्मा जी से कहा—बंगला मेरी वैसी ही मातृभाषा है, जैसी हिन्दी। रवीन्द्रनाथ का पूरा साहित्य मैंने पढ़ा है। मैं आपसे आधा घंटा समय चाहता हूँ कुछ चीज चुनी हुई रवीन्द्रनाथ की सुनाऊँगा और कला का विवेचन करूँगा, साथ ही कुछ हिन्दी की चीजें सुनाऊँगा। महात्माजी—मेरे पास समय नहीं है।

मैं हैरान होकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति को देखता रहा, जो राजनीतिक रूप से देश के नेताओं को रास्ता बतलाता है, बेमतलब पहरों तकली चलाता है, प्रार्थना में मुर्दे गाने सुनता है, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का सभापति है; लेकिन हिन्दी के कवि को आधा घंटा वक्त नहीं देता—अपरिणामदर्शी की तरह जो जी में आता है खुली सभा में कह जाता है, सामने बगलें झाँकता है।"

एक साहित्यिक के दृष्टिकोण से निराला ने खुलकर महात्मा जी की आलोचना की। वही निराला महात्मा जी के निधन पर १२ दिन तक उपवास करते रहे और किसी को कानोंकान खबर नहीं। बहुत दिन बाद बनारस के किसी दैनिक में अपने उपवास का समाचार पढ़कर वे खिन्न हो गये। "मैंने प्रचार के लिये उपवास नहीं किया है। मैंने इसलिये उपवास किया है कि हमारे राष्ट्रपिता को हमारे ही एक भाई ने गोली से मा डाला। इससे हम पर बहुत बड़ा कलंक लग गया है। इस बात का मुझे बड़ा दुख है, मैं इसका प्रायश्चित कर रहा हूँ। मेरे ख्याल से दुष्ट व्यक्ति की हत्या भी निंदनीय है, गाँधी जी तो महान संत और राष्ट्रसेवक थे। उन्हीं के कारण हमारे देश को आजादी मिली। वे हमारे राष्ट्रपिता थे।" कविवर का हृदय सत्य को सहज और निरपेक्ष भाव से ग्रहण करने क' क्षमता रखता था, तभी वे जीवनपर्यन्त साधना में संलग्न रहे। साधना उनकी मूक तथा आलोचना वाचाल थी, यद्यपि दोनों के मूल में कल्याणकारि निर्माणकर्त्री करुणा का उत्स था।

'कला के विरह में जोशी-बन्धु' तथा साहित्यिक सन्निपात' य

'वर्तमान धर्म' निबन्धों में उनकी सूक्ष्म विवेचना-शक्ति का परिचय तो मिलता ही है साथ ही साहित्यिक आलोचना की व्यक्तित्वप्रधान व्यंग्यात्मक शैली का भी दर्शन होता है। आधुनिक हिन्दी के उस प्रारम्भिक युग में किस प्रकार साहित्यिक मतवाद पनप रहे थे एवं खण्डन-मण्डन की प्राचीन शैली के नवीन संस्कार हो रहे थे, इसका अच्छा परिचय इन निबन्धों में मिलता है। 'विद्यापति और चंडीदास' निबन्ध में कवियों का सरस तुलनात्मक विवेचन किया गया है। साथ ही साहित्य को श्लीलता और अश्लीलता के मानदण्ड से ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है।

"नाटक-समस्या, रचना सौष्ठव एवं भाषा विज्ञान" जैसे निबन्धों मे निराला ने साहित्यकार, भावों का उदात्तीकरण, भाषा की अनुरूपता एवं परिष्कार पर अपने विचार प्रकट किये हैं। इसी संग्रह में एक महत्व-पूर्ण निबन्ध "मेरे गीत और कला" भी है। इस निबन्ध में भी अनायास ही वे एक जगह अपने गीतों की स्वच्छन्दता का वर्णन करते हुए अपने व्यक्तित्व की बन्धनहीनता की चर्चा कर जाते हैं—"मैं खड़ीबोली का वाल्मीकि नहीं, न 'वाल्मीकि की प्रिये दास यह कैसे तुझको भाया' मेरी पंक्ति हैं, पर 'भयो सिद्ध करि उलटा जापू' अगर किसी पर खप सकता है तो हिन्दी के इतिहास में एकमात्र मुझ पर। कबीर उल्टबाँसी के कारण विशेषता रखते हैं पर वहाँ छन्दों का साम्य है, उल्टबाँसी नहीं; यहाँ छन्द और भाव, दोनों की उल्टी गंगा बहती है।

× × ×

यह सब उलटा-पलट मैंने जानबूझकर नहीं किया, और यह उलटा-पलट है भी नहीं, इससे सीधा और प्राणों के पास तक पहुँचता रास्ता छन्दों के इतिहास में दूसरा नहीं।

× × ×

प्रकृति की स्वाभाविक चाल मे भाषा जिस तरफ भी जाय—शक्ति, सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुशयता, मृदुलता और छन्द साहित्य की तरफ, यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी सम्बन्ध है तो यह निश्चित रूप से कहा जायगा कि प्राणशक्ति उस भाषा में है।" अपनी भाषा और छन्द के अतिरिक्त कवि ने वर्ण-विन्यास, पद-साहित्य आदि की भी विस्तृत आलोचना की है। अपने गीतों के उद्धरण देकर उनके अर्थ स्पष्ट किये हैं और यह प्रमाणित कर दिया है कि कला बन्धनहीन होने पर भी इसी मृष्टि की वस्तु है

'बंगाल के वैष्णव कवियों का शृंगार-वर्णन' सरस शैली में लिखा हुआ विवरणात्मक निबन्ध है।

"अधिकार-समस्या, बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ, स्वाभाविक पराधीनता, हमारा समाज" आदि सामाजिक निबन्ध हैं जिनमें लेखक ने विभिन्न 'समस्याओं पर अपने दृष्टिकोण से विचार किया है। "बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ" में वे लिखते हैं कि "अब वह समय नहीं रहा कि हम स्त्रियों के सामने वह रूप रक्खें, जिसके लिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'चित्र लिखे कपि देखि डेराती' लिखा था × × × पुरुष के अभाव में स्त्री हाथ समेटकर, निश्चेष्ट बैठी न रहे। उपार्जन से लेकर संतान-पालन, गृह-कार्य आदि वह सँभाल सके, ऐसा रूप, ऐसी शिक्षा उसे मिलनी चाहिए। पहले दोनों के भाव और कार्य अलग अलग थे, अब दोनों के भाव और कार्यों का एक ही में साम्य होना आवश्यक है। इस तरह गार्हस्थ्य धर्म में स्वतंत्रता बढ़ेगी। परावलम्ब न रह जायगा। स्त्रियाँ भी मेधा की अधिकारिणी होंगी। हृदय और मस्तिष्क, दोनों में एकीकरण होगा। × × × × × संसार में जितने प्रकार की प्राप्तियाँ हैं, शिक्षा सबसे बढ़कर है। × × अशिक्षित अपढ़ होने के कारण ही हमारी स्त्रियों को संसार में नरक-यातनायें भोगनी पड़ती हैं—उनके दुखों का अन्त नहीं होता।"

उनके सम्पूर्ण निबन्धों में हम देखते हैं कि एक प्रबुद्ध साहित्यिक के नाते जो भी प्रश्न उनके सम्मुख आता है चाहे वह सामाजिक हो, राजनीतिक या काव्य-भूमि से सम्बन्ध रखनेवाला, सबका उपयुक्त हल ढूँढ़ निकालना, सब पर निरपेक्ष भाव से चिन्तन,करना उनकी अनोखी सामर्थ्य है।

किसी भी व्यक्ति को उसके समस्त परिवेश में जानने का सबसे पूर्ण और मधुर माध्यम उसका साहित्य है। साहित्य की उस परिधि में उसका असीम और दुर्बोध अन्तर्मन भी स्पष्टता से एक सीमित परिधि में अवतीर्ण होता है। इस दृष्टि से निराला के निबन्ध उनके व्यक्तित्व के खुले पृष्ठ हैं।

'निराला' का निराला-गद्य-सामर्थ्य

भाषा की प्रौढ़ता, प्रवाहिकता, सामर्थ्य, शक्ति, अभिव्यक्ति की विशदता, विचारों की गंभीरता और दिशा, शैली की सरलता, शिष्टता, प्रभावोत्पादकता, अवयुति, ओज आदि गुणों की महत्ता आदि का परिचय जितना हमें गद्य या गद्य-रचनाओं से प्राप्त होता है या हो सकता है उतना पद्यात्मक काव्य-रचनाओं से नहीं। इनमें भी जहाँ तक गद्य की प्रौढ़ता और सामर्थ्य का प्रश्न है, उसकी वास्तविक कसौटी निबन्ध है। वैसे नाटक प्रहसन, उपन्यास और कहानियों आदि में भी गद्य का प्रयोग होता है, किन्तु इनमें लेखक का लेखकत्व विद्यमान होते हुए भी उसका रूप प्रच्छन्न ही रहता है और वह प्रत्यक्ष न आकर अपने को पात्रों, नियमों, विधाओं आदि में बाँध कर ही अपने को अभिव्यक्त करता है। इनमें उसकी विचार-धारा का मूल स्रोत या भाषा-सामर्थ्य प्रायः प्रकट नहीं होता। समीक्षा के क्षेत्र में भी यद्यपि उक्त रचनाओं से वह अपने को, अपने विचारों और अपनी भाषा के सामर्थ्य को अधिक प्रकट करता है, तथापि समीक्षा, समालोचना या पुस्तक-परिचय में भी वह गद्य-सामर्थ्य की दृष्टि से कुछ बँधा ही रहता है। वास्तव में किसी भी लेखक का गद्य-सामर्थ्य उसके निबन्धों में प्रकट होता है। श्री 'निराला' जी के गद्य-सामर्थ्य पर भी विचार करते समय हमारा ध्यान इन्हीं तत्वों की ओर जाता है।

निराला के गद्य में, इसमें सन्देह नहीं, स्व० आचार्य चतुरसेन शास्त्री जैसा पैनापन, स्पष्टता, वर्णनों की कसावट और भाषा में मुहावरों और लाक्षणिक प्रयोगों की उत्कटता है। प्रेमचन्द जैसी सरलता, मार्मिकता, भाषा की पकड़, नवीन ढंग से भावों के अनुरूप कहने का ढंग है। सरल, सीधे, दुरूहतारहित वाक्य. मुहावरे और पात्रों के अनुकूल भाषा का उपयोग है। पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र' जैसी तीव्रता, शाब्दिकता,

लाक्षणिकता, आलंकारिकता, शब्दों की मरोड़ और उनको अपने अनुकूल घुमाने-फिराने और अपने भावों के अनुकूल बनाने की शक्ति है, तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसी विशदता, सूत्रता, विधान-विधि, पांडित्य, ज्ञान-सरिणी, नवीन भावोद्‌भाविनी शक्ति, प्रौढ़ता, प्रस्तुत विषय को सांगोपांग प्रस्तुत करने का सामर्थ्य, भाषा की पकड़ और परिष्कार है। इतना सब होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि 'निराला' में निराला ही गद्य-सामर्थ्य है, जो क्या पाडित्य, क्या मौलिकता और नवीनता, क्या ध्वनि-व्यंजना और व्याकरण, क्या लाक्षणिक प्रयोगों की छूट और साथ ही क्या कसावट, क्या सरलता, अपनापन, भाषा की अवयुति, वाक्यों और शब्दों पर अधिकार, क्या प्रभावोत्पादकता आदि की दृष्टि से बहुत ही उत्कृष्ट बन पड़ा है, और जिसमे उनका व्यक्तित्व बोल-बोल पड़ता है, निखर उठता है और यह बताता है कि उनके मानस की दौड़ की ये केवल बूँदे हैं, अपार सागर तो अभी इन में समाया ही नहीं है।

'निराला' जी की गद्य-रचनाओं के पर्यावलोकन पर सब से पहिले हमारी दृष्टि जाती है उनके द्वारा विभिन्न स्थानों पर संस्कृत एवम् बंगला एवं अंग्रेजी की उक्तियों और उद्धरणों की ओर। 'पंत और पल्लव' नामक प्रबन्ध में तो उनकी अनिवार्य आवश्यकता थी ही, परन्तु अन्य निबन्धों में भी इनका बहुलता से प्रयोग हुआ है। और यही नहीं, कहानियाँ और उपन्यास भी इनसे अछूते नहीं रहे हैं। इनमें संस्कृत की उक्तियाँ काफी अधिक प्रमाण में हैं, जो प्रसंग और प्रकरणानुसार उचित रूप से प्रयुक्त होने पर भी अनेक स्थानों पर संस्कृत-ज्ञानरहित पाठक के लिए अबोधगम्य और दुरूह हो जाती हैं, और भाषा के प्रवाह में क्लिष्टता पैदा करती हैं। संस्कृत की इन उक्तियों के प्रयोग से, यह मानना पड़ेगा कि 'निराला' जी का संस्कृत भाषा का ही नहीं, साहित्य का भी ज्ञान अपार था। उसमें उनकी पैनी सूझबूझ थी और उन्हें भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा थी। उन्होंने, जिसका प्रायः हिन्दी लेखकों में अभाव पाया जाता है, संस्कृत साहित्य का विस्तृत और गहरा अध्ययन किया था; क्योंकि इनका प्रयोग उन्होंने बड़ी सरलता, प्रासंगिकता, प्रभावोत्पादकता और प्रवाहपूर्णता के मध्य किया है। बंगला की उक्तियों और उद्धरणों का प्रयोग पूर्ण और औचित्य के साथ किया गया है, न कम न ज्यादा; यथास्थान, यथाप्रसंग, मनोरमता और भावों की स्पष्टता और विषय की पूर्णता की दृष्टि से। 'निराला' जी चाहते तो इसी प्रकार अँग्रेजी की उक्तियों और उद्धरणों का प्रयोग कर सकते थे क्योंकि उनकी रचनाओं से यह स्पष्ट ज्ञात

होती है, चाहे वे उपाधिधारी न रहे हों, कि अँग्रेजी साहित्य का भी उनका अध्ययन विशाल और यथावश्यक था। अँग्रेजी की उक्तियों या अवतरणों के कम प्रयोग का कारण है उनका हिन्दी-प्रेम, भारतीय संस्कृति से प्रेम है। इसलिये, ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने इनका जानबूझ कर प्रयोग नहीं किया। जैसा मोह उन्हें संस्कृत और बंगला की उक्तियों आदि से है वह उनकी विचार-दृढ़ता, भारतीयता, भारतीय संस्कृति की महत्ता को स्वीकार करने के कारण है, और अंग्रेजी या पाश्चात्य सभ्यता की बुराइयों के विरोध में है। इसीलिए उनकी गद्य-रचनाएँ स्पष्ट बताती हैं कि उनकी सुधार-वादिता पश्चिमी नहीं, भारतीय थी। गद्य-रचनाओं में प्राचीन कथा-प्रसंगों की व्याख्या एवम् शब्दों की व्युत्पत्ति और उनके अर्थों की सार्थकता से भी इसी पर प्रकाश पड़ता है।

निराला जी के गद्य में ओजस्विता, शब्दों को व्यंग्यात्मक बना कर और नये ढंगों से प्रयोग कर प्रभाव पैदा करने की अलौकिक शक्ति और इनके माध्यम से अपने सारल्यपूर्ण व्यक्तित्व को स्वच्छंदता और मुक्त मानस से प्रकट करने का अपूर्व सामर्थ्य है; सिवाय उन स्थानों के जहाँ उन्होंने अनुकरण करने की चेष्टा की है। जैसा सब जानते हैं, 'निराला' में कल्पना-शक्ति, विद्वता, पैनी दृष्टि, सच्चा सुधारवादी दृष्टिकोण थे, परन्तु उनके जीवन में, अन्तिम कुछ समय को छोड़ कर, ये पहिचाने नहीं गये, इन्हें उत्थान नहीं दिया गया और विरोधों के बादलों में ये दबा दिये गये। इसका प्रतिफल इनकी गद्य-रचनाओं में प्रचुरता से प्राप्त होता है। उनमें जो ओजस्विता है, पैनी चुभन और उसका प्रतिकार है वह इसी का परिणाम है। उनमें पाखंड से घृणा, मिथ्या के प्रति प्रतिकार की भावना प्रबल थी। इसीलिए सीधी सरल भाषा में भी उनका अपना व्यक्तित्व उबल-उबल पड़ता है। हिन्दी के अटल प्रेम ने भी इसी भावना को प्रोत्तेजित किया है। जब विश्वकवि रवीन्द्र ने अपनी महानता के प्राखर्य और उच्चता में विश्व वंद्य महात्मा जी के चरखे का मखौल उड़ाया और अपने 'अहं' में महात्मा एवम् हिन्दी या भारतीय राष्ट्रीयता के प्रति अवमानना का भाव प्रकट किया, तब निराला जैसा यथार्थ को महत्व देनेवाला और महानता की महिमा में जन-साधारण द्वारा अकारण नमन को प्रश्रय देनेवालों को चुनौती देनेवाला व्यक्तित्व सहन नहीं कर पाया और उसने विश्वकवि के तर्कों का भी खंडन किया, उन्हें चुनौती दी। यह सामान्य बात नहीं थी। यह बात स्वयम् महात्मा जी के सम्बन्ध में भी रही। उनमें जहाँ 'निराला' जी को अप्रियता दिखाई दी वहाँ उनकी लेखनी ने अपना सामर्थ्य और कौशल

प्रकट किया। वे बर्र के छत्ते में हाथ डालने के हिमायती न थे; परन्तु जब कोई अकारण उन्हें छेड़ देता, और चूँकि उनमें विद्वता, साहित्यिकता, काव्यात्मकता, कला की सच्चाई थी और संसारियों का ध्यान इनकी ओर नहीं जाता था, और वे चूँकि अप्रसिद्ध अथवा उनकी ऊँचाई के मान से पर्याप्त प्रसिद्ध न थे, लोग उनको तुच्छ, नगण्य या साधारण समझते थे, तब उनकी आत्मा मथ जाती थी और उनमें एक पैनापन, तीक्ष्णता, कठोरता, ओजस्विता, विरोध, उन्माद, नशा, प्रवाह और खंडन-मंडन की प्रवृत्ति आ जाती थी। 'गांधी जी से बातचीत' और 'पंतजी और पल्लव' नामक निवन्ध इसी के साक्षी हैं।

पंत जी ने पल्लव में परोक्षतया, अपनी प्रसिद्धि-विकास, आंग्ल साहित्य-परिचय-ज्ञान और नवीनता और मौलिकता के श्रेय को केवल अपनी ओर प्रेरित करने के लिए 'निराला' को स्थान न देते हुए निराला को छेड़ दिया; संभवतः जनसाधारण की उस मनोवृत्ति के अनुसार जो महानता और मौलिकता को पहचान नहीं पाती है। इसका परिणाम हुआ निराला जी द्वारा 'पंत जी और पल्लव' नामक प्रवन्ध की रचना, जिसमें उन्होंने समीक्षात्मक तत्वों के साथ शुक्ल जी सदृश भाषा का ओज और प्रवाह प्रकट किया। यदि पंत जी ने निराला को छेड़ा न होता तो इतनी सुन्दर तुलनात्मक समीक्षा का उद्‌गम निराला के मस्तिष्क से संभवतः नहीं होता। विरोधात्मक समीक्षा होते हुए भी उनके इस प्रबन्ध में गद्य की सरलता, शालीनता पैनी समीक्षा-दृष्टि, विद्वता, ज्ञान-विस्तार, अध्ययन और अनुशीलन की गहराई प्राप्त होती है।

'निराला' जी की मूल प्रवृत्ति काव्यमयी थी। दूसरी प्रवृत्ति जो उनमें लक्षित होती है नवीनता और मौलिकता को प्रश्रय देकर नग्न-कटु सत्य को संसार के सामने काव्य या साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करना है। गद्य के क्षेत्र में उनकी सारी चेष्टाएँ, प्रयत्न, कला-निदर्शन इसकी ओर लक्ष्य कर किया गया है। जहाँ निराला का हृदय 'कुसुमादपि कोमलानि' की लबालब सरसता से भरा हुआ है, वहाँ अपनी उक्त दूसरी प्रवृत्ति के पोषण, संवर्धन, अभिव्यक्ति में वह 'वज्रादपि कठोराणि' भी है। यही 'निराला' का निरालापन, उसका साहित्य, उसका गद्य-सामर्थ्य है। इसीलिए उनकी गद्य-रचनाओं में, विशेषकर निबन्धों में, अपूर्व शक्ति, ओज, तीखापन, पैनापन, प्रपातीय प्रवाह, छेदन-भेदन, उत्कीर्णन पाया जाता है। जातिगत दृष्टि से सनातनी होते हुए भी महर्षि सरस्वती की भूरि भूरि

प्रशंसा करना इसी का द्योतक है। इसी विचारधारा के कारण उनके 'वाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ', 'सामाजिक पराधीनता', 'वर्तमान हिंदू समाज', 'हमारा समाज', 'राष्ट्र और नारी', 'रूप और नारी' आदि निबन्धों में एक अपूर्व गद्य-लेखन-क्षमता का प्रादुर्भाव हो सका है।

यह क्षमता उनके साहित्यिक निबन्धों में शत प्रतिशत नहीं रह पाई है। साहित्यिक निबन्ध सम्भवतः उन्होंने आवश्यकता और आग्रहवश लिखे हों, ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु जहाँ जहाँ उन्हें समीक्षा करना पड़ी है या समीक्षात्मक दृष्टिकोण को अपनाना पड़ा है, वहाँ वहाँ पुनः उनका वही गद्य-सामर्थ्य, क्षमता, प्रवाहशीलता, कटु-नग्न सत्य का प्रकाश, ऊर्ज्वसित हो उठा है, चमक उठा है। निराला की सच्ची, खरी, खरे कंचन सी आत्मा सत्य के प्रकाश को प्रदर्शित किये बिना रह नहीं पाती। सत्य स्वतः एक महती शक्ति है। वह पाखंड का भयंकर प्रतिरोधी, प्रबलतम शत्रु है। इसलिए जहाँ उनकी लेखनी ने सत्य को प्रकट किया है, वहाँ उनके गद्य में सबलता, श्रेष्ठतम क्षमता, उच्चकोटि की भावप्रवणता, वैयाकरणीय नियमों को पारकर, लाक्षणिक प्रयोगों पर पदाघात करती हुई व्यंग्य-व्यंजना की प्रखरता पाई जाती है। इसीलिए जो भाषा के बंधान, प्रवहमानता, भावसबलता, शब्दों का औचित्य, भाषा की अवयुति, आदि गद्य-गुण उनके 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म', 'पंत जी और पल्लव', 'विद्यापति और चंडीदास', 'कला के विरह में जोशी-बन्धु', 'कुल्ली भाट' रेखाचित्र आदि प्रबन्धों में पाये जाते हैं वे 'नाटक समस्या', 'हिंदी साहित्य में उपन्यास', 'साहित्य और भाषा', 'हमारे साहित्य का ध्येय' आदि में नहीं मिलते।

प्रेमचन्द में यथार्थवादिता, आदर्शवादिता, गांधीवादिता और एक महती व्यापकता पाई जाती है और उनका सुन्दर सामंजस्य हुआ है जो गोस्वामी जी की इस उक्ति को चरितार्थ करता है—'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'। आचार्य चतुरसेन जी की भाषा में चित्रण की सरलता, स्पष्टता, ऐतिहासिक विशदता प्राप्त होती है। 'उग्र' में भाषा का ओजस्वी स्वरूप, शब्दों का मनोनुकूल चुनाव-प्रयोग, शक्ति-संचालन के लिए उपयोग और लाक्षणिकता के साथ आलंकारिता मिलती है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की भाषा में गंभीरता के साथ चुस्ती, पैठ, सूक्ष्मता मिलती है। ये सब गुण 'निराला' की विभिन्न रचनाओं में विभिन्न स्थलों पर बिखरे रूप में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। सब एक स्थान पर नहीं मिलेंगे 'निराला' के उपन्यासों कहानियों रेखाचित्रों में उक्त प्रथम

तीन लेखकों की गद्य-क्षमता प्राप्त होगी और निबन्धों—साहित्यिक और समीक्षात्मक—में शुक्ल जी सा सूत्रता-रहित प्रबल सामर्थ्य ।

अनुकरणप्रियता, पांडित्य-प्रदर्शन और रचना-कौशल की विभिन्न प्रवृत्तियों के परिचय देने की कामना से बड़े बड़े लेखक और महारथी भी नहीं बच पाये हैं । तुलसी को रामचरितमानस से सन्तोष नहीं हुआ तो सूर सा काव्य-कौशल-प्रदर्शन के लिए कृष्ण गीतावली और श्री राम की बाल-लीला के सरस कवित्त-सवैये लिखे । पंत ने ज्योत्सना नाटिका लिखी, प्रेमचंद ने कर्बला, संग्राम नाटक; अयोध्यासिंह उपाध्याय ने चौपदे और देहाती दुनिया; गुप्त जी ने यशोधरा चम्पू; प्रसाद ने नाटक से उपन्यास की ओर आकर कंकाल, तितली और कुछ अन्य निबन्ध । इसी प्रकार 'निराला' ने भी कथा-साहित्य को अपनाया और उपन्यास एवम् कहानियाँ लिखीं एवं आग्रह और आवश्यकता ने उन्हें निबन्ध लिखने को बाध्य किया । उनमे सूक्ष्म दृष्टि, वर्णन की क्षमता और भाषा का परिमार्जन, और उस पर अधिकार तो था ही उन्होंने कथा-साहित्य में भी गति प्रकट की । वास्तव में उनमें प्रेमचन्द सा सूक्ष्म दर्शन, विस्तृत वर्णन-क्षमता है और प्रेमचन्द के भाषा-सारल्य के स्थान पर भाषाधिकार की क्षमता है । देहात दोनों के क्षेत्र रहे हैं । पर ऐसा लगता है कि प्रेमचन्द के पास कथावस्तुएँ सुचिंतित हैं और सरस्वती उनकी लेखनी पर लिखते समय आ बैठती है, इसलिए भाषा उनके मानस के अनुकूल पथ प्रशस्त करती चली जाती है, जबकि निराला में अप्रतिम प्रतिभा, कल्पना की उच्चतम उड़ान और बहुत अधिक सामग्री (कथावस्तु) है, परन्तु वे उन्हें सजा नहीं पाते, सँवार नहीं पाते, भाषा के दायरे में बाँध नहीं पाते और फिर जैसे ऊब कर उसका प्रकाशन कर यह समझ लेते हैं कि फिर आगे और लिखूँगा, और अधिक लिखूँगा तथा, उनका कवि उन्हें अपनी ओर खींचता है; जनसाधारण की अवमानना उनकी गति, प्रवहमान कला और कल्पना, रचना-कौशल जैसे मार्गविरोध करने को आ उपस्थित होते हैं ।

इसका परिणाम निकला कि निराला जी के कथा-साहित्य की भाषा में और निबन्धों में भी यत्र-तत्र शिथिलता, अस्पष्टता आ गई । शब्दों, वाक्यों, मुहावरों पर तो उनका अधिकार प्रकट होता है, वर्णनों में सूक्ष्मता का प्रदर्शन होता है, परन्तु सब मिलकर शैली में, पात्रों के कथोपकथनों में समष्टि रूप से भावों का समुचित स्फुरण नहीं हो पाता और पाठक यह पता नहीं लगा पाता कि वे क्या कहना चाहते हैं । यह बात मैं केवल भाषा की दृष्टि से कह रहा हूँ । चरित्रों और पात्रों को जैसा उन्होंने उठाया है और

सामाजिकों के जो चित्र उन्होंने खींचे हैं, उनकी भव्यता पृथक विचारणीय है। मेरा आशय यह है कि अनुच्छेद और प्रकरण-समाहार की दृष्टि से भाषा उतनी समर्थ नहीं है।

समय की गति के साथ अवश्य इस त्रुटि का परिहार, शैथिल्य और अस्पष्टता का अभाव उनमें होता गया है। प्रारम्भिक रचनाओं में, जैसे 'सुकुल की बीबी' आदि में, और अन्तिम रचनाओं, जैसे चमेली आदि में यह भाषागत दोष नहीं रह पाया है। इनमें वही प्रेमचन्द-सी सरलता और हरिऔध-सा भाषाधिकार प्राप्त होता है।

निराला के प्रारंभिक उपन्यास

महाकवि निराला द्वारा रचित उपन्यासों की एक लम्बी सूची है, यद्यपि हिन्दी-जगत्. उन्हें कवि के रूप में ही जानता और पूजता है। उनकी लेखनी से प्रस्तुत उपन्यास हैं—अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती, उच्छृंखल, चोटी की पकड़, काले कारनामें, चमेली, कुल्लीभाट और बिल्लेसुर बकरिहा। ये सभी उपन्यास सुदीर्घकाल में समय-समय पर महाकवि द्वारा लिखे गये थे। इस बीच में, उनके जीवन की परिस्थितियों में, उनकी रुचियों और जीवन-दर्शन में अनेक मोड़ आये होंगे; क्योंकि यह सभी जानते हैं कि उनको घोर संघर्षों का निरंतर सामना करना पड़ा था। अतः उनकी उपन्यास-कला के क्रमिक विकास का अध्ययन, एक शोध का विषय है। उनके प्रारंभ के उपन्यास अप्सरा, अलका और निरुपमा आदि एक श्रेणी के हैं। प्रभावती को भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत रखना समीचीन होगा। बाद में उनकी उपन्यास-कला एक भिन्न दिशा की ओर अग्रसर हुई। उसमें हास्य-तत्व अधिक मुखरित हो उठा। अवश्य ही यह आश्चर्य की बात है कि जीवन के, कटुता भरे अनुभवों के बीच निराला ने ऐसे उपन्यास लिखे। सम्प्रति, निराला जी के प्रारंभिक उपन्यासों के विषय में कुछ कहना है।

कथा-चयन—निराला के प्रथम तीनों उपन्यासों की कथाएँ नारी जीवन के संघर्ष से संबंध रखती हैं। 'अप्सरा' में वेश्यापुत्री कनक को अपने जन्म से संबंधित परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ता है। वह अभूतपूर्व सुन्दरी कीचड़ में खिले हुए कमल के समान है। उसका चरित्र अग्नि के समान पवित्र है और वह कुलवधू के समान एक सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहती है। शकुन्तला का अभिनय करते हुए, वह शकुन्तला के समान ही राजकुमार को मन ही मन वरण कर लेती है और सावित्री

के समान जो पुरुष प्रथम बार उसके विचारों का केंद्र बन जाता है, उसे अपना पति स्वीकार कर लेती है। उसकी माँ उसका हल्का-सा विरोध करती है; राजकुमार भी उसकी जन्मजात परिस्थितियों का स्मरण करके उसका तिरस्कार करता है; विजयपुर के राजकुमार उसका सतीत्वभ्रष्ट करने के लिए प्रलोभन देते हैं और अनेक जाल रचते हैं परन्तु मन की दृढता के बल पर कनक अग्नि-परीक्षा में खरी उतरती है। 'अलका' में एक सद्यःविवाहिता बाला 'शोभा' की कहानी है। उसका पति शिक्षा प्राप्त करने के लिए बंबई चला जाता है और इस बीच में महामारी के प्रकोप से उसके माता-पिता की मृत्यु हो जाती है। निराश्रिता शोभा गाँवों में जमीनदार के कुचक्र का शिकार हो जाती है। वह किसी प्रकार बच निकलती है और एक दूसरे दयालु जमीनदार स्नेहशंकर के घर उसे आश्रय मिल जाता है। उनके घर शिक्षा प्राप्त करके वह समाज-सेवा के कार्य में जुट जाती है परन्तु उसके गाँव के दुष्ट जमीनदार मुरलीधर के कारिन्दे उसका पीछा नहीं छोड़ते। अन्त में वह स्वयं अपने हाथों मुरलीधर की जीवन-लीला समाप्त करती है। 'निरुपमा' में एक कोमलांगी, सुशिक्षिता और सच्चरित्रा बंगाली बाला की कथा है, जो घर के भीतर ही अपने मामा और भाई के कुचक्र और षड़यंत्र का शिकार है। वे उसके पिता की जायदाद के प्रबन्धक बनकर उसका स्वत्व हड़पना चाहते हैं। पहले वह यह सब कुछ नहीं समझ पाती, परंतु अन्त में उसे सब बातें ज्ञात हो जाती हैं। तब भी वह अपने को असमर्थ पाती है। उसे कुमार से प्रेम है, परन्तु वह खुल कर मामा का विरोध नहीं कर सकती, जो एक अन्य स्वार्थी व्यक्ति से उसका विवाह कर देने पर तुला हुआ है। अंत में वह अपनी सखी की सहायता से अपनी रक्षा करने और अपने मनोवांछित पति को पाने में सफल होती है।

तीनों उपन्यासों का अस्थिपंजर उपर्युक्त ढंग से खड़ा किया गया है। साथ में कथा को सुडौल बनाने के लिए, अनेक घटनाएँ ली गयी हैं। वेश्या के घरों का वैभव और वहाँ पर उच्चवर्गीय जनों और अंग्रेज उच्चाधिकारियों का आगमन, जमीनदारों की विलासप्रियता, नृत्य-समारोहों में धन का अपव्यय, गाँवों की भोली-भाली नवयुवतियों का सतीत्व-अपहरण, नवयुवकों का देशानुराग, उनका आन्दोलनों में भाग लेना तथा जेल जाना, गाँवों की निरक्षर जनता के अन्धविश्वास, छुआछूत और ऊँच-नीच के भावों से प्रेरित जनों के अत्याचार [illegible] में चलनेवाली धाँधली, नवयुवकों का , जाग्रत नारियों की उदारता, जमीनदारों द्वारा

जनता का प्रपीड़न तथा ग्रामीणजनों का विरोध—आदि की घटनाओं से उपन्यासों के कथानक का निर्माण किया गया है।

उपर्युक्त घटनाओं पर दृष्टिपात करने से निराला पर दो प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक है—बंगला के यशस्वी लेखक शरत्‌चन्द्र का, और दूसरा है हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी का। शरत्‌चंद्र ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के सांस्कृतिक अंग का अंकन भली प्रकार किया है परन्तु उससे कहीं अधिक उनकी दृष्टि रमी है, नारी-जीवन पर जो सामाजिक विषमताओं से बोझिल होकर कराह रही है। उन्होंने तथाकथित पतित नारी का उद्धार करने की पूरी चेष्टा की। उनके इस कार्य ने पाठकों को चमत्कृत कर दिया। 'देवदास' में वेश्या चंद्रमुखी, तथा 'चरित्रहीन' की सावित्री और किरणमयी, उपेक्षिता और तिरस्कृता होते हुए भी पाठकों की सहानुभूति प्राप्त कर लेती हैं। वेश्या के हृदय के भीतर झाँक कर देखने और उसमें भरे हुए मूक रुदन पर दृष्टिपात करने के लिए पाठक को बाध्य होना पड़ता है। शरतचन्द्र की इन सबल नारी मूर्तियों का निराला पर अवश्य गहरा प्रभाव पड़ा होगा क्योंकि निराला जी बंगला साहित्य के मर्मज्ञ थे। उनकी अप्सरा—कनक—में शरत् की नारियों की छाया है। फिर भी निराला की कनक 'कनक' ही है; उसमें मिलावट का क्षुद्र अंश भी वर्तमान नहीं। कल्पनाशील निराला की वह अमर देन है। निरुपमा में भी बंगाली समाज की नवयुवती की छाया है। इसमें संदेह नहीं कि वह निरुपम सौन्दर्य और संस्कृति की प्रतीक है। निरुपमा उपन्यास में, निरुपमा के मामा वृद्ध योगेश बाबू भी शरत् के उपन्यासों के मुखर्जी, चटरजी और भट्टाचार्य की प्रतिकृति हैं। इन स्वार्थ के पुतलों की छवि योगेश बाबू में उतर आई है।

प्रेमचन्द जी का प्रभाव निराला जी पर पड़ना अवश्यंभावी था। उनका प्रेमचंद जी से निकट का सम्पर्क था। नवोदित राष्ट्रीय आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति प्रेमचंद जी के उपन्यासों में हुई है। वही बात निराला के उपन्यासों में देखने को मिलती है। वे स्वयं ग्रामीण संस्कृति के बीच पले थे और उनके समय में गावों में वर्ग-संघर्ष आरम्भ हो चुका था। एक ओर पतनोन्मुख और विलासिता के मद में चूर जमीनदार वर्ग की मनोवृत्तियों का चित्रण निराला ने उसी प्रकार किया है, जैसे प्रेमचंद ने किया था और दूसरी ओर ग्रामीण किसानवर्ग में फैलती हुई जागृति के चित्र भी उन्होंने प्रस्तुत किये हैं। अप्सरा में ताल्लुकेदारों के विलास-वैभव के घिनौने चित्र हैं अलका में के अत्याचारों के विरुद्ध संगठित होकर, नव-

युवकों के नेतृत्व में, किसानों के निर्बल विरोधों का वर्णन है, जिसे पढ़कर प्रेमचंद के प्रेमाश्रम, रंगभूमि और गोदान की याद आ जाती है। निरुपमा में भी अंधविश्वासों से बोझिल ग्रामीण संस्कृति के चित्र हैं। इस संस्कृति में चेतना आने के लक्षण निराला जी ने दिखाये हैं। इन सब बातों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि प्रेमचंद की परंपरा को निराला ने अक्षुण्ण रक्खा है।

कथा-सामग्री के चयन में जहाँ मुझे दो प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं, वहाँ निराला में अंधानुकरण की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। निराला जी ने अपने उपन्यासों के लिए कथा-सामग्री का चुनाव करने में युग-धर्म का पालन किया है। जिस समय उन्होंने अपने उपन्यास लिखे, देश में द्रुतगति से परिवर्तन हो रहे थे। शोषित वर्गों में चेतना उत्पन्न हो चुकी थी और राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन तेजी पर था। इस नव जागरण की वेला में वे किस प्रकार देश और समाज की समस्याओं के प्रति निरपेक्ष दृष्टिकोण अपना सकते थे? स्पष्ट है कि निराला ने जन-जीवन में डूब कर लिखा है। इससे उनके उपन्यासों का महत्व बढ़ता है, घटता नहीं।

दूसरी बात उल्लेखनीय यह है कि निराला के कथा-चयन में वह विविधता नहीं है, जो प्रेमचंद में पायी जाती है। उनकी दुनिया अपेक्षाकृत संकुचित है। संभवतः इसीलिए उनके उपन्यासों का कलेवर दीर्घकाय नहीं है। ऐसा क्यों हुआ? बात यह है कि निराला जी प्रधानतः कवि थे। बहिरंग की अपेक्षा अन्तरंग की ओर ही उनका ध्यान रहता था। उनका सारा काव्य आत्माभिव्यंजक है, जो उनकी अन्तर्मुखी दृष्टि का परिचायक है। उनके पास प्रेमचंद की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-वृत्ति कहाँ से आती? कवि तो अपने अन्तर्जगत में इतना लीन रहता है कि भरे बाजार में चलते हुए न तो जगमगाती दूकानें देखता है और न जनपथ का कोलाहल सुनता है। हाँ, जो दो-एक वस्तुएँ देखता है, देखता रह जाता है। तदनुकूल निराला जी ने सब कुछ देखा ही नहीं, जो दस-पाँच बातें गौर से देख पायीं, वहीं उनके उपन्यासों में उतर आईं। अस्तु, उनमें विविधता न आ सकी।

निराला जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण आदर्शवादी, यथार्थवादी, प्रगतिवादी और छायावादी तत्वों को मिलाकर किया है। यही उनका निरालापन है। 'अप्सरा' में राजकुमार का वेश्यापुत्री से साहस करके विवाह कर लेना, 'अलका' में अजीत और विजय जैसे सुशिक्षित नवयुवकों का ग्रामोत्थान के कार्य में जुट जाना 'निरुपमा' में कृष्णकुमार का इंगलैंड से

जनता का प्रपीड़न तथा ग्रामीणजनों का विरोध—आदि की घटनाओं से उपन्यासों के कथानक का निर्माण किया गया है।

उपर्युक्त घटनाओं पर दृष्टिपात करने से निराला पर दो प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक है—बंगला के यशस्वी लेखक शरत्चन्द्र का, और दूसरा है हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी का। शरत्चंद्र ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के सांस्कृतिक अंग का अंकन भली प्रकार किया है परन्तु उससे कहीं अधिक उनकी दृष्टि रमी है, नारी-जीवन पर जो सामाजिक विषमताओं से बोझिल होकर कराह रही है। उन्होंने तथाकथित पतित नारी का उद्धार करने की पूरी चेष्टा की। उनके इस कार्य ने पाठकों को चमत्कृत कर दिया। 'देवदास' में वेश्या चंद्रमुखी, तथा 'चरित्रहीन' की सावित्री और किरणमयी, उपेक्षिता और तिरस्कृता होते हुए भी पाठकों की सहानुभूति प्राप्त कर लेती हैं। वेश्या के हृदय के भीतर झाँक कर देखने और उसमें भरे हुए मूक रुदन पर दृष्टिपात करने के लिए पाठक को बाध्य होना पड़ता है। शरतचन्द्र की इन सबल नारी मूर्तियों का निराला पर अवश्य गहरा प्रभाव पड़ा होगा क्योंकि निराला जी बंगला साहित्य के मर्मज्ञ थे। उनकी अप्सरा—कनक—में शरत् की नारियों की छाया है। फिर भी निराला की कनक 'कनक' ही है; उसमें मिलावट का क्षुद्र अंश भी वर्तमान नहीं। कल्पनाशील निराला की वह अमर देन है। निरुपमा में भी बंगाली समाज की नवयुवती की छाया है। इसमें संदेह नहीं कि वह निरुपम सौन्दर्य और संस्कृति की प्रतीक है। निरुपमा उपन्यास में, निरुपमा के मामा वृद्ध योगेश बाबू भी शरत् के उपन्यासों के मुखर्जी, चटरजी और भट्टाचार्य की प्रतिकृति हैं। इन स्वार्थ के पुतलों की छवि योगेश बाबू में उतर आई है।

प्रेमचन्द जी का प्रभाव निराला जी पर पड़ना अवश्यंभावी था। उनका प्रेमचंद जी से निकट का सम्पर्क था। नवोदित राष्ट्रीय आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति प्रेमचंद जी के उपन्यासों में हुई है। वही बात निराला के उपन्यासों में देखने को मिलती है। वे स्वयं ग्रामीण संस्कृति के बीच पले थे और उनके समय में गावों में वर्ग-संघर्ष आरम्भ हो चुका था। एक ओर पतनोन्मुख और विलासिता के मद में चूर जमीनदार वर्ग की मनोवृत्तियों का चित्रण निराला ने उसी प्रकार किया है, जैसे प्रेमचंद ने किया था और दूसरी ओर ग्रामीण किसानवर्ग में फैलती हुई जागृति के चित्र भी उन्होंने प्रस्तुत किये हैं। अप्सरा में ताल्लुकेदारों के विलास-वैभव के घिनौने चित्र हैं। अलका में जमीनदारों के अत्याचारो के विरुद्ध सगठित होकर, नव

युवकों के नेतृत्व में, किसानों के निर्बल विरोधों का वर्णन है, जिसे पढ़कर प्रेमचंद के प्रेमाश्रम, रंगभूमि और गोदान की याद आ जाती है। निरुपमा में भी अंधविश्वासों से बोझिल ग्रामीण संस्कृति के चित्र हैं। इस संस्कृति में चेतना आने के लक्षण निराला जी ने दिखाये हैं। इन सब बातों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि प्रेमचंद की परंपरा को निराला ने अक्षुण्ण रक्खा है।

कथा-सामग्री के चयन में जहाँ मुझे दो प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं, वहाँ निराला में अंधानुकरण की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। निराला जी ने अपने उपन्यासों के लिए कथा-सामग्री का चुनाव करने में युग-धर्म का पालन किया है। जिस समय उन्होंने अपने उपन्यास लिखे, देश में द्रुतगति से परिवर्तन हो रहे थे। शोषित वर्गों में चेतना उत्पन्न हो चुकी थी और राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन तेजी पर था। इस नव जागरण की बेला मे वे किस प्रकार देश और समाज की समस्याओं के प्रति निरपेक्ष दृष्टिकोण अपना सकते थे ? स्पष्ट है कि निराला ने जन-जीवन में डूब कर लिखा है। इससे उनके उपन्यासों का महत्व बढ़ता है, घटता नहीं।

दूसरी बात उल्लेखनीय यह है कि निराला के कथा-चयन में वह विविधता नहीं है, जो प्रेमचंद में पायी जाती है। उनकी दुनिया अपेक्षाकृत संकुचित है। संभवतः इसीलिए उनके उपन्यासों का कलेवर दीर्घकाय नहीं है। ऐसा क्यों हुआ ? बात यह है कि निराला जी प्रधानतः कवि थे। बहिरंग की अपेक्षा अन्तरंग की ओर ही उनका ध्यान रहता था। उनका सारा काव्य आत्माभिव्यंजक है, जो उनकी अन्तर्मुखी दृष्टि का परिचायक है। उनके पास प्रेमचंद की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-वृत्ति कहाँ से आती ? कवि तो अपने अन्तर्जगत में इतना लीन रहता है कि भरे बाजार में चलते हुए न तो जगमगाती दूकानें देखता है और न जनपथ का कोलाहल सुनता है। हाँ, जो दो-एक वस्तुएँ देखता है, देखता रह जाता है। तदनुकूल निराला जी ने सब कुछ देखा ही नहीं, जो दस-पाँच बातें गौर से देख पायीं, वहीं उनके उपन्यासों में उतर आईं। अस्तु, उनमें विविधता न आ सकी।

निराला जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण आदर्शवादी, यथार्थवादी, प्रगतिवादी और छायावादी तत्वों को मिलाकर किया है। यही उनका निरालापन है। 'अप्सरा' में राजकुमार का वेश्यापुत्री से साहस करके विवाह कर लेना, 'अलका' में अजीत और विजय जैसे सुशिक्षित नवयुवकों का ग्रामोत्थान के कार्य में जुट जाना, निरुपमा' में कृष्णकुमार का इंगलैंड से

पी-एच० डी० प्राप्त करके भी जूता गाँठने लगना आदि घटनाएँ ऐसी हैं, जिनमें आदर्शवादी तत्व देखने को मिलते हैं। निराला ने यथार्थ की उपेक्षा कहीं नहीं की है। ग्रामीण-समाज के चित्र पूर्णरूपेण यथार्थ तत्वों के रंग से भरे-पुरे हैं। 'अलका' में वेदना (दो शब्द) के अन्तर्गत निराला कहते हैं—

"......अंडे तोड़ कर निकलने के पहले, लड़खड़ाते हुए जिन्होंने मुझ पर आवाजे कसे वे एक बार देखें, उनके सम्राटों द्वारा अनधिकृत साहित्य की स्वर्गभूमि से मैंने कितने हीरे-मोती उन्हें दान में दिए।"

निराला का यह वाक्यांश इस बात का प्रमाण है कि वे घिसे-पिटे रास्ते पर चलना नही चाहते थे। उन्होंने अनधिकृत साहित्य की स्वर्ग-भूमि पर अधिकार किया और कितने ही हीरे-मोती लुटा दिये। स्पष्ट है, इससे उनका संकेत प्रगतिवादी तत्वों की ओर है। निराला का दावा है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में नये विषय—नयी समस्याएँ ली हैं। उनके इस कथन से उनका आत्मविश्वास झलकता है और संभवतः उन्होंने अपने आलोचकों को उत्तर-सा दिया है। उनका जैसा दावा है, उसके अनुरूप उनके प्रारंभिक उपन्यासों में प्रगतिवादी तत्व कम हैं। हाँ, उन तत्वों की मात्रा उनके अगले उपन्यासों में अवश्य बढ़ती गयी है। छायावादी तत्व निराला की शैली और उनके स्थूल-वर्णनों में पाये जाते हैं। वे छायावादी सम्प्रदाय के विशिष्ट कवि थे और उनकी प्रकृति का प्रभाव उनके उपन्यासों पर पड़ना ही चाहिए था।

कथा-शिल्प—घटनाओं की सहायता से उपन्यासकार कथा का निर्माण करता है। यह एक साधारण तथ्य है और सभी इसे जानते हैं, परन्तु घटनाओं को पिरोने-सँजोने की, प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी-अपनी कला होती है। इसी को कथा-शिल्प कहा जाता है। उपन्यास में घटनाओं का महत्व निर्विवाद है परन्तु इतना अवश्य है कि कुछ उपन्यासकार शुद्ध घटनाओं के प्रयोग से अपने उपन्यासों को आकर्षक बनाते हैं और कुछ घटनाओं को केवल उपन्यास का अस्थिपंजर मानते हैं, जिसके ऊपर वे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का आवरण चढ़ाकर, अपनी कथा को सजीव रूप देते हैं। प्रथम श्रेणी के उपन्यासकार घटना को अधिक महत्व देते हैं और द्वितीय श्रेणी के कम। निराला के प्रारंभिक उपन्यास घटनाप्रधान हैं। वास्तव में वे उस पुरानी पीढ़ी के उपन्याकार हैं, जो घटनाप्रधान उपन्यासों की रचना करती आई थी।

घटनाप्रधान उपन्यासों में 'कुतूहल' पर अधिक जोर दिया जाता है। उपन्यासकार सदैव इस बात की चेष्टा करता है कि पाठक उसका उपन्यास पढ़ते-पढ़ते आगे की घटनाओं के बारे में असफल अनुमान लगाता जाय और कुतूहलवश पुस्तक बंद न करे। ऐसे उपन्यास प्रायः एक-दो बैठकों में ही पढ़ डाले जाते हैं। पाठक रात-रात जागकर उपन्यास पढ़ता है और उसे समाप्त करके ही दम लेता है। जासूसी और ऐयारी उपन्यासों में यह कुतूहल बनाये रखने की कला चरम सीमा पर दिखाई देती है। पाठक के कुतूहलवर्धन के लिए उपन्यासकार कुछ युक्तियाँ काम में लाता है। उनमें से एक है 'अप्रत्याशित' का प्रयोग। उपन्यासों में घटनाओं का क्रम कुछ इस प्रकार रक्खा जाता है कि पाठक 'कारण' जानते हुए भी 'परिणाम' का अनुमान नहीं लगा पाता। इस युक्ति का प्रयोग बाबू देवकीनन्दन खत्री ने अपनी 'चन्द्रकांता' में बड़ी कुशलता के साथ किया था। जासूसी उपन्यासों में भी वैसी ही बात देखने में आती है। दूसरी युक्ति है—'संयोग' का प्रयोग अर्थात् अनुमान से परे आकस्मिक घटनाओं का होना। ऐसी घटनाओं के बल पर उपन्यासकार अपनी कथा में नये-नये मोड़ लाता चलता है। इससे पाठक का कुतूहल बना रहता है। तीसरी युक्ति है—संघर्ष। उपन्यासकार दो पात्रों, या पात्रों के दो दलों या, पात्र का परिस्थितियों से संघर्ष दिखाता है। इससे घटनाएँ उत्पन्न होती हैं। संघर्ष में घात-प्रतिघात दिखाया जाता है। कभी एक पक्ष सबल होता है, तो कभी दूसरा। परिणाम के संबंध में पाठक के मन में अन्त तक संदेह तथा अनिश्चय बना रहता है। घटनाप्रधान उपन्यासों के कथा-शिल्प में इन युक्तियों का प्रयोग किया जाता है।

मैंने पहले कह दिया है कि निराला जी, घटनाप्रधान उपन्यास लिखनेवाले पुराने स्कूल के उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में अप्रत्याशितकर 'संयोग' की युक्तियों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए अप्सरा में कनक वेश्या पुत्री है। स्वाभाविक तौर पर उसे वेश्यावृत्ति अपनाना चाहिये था, परन्तु वह राजकुमार से सच्चा प्रेम करने लगती है और वह सच्चरित्रा कुलवधू की भाँति आचरण करती है। प्रारंभ में राजकुमार भी इससे प्रेम करने लगता है, परन्तु पाठक की आशा के विपरीत चंदन की याद आते ही वह उसे छोड़कर चल देता है। फिर कनक के भ्रष्ट होने के सभी विधान बन जाते हैं, परन्तु तुरंत ही चंदन को पर पहुँचाकर लेखक कनक को सतीत्व-रक्षा करा देता है। 'अलका' में शोभा के माता-पिता की मृत्यु तथा पति के विदेश जाने पर

उसके ऊपर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ता है। राजामुरलीधर के कारिंदे उसको नर्क में ले जाने के लिए प्रस्तुत हैं, और उसका विनाश निश्चित है; परन्तु एकाएक 'राधा' से उसे निकल भागने में सहायता मिल जाती है और संयोग से उसे स्नेहशंकर का आश्रय मिल जाता है। 'निरुपमा' में, इसी प्रकार निरुपमा की संपत्ति हड़पने का कुचक्र उसके मामा योगेश करते हैं। यामिनी बाबू को दामाद बनाने का षड़यंत्र रचकर वे भोली निरुपमा को ठगना चाहते हैं, परंतु संयोग से उनके घर के सामने एक होटल में कृष्णकुमार आकर ठहर जाता है और निरुपमा उसके प्रेम में पड़कर, योगेश के चंगुल से निकल जाती है। इस प्रकार अप्रत्याशित और संयोग के प्रयोग से निराला जी अपने उपन्यासों का आकर्षण बढ़ाने में सफल हुए हैं।

पाठकों की औत्सुक्य-वृद्धि के लिए निराला ने 'संघर्ष' का आयोजन किया है। उनके पात्रों को अपने विरोधियों और परिस्थितियों से खूब संघर्ष करना पड़ता है। अप्सरा में कनक को अपने मन और अपनी परिस्थितियों से लड़ना पड़ता है। वह राजकुमार से प्रेम करती है और उसको पति-रूप में प्राप्त करके सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहती है, परंतु राजकुमार उसे वेश्यापुत्री जानकर पत्नी-रूप में ग्रहण नहीं करना चाहता। दूसरी ओर विजयपुर के कुँवर साहब उस पर सारी संपदा लुटाने के लिए तैयार हैं। इस दशा में उसे घोर संघर्ष का सामना करना पडता है। शोभा को अपनी जीवन-यात्रा में अनेक कष्ट झेलने पडते हैं, परन्तु उसके संघर्ष का वेग स्नेहशंकर के आश्रय के कारण कम पड़ जाता है। शोभा के रूप में निराला एक ऐसी नारी का चित्र नहीं खींच सके हैं, जो अबला होते हुए भी अपराजित हो। यदि उसके सर पर स्नेहशंकर का स्थायी वरद हस्त न होता, तो अच्छा होता। हाँ, अन्त में मुरलीधर को गोली मारते दिखाकर लेखक ने शोभा की संघर्ष-शक्ति का परिचय देने का अवश्य प्रयत्न किया है। 'निरुपमा' का संघर्ष उत्तम ढंग से दिखाया गया है। यह संघर्ष वैसा ही है, जैसा शरत के उपन्यासों में देखने को मिलता है। निरुपमा कृष्णकुमार से प्रेम करती है परन्तु उसका विवाह यामिनी बाबू से होने लगता है। अच्छा होता, यदि वह स्वयं साहस करके इस संघर्ष में विजय पाती, परन्तु लेखक ने उसे संघर्ष में अशक्त दिखाया है। यदि उसे कृष्णकुमार की माँ और सखी कमल सहायता न पहुँचाती तो वह नष्ट हो जाती। इन तीनों उपन्यासों में संघर्ष का अन्त सुखद दिखाया गया है। इससे पाठक को अंत में हर्ष और संतोष होता है।

कथा को कुतूह बनाने के लिए निराला जी ने कहीं कहीं

अत्यन्त नाटकीय तथा जासूसी ढंग की युक्तियों का प्रयोग किया है। इससे उनकी उपन्यास-कला सदोष और अर्द्धविकसित प्रतीत होती है। अतः कुछ स्थलों पर, इसके कारण, स्वाभाविकता नष्ट हो गयी है। उदाहरण के लिए 'अप्सरा' में, कनक अपनी शिक्षिका कैथोरिन की सहायता से पुलिस सुपरिंटेंडेट हैमिल्टन को शराब पिलाकर मूर्ख बनाती है। वे धोती पहन कर नाचने लगते हैं। पुलिस के दरोगा की भी बुरी गत बनती है। पढ़कर ऐसा लगता है मानो हम चंद्रकांता की 'चपला' के दर्शन कर रहे हों। इसी प्रकार विजय के कुँवर साहब की महफिल में चंदन का वेश-परिवर्तन करके आना और कनक को उड़ा ले जाना तेजसिंह की ऐयारी से कम मनोरंजक नहीं है। अप्सरा निराला का प्रथम उपन्यास है और उस पर पुराने औपन्यासिकों का प्रभाव अधिक है। वेश-परिवर्तन के नमूने अलका में भी देखने को मिलते हैं। शोभा 'अलका' बन कर स्नेहशंकर के घर रहती है। विजय और अजित वेश बदलकर गाँवों में शोभा की खोज उसी प्रकार करते हैं, जैसे जासूस लोग अपराधियों की खोज करते हैं। अंत में विजय 'प्रभाकर' के रूप में प्रकट होता है। शोभा उसे न पहचान कर उसके प्रेम में पड़ जाती है। पाठक को संतोष होता है कि प्रभाकर अन्त में अलका का पति विजय ही है। उसकी मान्यताओं पर कुठाराघात नही होता। अजित वीणा की सहायता से, उसे मिस नीरजा का रूप देकर राजा मुरलीधर का पिस्तौल गायब करा देता है। इस उपन्यास में भी निराला जासूसी पद्धति अपनाने का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं। उनके तीसरे उपन्यास निरुपमा में इस विधि का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। फिर भी अन्त में निराला जी इसका आंशिक सहारा तब लेते हैं, जब बडे नाटकीय ढंग से वे यामिनी बाबू का विवाह सुशीला के साथ करा देते हैं और निरुपमा का कुमार के साथ। वर-वधू का इस प्रकार बदल जाना 'चंद्रकान्ता संतति' में इन्द्रजीत और आनन्द के विवाह की याद दिला देता है।

वास्तव में निराला जी को कहीं-कहीं उक्त प्रकार की अस्वाभाविक विधियों को इसलिए अपनाना पडा है कि उन्होंने अपने उपन्यासों को घटनाप्रधान बनाया है। वे जिस युग में अपने उपन्यास लिख रहे थे, हिंदी में घटनाप्रधान उपन्यासों की परंपरा चल रही थी, जिससे वे प्रभावित थे। चरित्र-प्रधान उपन्यास भी लिखे जाने लगे थे। निराला ने उनसे भी प्रभाव ग्रहण किया और पात्रों के सृजन में उनका प्रभाव भी स्पष्ट है, जिस पर आगे लिखना उपयक्त होगा क्योंकि कथा-शिल्प के प्रसंग में एक-दो बातों का उल्लेख और आवश्यक है

निराला के कथा-शिल्प की एक विशेषता यह है कि उपन्यासों में कथा का प्रवाह अखंड चलता रहता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वे जी को उबानेवाले वर्णन नहीं देते। वे जो कुछ कहते हैं, संक्षेप में कहते हैं, जिससे पाठक कभी भी उनके उपन्यासों के एक-दो पृष्ठ छोड़-छोड़कर पढ़ता हुआ नहीं चल सकता। उनके कथा-शिल्प का यह गुण है। हिंदी के प्रेमचंद और अँग्रेजी के डिकेंस के उपन्यासों में दीर्घकाय वर्णन मनोरंजक होते हुए भी थका देनेवाले होते हैं और पाठक पन्ने पलटता चलता है। यह बात निराला के उपन्यासों में नहीं है। कथा बिना लंबी भूमिका के, आरंभ होती है और कहीं भी उसे अनावश्यक विस्तार नहीं दिया जाता। यह कह सकना कठिन होता है कि अमुक घटना बेकार है और व्यर्थ में ठूँसी गयी है।

पात्र-सृजन—केवल घटनाओं को कथा में एकत्रित करके उपन्यास को रोचक नहीं बनाया जा सकता; उपन्यास को जीते-जागते संसार का प्रतिरूप होना चाहिए, जिसके पात्र हाड़मांस के बने जीवित प्राणी हों, जिनमें मानव-हृदय की धड़कन स्पष्ट सुनायी देती हो। निराला इस तथ्य को भूले नहीं हैं, यद्यपि उनके उपन्यास घटना-प्रधान ही कहे जा सकते हैं। उन्होंने ऐसे पात्रों का सृजन किया है, जो नियति के हाथों की कठपुतली नहीं हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वयं उनके नियंत्रण से बाहर हैं। उन पात्रों में दृढ़ता और कर्मशक्ति की प्रधानता होती है। अप्सरा में राजकुमार और चन्दन, दोनों ही व्रती हैं; एक साहित्य-सेवा और दूसरा देशसेवा का व्रत धारण करता है। अलका में अजित और विजय, दोनों ही समाज और देश की सेवा में जीवन-अर्पण करनेवाले प्राणी हैं। 'निरुपमा' का कुमार तो स्वावलंबन का प्रत्यक्ष नमूना है। डी० लिट० होने पर भी वह जूता गाँठने बैठ जाता है और जूता गाँठ करके भी वह समाज के अग्रगण्य व्यक्तियों पर अपना अधिकार जमा लेता है।

निराला ने पुरुष और स्त्री, दोनों पात्रों की रचना की है, परन्तु उनके हाथों में पड़ कर नारी की मूर्तियाँ अधिक सजीव बन गयी हैं। पुरुष-पात्र स्त्री-पात्रों की तुलना में हेय बैठते हैं। निराला के उपन्यासों के रुचि-केन्द्र स्त्री-पात्र ही हैं। उन्होंने स्त्री-पात्रों के सृजन के समय अधिक रुचि और कौशल प्रदर्शन किया है। अपने उपन्यासों का नामकरण भी निराला ने प्रमुख स्त्री पात्रों के नाम पर किया है—अप्सरा, अलका, निरुपमा और प्रभावती। उनके स्त्री-पात्र नारी गुणों से विभूषित हैं। उनके व्यक्तित्व में भारतीयता समाविष्ट है, परन्तु सभी विद्रोही भावों से परिपूर्ण हैं कनक को लीजिए।

वेश्यापुत्री होने पर भी, भारतीय नारी के पातिव्रत तथा सतीत्व के आदर्शों पर लुब्ध होकर वह नाना प्रकार के कष्ट तथा संकट झेलती है। उसका अपना अलग व्यक्तित्व है, जो न तो राजकुमार के सामने दबना जानता है और न तारा तथा उसकी सास के सामने। अलका अपेक्षाकृत निर्बल है। ठीक भी है; क्योंकि वह गाँव की दमनशील संस्कृति के बीच पली है परन्तु स्नेहशंकर के घर शिक्षा प्राप्त करके उसका व्यक्तित्व सबल हो उठता है। अंत में, उसमें इतना साहस उत्पन्न हो जाता है कि वह राजा मुरलीधर का अन्त कर देती है। 'निरुपमा' को तो निराला ने निरुपम सौन्दर्य और संस्कृति का प्रतीक बनाया है। इस उपन्यास के 'निवेदन' में उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया है कि इन गुणों के बल पर, वह पाठकों का मन मुग्ध कर सकेगी। इन प्रमुख नारी-पात्रों के अतिरिक्त 'कनक' की माँ, राजेश्वरी और चन्दन की भाभी तारा, निरुपमा की छोटी बहन 'नीली' और कृष्ण-कुमार की माँ, पाठकों पर गहरा प्रभाव डाले बिना नहीं रहतीं। निराला के अधिकांश नारी-पात्र चाहे हमारे मन में सहानुभूति न जगा सकें, परन्तु वे अपनी दृढ़ता से वश में अवश्य कर लेते हैं।

पात्रों के चरित्रांकन में, निराला ने इस बात का सर्वत्र ध्यान रक्खा है कि वे मानवीय हों। इसलिए पाठक को पात्रों में ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध, हिंसा और स्वार्थपरता के साथ-साथ त्याग, प्रेम, सेवा और करुणा के भाव मिले-जुले दिखाई पड़ते हैं। एक बात और भी स्पष्ट दिखायी देती है। भावावेश, अत्यधिक अन्तर्द्वन्द्व, कुंठापूर्ण निराशा और दुश्चिंताओं के भार से दमित मन, कहीं भी पात्रों में देखने को नहीं मिलते। सभी पात्रों में मन की स्वस्थता है, रुग्ण व्यक्तित्व का अभाव है। आजकल के उपन्यासों में, पात्रों के हृदय में भरी कुंठाओं और उनकी प्रतिक्रियाओं से पीड़ित मन का विश्लेषण प्रायः देखने को मिलता है, जिसका अभाव निराला के उप-न्यासों में है। यही कारण है कि उनके पात्रों का व्यक्तित्व दृढ़ है और वे पाठक को राह दिखा सकते हैं और द्विधात्मक स्थिति से उबार सकते हैं। मेरी समझ में निराला के चरित्रांकन का यह एक विशेष गुण है। ऐसे पात्रों से कथा सजती है।

शैली-सौन्दर्य—कथा-शिल्प और चरित्रांकन की दृष्टि से निराला के उपन्यासों का महत्व चाहे कम ही रहे परन्तु शैली-सौन्दर्य की दृष्टि से उनका महत्व अक्षुण्ण रहेगा। निराला कवि थे और उनके उपन्यासों की भाषा में काव्य-तत्व अधिक परिमाण में पाया जाता है। अनेक अंश ऐसे हैं, जिन्हें यदि छन्दबद्ध कर दिया जाय तो वे सुन्दर काव्य का रूप धारण कर

लेंगे। यह गुण केवल जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों में ही पाया जाता है। अप्सरा में—"अपनी देह के वृंत पर अपलक खिली हुई, ज्योत्स्ना के चंद्र-पुष्प की तरह सौन्दर्योज्ज्वल पारिजात की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु से डोल उठती है" ; अलका में—"अलका पिता के सुखकर वृन्त पर प्रस्फुट कली-सी कल्पना के समीर से अपनी ही हद में हिल रही है........" ; आदि ऐसे अनेक वाक्य हैं, जो अलंकारों से लदे हैं और जिनमें काव्य की आत्मा निवास करती है। साहित्यिक दृष्टि से इन अंशों का महत्व अत्यधिक है। कहीं-कहीं वर्णनों और कहीं-कहीं कथोपकथनों में भाषा की काव्य-छटा देखने को मिलती है।

ठीक इसके विपरीत स्थूल वर्णनों में प्रेमचंद की भाँति निराला ने चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। सरल भाषा में जो भी चित्र अंकित किये हैं, वे पाठक की आँखों के आगे मूर्तिमान हो उठते हैं। निरुपमा में "नीम के नीचे बैठक है। गुरुदीन तीन बिस्वेवाले तिवारी हैं ; सीतल पाँच बिस्वेवाले.......सब हल जोतते और श्रद्धापूर्वक धर्म की रक्षा करते हैं....... पानी बरस चुका है, ये खेत जोत कर विश्राम करते हुए सामाजिक बातचीत कर रहे हैं ; आदि" ऐसे अंश हैं जिनमें निराला की चित्र खींच देने की क्षमता देखने को मिलती है।

अंत में निराला की शैली का विशेष सौन्दर्य उनके हास्य में है। हास्यप्रद स्थिति के विवरण, कथोपकथनों में व्यंग्य-वक्रोक्ति के प्रयोग, और वर्णनों तथा विश्लेषणों में निराला की चोट करने की प्रवृत्ति से हास्य निखर पड़ा है। अप्सरा में—दरोगा के कनक का निमंत्रण पाने पर उससे मिलने के लिए बनाव-शृंगार करने, हैमिल्टन साहब के नाचने, और निरुपमा में यामिनी बाबू को मूर्ख बनाकर मिस दुबे से उनका विवाह करा देने आदि के वर्णन पढ़कर पाठक हँसते हँसते लोट-पोट हो जाता है। सामाजिक कुरीतियों पर किये गये व्यंग्य मन को गुदगुदा तो देते ही हैं, साथ-साथ क्षोभ भी पैदा करते हैं।

कवि निराला : कुछ प्रश्न

निराला के काव्य की परीक्षा आधुनिक युग की पीठिका पर ही की जानी चाहिये। युग के त्रिविध पहलुओं पर विचार करते हुए वर्तमान समय का कवि-कर्म क्या हो सकता है, इसकी धारणा बनाकर ही निराला को परखना अधिक उपयुक्त होगा। निराला ने वर्तमान युग के उत्तरदायित्व को हृदयंगम कर, उसकी पूर्ति के लिए उन समस्त बन्धनों से छुटकारा पा लिया था जो किसी भी प्रकार बाधक बन सकते थे। तब तक कोई कवि अपनी आत्मिक प्रेरणा के अनुरूप काव्य-रचना नहीं कर सकता, जब तक उसने अपने व्यक्तित्व को जन-जीवन के लिए समर्पित न कर दिया हो। उसके लिए ऐसे पुरुष की आवश्यकता है जो निर्भीक और निर्बंध है। ऐसा व्यक्तित्व निराला का है। इसीलिए उन्हें सामाजिक भूमि पर अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ी हैं। उनके काव्य का और उनके व्यक्तित्व का निरादर भी हुआ है। कोई व्यक्ति जान-बूझकर पागल नहीं होता। निराला के अंतिम वर्ष विक्षेप के ही माने जाएँगे। उन्होंने अपने युग की विषमताओं को देखकर, अनैतिक तत्वों से खिन्न होकर, उनसे मुँह नहीं मोड़ा। सासारिक जीवन में अभेद्य दीवारों से टकराकर, उनकी मानसिक चेतना आहत हुई। यह निराला ही थे, जो सुख का जीवन व्यतीत करने उत्पन्न नहीं हुए थे। निराला का व्यक्तित्व आज के सामान्य कवियों से एकदम भिन्न था, उनका दुहरा व्यक्तित्व नहीं है। कहने करने के दो स्तर नहीं हैं।

निराला की काव्य-रचना का अदम्य साहस, उनकी निर्बाध जीवन की अभिलाषाओं से संबंधित है। आज यूरोप में विभिन्न प्रकार की काव्य-धाराएँ प्रचलित हैं। अब तक मानववादी या सामाजिक दृष्टि विश्व-काव्य की मुख्य भूमिका रही है। योरोप में ऐसी स्थिति भी आई जब समाज में इतनी विकृतियाँ बढ़ गईं कि कवि की चेतना उन्हें बर्दाश्त नहीं कर

पाई। नव समाज की मानववादी भूमिका से अलग होकर अपने निज के परितोष के लिए काव्य-रचना की जाने लगी। इस प्रकार व्यक्तिवादी काव्य की सृष्टि हुई। निराला जी शुरू से ही अपना रास्ता निर्धारित करके चले थे और चलते रहे। वे अदम्य साहसी थे। उन्हें अपना रास्ता नहीं बदलना पड़ा। समस्त युगीन उत्तरदायित्वों को अपने व्यक्तित्व में समेटकर रख लेने की तैयारी उनके सिवा किसी अन्य आधुनिक कवि में नहीं पाई जाती। यह उनकी शक्ति का अजस्र स्रोत है।

निराला ने अपनी आरंभिक रचनाओं में वेदान्त की भावना को लेकर एक उल्लासपूर्ण मानसिक भूमिका पर कार्य किया। वे एक नवीन सांस्कृतिक काव्य-चेतना को हिंदी में प्रथम बार लाए। उस समय की उनकी कृतियाँ यह सूचित करती हैं कि वे स्वच्छंद और बहुमुखी सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं। मानव जीवन को अधिक सुसंस्कृत बनाने की दिशा में उनके समस्त काव्य-प्रयास हैं। उन्होंने मानव-संस्कृति और राष्ट्रीय संस्कृति को एकाकार करके देखा था। इसे ही हम छायावादी या सौन्दर्यवादी काव्य के नाम से पुकारते हैं।

निराला के काव्य में प्रधानतया दो स्तर हैं। एक वह स्तर जो संस्कृति का है—आत्मोल्लास और अडिग आस्था का है और दूसरा वह जो लोक-जीवन का है। कोई भी कवि लोक-जीवन को छोड़कर सांस्कृतिक भूमिका पर ही नहीं रह सकता। अगर रहता भी है तो उसकी सांस्कृतिक चेतना वायवीय हो जायगी। दूसरी ओर, कोई कवि लोक-जीवन और उसकी व्यावहारिक विकृतियों के साथ वहुत दूर तक समझौता नहीं कर सकता। दोनों पक्षों का सामंजस्य श्रेष्ठ कवि में रहा करता है। अन्यथा उसका काव्य वैयक्तिक काव्य बन जायगा। सामूहिक संस्कृति के उन्नयन का लक्ष्य आवश्यक है। ऐसे आदर्शों की योजना, जो कविता को जन-समाज की वस्तु मानकर सामूहिक जीवन को सामाजिक संस्कृति को केन्द्र में रखकर उसका उन्नयन करनेवाली अभिलाषा और शक्ति रखती हो, सच्ची काव्य-योजना है। ऐसे लक्ष्य को रखकर चलनेवाले कवि के लिए जरूरी था कि वह एक ओर मानव संस्कृति के उच्च आदर्शों से संबद्ध हो और दूसरी ओर लोक-जीवन से भी संबंध बनाये रहे। निराला को हम लोक-जीवन या सामान्य मानव-जीवन की भूमिका पर भारतीय उच्चादर्शों को लेकर चलते और दुहरे आशय की पूर्ति करते देखते हैं। जो कवि जनता के वास्तविक जीवन के इतना समीप हो और साथ ही सांस्कृतिक भूमि पर इतना सहज और शुद्ध हो दूसरा नहीं दिखाई देता कई प्रकार के नये और

टूटे स्वर सुनाई पड़ते हैं। निराला के काव्य में संतुलन है, व्याप्ति है, उनकी अंतिम कविताओं में करुणा है, आक्रोश है, पर जीवन से विच्छिन्नता नहीं। उनकी आरंभिक रचनाओं में एक आशावाद, उल्लास, निर्माणात्मक प्रतिभा, आलंकारिता और सौष्ठव मिलते हैं। जब निराला के आत्मविश्वास पर चोटें पर चोटें लगीं तब उनके काव्य में एक कटुता का, जीवन में व्यंग्यात्मक दृष्टि का भी प्रवेश हुआ। मनुष्य या कवि बहुत दूर तक ऐसे काव्य की रचना नहीं कर सकता जिसमें बाह्य जीवन की प्रतिरोधी प्रवृत्तियाँ असर न डालें। ऐसी स्थिति में निराला ने अपने स्वर को बदला। एक ओर 'राम की शक्ति-पूजा', 'तुलसीदास' आदि में आत्मशक्ति को विजयिनी बनाकर देश के सामने एक आलोक्य संकेत प्रस्तुत किया; दूसरी ओर उन्होंने व्यंग्यात्मक कविता लिखी। इन व्यंग्यात्मक रचनाओं को बहुत लोग प्रगतिवाद भी कहते हैं। पर वहाँ कोई वाद नहीं है। उन्होंने 'मास्को डायलाग्स' में एक ऐसे व्यक्ति का उपहास किया है जो रूस में छपी हुई नई पुस्तक को अपने मित्रों को घूम-घूमकर दिखाता है पर हिंदी का एक वाक्य भी शुद्ध नहीं लिख सकता। इसका आशय यह नहीं कि उन्हें प्रगतिशील नये समाज के प्रति सहानुभूति नहीं थी। नये युग के सामाजिक वैषम्यों और विकृतियों पर ही तो उनका व्यंग्य है। सांस्कृतिक कवि होने के कारण उन्होंने सार्वत्रिक उन्नयन की माँग की, केवक आर्थिक समानता की नहीं।

'कुकुरमुत्ता' पर लोग अनेक प्रकार से विचार प्रकट करते हैं। उसमें कोई विधानात्मक पक्ष या रचनात्मक पक्ष नहीं हैं, ऐसा कहा जाता है। कुकुरमुत्ता केवल धार ही धार है, तलवार ही तलवार है, उसमें मूठ है ही नहीं। कुकुरमुत्ता को यदि आप पढ़ें तो देखेंगे कि उसमें सर्वहारा वर्ग का पक्ष है। वह सामंती-पूँजीवादी सभ्यता की खिल्ली उडाता है। साथ ही वह युग की समस्त एकांगिताओं का भी उपहास करता है और अन्त में अपनी अतिरंजना द्वारा अपने सम्बन्ध में भी बढ़-चढ़ कर बातें करता और इस प्रकार अपने को उपहासास्पद बनाता है। पर फिर भी कुछ शेष रहता है। कुकुरमुत्ता का आशय यह है कि गुलाब भले ही पुरानी या सामंतवादी संस्कृति का प्रतिनिधि है और वह (कुकुरमुत्ता) स्वयं एकदम नवीन है; पर व्यंजना-शक्ति के पारखी उसकी उक्तियों के व्यंग्यार्थ को समझ सकते हैं। व्यंजना यह है कि न पुराना गुलाब, न नया कुकुरमुत्ता ही आधुनिक सांस्कृतिक आदर्श की पूर्ति कर सकते हैं। हमारी वर्तमान संस्कृति कुकुरमुत्ता की भूमिका से उठकर नयी सृष्टि और नया विकास करेगी तब हम एक नई संस्कृति ला सकेंगे। नया गुलाब ही पुराने

गुलाब का स्थान ले सकता है। नया समाज और उसकी नई संस्कृति ही पुरानी संस्कृति की स्थानापन्न बन सकती है। इस प्रकार कुकुरमुत्ता कविता निराधार व्यंग्य नहीं है। वह संस्कृति के सृजन में नये मौलिक तत्वों का संकेत देती है।

निराला के इस काव्यचरण के पश्चात् अन्य चरण भी हैं। अंतिम समय में उनकी कविता आत्मनिवेदन और विनय के भावों से आपूर्ण हो गई है। कुछ लोग उनकी इस काव्य-भूमिका को भक्त कवियों की वैयक्तिक साधना की भूमि पर रखकर देखना चाहते हैं। मेरा अपना मत है कि निराला इस प्रार्थना-काव्य में सामाजिक दृष्टि की उपेक्षा नहीं करते। अधिकांश गीत ऐसे हैं जिनको लेकर वे महती शक्ति का आवाहन करते हैं जो हमारे समाज की वर्तमान विषमताओं और सामाजिक विकारों को प्रक्षालित कर सकें। इस प्रकार निराला का व्यंग्य-काव्य और यह प्रार्थना-काव्य एक ही आशय-सूत्र में जुड़े हुए हैं। निराला की गीत-सृष्टियाँ जयदेव और विद्यापति की परम्परा का अनुवर्तन करती हैं, वे शास्त्रीय भूमिका पर हैं। उनकी तुलना प्रसाद, महादेवी आदि के वैयक्तिक भावना-समन्वित गीतों से नहीं की जा सकती।

\+ + +

निराला जी के संबंध में संदेश देते हुए राष्ट्रपति जी ने उन्हें भारतीय परम्परा का एक महान कवि और मौलिक विचारक बताया है। निराला जी सचमुच भारतीय परम्परा के कवि थे। उनका व्यक्तित्व भारतीय कवि-परम्परा से जुडा हुआ है। भारतीय अध्यात्म तत्व को उन्होंने अपनाया था। उनका जीवन रामकृष्ण के जीवन-दर्शन से प्रेरित होकर विकसित हुआ था।

कवि निराला मुक्त छन्द तथा गीतिकाव्य के कवि थे। उन्होंने देश की स्थिति, उसके सामाजिक जीवन की बदलती हुई भूमिकाओं पर वास्तविक उन्नयनकारी साहित्य का सृजन किया। निराला जी ने अपने काव्य का मेरुदण्ड मानववादी भूमिका पर स्थित कर लिया था। उन्होंने छन्द के बन्धन को तोड़ा, इसके कारण कुछ लोग सोचते हैं कि उन्होंने काव्य-संस्कृति के साथ अन्याय किया। उसके बाद न्याय करने के लिए उन्होंने गीतबद्ध रचना की। वास्तव में ऐसा नहीं है। निराला मुक्तछन्द के भी कवि हैं और गीतों के भी। उनके पास ऐसी प्रतिभा थी कि उन्होंने संगीत तत्व का योग मुक्त-छंद में भी किया और उसी तत्व के योग से गीतियों की भी रचना की। हिंदी-कविता को गति के माध्यम से ऐसा विशिष्ट कृतित्व

दिया, जिसके जोड़ का कृतित्व हिंदी में नहीं है। इस युग की जितनी काव्य-शैलियाँ हैं उनका प्रवर्तन और संस्कार उन्होंने किया। वे एक साधक कवि थे। सांसारिक जीवन के बंधनकारी उपादानों को उन्होंने आरम्भ से ही छोड़ दिया था। निराला ने व्यावहारिक जीवन की उन समस्त बाधाओं का आरम्भ से ही तिरस्कार किया था जो कवि की भाव-साधना और उसके स्वातंत्र्य में आड़े आती हैं। इस दृष्टि से वे हिन्दी में अप्रतिम कवि थे।

उनके काव्य का जो प्रगतिवादी स्वर है वह उनका परवर्ती स्वर है, उन्होंने युग की विषमताओं को देखते हुए इस प्रकार की रचना की है। वे कविता-कला के साधक थे। जब वे दूसरे कवि के काव्य को सुनते थे तब उसकी भरपूर प्रशंसा करते थे। इस प्रकार की उदारता और इस प्रकार की सौंदर्याभिरुचि आज समीक्षकों में भी कम पाई जाती है। व्यावहारिक बन्धनों से दूर ऐसे चिन्तनशील और भावनावान कवि शताब्दियों में कभी ही कभी आते हैं।

\+ \+ \+

निराला जी के कृतित्व को लेकर प्रायः दो-तीन प्रश्न किए जाते हैं। एक तो यह कि उन्हें छायावादी कवि कहें या प्रगतिशील कहें या प्रयोग-बहुल कवि के रूप में वे गीतों और छंदों के स्रष्टा माने जायँ। निराला को विभिन्न वादों का प्रवर्तक कहा गया है। आज अनेकानेक शैलियों और वादों के कवि उन्हें अपना आदिगुरु कहने लगे हैं।

दूसरा प्रश्न है कि निराला मूलतः शृंगार के कवि हैं या वीर रस के अथवा शान्त या करुण रस के कवि हैं? यद्यपि महान कवि के लिए किसी रस की सीमा नहीं होती पर यह प्रश्न निराला-काव्य के सम्बन्ध में उठाया गया है।

तीसरा प्रश्न है कि आधुनिक युग की काव्य-धारा में, काव्य-विकास में, संसार की वर्तमान काव्य-प्रवृत्तियों के बीच, निराला का अपना वैशिष्ट्य क्या है? उन्हें आज के पश्चिमी काव्य की किस धारा से सम्बद्ध किया जाय? मैं, संक्षेप में, इन तीनों प्रश्नों पर अपना अभिमत देना चाहूँगा।

पहला प्रश्न वादों के सम्बन्ध का है। निराला ने किसी वाद-विशेष का आग्रह नहीं किया। उनका एक ही मौलिक आग्रह दर्शन या संस्कृति-संबंधी रहा है वाद की सीमा में वे नहीं बँधे यदि दर्शन की सीमा को ही वाद का आधार दिया जाय तो हम उन्हें भारतीय दर्शन का कवि कह

सकते हैं। उनकी दार्शनिक प्रौढ़ता ही उनको विभिन्न वादों में ले गई है पर किसी एक वाद का वशवर्ती नहीं बनाया। मूलवर्ती दार्शनिक चेतना के कारण वे कहीं भटके नहीं। इसलिए निराला को किसी वाद के घेरे में रखने का उपक्रम उचित नहीं। अनेक वाद और शैलियाँ उनके काव्य में अंतभू‍ॅत हैं पर वे उन सबके स्रष्टा होकर भी उन सबके परे हैं।

अब रसों के प्रश्न को लीजिए। कुछ लोग उन्हें मधुर शृंगार का कवि कहते हैं। कुछ उन्हें पौरुष का कवि मानते हैं और वीर रस की प्रधानता देखते हैं, उनके अंतिम गीतों का स्वर आत्मनिवेदनात्मक है और शांत और करुण रसों की व्यंजना करता है। हमें देखना है कि वे किस रस की निष्पत्ति में सबसे अधिक सफल हुए हैं। निराला के काव्य में रस उनकी सांस्कृतिक चेतना की उपज हैं। यदि वह सांस्कृतिक चेतना सुदृढ़ न होती तो वे विभिन्न रस-भूमियों में जाकर किसी एक की भी मार्मिक अवतारणा न कर पाते। यह कहना कठिन होगा कि उनमें किस रस की प्रधानता है। जैसे प्रकृति की ही कोई वस्तु विकसित होती हुई विभिन्न रूप धारण करती है, उसी प्रकार उनका व्यक्तित्व आगे बढ़ा है। उनमें वीर रस की भी योजना है; उनमें सुन्दरतम शृंगारिक तत्व भी जुड़े हैं। उनके अंतिम समय के गीत मूलतः शांत और करुण रसों से संपृक्त हैं। उनके काव्य को किसी रस-विशेष की श्रेणी में नहीं रक्खा जा सकता। वे सुन्दर प्रगीतों के, उदात्त वीर गीतों के और मार्मिक करुण भावों के स्रष्टा हैं। वे इन सबके कवि हैं और इन सबको पार भी कर गये हैं।

अब हम अपने अंतिम प्रश्न पर आते हैं। आज के काव्य-युग में निराला का किस प्रकार का वैशिष्ट्य है? यूरोप में तो कविता खण्डित हो चुकी है। कदाचित यही कारण है कि वहाँ के काव्य में ऐसा प्रखर और सर्वतोमुखी व्यक्तित्व नहीं आ पाया है। रवीन्द्रनाथ के काव्य में भी यही विशालता है; परन्तु यूरोपीय काव्य-समीक्षा में उन्हें रहस्यवादी प्रतीकवादी कवि की सीमित भूमिका देकर देखा गया है। निराला के साथ भी ऐसा सीमा-निर्धारण नहीं किया जा सकता। आधुनिक युग में टी० एस० इलियट ने जो विभिन्न मोड़ लिए हैं, वैसे ही बड़े मोड़ निराला के भी हैं। निराला जी संपूर्ण युग के संघर्षों से गुजरे हैं। उन्होंने समाज की महान विकृतियों को देखा है। फिर भी उन्होंने मानव जीवन के प्रति आस्था कायम रखी है। तभी उनका काव्य मानववादी भूमिका पर स्थिर रहा है, वह व्यक्तिनिष्ठ, पलायनवादी या प्रतीकवादी नहीं बना। निराला के व्यक्तित्व में एक तत्व ऐसा है जो युग की समस्त जीवन-भूमिका पर एक समन्वय स्थापित कर

सका है। वे पहले आशा के स्वर को लेकर चले हैं तो पीछे आक्रोश के स्वर को और अन्त में परम सत्ता के आवाहन के स्वर को। अपने व्यक्तित्व और वैयक्तिक साधना के बल पर उनके काव्य में एक सामंजस्य की भूमिका मानववादी स्तर पर है, मानव-जीवन के प्रति आस्था पर निर्मित है, यह निराला का मूल्यवान प्रदेय है। जो काव्य मानवविकास के लक्ष्य को छोड़कर चलता है, आत्मतोष और वैयक्तिकता का रास्ता पकड़ता है ऐसे काव्य की वर्तमान युग में कमी नहीं है। आज यूरोप में ऐसे कवि भी हुए हैं जो पूर्णतः समाजनिरपेक्ष, जीवन-निरपेक्ष और व्यक्तिवादी या अस्तित्ववादी है। निराला को ऐसे संकीर्ण अनुभवों में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उन्होंने मनुष्यता पर विश्वास नहीं खोया। कविता की वैयक्तिक या खंड दर्शन की भूमिका पर जाकर आत्मविच्छेद नहीं किया; उनके अपने आदर्श विश्वास खोये नहीं। आज टी० एस० इलियट जैसे कवि अनास्था छोड़कर पुनः मानववादी काव्य का संस्पर्श कर रहे हैं। महान कवि वह है जो आस्था नहीं खोता, पराजित नहीं होता और अपने को कठिन परिस्थितियों में रखकर भी मानववादी भूमि पर बना रहता है। निःसंदेह निराला ऐसे ही कवि हैं। वे भारतीय साहित्य के मणि-दीप हैं, उज्ज्वल आलोक-नक्षत्र हैं। निराला का अस्त हिंदी-काव्य-सूर्य का अस्त है।

निराला : परिस्थिति और कृतित्व

•

काँटों में खिलता हुआ गुलाब, बादलों में चमकती हुई बिजली वासन्ती बयार से झूमती हुई वनस्पति, कोलाहल भरा सिन्धु-तट, जेठ की दोपहरी में तपता हुआ रेगिस्तान, किरणकरों से जागनेवाला सूरजमुखी, किसी गोल गुम्बद की गूँज, युग पीड़ा का करुणापूरित दीर्घ उच्छ्वास— कुल मिलाकर निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—

जिसने काव्य के पंछी को छंद के स्वर्ण-पिंजर से निकाल कर मुक्त छन्द के व्योम में मनचाही उड़ान भरने को स्वच्छन्द कर दिया ;

जिसने जनता को सुषुप्ति और स्वप्नों का उपहार नहीं दिया वरन् जिसने जागरण की बेला में कर्म के जल से जनता का अभिषेक किया ;

जिसमें एक साथ पर्वत की ऊँचाई थी तो सागर की गहराई भी, सितारों की चमक थी तो फूलों की महक भी ;

जिसमें एक साथ समता का वंदन था तो विषमता का क्रन्दन भी ;

जिसने अज्ञान-तिमिर के दुर्ग पर ज्ञान-ज्योति के राम-बाण भी चलाए ;

जिसने अनुभव के भार से बोझिल अपनी पलकों को उठाकर दुनिया की नादान हरकतों को देखा और कविता के नाम पर सौदा करनेवाले साहित्यिक बुर्जुआओं को ललकारा ;

और जो उपेक्षा के क्षणों में किसी की अपेक्षा के लिए ललचायी दृष्टि से नहीं देखता था, अपितु जो अपेक्षित साहस से उपेक्षा और विरोध को झेलता रहा।

निराला उन व्यक्तियों में नहीं थे जो अपनी अर्थ-सिद्धि के लिये दूसरों का अनर्थ करें, वह तो उन व्यक्तियों में से एक थे जो दूसरों को अनर्थ से बचाने के लिए अपने अर्थ का विसर्जन करते हैं इसीसे तो निराला की दुनिया में न शोषण का पोषण होता है और न पोषण का

निष्कम्प विश्वास दिया और जन-चिन्तन को मंगलमय विचारों का पवित्र अधिवास। यों निराला विकास, विश्वास और अधिवास के चिर-नायक थे।

मेंहदी! मेंहदी ऊपर से हरी लेकिन अन्दर से लाल। देखिए तो उसके पन्ने हरे हरे, लेकिन उसको रगड़ कर लगाएँ तो उसके हरे-हरे पन्ने लाल-लाल रंग छोड़ते हैं। मेंहदी के हरे पत्ते में उसका लाल रंग समा गया है। साहित्य में साहित्यकार का व्यक्तित्व भी कुछ इसी प्रकार का है—ऊपर से दीखे नहीं लेकिन अन्दर अपने रंग में भरापुरा मौजूद रहता है।

महाकवि निराला से किसी व्यक्ति ने आग्रह किया कि वह अपना जीवन-चरित्र लिखें। निराला ने इस प्रश्न का उत्तर दिया—"मैंने अपनी कृतियों में जीवन का सत्य लिख दिया है। जाकर मेरी सभी कृतियाँ खरीदकर पढ़ो—स्वयं मालूम हो जाएगा—मैं क्या हूँ। ऐसे क्या हूँ।" इस संदर्भ में रूसी विद्वान वारान्निकोफ का वक्तव्य ज्ञातव्य है—'मैंने निराला जी की जो थोड़ी-बहुत रचनायें पढ़ने और समझने का प्रयास किया है, उसके आधार पर मेरी व्यक्तिगत राय है कि उनका उदात्त व्यक्तित्व जिस स्पष्टता के साथ उनकी रचनाओं में उभर कर साधारण जीवन के साथ मिलकर एकाग्र हो जाता है और फिर साधारण से उठकर जिस अनूठी विशिष्ठता तक पहुँच जाता है, यह चमत्कार केवल मात्र साहित्यकारों से नहीं होता..........वह महामानव है।'

बचपन में विज्ञान के अध्यापक ने जल साफ करने का एक प्रयोग दिखाया था। उसने मिट्टी की चार कुल्हियाँ लीं। एक को छोड़कर तीन की तलियों में पतला सा सूराख था। दो कुल्हियों में कोयले के छोटे-छोटे टुकड़े डाल दिए गए थे। अध्यापक ने इन चारों कुल्हियों को इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर रखा कि ऊपर गंदे जल से भरी कुल्हिया थी, बीच में कोयलों के टुकडों से भरी हुई कुल्हिया और सबसे नीचे बिना छेद की खाली कुल्हिया। प्रयोग शुरू हुआ और कुछ देर बाद गन्दा जल नीचे की कुल्हियों में छन-छन कर निर्मल रूप में आ गया था। ऐसा ही कुछ साहित्य की रचना में होता है। निराला की स्थिति में उक्त सत्य और भी स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होता है। निराला का साहित्य उनके व्यक्तित्व की गूँज है और उनका व्यक्तित्व उनका अपनी परिस्थितियों और उनके युग की अवस्था-व्यवस्था से ही विनिर्मित था। यों निराला के काव्य में निराला की अपनी परिस्थितियाँ और उनके युग-मानस का सार कई परतों

में छनकर आया है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा का निम्न कथन हमारे चिंतन के लिए दिशाबोधक सिद्ध होगा—'उन्होंने अनेक आघात सहे हैं जो उनके संवेदनशील व्यक्तित्व पर अमिट चिह्न छोड़ गये हैं। यदि उन चिह्नों को हम संघर्ष का प्रमाण मानें तो उनकी आत्मा के सहजात संस्कार समझ लेना तथा उनके काव्य की भाव-भूमि और उनकी मूलभूत प्रेरणा तक पहुँचना सहज हो जायगा।' परिस्थितियों ने निराला को बनाया था और निराला ने साहित्य को। और यों उनकी साहित्यिक विशेषताओं के कारण उन परिस्थितियों में अवश्य मिल सकते हैं जिन परिस्थिगियों को कभी सहते हुए और कभी चुनौती देते हुए निराला आगे बढ़े थे।

परुषता निराला की कविता का सर्वप्रधान गुण है। निराला आँखों में आँसू का हार नहीं, भुजदण्डों में संहार लिए हैं+। वह तो मेघों की वीणा का गायक है और उसके प्राणों में तूफान है और पलकों में अमृत गंगा×। इसीलिए तो आलोचकों ने कहा है कि निराला की कविता 'मर्दानी कविता है'। उनका स्वर कठोर है, परुष है, ओजस्वी है।

उनके काव्य की इस परुषता का कारण है उनका पुष्ट व्यक्तित्व। निराला की वाणी इसलिए ओजस्वी है क्योंकि उनका अपना व्यक्तित्व भी ओजमय था। डा० रामविलास के शब्दों में—

> वह सहज विलंबित मंथर गति जिसको निहार,
> गजराज लाज हो राह छोड़ दे एक बार।

ऐसा मर्दाना व्यक्तित्व जिस व्यक्ति का हो, भला उसकी वाणी में मर्दानापन क्यों न होगा, स्त्रैणता तो वहाँ कभी भूलकर भी नहीं जा सकती। सचमुच उनकी देह वज्र से और प्राण पराग से निर्मित हैं॰॰। प्रश्न है कि निराला जी के व्यक्तित्व को यह मर्दानापन कहाँ से मिला? इस प्रश्न के उत्तर पाने में कोई दुविधा नहीं है। निराला को बचपन से ही पहलवानी का शौक था, साथ ही घर में हनुमान की पूजा बड़े चाव-भाव के साथ की जाती थी। तीसरे, निराला जी का जिस बैसवाड़ा प्रदेश से सम्बन्ध है वह भी कम अक्खड़ और कम वीर नहीं है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि निराला जी के पिता महिषादल राज्य की सेना में बड़े जमादार थे। इस कारण पिता से उन्हें जो संस्कार मिले उनमें नेतृत्व की भावना थी।

+ श्री माखनलाल चतुर्वेदी।

× डा० धर्मवीर भारती।

॰॰ श्री जयकुमार जलज।

निराला की इस वृत्ति की सहज अभिव्यक्ति उनकी प्रसिद्ध कविता 'जागो फिर एक बार' में हुई है। उक्त बातों के सम्मिलित प्रयास ने निराला के व्यक्तित्व को परुषता दी और यही परुषता उनके साहित्य में यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है।

निराला हिंदी के सर्वश्रेष्ठ प्रयोगशील कवि थे। प्रयोगशीलता उनके साहित्य का अप्रतिम लक्षण है और इस लक्षण का लक्षण यह कि वह सीमावादी है। उनकी प्रयोगशीलता सम्भावित सीमा को छूकर ही लौटती है। इसलिए उनके प्रयोग प्रतिक्रियावादी नहीं, वरन् उनके मूल में कोई रचनात्मक शक्ति ही कार्यरत है। इनकी इस प्रयोगशीलता ने हिन्दी-काव्य जगत के सामने कई नए क्षितिज प्रस्तुत किए हैं। इसीसे वह किसी एक क्षेत्र में नहीं, अपितु अनेक क्षेत्रों में प्रकट हुई है।

भाषा, छंद, विषय, गुण आदि अनेक क्षेत्रों में उनकी प्रयोगशीलता अपना चमत्कार दिखा रही है। इस चमत्कार से निराला के सभी भावक चमत्कृत हैं। निराला का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उनकी भाषा एक ओर संस्कृत के तत्सम और गुरु-गंभीर शब्दों से भरपूर है तो दूसरी ओर उसकी सीमा यह कि जिसमें उर्दू, फारसी और अँग्रेजी के शब्दों का उन्मुक्त प्रयोग किया गया है—एक ऐसी जो समझ में न आए और दूसरी ऐसी कि जिसे न समझना असंभव होता है। छंद के क्षेत्रों में तो निराला की उपलब्धि अद्वितीय है—छंदबद्ध भी और मुक्त छंद भी, तुकान्त भी और अतुकान्त भी। इस संदर्भ में स्मरण रखना चाहिए कि निराला ने छंद का त्याग किया, छंदात्मकता का नहीं। इसीलिए तो उनकी कविता कविता बनी रही, निपट गद्य नहीं हो पायी। यही सीमावादिता उनकी अभिव्यक्ति में भी दीखती है। कुछ रचनाओं की अभिव्यक्ति स्पष्ट और अभिधामूलक है और कुछ रचनाएँ व्यंजना-विशिष्ट हैं।

निराला की कविता काव्य गुणों से ओतप्रोत है। इस दिशा में निराला की प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति ही सर्वोपरि है। उनकी कविता में ओज है तो मृदंग का और माधुर्य है तो श्यामा के कूजन का। उनके इस ओज के मूल में उनकी कठोरता और उनके इस माधुर्य के मूल में है उनकी कोमलता। स्पष्टत: उनकी इस कठोरता का कारण है उनका विद्रोह और उनकी इस कोमलता का कारण है उनकी करुणा।

विषय की दृष्टि से निराला के साहित्य के दो छोर हैं— एक छोर पर वैयक्तिकता है तो दूसरे छोर पर सामाजिकता। उनकी कुछ रचनाओं का स्वर घोर है और कुछ का छोर सामाजिक उ

कविता बिल्कुल वैयक्तिक है, उनकी अपनी निजी हैं, उनके अपने ही हर्ष-विषाद को प्रकट करती है। दूसरी ओर उनकी राष्ट्रीय और प्रगतिशील रचनाओं में सामाजिकता का एक पावन संस्कार और समष्टिगत भावना का ओजस्वी समारोह दिखाई देता है। कहीं वह अपने ही आँसू पिरोते हैं और कहीं पूरे समाज के। यहाँ भी उनकी प्रयोगशीलता सीमावादी ही रही है।

यह प्रयोगशीलता और वह सीमावादिता कहाँ से आई? इस प्रश्न के उत्तर में एक बात पहिले यह कहनी है कि निराला पहलवान थे। यह बात ऊपर से स्थूल है लेकिन अंतस इसका सूक्ष्म है। पहलवान की प्रवृत्ति प्रयोग करने की होती है। वह सदैव नए-नए दाँवों का प्रयोग करता है और ऐसा करने में उसका अभीष्ट रहता है कि वह विजयी हो। निराला के पहलवानपन ने उन्हें काव्य में भी प्रयोग करने की प्रेरणा दी, लेकिन इस सारी प्रयोगशीलता के मूल में उनका लक्ष्य यही था कि उनका काव्य प्रभविष्णुता की शक्ति से भरा-पूरा हो। दूसरी बात यह कि प्रयोगशीलता के लिए व्यक्ति को स्वच्छन्द प्रवृत्ति का होना आवश्यक है। एक-एक कदम को सोचकर चलनेवाला व्यक्ति प्रयोगशील नहीं हो सकता। स्वच्छन्द प्रवृत्ति के लिए आवश्यक है स्वच्छन्द परिस्थिति। निराला की परिस्थिति ऐसी थी कि वह कहीं भी रम सकते थे—महिषादल में रहें या अपने गाँव में, कलकत्ता में रहें या लखनऊ अथवा प्रयाग में। उनके ऊपर दायित्व का वह भार नहीं था (जो थोड़ा बहुत था भी उसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया) जो मनुष्य की प्रयोगशीलता को समाप्त कर देता है। निराला की इस स्वच्छन्द परिस्थिति ने जहाँ उन्हें स्वच्छन्द स्वभाव दिया वहाँ उनके स्वच्छन्द स्वभाव को सीमावादी भी बना दिया। उनकी सीमावादिता का एक कारण यह भी था कि वह कुछ समय बंगाल में रहे और कुछ समय बैसवाड़े में—बंगाल ने उनके स्वभाव को भावुकता दी तो बैसवाड़े ने अक्खड़ता और फक्कड़मस्ती। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि उनका व्यक्तित्व प्रयोगशील था और उनके व्यक्तित्व की प्रयोगशीलता ने उनके साहित्य को भी प्रयोगशील बना दिया था।

निराला की जिस परुषता और प्रयोगशीलता का चर्चा हमने ऊपर की है उसके संदर्शन उनकी राष्ट्रीय कविताओं में होते हैं। निराला के काव्य-पुरुष की यह विशेषता रही है कि उसने जो भाव और जो विषय अपनी आरंभिक अवस्था में अपनाए वही भाव और विषय अंत तक उनके साथ रहे। यहाँ वह अपने सामयिक साहित्यिक बंधुओं से आगे

है। उन्होंने किसी भी विषय को मजबूरी में युग के ऊपरी दबाव के कारण नहीं अपनाया, वह तो आरम्भ से अन्त तक उनके व्यक्तित्व में ही अंतर्भूत रहा है। यही स्थिति उनकी देश-प्रेम से परिपूर्ण कविताओं में द्रष्टव्य है—उनकी यह भावना उनके काव्य-विकास में निरंतर धारा-रूप में बहती रही है। वह सच्चे अर्थों में राष्ट्रकवि थे। भारतमाता की वंदना में रचित उनका गीत राष्ट्रगान बनने का अधिकारी है। उनके काव्य-वैभव के इस राष्ट्रीय पक्ष की अपनी विशेषताएँ हैं। निराला की राष्ट्रीयता राजनैतिक कम और सांस्कृतिक अधिक है। उसका सम्बन्ध भारतीय संस्कृति की दीर्घ परम्परा से ही अधिक है। इसीलिए निराला ने अपनी इस प्रकार की रचनाओं के लिए भारतीय इतिहास के केवल उन्हीं पृष्ठों का आलेखन किया जो सांस्कृतिक वैभव से प्रदीप्त हैं और जो वर्तमान जीवन के लिए प्रेरणा-विन्दु बन सकते हैं। उनका अतीत का गौरव-गायन हमारे वर्तमान के जन-जीवन को विश्वास और आस्था प्रदान करता है। 'यमुना के प्रति' कविता में निराला जी ने यमुना के कछारों पर काम-क्रीड़ा के दर्शन नहीं कराया, अपितु उनमें वह भारत के स्वर्णिम अतीत को देखने का अभ्यस्त है। आ० रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी 'दिल्ली' कविता के सम्बन्ध में लिखा था कि दिल्ली नाम की कविता में दिल्ली की भूमि पर दृष्टि डालते हुए क्या वह वही देश है, कह कर कवि अतीत की कुछ इतिहासप्रसिद्ध बातों और व्यक्तियों को बड़ी सजीवता के साथ मन में लाता है। 'निराला' के राम आदर्श मानव हैं, उनकी शक्ति-पूजा भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के प्रत्येक सेनानी की शक्ति-पूजा है। 'जागो फिर एक बार' देश-भक्ति की उत्कट भावना से परिपूर्ण एक उद्बोधन गीत है। 'तुम हो महान', 'तुम सदा हो महान' जैसी भाषा बोलकर निराला ने भारतीय जनता को उसकी शक्ति का संदर्शन कराने का प्रयत्न किया—ठीक ऐसे जैसे हनुमान को उनकी शक्ति का साक्षात्कार कराया गया था। असहयोग आन्दोलन में व्यस्त भारतीय मन को कितना विश्वास दिया होगा इन कविताओं ने।

'छत्रपति शिवा जी का पत्र' उनक १९३२ की लिखी हुई रचना है। इस पत्र में शिवा जी ने जयसिंह को लिखा—

जय—श्री जयसिंह
मोगल सिंहासन के
औरंग के पैरों के नीचे तुम रखोगे
काढ कर यहाँ के प्राण

देना चाहते हो मोगलों को जीवन-दान
काढ़कर हमारा हृदय
ऐसे सदय, कीर्ति से
जाओगे अपनी पताका लेकर।

हिन्दी के एक योग्य आलोचक ने इस कविता को सीमित दृष्टिकोण वाली कविता कहा है। लेखक महोदय ने आगे लिखा है—'उनको (शिवाजी) लेकर लिखी गई कविता सन् १९३२ की परिस्थितियों में कोई विशेष महत्व का कार्य सिद्ध नहीं कर सकती थी। मुझे लेखक की इस टिप्पणी पर आश्चर्य हुआ। ऐसी टिप्पणी करते समय हम यह क्यों भूल जाते हैं कि निराला ने अपनी राष्ट्रभक्ति के लिए वर्तमान से नहीं, अतीत से ही अपने विषय चुने थे ? हम यह क्यों नहीं समझते कि रायसाहब, राय बहादुर, खानसाहब, खान बहादुर, बड़े-बड़े राजा महाराजा और ताल्लुकेदार भी तो जयसिंह के आधुनिक संस्करण ही थे जो अँग्रेजी शासन की जड़ को प्राण-पण से सींच रहे थे। जयसिंह, शिवाजी और मुगल शासक को प्रतीक मानिए और तब उत्तर दीजिए कि क्या इस कविता में कवि ने वास्तव में संकुचित दृष्टिकोण को अपनाया है ?

निराला की देश-भक्ति का सबसे बड़ा कारण तो स्वयं उनका भक्त-मन होना है। दूसरे, जिस बैसवाड़े के वे थे वह वह प्रदेश है जिसने १८५७ के आन्दोलन में भाग लेने के भयंकर परिणाम भोगे थे। उसी समय से इस प्रदेश के लोगों को अपनी रोटी-रोजी के लिए दूर देशों में जाना पड़ा था। निराला के भावुक मन के लिए यह पर्याप्त था। १८५७ के विप्लव की अनेक रोमांचकारी घटनायें उन्होंने बड़े-बूढ़ों से सुनी होंगी। दूसरे, स्वयं निराला वीरता के पूजक थे। आल्हा के रूप में यह वीरता-पूजन के संस्कार लेखक के मन में घनीभूत होकर प्रभाव-सक्रिय हुए थे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि निराला स्वयं उस युग में रहे जिसमें भारतवर्ष आजादी की लड़ाई लड़ रहा था। महाकवि पंत ने अपने काव्य-में इसी स्वतंत्रता-आन्दोलन की चर्चा की, लेकिन निराला ने इन आन्दोलनों के प्रवर्तकों के प्रेरणा-स्रोत को जनता के सामने रखकर उन प्रेरणा-बिन्दुओं को जन-सुलभ कर दिया था। उनके इस पक्ष को सर्वाधिक बल विवेकानन्द की विचार-पद्धति से मिला था, यह सर्वविदित है।

निराला के काव्य की एक अन्य प्रवृत्ति है प्रगतिशीलता। निराला वस्तुतः एक प्रगतिशील कवि थे, हाँ प्रगतिवादी उन्हें अवश्य ही हम नहीं

कह सकते, कहना भी नहीं चाहेंगे। निराला की प्रगतिशीलता कोई आरोपित प्रगतिशीलता नहीं है, वह विचारों के साथ-साथ आत्मा और मन की वस्तु हो गई है। सुमित्रानन्दन पन्त और निराला, दोनों ही कवियों की प्रगतिशील रचनाओं को पढ़कर मुझे सदैव ऐसा अनुभव होता रहा है कि जैसे पन्त किसी मजदूर को उसके छप्पर से बाहर बुलाकर उसकी कैफियत पूछ रहे और निराला स्वयं उस मजदूर के छप्पर में घुस कर अपनी बाहरी और अन्दरूनी, दोनों प्रकार की आँखों से उस छप्पर के समस्त कारुणिक वातावरण को पीते चले जा रहे हैं। इसी से शोषितों के प्रति पंत की भाँति उनकी सहानुभूति बौद्धिक या मौखिक नहीं हैं अपितु वह तो नितान्त हार्दिक है। मजदूरों के प्रति उनकी करुणा सूखी नहीं, गीली है, उनके प्रति उनके आँसू ग्लिसरीन के आँसू नहीं, वास्तविक हैं।

राष्ट्रीयता की भाँति ही निराला की प्रगतिशीलता की भी एक सीमा है और वह सीमा यह कि वह राजनैतिक नहीं है, आन्दोलनात्मक भी कम है। बाद की सीमा में हम निराला की प्रगतिशीलता को नहीं बाँध सकते। निराला ने किसी सिद्धान्त को लेकर नारे नहीं लगाए अपितु उन्होंने किसान, मजदूर, भिखारी, विधवा आदि पात्रों के उस संघर्ष को वाणी दी जिस संघर्ष में ये सब टूट रहे हैं और इन सबका साहस बिखर रहा है। उनकी प्रगतिशीलता में अकर्मण्य व्यक्तियों के रेखाचित्र नहीं है, संघर्षरत व्यक्तियों के ही रेखाचित्र हैं। इस प्रकार निराला ने संघर्षशील और घोर परिश्रम से श्लथ श्रम-साधकों को ही हमारे सामने प्रस्तुत किया है। ऐसे चित्रों को कुछ इस रूप में निराला ने प्रस्तुत किया है कि वे हमारी करुणा के पात्र तो वनते ही हैं, विद्रोह का विस्फुरण भी करते हैं।

निराला की इस हार्दिक प्रगतिशीलता का मुख्य कारण है निराला का अपना अनुभव। महिषादल राज्य में रह कर उन्होंने शासकों के अत्याचार देखे थे और देखी थी शासितों की आह भरी विवशता। महिषादल की जनता प्राकृतिक वैभव की दृष्टि से भले ही सम्पन्न रही हो, लेकिन आर्थिक दृष्टि से तो वह भूखी-नंगी ही थी। निराला ने अपने जीवन के आरम्भिक दिन इन्हीं भूखे लोगों के बीच व्यतीत किए थे। दूसरे, स्वयं बैसवाड़ा भी दीनता और दरिद्रता का प्रतीक ही था। डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि यहाँ के किसान परिश्रमी, ताल्लुकेदार सरकारी पिट्ठू, छोटे जमींदार कमर टूटने पर भी निरंकुशता की परम्परा को निबाहने वाले, विप्र वर्ग दम्भी और निम्न जातियाँ बहुत ही सताई हुई थीं। स्पष्ट है कि इस प्रदेश की जनता शासक और शासकों के छोटे-बड़े एजेण्टों से

बुरी तरह सन्त्रस्त थी। निराला ने इस संत्रस्त जनता की दीनता और दरिद्रता को अपनी आँखों से देखा था। तीसरी बात यह कि निराला स्वयं कलकत्ता, लखनऊ और इलाहाबाद जैसे बड़े शहरों में रहकर जीवन की इस भयंकर विभीषिका को देखते रहे थे। आधुनिक सभ्यता के भौतिक पक्ष (जिसकी अभिव्यक्ति "बुद्ध के प्रति" नामक कविता की आरम्भिक पंक्तियों में हुई है) की निस्सारता भी इन्हीं दिनों इन पर प्रकट हुई थी।

अन्तिम बात और सबसे प्रमुख बात जिसने निराला की प्रगतिशील रचनाओं को अनुभवपरक बनाया वह थी उनकी, समाज में रहकर जन रुचि से प्रत्यक्ष सम्पर्क की अभिलाषा। निराला ने एक बार स्वयं कहा था— अब कुछ लिखा जाता नहीं। समाज से दूर हैं, रुचि का पता नहीं........।' निराला के इस कथन में दो तथ्य हैं—प्रथम यह कि लेखक लिखने के लिए सदैव समाज के समीप रहे, दूसरे, उसे जन-रुचि का प्रत्यक्ष ज्ञान हो। इस बात से कौन इन्कार करेगा कि निराला ने सदैव समाज में रहकर ही समाज की अच्छाई-बुराई को देखा था, किसी झरोखे से झाँककर नहीं।

निराला ने शृंगारपरक कविताएँ भी लिखीं, प्रेम और सौंदर्य भी उनकी रचनाओं के विषय बने। निराला का शृंगार सदैव संयमित और मर्यादित है। उसे देखकर वासना उत्तेजित नहीं होती, वरन उसका उन्नयन होता है। इस सबका कारण है कि निराला के शृंगार-कवि ने सदैव एक दार्शनिक तटस्थता बनाए रखी है। इस तटस्थता ने ऊपर उठने का मौका दिया, नीचे गिरने का नहीं। यह सब बहुत-कुछ इसलिए भी हो सका कि निराला सौंदर्य को वस्तुपरक न मानकर व्यक्तिपरक मानते रहे। 'तुलसीदास' में नारी का जो रूप कवि ने प्रस्तुत किया उसने हमारी नारी-सम्बन्धी दृष्टि को ही बदल दिया। आज तक नारी या तो केवल भोग की वस्तु थी या पूजा की। नारी ग्राह्य है या त्याज्य, यही दो बातें हमारे सामने हिंदी कवियों ने रखी थीं। निराला ने रत्नावली को प्रेरक शक्ति रूपा सहधर्मिणी के स्वरूप में प्रस्तुत किया। इसीलिए निराला का नारी-सौन्दर्य रीतिकाल के कवियों की भाँति मादक अथवा संहारक नहीं है।

निराला को यह संयम और यह मर्यादा कहाँ से मिली ? उत्तर के लिए अधिक दूर नहीं जाना होगा। प्रथमतः यह कि निराला भक्त थे, अतः उनका भक्त-मन सौंदर्य का पुजारी था, उसका भक्षक नहीं। इसी से निराला के काव्य में सौंदर्य के एकान्त उपभोक्ता का स्वरूप कम ही दिखायी देता है। दूसरा कारण है उनके मन के वे पवित्र संस्कार जो उन्हें रामकृष्ण आश्रम और विवेकानन्द-साहित्य के सम्पर्क से प्राप्त हुए थे।

निराला के साहित्य की एक सर्व ख्यातिप्राप्त विशेषता है उनका रहस्यवाद । उनके काव्य की यह रहस्यवादिता अपने ढंग की अनूठी है। उनकी इस रहस्यवादिता की विशेषता यह है कि उसमें जिज्ञासा कम, और आस्था, विनयशीलता तथा निवेदन अधिक है। मैं कहना यह चाहता हूँ कि प्रसाद और पंत की भाँति उन्होंने इस विश्व-सत्ता के प्रति प्रश्नमयी जिज्ञासा या जिज्ञासामय प्रश्न कम पूछे हैं। उन्हें उस विश्व-सत्ता का स्पष्ट आभास है, उसके प्रति उनकी आस्था है, इसीलिए वह सदैव उस शक्ति से अनुक्रोश के लिए आवेदन करते दिखाई देते हैं। आवेदन-निवेदन के लिए अपेक्षित विनयशीलता की भावना भी उनमें भरपूर है।

निराला का रहस्यवाद अद्वैतवादी स्तर का है। 'तुम और मैं' में अद्वैतवादी सिद्धान्त की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। लेकिन निराला-काव्य को सरसरी निगाह से देखने पर भी यह स्पष्ट हो जायगा कि उनका यह दार्शनिक अद्वैतवाद केवल मात्र बौद्धिक है। मस्तिष्क से निराकार और निर्गुणोपासक होते हुए भी मन से वह साकार रूप के ही भक्त हैं। उनके रहस्यवाद में पूजा, मूर्ति-वन्दन और विनय की स्थिति बहुत अधिक स्पष्ट है। यों सहज ही हम कह सकते हैं कि दर्शन और भक्ति, दोनों ही अपने समन्वित रूप में निराला-काव्य में प्रतिबिम्बित हैं।

उक्त स्थिति का उत्तर निराला जी की जीवन-परिस्थिति में अवश्य देखा जा सकता है। निराला का संबंध एक कट्टर हिंदू ब्राह्मण परिवार से रहा। हनुमान की पूजा उनके परिवार में बड़ी धूमधाम से की जाती थी। सहज ही अनुमान करने की बात है कि सगुणोपासक परिवार का निराला आखिर किस सीमा तक निर्गुणोपासक हो सकता था। निराकार ब्रह्म उनके विचार-जगत की चीज था। उनके मन में भक्ति और प्रेम ही बसा हुआ था।

निराला के काव्य पर सबसे अधिक आरोप दुरूहता का लगाया जाता है। इस आरोप में कुछ अतिशयोक्ति है और कुछ सत्यता। उनके काव्य में अनेक ऐसे अंश हैं जिनसे अर्थ-प्राप्ति बड़ी दिमागी कसरत के बाद होती है अथवा होती ही नहीं। महाकवि निराला अपनी इस दुरूहता के प्रति सचेत थे। उन्होंने स्वयं एक बार कहा था कि निराला इस प्रकार के लुसिड, ईजी, डाइरेक्ट शब्द नहीं लिख पाते, यह तो उनमें दोष है। वे डेरीवेटिव्ज ही बराबर लिखते हैं। एक अन्य स्थान पर निराला जी ने राजकुमार शर्मा की क्लिष्टता-विषयक शंका का करते हुए कहा

था—'तुलसीदास की विनय-पत्रिका मास्टरपीस होते हुए भी जनप्रिय एव सरल इसलिए है कि भाषा क्लिष्ट होते हुए भी भावों में बड़ी गम्भीरता है, किंतु हम लोग सरल लिखते हैं (भाषा) जिसके कारण भाव स्पष्ट नहीं हो पाते। इसीलिए लोग कविता को क्लिष्ट कहते हैं, किंतु बात बिलकुल उलटी है, उच्च भावों की अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप भाषा भी होनी चाहिए।

उक्त कथनों से यह सिद्ध है कि निराला अपनी अस्पष्टता और क्लिष्टता के प्रति जागरूक थे। इसीलिए कोई उनकी इस क्लिष्टता का कारण जल्दबाजी नहीं कह सकता। सही बात तो यह है कि उनकी सोच-सोचकर लिखने की आदत ने ही उनकी रचनाओं को दुरूह बना दिया। डा० रामविलास शर्मा का स्पष्ट मत है कि रचना को अलंकृत करने की चाह और व्यंजना लाने की उत्कण्ठा कभी-कभी उन्हें दुरूह बना देती है। पद्य ही नहीं, गद्य की भी पाण्डुलिपि तैयार करने में वे ढेर के ढेर पन्ने खराब कर डालते थे। लोगों का कहना है कि तुलसीदास के दो-चार पृष्ठ लिखने के बाद उनकी स्थिति उस मजदूर के समान होती थी जो सात-आठ घंटे की कमरतोड़ मेहनत से निढाल हो गया हो।

काव्य की इस दुरूह प्रवृत्ति के लिए उनकी अपनी प्रकृति ही जिम्मेदार है। पहिले तो वह हर चीज को 'ग्रेंड स्टाइल' में करना चाहते थे। दूसरे यह कि जहाँ उन्होंने मालिश करके अपने शरीर के एक-एक अंग को पुष्ट बनाया था, उसी तरह से उनकी आदत शब्दों की मालिश करके उन्हें अर्थ की अपार शक्ति से भर देने की थी। यही नहीं, जिस व्यक्ति की आदत यह रही हो कि वह केवल एक खत लिखने में ही कई कई पोस्टकार्ड इसलिए व्यर्थ कर दे कि उसकी बात ठीक रूप से अभिव्यक्त नहीं हो पायी है, उस व्यक्ति की स्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। नयी पीढ़ी के लेखक जब कभी दर्शन के लिए गए तो निराला जी ने सदैव पढ़ने और पढ़ते रहने तथा लेखन-कार्य में परिश्रम करने का ही परामर्श दिया। ऐसी स्थिति में निराला जी की क्लिष्टता के कारण खोज लेना कोई कठिन कार्य नहीं है।

निराला का काव्य : साहित्यिक विवेचन

शताब्दी का कवि:—

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के देहावसान से हिंदी-काव्य के एक विशिष्ट युग की परिसमाप्ति हो गई है। यह युग सामान्यतः छायावाद-युग के नाम से प्रचलित रहा, यद्यपि निराला के व्यक्तित्व और काव्य-रचना से प्रभावित होकर इस छायावाद-युग की सीमाएँ भी अतिक्रांत हो गई थीं। हिंदी के समीक्षक निराला के काव्य में छायावाद का उत्कर्ष तो देखते ही हैं, उन्हें इस काव्य में छायावादोत्तर काव्य की वे भूमिकाएँ भी दृष्टिगत होती हैं जिन्हें, मोटे तौर पर, प्रगतिशील और प्रयोगशील काव्य कहा जाता है। इस प्रकार निराला की काव्य-रचना सन् १९१५ से लेकर १९६० तक जिन भावभूमियों पर प्रसरित रही, और जिन काव्य-प्रवृत्तियों को उद्भावित करती रही है, उन्हें किसी साहित्य-युग-विशेष का नाम नहीं दिया जा सकता।

उनकी कविता वस्तुत: पूरी शताब्दी की कविता है और उससे प्रभावित होनेवाले कवि पूरी शताब्दी तक आत्मविस्तार करते रहेंगे। यद्यपि अभी इस शताब्दी के ६१ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं, पर निराला की काव्य-रचनाएँ आज के नवयुवक कवियों को जो प्रेरणाएँ दे रही हैं, वे निकट भविष्य में समाप्त होनेवाली नहीं जान पड़तीं। यदि आज के नवयुवक कवियों की काव्यकृतियाँ इस शताब्दी के अंतिम चरणों में अपनी परिणति प्राप्त करेंगी तो उस समय तक निराला-काव्य का वैयक्तिक प्रभाव अवशेष नहीं होगा। इसके पश्चात् निराला की काव्य-रचनाएँ साहित्यिक इतिहास की स्थायी निधियों में परिनिष्ठित होंगी और साहित्यिक अमरता की प्रतीक बनेंगी परंतु इस शताब्दी के अंत तक वे अधिक व्यापक और गंभीर रूप

को 'शताब्दी का कवि' और उनके काव्य को 'शताब्दी का काव्य' कहा जाय, तो अनुचित न होगा।

हमें इस निबंध में देखना है कि निराला के संपूर्ण काव्य में कितनी अनेकरूपता; भावगत, शैलीगत और भाषागत कितनी विभिन्नतायें हैं, वे कितने भिन्न रूपों में इस शताब्दी की हिंदी-काव्य-सर्जना को आधार देती रही हैं। आधुनिक कवियों में निराला ही ऐसे कवि हैं जिनमें काव्य सर्जना का अपूर्व वैविध्य देखा जाता है। एक ओर उनकी मनोरम और संयत शृंगार की रचनाएँ हैं, तो दूसरी ओर, उनकी वे शृंगारिक कृतियाँ हैं, जो विद्रोह की भूमिका पर निर्मित हैं। उनके क्रांतिकारी और प्रखर वीर रस के काव्य में भी अनेक भाव-भूमियाँ परिलक्षित होती हैं। "राम की शक्ति-पूजा" जैसी रचना में यदि वीरत्व का उदात्त पक्ष मिलता है, महाकाव्योचित गरिमा मिलती है, तो 'बादल राग' जैसी रचनाओं में विस्फोटक भावनाओं का प्राधान्य है। यदि 'शिवाजी का पत्र' में करुणा मिश्रित वीररस की भूमिका है, तो 'जागो फिर एक बार' में नवोद्बोधन का प्रचंड वेग है। उनके राष्ट्रीय गीतों में भी जहाँ एक ओर स्वदेश की सुषमा और सौंदर्य प्रतिच्छायित है, सांस्कृतिक तत्वों का गहन संयोग है, वहाँ दूसरी ओर राष्ट्रीय विघटन और विपन्नता के प्रति करुण संवेदना भी है। निराला के ऋतुगीत हिंदी साहित्य में एकदम अप्रतिम हैं। उनके ऋतु-गीतों में एक ओर प्रकृति के विकास और उल्लास के चित्र हैं तो दूसरी ओर उसका रौद्र और विस्मयकारक स्वरूप भी है। उनकी कविता में जहाँ एक ओर 'सरोज-स्मृति' जैसी वैयक्तिक भूमिका की अंतरंग करुणा है, वहाँ तुलसीदास-जैसे काव्य में वस्तुमुखी तटस्थता पर आधारित राष्ट्रीय परवशता के करुण दृश्य-चित्र हैं। यदि एक ओर उनके काव्य में दार्शनिक स्तर पर शांतरस की भाव-योजनाएँ हैं तो दूसरी ओर विशुद्ध वैयक्ति आत्म-निवेदन भी है। शांतरस की ये द्विविध रचनाएँ भावनाओं के दो छोरों का परिस्पर्श करती हैं। जिस कवि ने उदात और प्रांजल भावों की विशाल गंगा का अवतरण किया है, उसी कवि ने हास्य और व्यंग्य की तरल चंचल स्रोत-स्विनियाँ भी प्रवाहित की हैं। वादों की भूमिका पर आधुनिक युग के अनेकानेक वादों के निदर्शक तत्व निराला के काव्य में सहज भाव से मिल जाते हैं। इस शताब्दी के काव्य-इतिहास में इतनी निर्मर्यादित काव्य-रचना किसी ने नहीं की। यही कारण है कि आज निराला-काव्य की व्याख्याएँ विविध वैचारिक भूमिकाओं पर होती हैं। उनकी काव्य-शैलियों में अनेक वादों का संयोग और संगम देखा जाता है। आज निराला का काव्य बहु

प्रस्थानबिन्दु मान लिया गया है, जहाँ से हिंदी की अनेक विधि काव्य-धाराएँ अपना निर्गम स्थान देखती हैं। यद्यपि यह उनके काव्य की अपरिमेय विशालता का परिचायक है, पर साथ ही यह समीक्षण की कठिनाइयाँ भी उपस्थित करता है। निराला की मूल जीवन-दृष्टि तथा उसके क्रमिक विकास को आत्मसात करने में इसी कारण समीक्षकों से भ्रांतियाँ हुई हैं। निराला के काव्योत्कर्ष के मूल तत्वों को ग्रहण करने में लोग दिग्भ्रांत हो जाते हैं। सभी उन्हें अपनी-अपनी ओर खींचना चाहते हैं और यह स्वाभाविक भी है। निराला-काव्य की बहुरूपता और वैविध्य समीक्षकों को चुनौती देता रहा है और साथ ही यह अवकाश भी देता रहा है कि वे अपनी अपनी रुचियों और विचार-सरणियों को प्रमुखता देकर उनके काव्य का अंकन और आकलन करें। यद्यपि यह निराला-काव्य के पक्ष में एक प्रशस्य उपलब्धि है, पर उसका समाहित मूल्यांकन करने में एक दुरतिगम्य बाधा भी है।

पूर्ववर्ती तथा परवर्ती काव्य का तथाकथित अंतरः—

किसी भी बड़े कवि के काव्य में, जिसने दीर्घ समय तक अनवरत काव्य-रचना की हो, विषयों, शैलियों, काव्यरूपों और भाषा-छंदों आदि के प्रयोगों में बहुलता हो सकती है और होती ही है। निराला के काव्य में भी यह बहुलता मौजूद है। परंतु किसी बड़े कवि के काव्य-विकास में दो मूलतः भिन्न और विरोधी जीवनदृष्टियों का समावेश आश्चर्यजनक घटना होती है, क्योंकि किसी महान् कवि के विकास में परस्पर विरोधी जीवन-दृष्टियों का आना उसके व्यक्तित्व की अशक्तता का ही प्रमाण माना जायगा। काव्य-रचना के क्रम में समस्त बहिरंग उपादान बदल सकते हैं, अनेकानेक बहुरंगी पुष्पों से काव्य-देवता की अर्चना की जा सकती है, परंतु ऐसा नहीं होता कि देवमूर्ति ही बदल दी जाय। निराला के कतिपय समीक्षक यह कह रहे हैं कि निराला अपने आरंभिक स्वच्छंदतावाद और उससे संबंधित जीवन-दृष्टि का परित्याग कर अपने परवर्ती काव्य में यथार्थवादी बन गये और उन्होंने पूर्ववर्ती काव्य की मूलवर्ती आध्यात्मिक भावना का तिरस्कार कर न केवल नवीन युग-यथार्थ को अपनाया, बल्कि अपनी पूर्ववर्ती आध्यात्मिकता को निःसार भी घोषित कर दिया। इसके प्रमाणस्वरूप निराला की वे कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं, जिनमें उन्होंने कहा है—"अधिक न सोचा। मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है कुछ नहीं। जो कुछ किया है व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है स्वप्न है। कुल्ली धन्य है। वही मनुष्य है" (कुल्लीभाट —निराला)

कोई भी कवि अपने किसी रचना-क्षण में किसी भावात्मक प्रेरणा से जो कुछ कहता है, उसका प्रासंगिक भाव ही ग्रहण करना समीचीन होता है काव्य में सिद्धांत-वाक्य नहीं रहा करते, उसमें तो भावात्मक निर्देश और भावव्यंजनाएँ ही प्रमुख रूप से रहा करती हैं। अतएव कवि के परस्पर विरोधी अनुकथनों में सामंजस्य देखने के लिए हमें उन कृतियों का उचित संदर्भ में अनुशीलन करना पड़ता है। इसके साथ ही हमें यह भी देखना होता है कि उस कवि की परवर्ती काव्य-रचनाएँ निरंतर उसके बदले हुए दृष्टिकोण का समर्थन करती हैं या नहीं? कवि के युग की भूमिका ज्यों-ज्यों बदलती है और उसका व्यक्तित्व ज्यों-ज्यों उस युग-भूमिका के अनुरूप परिवर्तित होता है, उन सबका सापेक्षिक अध्ययन करना आवश्यक है। तभी हम किसी कवि के काव्य का समग्र पर्यवेक्षण कर सकते हैं और तभी उस कवि की जीवन-दृष्टि का सम्यक बोध हमें हो सकेगा।

प्रस्तुत निबंध में हम निराला के काव्य-विकास की रूपरेखा पर संक्षिप्त रीति से विचार करना चाहेंगे, और इस विचार के पश्चात् यह भी देखना चाहेंगे कि उनके तथाकथित परवर्ती और पूर्ववर्ती काव्य में किस प्रकार का अंतर है। वह कोई मौलिक और नवीन प्रस्थापन है अथवा क्रमागत काव्य-सरणी की ही कोई अग्रिम दिशा है? और अंत में हमारा यह भी प्रयत्न होगा कि उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य के साहित्यिक वैशिष्टच पर भी तुलनात्मक विचार प्रकट करें।

प्रथम चरण:—

सन् १९१६-१७ से सन् २३-२४ तक; निराला-काव्य का प्रथम चरण उनका प्रयोगकाल कहा जा सकता है। इन वर्षों में निराला जी की काव्य-रचना पर आवेशपूर्ण शृंगारिक भावना (जूही की कली), उद्दाम भावावेग से पूरित क्रांति का आह्वान (बादल राग), संस्कृति का आदर्शोन्मुखी तरल चित्रण (पंचवटी-प्रसंग), अतीत की स्मृतियों का उद्वेगमय आकलन (यमुना के प्रति), अथवा राष्ट्रीय विघटन के कारुणिक उद्गार (शिवाजी का पत्र) स्थान स्थान पर पाये जाते हैं। इस काल की रचनाओं में निराला एक प्रचंड प्रखरता का निदर्शन प्रस्तुत करते हैं जो किसी एक दिशा में नहीं, अनेकानेक भाव-दिशाओं में अनुधावित होती है। ये रचनाएँ अधिकतर मुक्त-छंद में हैं जो स्वतः निराला के क्रांति-भावापन्न व्यक्तित्व का प्रतीक है। इन समस्त रचनाओं की सर्वप्रमुख विशेषता प्रवाह और प्रवेग की एक अनियंत्रित गति है जिसके कारण भाव-संयमन में बाधा भी पड़ी है। इन कविताओं में निराला के आगामी काव्य का सा सौष्ठव सुघरता और

कलात्मकता नही आ पाई; बल्कि उनके स्थान पर कल्पना-छवियों का एक ऐसा अतिरेक है जिसमें तारतम्य की बहुत-कुछ कमी है। 'यमुना के प्रति' शीर्षक लम्बी कविता में भावों की पुनरुक्तियाँ तो हैं ही, शब्दों की भी अराजकता आ गई है। इस सारी कविता में कलात्मक संतुलन का बहुत कुछ अभाव है। 'तुम और मैं' शीर्षक कविता, जिसकी प्रशंसा 'जुही की कली' के बाद सर्वाधिक है, नितांत अनुशासित रचना नहीं हो पाई। इस प्रकार की क्रमहीनता और भाषा-प्रयोगों में अर्थ-सीमा का अतिक्रमण अनेक बार पाया जाता है, जो निराला के अनियंत्रित और प्रवेगमय काव्य का स्वाभाविक परिणाम है। परंतु इन सभी काव्य-रचनाओं में भाव और भाषा का जो सीमोल्लंघन है, उसका कारण काव्य-भावनागत कभी नहीं, भावना का अतिरेक ही कारण है।

द्वितीय चरण :—

१९२४-३४। निराला काव्य का दूसरा चरण १९२३-२५ से आरंभ हुआ था जिसकी सीमा में 'परिमल' और 'गीतिका' की अधिकांश रचनाएँ आ जाती हैं। एक शब्द में, इस चरण को निराला-काव्य के कला-सौष्ठव अथवा भावात्मक मर्यादा का चरण भी कह सकते हैं। यहाँ पहुँचकर निराला के उद्दाम भावावेश में नियंत्रण आता है। उनकी कलात्मक दृष्टि अधिक सजग होती है और वे पूर्णतः संतुलित काव्य-रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद और माधुर्य की भी अभिवृद्धि होती है। सौंदर्य का अधिक शालीन स्वरूप सामने आता है और दार्शनिक भूमिका पर निराला लौकिक के साथ अलौकिक का और ससीम के साथ असीम का सुगठित संबंध स्थापित कर सके हैं। हम कह सकते हैं निराला-काव्य के इस द्वितीय चरण में कलात्मक संपन्नता का यथेष्ट और परिपूर्ण विकास हुआ था।

तृतीय चरण :—

सन् १९३५ से ४०। इस तृतीय चरण में निराला जी की काव्य-रचना में दो प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से देखी जाती हैं। एक तो व्यंग्य-विडंबना की प्रवृत्ति का आरंभ और दूसरी, बृहत्तर काव्य-सृष्टि का समारंभ। ये बृहत्तर काव्य-सृष्टियाँ आख्यानमूलक रहीं और इनके निर्माण में भाषा और भावों का महाकाव्योचित औदात्य देखा जाता है। इस समय के उनके व्यंग्य-काव्य में वैयक्तिक प्रतिक्रिया दिखाई देती है। यद्यपि समीक्षकों ने इन उभयविध रचनाओं में कोई संबंध नहीं देखा, परंतु हम यह स्पष्ट देखते हैं कि इस समय की कृतियों में निराला जी का सहज प्रवेग और उनकी नैसर्गिक काव्य-क्षमता विघटित होने लगी थी और वे आलंकारिक साधनों

से उसे अतिरिक्त सज्जा देने का प्रयत्न कर रहे थे। विशुद्ध काव्योत्कर्ष की भूमिका पर निराला-काव्य का तृतीय चरण उनके द्वितीय चरण की अपेक्षा कमजोर ही पड़ने लगा था।

इसी अवधि में निराला जी का मानसिक स्वास्थ्य आंशिक विकार की सूचना देने लगा था।। वे 'परिमल' और 'गीतिका' की पूर्ण स्वस्थ और निर्मल भावनाधारा के स्थान पर क्रमशः वैयक्तिक अवसाद की भूमिका पर पहुँचने लगे थे। यहीं से निराला के काव्य का परवर्ती युग प्रारंभ होता है। यद्यपि इसकी निश्चित तिथि निरूपित करना कठिन है, पर द्वितीय 'अनामिका' में ५-१-३८ की लिखी उनकी 'मरण दृश्य' कविता की निम्नांकित पंक्तियाँ स्पष्टतः उनकी बदली हुई मनोभावना का परिचय देती हैं। यथाः

विश्व सीमाहीन,
बाँधती जातीं मुझे कर कर
व्यथा से दीन !
कह रही हों—"दुःख की विधि—
यह तुम्हें ला दी नई निधि,
विहग के वे पंख बदले—
किया जल का मीन ;
मुक्त अम्बर गया, अब लो
जलधि-जीवन को।"

अपनी गद्य-रचनाओं में भी निराला जी इन्हीं दिनों 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्लीभाट' आदि का निर्माण कर रहे थे।

परवर्ती काव्य-कृतियाँ :—

कहा जाता है कि निराला की परवर्ती रचनाएँ उनकी बदली जीवन-दृष्टि और विचारधारा का परिणाम थीं। कुछ समीक्षकों ने, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, इसे निराला का यथार्थवादी काव्य कहा है। हमें इस निबंध में यह देखना है कि समीक्षकों के इस कथन में कितना तथ्य है और साथ ही हम यह भी देखना चाहते हैं कि काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से ये परवर्ती रचनाएँ उनके पूर्ववर्ती काव्य से किस प्रकार का संबंध रखती हैं, वे श्रेष्ठतर हैं या ये श्रेष्ठतर हैं। इन दोनों के समाधान के लिए हमें निराला के समस्त परवर्ती काव्य पर एक विहंगम दृष्टि डालनी होगी।

सन् १९४० के पश्चात् प्रकाशित होने वाली निराला जी की निम्न-

लिखित पुस्तकें प्राप्त होती है—अणिमा (४२-४३), कुकुरमुता (४२), बेला (४६), नये पत्ते (४६), अर्चना (५०), आराधना (५३) तथा गीतगुंज (१९५६)। इन समस्त काव्य-कृतियों का धारावाहिक अनुशीलन करने पर इनकी प्रमुख प्रवृतियाँ स्पष्ट हो जाती हैं।

'अणिमा' में कुछ पुरानी कविताएँ भी जुड़ी हुई हैं, पर कुछ व्यंग्यात्मक नई कविताएँ भी हैं। महादेवी वर्मा, विजयलक्ष्मीपंडित आदि पर कुछ प्रशस्तियाँ भी हैं।

'कुकुरमुत्ता' निराला के परवर्ती काल की सर्वाधिक उल्लेखनीय कविता है। इसके व्यंग्य और हास्य को पूरी तरह समझना आसान नही है। प्रत्यक्ष रीति से तो यह देखा जाता है कि इसमें निराला जी ने गुलाब की भर्त्सना और कुकुरमुता की प्रशस्ति का आलेख किया है। पर यह प्रत्यक्ष तथ्य बहुत-कुछ भ्रामक है। वास्तव में निराला जी इस रचना में कुकुरमुता के मुँह से ही उसकी आत्मप्रशस्ति कराते हैं और एक महान अतिरंजना के द्वारा उसे सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट विभूति सिद्ध करते हैं। पर यह अतिरंजना स्वयं अपने में व्यंग्यात्मक है और कुकुरमुता की आत्मप्रशंसा हास्यास्पद सीमा पर पहुँचा दी गई है। वास्तव में निराला का आशय यह है कि कुकुरमुता की आत्मश्लाघा चाहे वह कितनी ही प्रामाणिकता का दावा करे, उसे गुलाब की बराबरी पर नहीं पहुँचा सकती। कुकुरमुत्ता निराला के लिए सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि हो सकता है, पर यह शिक्षा-संस्कृति-हीन वर्ग, संस्कृति के प्रतिनिधि गुलाब की तुलना नहीं कर सकता। आचार्य वाजपेयी जी के अनुसार," 'कुकुरमुत्ता' में निराला का संदेश यह है कि सामाजिक और मानवीय विकास के लिए सांस्कृतिक प्रौढ़ता पहली आवश्यकता है। अतएव कुकुरमुत्ता के आधार पर जो लोग निराला को प्रगतिवादी या मार्क्सवादी सिद्ध करना चाहते हैं, उन्हें इस कविता को पुनर्वार पढ़ना होगा।"

'बेला' और 'नये पत्ते' में निराला की प्रयोगात्मक रचनाएँ हैं। बेला में उन्होंने उर्दू शैली की गजलों का प्रयोग किया; पर इस रचना में उनकी सफलता आंशिक ही है। भाषा की दृष्टि से इसमें उर्दू, हिंदी और संस्कृत की खिचड़ी मिलती है, जो इस रचना के साहित्यिक उत्कर्ष में सबसे बड़ी बाधा है। हिंदी के जिन कवियों ने उर्दू के छंदों का प्रयोग किया है, उन्होंने प्रायः सर्वत्र उर्दू पदावली और मुहावरे भी अपनाए हैं; या फिर हिंदी की अपनी पद-रचना रखी है और उर्दू के केवल छंद लिये हैं

निराला जी ने इनमें से किसी एक पद्धति का प्रयोग न कर जो मिश्रित सृष्टि तैयार की, वह न तो उर्दू के, पाठकों के, न हिंदी के पाठकों के गले सुगमता से उतर पाती है। इसीलिये यह काव्य-पुस्तक एक प्रयोग बन कर ही रह गई है। जहाँ तक भावों और विचारों का संबंध है, इस रचना में कोई गंभीर भाव या विचार नहीं आये हैं।

'नये पत्ते' इस दृष्टि से अधिक सफल कृति है। इसमें निराला जी के यथार्थोन्मुख प्रयोग अधिक स्पष्टता से व्यक्त हुए हैं। 'खजोहरा' कविता में वे स्वच्छंदतावाद या सौंदर्यवाद का विरोधी दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं और एक स्नान करती हुई नारी की विपत्ति का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार 'स्फटिक शिला' नामक कविता में उन्होंने चित्रकूट की पवित्रता के स्थान पर कुरूप और कष्टप्रद परिवेश का चित्रण किया है। ये ही दो प्रमुख रचनाएँ हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि निराला अपनी सौंदर्यवादी विचार-दृष्टि को छोड़कर कुरूप यथार्थ के अधिक समीप पहुँच गये थे। परंतु ये रचनाएँ भी प्रयोग के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं और निराला के क्षणिक भाव-परिवर्तन की ही सूचना देती हैं।

परवर्ती गीतः—

'नये पत्ते' के पश्चात् निराला की शेष सभी कृतियाँ गीतात्मक हैं। उनके इन परवर्ती गीतों को हम निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) भक्ति, प्रार्थना और विनय के गीत जिनमें कवि ने आत्मसमर्पण की भावना व्यक्त की है। सांसारिक जीवन से खिन्न और क्षुब्ध होकर ये गीत प्रस्तुत किये गये थे।

(२) आत्मपरक गीत : इन गीतों में निराला जी ने आत्मवेदना का प्रकाशन किया है। इनमें वैयक्तिकता अधिक है, क्योंकि ये निराला जी के परवर्ती, काल की व्याधियों से संबंधित गीत हैं। इनमें शांत की अपेक्षा करुण रस की प्रधानता है।

(३) ऋतु और प्राकृतिक गीत : निराला जी प्रकृति के सौंदर्य के गायक रहे हैं। उनके आरंभिक गीतों से ही उनका प्रकृति-प्रेम झलकता रहा है। प्रकृति-संबंधी प्रारंभिक गीत अधिक उल्लासपूर्ण और सौंदर्य-प्रवण हैं। उनके परवर्ती प्रकृति-गीतों में वैसा उल्लास नहीं है। उसके स्थान पर उक्ति-कौशल और भाषा-अलंकरण अधिक आ गया है; फिर भी इनमें निराला की सौंदर्य दृष्टि नितांत लुप्त नहीं हुई है।

(४) इस काल में कुछ शृंगारिक गीत भी लिखे गये, पर उनमें वह ताजगी नहीं जो पूर्ववर्ती शृंगारिक गीतों में है।

(५) इन वर्षों में निराला जी ने दार्शनिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गीत भी लिखे; परंतु इनमें भक्तिभावना का प्राधान्य हो गया। इस प्रकार के उनके आरंभिक गीतों में पौरुष तत्व की प्रधानता थी, किन्तु परवर्ती गीतों में विनय और उपासना मुख्य हो गई।

(६) इस युग में निराला जी ने सामाजिक जीवन के वैषम्य से संबंधित कुछ प्रगतिवादी गीत भी लिखे; परंतु ये वाद की सीमा में नहीं आते। इनमें मानवीय सहानुभूति की प्रधानता और एक प्रकार की वितृष्णा भी है—'बादलराग' के से क्रांति के प्रखर स्वर नहीं हैं। कुछ प्रयोग-शैली के गीत भी हैं जिनमें यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

(७) शेष कुछ गीत विभिन्न विषयों से संबंधित हैं जिन्हें स्फुट गीत कह सकते हैं—निराला की यह गीत-सृष्टि जो उनके जीवन के अंतिम अनेक वर्षों की प्रमुख भावाभिव्यक्ति है, यह सूचित करती है कि वे पूर्णतः अपनी आध्यात्मिक भावना-धारा के समीप आ गये हैं। यद्यपि इनमें आत्मनिवेदन, विनय और वैयक्तिक समर्पण का पक्ष उनके पूर्ववर्ती गीतों से कहीं अधिक है; परंतु यह उनकी प्रगाढ़ होती हुई आध्यामिक भावना का ही परिणाम है। निराला की 'गीतिका' के गीतों में शृंगार रस की प्रमुखता रही है—यद्यपि वे शृंगारिक गीत भी एक दार्शनिक अनुबंध में बँधे हैं; परंतु ये परवर्ती गीत तो अधिकतर शांत और करुण रस से समन्वित हैं और निराला जी की तत्कालीन मनःस्थिति के द्योतक हैं। कुछ गीतों में सामाजिक वैषम्य के प्रति आक्रोश भी दिखाई देता है; परंतु इस प्रकार का आक्रोश तो उनकी आरंभिक कविताओं में भी व्यंजित हुआ है। वैसी स्थिति में उन परवर्ती गीतों की भावधारा निराला जी के एकदम नवीन और आमूल विचार-परिवर्तन का प्रमाण नहीं देती।"

यह केवल निराला की क्रमागत विचारधारा का एक अग्रिम और अधिक संवेदनशील स्वरूप है। निराला के ऋतु-गीत सन् २० से प्रारंभ होकर ६० तक बराबर चलते रहे। अतएव इन ऋतुगीतों में ही निराला-काव्य की निरंतरता का परिचय मिलता है। यह अवश्य है कि आरंभिक ऋतु-गीतों में निराला अधिक प्रसन्न और भावाकुल हैं

परवर्ती ऋतुगीतों में उतनी हार्दिकता कदाचित् नहीं है। उसके बदले उक्तियों का कौशल और चमत्कार बढ़ गया है। पर इन समस्त गीतों में निराला जी के प्रकृति-दर्शन का एक अटूट और अविच्छिन्न अनुक्रम प्राप्त होता है। यदि निराला की जीवन-दृष्टि में कोई मौलिक परिवर्तन हुआ होता, तो उनके ऋतु-गीतों में आदि से अन्त तक इतनी समरसता न मिलती।

समग्र आकलन—

ऊपर के संक्षिप्त विवरण और विवेचन के पश्चात् हम निराला-काव्य का आकलन करते हुए कह सकते हैं कि उनकी पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओं में पर्याप्त अंतर आ गया था; परंतु वह सारा अंतर उनकी जीवन-दृष्टि या विचारधारा को बदलने में अक्षम रहा। स्वभावत' कवि की वयस प्रौढता के साथ उसकी भावनाधारा अधिक सामाजिक हो गई। वह भारतीय समाज के विरोधों और असंगतियों से अधिक खिन्न और व्याकुल हुआ। वह अपनी निजी व्याधियों से आक्रांत भी था। और इसलिए उसमें शरणागति की भावना बढ़ गई। निराला जी वृहत्तर काव्य लिखने के महत्वाकांक्षी थे। अतएव उन्होंने कतिपय आख्यानों का आधार भी लिया, पर इस आख्यानक काव्य में वे अपनी मूल दार्शनिकता को प्रौढ और उदात्त रूप में ही उपस्थित कर सके। उनमें पांडित्य के तत्व भी पुष्टतर हुए; अतएव वे उर्दू छंदों और मुहावरों का भी प्रयोग कर सके। लोक लयों और लोकगीतों की भ। उन्होंने अनुवत्ति की; हास्य और व्यंग्य के जो प्रसंग उन्होंने अपनी पिछली कविताओं में उठाए उनमें यथार्थोन्मुख शैली के प्रचुर लक्षण हैं। भाषा सरल और मुहावरेदार हो गई; परंतु शैलीगत परिवर्त्तन को हम यथार्थवाद नहीं कह सकते, क्योंकि यथार्थवाद एक शैली ही नहीं, एक जीवनदृष्टि भी है। निराला की जीवनदृष्टि बुद्धिवाद, विज्ञानवाद और भौतिकवाद को सदैव चुनौती देती रही और इन रचनाओं में भी वह चुनौती मौजूद है। निराला के पिछले गीत इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि वह परिस्थितियों के आक्रमण से पूर्णतः परिक्लांत होकर एक आराध्य की शरण में आ गये थे। यह उनकी आध्यात्मिक भावना का ही प्रमाण और परिणाम है। जहाँ कहीं निराला ने यथार्थवादी भावनाधारा अपनाई भी, कुरूप यथार्थ का चित्रण किया भी, जैसे 'खजोहरा' और 'स्फटिक शिला' में; वहाँ वह एक आनुषंगिक प्रयोग से आगे नहीं गये। अपने अनुगीतों में उन्होंने प्रकृति क प्रति वही ८ लालसा और अनुरक्ति प्रकट की जो

उनकी समस्त कविता की आधारशिला है। इन सब प्रमाणों के रहते हुए निराला को स्वच्छंदतावाद की भूमि से हटकर यथार्थवाद का अनुयायी बताना केवल वाक्छल और वादी दुराग्रह का परिणाम है। प्रत्येक बड़ा कवि अपने विकास-क्रम में सांसारिक अनुभवों की अभिवृद्धि करता है। निराला के विकासक्रम में इन्हीं अनुभवों की अभिवृद्धि हुई। वे आकाश को छोड़कर पृथ्वी पर आये, पर उनका लक्ष्य पृथ्वी को मनुष्यों के रहने योग्य बनाना रहा। यह विशुद्ध मानववादी लक्ष्य था। इसमें किसी प्रकार का भौतिकवाद देखना, धुँधली दृष्टि का परिचायक है। निराला आरंभ से मानव-संस्कृति और मानव-स्वतंत्रता के उन्नायक कवि रहे और उनकी अंतिम समय की कव्य-रचना में भी इन्हीं आशयों की अभिव्यंजना हुई। निराला के निजी अनुभव क्रमशः कटु होते गये थे; उनकी सहानुभूति का क्षेत्र बढ़ता गया था। साथ ही, उनकी निजी वेदना भी गंभीर होती गई थी। वे अपने अंतिम समय में भारतीय सामाजिक जीवन की विकृतियों से अधिक क्षुब्ध थे। यही कारण है कि उनकी परवर्ती रचनाओं में उल्लास और सौंदर्य की अपेक्षा करुणा और क्षोभ के स्वर प्रधान हैं।

साहित्यिक तुलना :—

निराला जी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की जो संक्षिप्त रूपरेखा ऊपर दी गई है उससे ज्ञात होता है कि सन् ३८-३९ के आसपास उनकी ओजस्विनी, प्रसन्न, स्वच्छंद और प्रवाहमयी कविताधारा में परिवर्तन हुआ और वे क्रमशः बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के दबाव के कारण अधिक गंभीर, संवेदनशील भावधारा को अपनाने लगे। उनका आरंभिक आशावाद और क्रांतिवाद धीरे-धीरे एक प्रश्नचिन्ह से संयुक्त हो गया और वे अधिक विचारपूर्ण और संकल्पविकल्पात्मक कवितायें लिखने लगे। व्यंग्यों की पद्धति का सहारा लेकर वे अपनी बात कहने और कभी असाधारण आलंकारिकता की भूमि पर जाकर राम की शक्ति-पूजा और 'तुलसीदास' जैसी रचनाएँ प्रस्तुत करने लगे। एक ओर व्यंग्य और दूसरी ओर उदात्त का यह युग्म ऊपर से बेमेल दिखाई देता है और इसीलिये शंका होती है कि इन दोनों में कैसा तारतम्य है? इन दोनों प्रकार की रचनाओं में एक समानता यह है कि उनमें निराला-काव्य का स्वाभाविक और चिरपरिचित प्रवाह नहीं प्राप्त होता। इनमें एक प्रकार की मंदगति है। एक की भाषा यदि एक दिशा में व्यग्य-काव्य में अत्यधिक सरलता

क्लिष्ट और दुरूह भी हो जाती है। सन् १९४२ के पश्चात् निराला के मानसिक स्वास्थ्य में और भी गिरावट आई और वे 'कुकुरमुत्ता' जैसी हास्यप्रधान और 'खजोहरा' जैसी नग्न यथार्थ की सूचक काव्य-कृतियाँ प्रस्तुत करने लगे। व्यंग्य से हास्य की ओर अग्रसर होने में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह परिलक्षित होता है कि निराला जी जीवन के उच्च आदर्शों के प्रति और भी विरक्त हो गये थे और वे हँसी की हलकी भावना से जीवन-स्थितियों का साक्षात्कार करने लगे थे। व्यंग्य में सुधार की संभावना फिर भी बनी रहती है; पर हास्य में यह आस्था भी जाती रहती है। इसी प्रकार 'खजोहरा' या 'स्फटिक शिला' जैसी कृतियों में निराला पूरी तरह से कटु यथार्थ की स्वीकृति पर पहुँच गये। 'जुही की कली' से आरंभ करनेवाला कवि 'खजोहरा' की कुरूप भावभूमि पर पहुँच जायगा, इसकी कल्पना करना भी कठिन था। परंतु निराला के सामाजिक अनुभवों ने उन्हें क्रमशः कटु बनाया और उनके मानसिक विक्षेप में, उनके भावात्मक संतुलन में भी बाधा डाली। इन परवर्ती रचनाओं ने इसीलिये नकारात्मक दृष्टि की प्रधानता है—कोई सक्रिय या सोद्देश्य यथार्थ उनमें अभिव्यंजित नहीं है।

बीच-बीच में निराला जी ने अपनी पूर्व सांस्कृतिक चेतना के अनुरूप 'विक्रम द्वि सहस्राब्दी' जैसी कविताएँ भी लिखीं; पर ऐसी भावात्मक कविताओं की संख्या कम है। 'बेला' और 'नये पत्ते' जैसी प्रासंगिक काव्य-रचना से आगे बढ़कर निराला जी सन् ५० के पश्चात् निरंतर १० वर्षों तक केवल गीत ही लिखते रहे। यह संक्षिप्त गीत-सृष्टि स्वयं इस बात की सूचक है कि इन वर्षों में निराला जी किसी स्वच्छंद या प्रसरणशील भावधारा का प्रयोग और निर्वाह नहीं कर सके। उन्होंने छोटे गीतों में ही अपने आत्मोद्गारों और आत्मोच्छ्वासों को अभिव्यक्त किया। इन गीतों में जहाँ एक ओर करुणा और संवेदना के गंभीर स्वर हैं वहीं दूसरी ओर इनमें एक आहत संगीत भी है। कहीं-कहीं ये गीत विशृंखल भावनाओं और पदावलियों से भी आक्रांत हैं; पर सामान्यत: ये सभी गीत निश्छल भावोद्गारों के रूप में अत्यंत सरल भाषा का आधार लेकर प्रस्तुत हुए हैं।

यहाँ प्रश्न यह है कि साहित्यिक और भावात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य में किस प्रकार का संबंध है? यह साहित्यिक तुलना हिंदी के पंडितों और विद्वानों के समीक्षण का

विषय है ; परंतु निराला - काव्य के एक अध्येता के नाते हम यह कह सकते हैं कि विद्वानों को चाहे जो रचनायें अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ और साहित्यिक गुण-संपन्न प्रतीत हों, हमारी अल्प बुद्धि में निराला जी की भावनाधारा क्रमशः अधिक गंभीर और लोकोन्मुख होती गई और कतिपय विक्षेपपूर्ण स्थलों को छोड़कर उनका परवर्ती काव्य अधिक सरल, सहज और भावसंकुल हो सका है ।

क्रान्तिद्रष्टा निराला

आधुनिक हिन्दी साहित्य में निराला जी ने जिन प्राण-रूपों की प्रतिष्ठा की, उनसे हम अपरिचित नहीं हैं। उनके साहित्य में जीवन के 'श्रेय' और 'प्रेय', दोनों का अद्भुत समन्वय है। उनकी अर्चना का वह साकल्य मात्र है, जिसे उन्होंने प्राणों की भाँति प्रतिष्ठित किया है। जीवन-सरिता के मध्य लहराती वह अतुल भाव-राशि धवल दुग्ध-सी शत-शत उज्ज्वल फेनों में समुच्छ्वसित एवं सुवासित है। उसमें मधु और वासन्ती का सुन्दर योग है। किन्तु इन दोनों धाराओं के अतिरिक्त भी निराला की भाव-धारा यथार्थ भूमिका पर समुल्लसित है, जिसके लिए उन्हें गरल-पान कर नीलकण्ठ बनना पड़ा। जीवन के अन्तिम क्षणों तक उनके भाव किसी कालकोठरी में बन्द नहीं रहे। वे उन्मुक्त विचारों के साथ अपनी रचनाओं के प्रणयन में रत रहे। परिणामस्वरूप घेरों में बँधे हुए हिन्दी साहित्य को नई दिशाएँ और व्यापक क्षेत्र में विकसित होने का सुअवसर मिला।

आधुनिक हिन्दी काव्य-जगत् में प्रसाद, निराला और पन्त बृहत्त्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्राचीन युग में कालिदास, माघ और हर्ष का जो स्थान साहित्य में था आज वह प्रसाद, पन्त और निराला का है। यद्यपि निराला ने हिन्दी को कोई महाकाव्य प्रदान नहीं किया, किन्तु जीवन और जगत् का जो विचार उन्होंने किया, वह स्फुट रचनाओं में व्याप्त है। आत्मानुभूति के सहज प्रकाशन से लेकर वेदना, पीड़ा, निराशा और भारत माता का सजीव चित्र उनकी कृतियों में अंकित है। जिन अभावों की सिन्दूरी रेखाओं ने कवि निराला को क्रान्तिदर्शी और आलोकवान बनाया था वे ही एक ओर आत्म-विवृत्ति बन कर सौन्दर्य के संयोग या छायावाद के रूप में उद्भासित हुईं और दूसरी ओर प्रकृत रूप में यथातथ्य निरूपित करनेवाले प्रगतिवाद की प्रतिष्ठा हुई। सामाजिक का उन्होंने

'कुक्कुरमुत्ता' में अत्यन्त सटीक वर्णन किया। व्यंग्यात्मक शैली में जनता के प्रतीक कुक्कुरमुत्ता तथा पूँजीपति के प्रतीक गुलाब को उन्होंने प्रस्तुत कर साहित्य में नई भावनाओं की उद्‌भावना की थी। भावों के साथ ही शैली में भी निराला का निरालापन दिखाई देता है। उसमें उनके व्यक्तित्व की पूरी छाप मिलती है। इसीलिए हम वसुबन्धु और बाणभट्ट की रचना की भाँति समासगुम्भित निराला की रचना को शैली से ही अविलम्ब समझ लेते हैं। 'बेला' और 'नये पत्ते' में उनके नये प्रयोगों का समावेश है। निराला ने छंद और शैली में ही नहीं, गीतों की रचना में भी एक नई विधा (trend) की सृष्टि की। 'अर्चना' और 'आराधना' में जो तन्मयता दिखाई देती है उसके मूल में संगीत का समावेश मुख्य है। यद्यपि लोक-जीवन में वे क्रान्तिदर्शी थे, किन्तु कबीर की भाँति समाज-सुधार की आस्था उनमें नहीं थी। अतएव जहाँ व्यवहार में वे यथार्थवादी थे वहाँ आन्तरिक काव्य-चेतना में ज्ञानवादी भी। रहस्यानुभूति की विविध परतों में उनका यही रहस्य छिपा हुआ मिलता है।

निराला की क्रान्ति का दूसरा चरण है भारतीय विचारधारा का आत्मचिन्तन। उन्होंने स्वतन्त्र रूप से वेदान्त का अध्ययन कर निजी मान्यताओं का प्रकाशन किया था। वे 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है' इस मान्यता को लेकर नहीं चले। उन्होंने एक ही तत्व में नानात्व का सौन्दर्य निहारा। उनकी यह पकड़ मानसिक और भाविक अधिक प्रतीत होती है, तात्विक कम। अन्त में उनका यह भावलोक प्रज्ञा में परिणत हो जाता है। इस सत्य को कवि ने अपनी रचनाओं में कई प्रकार से व्यक्त किया है। उदाहरण के लिए—

भर देते हो,
बार-बार प्रिय करुणा की किरणों से
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो
मेरे अन्तर में आते हो देव निरन्तर,
कर जाते हो व्यथा भार लघु।

(परिमल, पृ० ११७)

तथा—"तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग, मैं चञ्चल गति सुरसरिता।"

× × ×

कहा जाता है कि निराला जी में दार्शनिक भावों की अतिशय गम्भीरता होने से काव्य में सहज बोधगम्यता नहीं है। किन्तु 'परिमल' की रचनाओं को समझ लेने के बाद यह कठिनाई बहुत-कुछ हल हो जाती

है। 'परिमल' का ही विकसित रूप 'गीतिका' में है। उनका 'तुलसीदास' खण्ड-काव्य आज भी हिन्दी-साहित्य में अपनी पद्धति की अकेली रचना है। उसमें उन्होंने सांस्कृतिक आदर्श को रंगीन चित्रों में भरने की चेष्टा नहीं की। इसलिए कुछ लोग उसके महत्व को समझने या बूझने में आनाकानी भी करते हैं, किन्तु मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण के साथ निराला ने तुलसीदास को जैसा हृदयंगम किया उसका अभिव्यक्त रूप 'तुलसीदास' है। हिन्दी साहित्य में आने के पूर्व ही निराला जी ने अपनी भूमिका की स्थापना बंगला-साहित्य में की थी। उसी से अनुप्रेरित हो वे कई विशेषताओं को हिन्दी में पूरी तरह समाहित कर सके। भिक्षुक, विधवा, बादल राग जैसी कविताओं में भी उन्होंने जीवन्त यथार्थ का चित्र खींचा है—

तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया
यह तेरी रण-तरी। (बादल राग)

वैयक्तिक जीवन में घात-प्रतिघातों से निराला के जिस कवि का निर्माण हुआ, वह पूर्ण पौरुष समन्वित है। वे किसी भी भूमिका में अपने से हारे नहीं। यह जीने की आस्था का सबसे प्रबल प्रमाण है। छायावादी कवियों में जो सबसे बड़ा दोष माना जाता है वह पलायनवादी होने का है। किन्तु निराला में पलायनवृत्ति का संश्लेष तक नहीं है। हाँ, वे इष्ट की अनुपलब्धि में अभ्यर्थना के साथ उपालम्भ और अर्चना, दोनों का सुन्दर मेल कर देते हैं; यथा—

नयन मुँदेंगे जब, क्या देंगे,
चिर प्रिय-दर्शन ?
सत सहस्र जीवन पुलकित प्लुत
प्यालाकर्षण ? (परिमल, पृ० ६३)

निराला ने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि सभी अंगों में साहित्य को समृद्ध बनाया। वस्तुतः उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। प्रसाद के बाद हिन्दी साहित्य के महारथियों में निराला का नाम अग्रगण्य है। उनके जीवन का पूरा प्रतिबिम्ब हमें उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। लेखक की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह व्यक्तित्व का पूर्ण विकास अपनी रचनाओं में कर सका। हिन्दी-साहित्य में वह विरल ही है महादेवी वर्मा का यह कथन

"तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा,
तुममें ढूँढ़ूगी पीड़ा।"

महाकवि निराला के चरित के सम्बन्ध में अत्यन्त युक्तियुक्त है। यथार्थ में वे सभी प्रकार से निराले थे। अतएव अभावपूर्ण जीवन में भी काव्य-चेतना का निर्माण कर शक्ति-सम्पन्न बने रहे। पन्त सुकुमारता के कवि हैं। प्रसाद अपने अभावों को अधिक दिनों तक जीवित नहीं रख सके। केवल निराला ही सभी संघर्षों से फौलाद बन टक्कर लेते रहे। अतएव कुछ आलोचक निराला की रचनाओं में उनके इस परुष रूप का दर्शन कराते हैं।

आज हिंदी साहित्य में काव्य-शैलियों के जो विभिन्न रूप दिखाई देते हैं, उनका बहुत-कुछ श्रेय निराला को है। मुक्त छन्दों की रचना का प्रथम कवि निराला ही माना जाता है। बाद में प्रसाद ने भी अतुकान्त और मुक्त छन्दों में कुछ कविताएँ लिखी थीं। कहा जाता है कि मुक्त छन्दों में कला नहीं दिखाई देती। किंतु निराला और प्रसाद तथा पंत की रचनाओं में ध्वनि-सौन्दर्य की व्यंजना, लय और गति से समन्वित प्राप्त होती है; जैसे—

आया भर दूसरा ही,
स्पन्दन तब हृदय में,
अन्वेषण नयनों में
प्राणों में लालसा। (परिमल, पृ० २१३)

हिंदी-काव्य में गद्य की रचना नई शैली की प्रवृत्ति है। उसमें शैली का अधिक विचार है। किंतु इस साहित्य की सृष्टि भी छायावाद की प्रतिक्रिया से संभव हुई है। इस प्रकार निराला ने साहित्य के जिन वट-वृक्षों का बीजारोपण विविध दिशाओं में किया था वे ही आज फूलते-फलते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। काव्य-परम्परा का विकास एवं विभिन्न अंगों का प्रकाशन उनकी सत् साधना का परिणाम है। क्या यह महाकवि के लिए कम गौरव की वस्तु है? फिर, उन्होंने अपने जीवन के हर क्षेत्र में दिया ही दिया—सब कुछ खोकर भी वे अन्तिम साँस तक कुछ न कुछ देते ही रहे। कुछ पाने के लिए, जीवन जी लेने के लिए उन्होंने अपने भावों को कदापि मैला नहीं बनाया। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। जिस हँसी-खुशी के साथ उन्होंने शूलों से गले मिलना सिखाया, उसके साथ ही अन्त में वे नि शेष भी हो गये। किन्तु इस आँच का आभास उन्हें पूरा था इसीलिए अदृष्ट की ओर सकेत करते हुए उन्होंने लिखा था

जब कहीं झड़ जायेंगी वे,
कह न पायेंगी।
वह हमारी मौन भाषा,
क्या सुनायेंगी। (परिमल, पृ० ३२)

और आस्था के साथ, जिस क्रान्तिदर्शी कवि ने पूर्ण आस्था के साथ इन पंक्तियों को दुहराया था—"अभी न होगा मेरा अन्त" उसके लिए हार कर यह कहना पड़ता है कि पौरुष का वह कवि, महाप्राण निराला अब हमारे बीच नहीं है। किन्तु उसकी आत्मा का आलोक अभी देदीप्यमान है और बना रहेगा। भला ! अभी तो उसको विदेह-लाभ मिला है। उसके नाम की पंखुरियाँ अब अपनी सुवास को दिगन्तों में ले जाकर विकीर्ण करेंगी।

शक्ति और अनुभूति का कवि निराला

बीसवीं शती के हिंदी कवियों में अधिक से अधिक छः-सात ही ऐसे हुए हैं, जिन्होंने अपने शुद्ध व्यक्तित्व का प्रामाणिक परिचय दिया है। निस्सन्देह कई अन्य कवियों ने कई उत्कृष्ट रचनाओं से हिंदी-काव्य की श्रीवृद्धि की है, किंतु समग्र रूप में अपने व्यक्तित्व की मुद्रांकित कविता प्रस्तुत करने का श्रेय छः-सात कवियों को ही प्राप्त हुआ है। अनुभूति जो कविता की मौलिक प्रेरणा होती है, सदा व्यष्टि से संबंधित रहती है। अतः गहन अनुभूतियों के मार्मिक चित्र उपस्थित करने के लिए सबल व्यक्तित्व अनिवार्य है। अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखते हुए भी, समष्टि के कल्याण के हित कविधर्म का पालन करनेवाले कवियों में महाप्राण निराला का विशिष्ट स्थान है।

जीवन तथा कवि-धर्म में समन्वय स्थापित करने तथा वाणी को सत्य का माध्यम बनाने के लिए जिस स्वानुभूत दर्शन की आवश्यकता होती है, वही कवि के व्यक्तित्व के निर्माण में निर्णायक वस्तु सिद्ध होती है। प्रतिग्राही समाज की सामयिक माँगों की पूर्ति के लिए उसका दर्शन उपयुक्त हो या न हो, देश की विचार-परम्परा में समय-समय पर होनेवाली शून्यता अथवा अर्द्धशून्यता को पूर्ण करने में वह सफल हो या न हो, काव्य-क्षेत्र में अपनी परम्परा की नींव डालने में उसे विजय मिले या न मिले; उसका महत्व असन्दिग्ध होता है। और ऐसे स्वानुभूत दर्शन से अपने अस्तित्व को चरितार्थ करनेवाले व्यक्तितव से युक्त कवि थे सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।

आज यदि हम उनकी समस्त काव्य-रचनाओं का एक साथ निरीक्षण करें तो उनका व्यक्तित्व ही पहले पहल उभर आता दिखायी पड़ेगा। एक अमोघ शक्ति के अजस्र स्रोत के रूप में उनके दर्शन होंगे। उनके काव्य

में सर्वत्र एक आवेग लक्षित होता है। सुखात्मक एवं दुखात्मक वृत्तियों मे कवि का जीवन जितने क्षणिक किंतु मर्मस्पर्शी अनुभव प्राप्त कर लेता है, उन्हें वह कल्पना के आवेग में उपस्थित करता है। निराला की प्रारंभिक कविता 'जूही की कली' से लेकर प्रत्येक रचना में यह सशक्त व्यक्तित्व एवं उसका तीव्र शब्दों में अभिव्यंजन द्रष्टव्य है।

निराला की कविताओं के वैविध्य को देखते हुए उनके व्यक्तित्व पर संदेह किया जा सकता है। कई भिन्न-भिन्न और कभी-कभी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ उनमें दृष्टिगत होंगी। किसी एक सिद्धांत का पालन करते हुए या किसी भाव-धारा से प्रवाहित होते हुए वे नहीं लिख सके। इस बात में वे हमारे अन्य प्रमुख कवियों से भिन्न हैं, जिन्होंने किसी भाव-धारा से अथवा किसी विचार-पद्धति से अपने व्यक्तित्व को सम्बद्ध करके उसमें अपनी प्रतिभा का चरमोत्कर्ष दिखाया है। प्रकृति की गोद में उन्मुक्त विलास करनेवाले पन्त ने अपने मुग्ध हृदय की भाव-लहरियों को, और नेत्रों में मोती भरे प्राणों की दीपमालिका जलानेवाली महादेवी ने अपनी तीव्र वेदना को जिन कविताओं में व्यक्त किया है, उनमें उत्कट अनुभूति का परिचय तो मिलता ही है, साथ-साथ उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट रूप भी उपलब्ध होता है। प्रसाद जी ने जहाँ प्रकृति के विभिन्न तत्वों में जीवन के निगूढ़ रहस्य ढूँढ़ निकालने का और मानव-हृदय के संकुल भावों के विश्लेषण का प्रयत्न किया है, वहाँ उनके गंभीर चिन्तन एवं अनुभूति से समन्वित व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं।

पर निराला इन सबसे भिन्न हैं। किसी एक प्रकार की कविताओं के आधार पर उनके व्यक्तित्व का निर्णय करना असंभव है। भावों की विविधता तथा अभिव्यंजन की विचित्रता के कारण विभिन्न श्रेणियों में आनेवाली उनकी कविताओं में से उनके व्यक्तित्व को ढूँढ़ निकालना सहज कार्य नहीं है। जो निराला 'तुम और मैं' में अद्वैत के निगूढ़ तत्वों की व्याख्या कर सके, वे ही 'अधिवास' में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के सिद्धान्त से विचलित हो गये। वे ही 'जूही की कली' के स्वच्छन्द विलास को वाणी-बद्ध कर सके, और भिक्षुक तथा विधवा की आर्तवाणियों को दिगंत तक मुखरित कर सके। और आश्चर्य की बात यह है कि इनमें कहीं भी अस्वाभाविकता का परिचय नहीं मिलता। निराला के व्यक्तित्व से परिचित लोगों को इसमें तनिक भी विस्मय नहीं होगा। इन सबमें जो भिन्न-भिन्न विचार-धारायें एवं मनोभाव उपलब्ध हैं वे सब कवि के व्यक्तित्व के ही अभिन्न अंग बन जाते हैं जिससे वह व्यक्तित्व अत्यन्त संकुल हो गया है।

वैयक्तिक जीवन तथा काव्य-साधना में जब वे अत्यन्त संतुलित दिखायी पड़ते हैं, तब भी उस प्रशांत चित्त के अन्दर अपरिमेय शक्ति समाये हुए एक ज्वालामुखी रहता है, और यह ज्वालामुखी कब फूटेगा, यह कहना किसी के लिए संभव नहीं होता। जब तक वह नहीं फूटता तब तक कवि प्रशांत रहता है, और जब फूट पड़ता है, तब घोर मानसिक चांचल्य का परिचय देता है। एक विशेष बात यह है कि दोनों दशाओं में कवि की सर्जना की प्रतिभा अक्षुण्ण रहती है। यही कारण है कि उनकी कविता इतने रूपों में सामने आयी है। इस तरह की विचित्रता एवं संकुलता के होने पर भी उस व्यक्तित्व के अभंग अंग के रूप में जो शक्ति एवं तीक्ष्णता है, वह सर्वत्र विद्यमान रहती है।

निराला एक विद्रोही कवि के रूप में हिंदी काव्य-क्षेत्र में आये। उन्हें बाल्यकाल से ही मल्लयुद्ध का शौक था; उनकी मनोवृत्ति भी कुछ-कुछ उससे प्रभावित थी। इसी भाव से और पूरे आत्म-विश्वास के साथ, रवींद्र से कुछ कम न पड़ने की प्रतिज्ञा करके उन्होंने काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। उन्हें जीवन में जितनी विपत्तियों का सामना करना पड़ा, साहित्य-क्षेत्र में जितनी आलोचना और अवहेलना सहनी पड़ी, वह कम नहीं थी।

'हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार'—अनामिका

उनके ये शब्द मानों उन्हीं के जीवन को प्रतिबिंबित करते हैं। हार को हार माननेवाली उनकी ईमानदारी और हार पर हार वरण करके भी सदा ऐंठी रहनेवाली उनकी आत्म-शक्ति कभी परास्त नहीं हुई। यही आत्म-शक्ति उनके सृजन की मूल प्रेरणा है और वह मुख्यतः दो रूपों में प्रकट हुई है—विद्रोह तथा संवेदना के रूपों में।

परम्परागत भावनाओं को तथा अभिव्यंजन-प्रणालियों को तिरस्कृत कर नयी पद्धतियों को स्वीकृत करने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं हुआ। परम्परा का यह उल्लंघन उनके लिए कोई शौक नहीं था, आवश्यकता थी। उन्होंने अनुभव किया कि इन परिपाटियों के बन्धन में रहकर अपने प्रति ईमानदार रहना असंभव है। उनकी अनुभूतियाँ इतनी गहन थीं कि उनके स्पष्ट एवं सम्यक प्रकटन के लिए काव्य-नियमों को तोड़ने को वे विवश हो गये। वैसे उन्होंने छन्द-बद्ध रचनाएँ भी कीं, पर सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि अन्य कविताओं से बढ़कर मुक्त छन्दों में उनकी कविता अनुभूति की अधिक तीव्रता प्राप्त कर सकी। १९१६ में जब 'जूही की कली' रची गयी तब वह छन्द के विरुद्ध ही विद्रोह नहीं था,

तत्कालीन निष्प्राण एवं उपरिप्लव कविता के विरुद्ध एक विद्रोह था। जब देश की सामाजिक परिस्थितियों के उपरि-स्वरूप के वर्णन में तथा विदेशी शासन एवं स्वदेश के कुसंस्कारों के विरुद्ध नारे लगाने में काव्यत्व का श्रेय समाप्त माना जाता था, तब निराला की काव्य-संबंधी मान्यता एक नये काव्य-रूप की सृष्टि के लिए सहायक सिद्ध हुई।

'जूही की कली' में तथा 'नर्गिस', 'शेफालिका' आदि में जो वैकारिक तीव्रता दृष्टिगोचर होती है, वही उनकी दूसरी मुख्य प्रवृत्ति है, जिसे उनके काव्य की आत्मा मान सकते हैं। 'जूही की कली' में जो तरल वैकारिकता मिलती है, और 'अधिवास', 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास' आदि में जो मानसिक द्वन्द्व प्राप्त होता है, वे दोनों उनके पूर्व के कवियों को पूर्णतः अज्ञात थे, और परवर्ती कवियों में भी अनेकों को अप्राप्य रहे।

यह वैकारिक तीव्रता एवं संवेदना कवि के विकास के साथ-साथ अधिकाधिक प्रौढ़ होती आयी है, और अपने उत्कृष्ट रूपों में हृदय के कोमलतम भाग में अगणित भावलहरियाँ निर्मित कर सकी है, एवं जीवन-विश्लेषण के अवसरों पर भी जड़ बौद्धिकता से बचकर एक रागात्मक वातावरण का सृजन कर सकी है। चाहे वे सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हों (जैसे 'भिक्षुक,' 'विधवा', 'धूलिकण' आदि में), चाहे प्रकृति के मनोज्ञ वातावरण को चित्रांकित करते हों, प्रत्येक दशा में उनका यह संवेदनात्मक रूप प्रकट हुआ है। भारतीय विधवा की उत्तप्त उसाँसों से और भिक्षुक की व्यथित आह से निराला का हृदय आर्द्र हो उठा, तो यमुना की चंचल लहरों को देखकर वे अतीत की स्मृतियों से भी अभिभूत हो उठे। सन्ध्या-सुन्दरी मानव-मात्र को निद्रा एवं विस्मरण प्रदान कर अनन्त करुणा दिखानेवाली है, और कवि के हृदय में एक कसक उत्पन्न करनेवाली है—

—मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती ;
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने;
अर्द्ध-रात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता एक विहाग

इस प्रकार प्रकृति की कोमल वस्तुओं पर मानवीय भावों का आरोप कर उन्हें एक वैकारिक विश्व में मूर्त एवं सजीव बना देनेवाला कवि जब मनुष्य के ही विकारों से उलझ पड़ता है, तब उसकी अनुभूति अधिक तीव्र रूप में प्रकट हुई है। जिस कवि को अपनी प्रिय पुत्री के निधन पर—

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था।
कुछ भी तेरा हित कर न सका॥

और,

कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण—'सरोज स्मृति'

कहकर तर्पण करना पड़ा, और अपने लंबे अनुभवों के फल-स्वरूप—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।

इस जीवन-दर्शन का आविष्कार करना पड़ा, उसकी अनुभूतियाँ कितनी तीव्र होंगी, संवेदनाएँ कितनी गहन होंगी, यह सहज अनुमाननीय है—विशेषकर जहाँ ये अनुभूतियाँ अन्तर्द्वन्द्व के रूप में प्रकट हुई हैं, वहाँ वाणी की शक्ति चरम सीमा तक पहुँची है। 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति-पूजा' आदि में मानसिक संघर्ष का गंभीर चित्रण मिलता है। वैकारिक संघर्ष के चित्रण में इतनी तीव्रता प्रसाद को छोड़कर हिंदी के और किसी कवि में नहीं मिलती। महादेवी और पन्त की अनुभूतियाँ कम तीव्र नहीं हैं, पर उन्हें शायद ही कहीं आन्तरिक संघातों को काव्य-बद्ध करना पड़ा हो। 'अधिवास' में कवि जीवन के ध्येय का परिचिन्तन करता है—

कहाँ ?
मेरा अधिवास कहाँ ?
क्या कहाँ ? रुकती है गति जहाँ—

कहते हुए आस्थावान अद्वैतवादी की भाँति जीवन के माया-मोह से मुक्त होकर निश्चल तत्व को प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हुए* कवि के हृदय को एक छोटी सी बात ही झकझोर देती है—

---

* 'परिमल' की ये पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं—

हमें जाना है जग के पार,
जहाँ नयनों से नयन मिले
ज्योति के रूप सहस्र खिले
सदा ही बहती है रस-धार
वहीं जाना इस जग के पार

तत्कालीन विषयगत एवं उपरिप्लव कविता के विरुद्ध एक विद्रोह था। जब देश की सामाजिक परिस्थितियों के उपरि-स्वरूप के वर्णन में तथा विदेशी शासन एवं स्वदेश के कुसंस्कारों के विरुद्ध नारे लगाने में काव्यत्व का ध्येय समाप्त माना जाता था, तब निराला की काव्य-संबंधी मान्यता एक नये काव्य-रूप की सृष्टि के लिए सहायक सिद्ध हुई।

'जूही की कली' में तथा 'नर्गिस', 'शेफालिका' आदि में जो वैकारिक तीव्रता दृष्टिगोचर होती है, वही उनकी दूसरी मुख्य प्रवृत्ति है, जिसे उनके काव्य की आत्मा मान सकते हैं। 'जूही की कली' में जो तरल वैकारिकता मिलती है, और 'अधिवास', 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास' आदि में जो मानसिक द्वन्द्व प्राप्त होता है, वे दोनों उनके पूर्व के कवियों को पूर्णतः अज्ञात थे, और परवर्ती कवियों में भी अनेकों को अप्राप्य रहे।

यह वैकारिक तीव्रता एवं संवेदना कवि के विकास के साथ-साथ अधिकाधिक प्रौढ़ होती आयी है, और अपने उत्कृष्ट रूपों में हृदय के कोमलतम भाग में अगणित भावलहरियाँ निर्मित कर सकी है, एवं जीवन-विश्लेषण के अवसरों पर भी जड़ बौद्धिकता से बचकर एक रागात्मक वातावरण का सृजन कर सकी है। चाहे वे सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हों (जैसे 'भिक्षुक,' 'विधवा', 'धूलिकण' आदि में), चाहे प्रकृति के मनोज्ञ वातावरण को चित्रांकित करते हों, प्रत्येक दशा में उनका यह संवेदनात्मक रूप प्रकट हुआ है। भारतीय विधवा की उत्तप्त उसाँसों से और भिक्षुक की व्यथित आह से निराला का हृदय आर्द्र हो उठा, तो यमुना की चंचल लहरों को देखकर वे अतीत की स्मृतियों से भी अभिभूत हो उठे। सन्ध्या-सुन्दरी मानव-मात्र को निद्रा एवं विस्मरण प्रदान कर अनन्त करुणा दिखानेवाली है, और कवि के हृदय में एक कसक उत्पन्न करनेवाली है—

—मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती;
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने;
अर्द्ध-रात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता एक विहाग।

इस प्रकार प्रकृति की कोमल वस्तुओं पर मानवीय भावों का आरोप कर उन्हें एक वैकारिक विश्व में मूर्त एवं सजीव बना देनेवाला कवि जब मनुष्य के ही विकारों से उलझ पड़ता है, तब उसकी अनुभूति अधिक तीव्र रूप में प्रकट हुई है। जिस कवि को अपनी प्रिय पुत्री के निधन पर—

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था।
कुछ भी तेरा हित कर न सका॥

और,

कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण—'सरोज स्मृति'

कहकर तर्पण करना पड़ा, और अपने लंबे अनुभवों के फल-स्वरूप—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।

इस जीवन-दर्शन का आविष्कार करना पड़ा, उसकी अनुभूतियाँ कितनी तीव्र होंगी, संवेदनाएँ कितनी गहन होंगी, यह सहज अनुमाननीय है—विशेषकर जहाँ ये अनुभूतियाँ अन्तर्द्वन्द्व के रूप में प्रकट हुई हैं, वहाँ वाणी की शक्ति चरम सीमा तक पहुँची है। 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति-पूजा' आदि में मानसिक संघर्ष का गंभीर चित्रण मिलता है। वैकारिक संघर्ष के चित्रण में इतनी तीव्रता प्रसाद को छोड़कर हिंदी के और किसी कवि में नहीं मिलती। महादेवी और पन्त की अनुभूतियाँ कम तीव्र नहीं हैं, पर उन्हें शायद ही कहीं आन्तरिक संघातों को काव्य-बद्ध करना पड़ा हो। 'अधिवास' में कवि जीवन के ध्येय का परिचिन्तन करता है—

कहाँ?
मेरा अधिवास कहाँ?
क्या कहाँ? रुकती है गति जहाँ—

कहते हुए आस्थावान अद्वैतवादी की भाँति जीवन के माया-मोह से मुक्त होकर निश्चल तत्व को प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हुए* कवि के हृदय को एक छोटी सी बात ही झकझोर देती है—

---

* 'परिमल' की ये पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं—

हमें जाना है जग के पार,
जहाँ नयनों से नयन मिले
ज्योति के रूप सहस्र खिले
सदा ही बहती है रस-धार
वहीं जाना इस जग के पार

देखा दुखी एक निज भाई,
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे।
झट उमड़ वेदना आयी
उसके निकट गया मैं धाय
लगाया उसे गले से हाय।

जग को और उसके सुख-दुखों को माया जानकर भी कवि इस माया-मोह में अपने को खो देने के लिए विवश-सा है—

'फँसा माया में निरुपाय'

कवि जानता है कि इस माया-बंधन को एक दम तोड़ फेंकने में ही मुक्ति है, दिल कड़ा करके पूरा निर्मम बनने में ही शाश्वत अधिवास की प्राप्ति है। तो फिर यह वैरुध्य क्यों? यह समझना भारी भ्रम होगा कि यह अन्तर्द्वन्द्व दुर्बलता का परिणाम है। दुर्बलता कभी दुविधा में नहीं पड़ती, चिंतन की आवश्यकता नहीं समझती। जीवन के तिक्त अनुभवों का भुक्त भोगी यह अनुभूति का पुतला उस अधिवास के अनुसंधान की आकांक्षा छोड़ देता है और एक बार दृढ़ता से घोषणा कर उठता है—

छूटता है यद्यपि अधिवास
किंतु फिर भी न मुझे कुछ त्रास!

वीणा की तंत्री जब पूरे ताव पर होती है, तब एक मन्द संस्पर्श भी उससे स्पष्ट स्वर का प्रसार करता है। ऐसा ही ताव है निराला के हृदय का जो स्वयं कितनी ही यातनायें सहन कर सकता है, पर मानवता को शोकमग्न देखकर विचलित हो जाता है।

'तुलसीदास' एवं 'राम की शक्ति-पूजा' में ऐसे दो व्यक्तियों के मनोलोक के दर्शन कराये गये हैं, जो घोर मानसिक पीडा का अनुभव करते हैं। तुलसी कवि बनने के पूर्व भी कम भावुक और रागात्मक न थे। अनुराग के सामने आत्म-बलिदान देने तक को वे सन्नद्ध थे। उनकी इस असीम रागात्मकता पर जो आघात हुआ, उसी के कारण उनके जीवन का दिशान्तर हो गया; एक ही व्यक्ति पर केंद्रित अनुराग अधिक विस्तृत ध्येय को पाकर उदात्त हो गया। तुलसी भौतिक जीवन के प्रति वीतराग होकर सांस्कृतिक एवं सामाजिक पुनरुत्थान के अग्रदूत हो गये। पर इसके लिए उनके कोमल मन को जिस पीड़ा का अनुभव करना पड़ा, उसे निराला जैसा कवि ही समझ सकता है।

राम की शक्ति-पूजा' में मानसिक द्वन्द्व की पृष्ठभूमि अत्यन्त

सुन्दर और सुघटित रूप में स्पष्ट की गयी है, जिससे राम की साधनाओं तथा उनके सहायकों की शक्ति का परिचय मिल जाता है। फिर भी राम को पराजय सहन करनी पड़ती है। घोर मानसिक यातना के पश्चात् जब वह अपनी पूरी आत्म-शक्ति को ही लड़ा देते हैं, तब जाकर विजय प्राप्त होती है। राम जब हताश एवं हतप्रभ होकर प्रलाप करते हैं—

> धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध।
> धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

तब मानों जीवन की लड़ाई में हारे हुए निराला की आहत आत्मा ही अपनी राम-कहानी कहती है। सान्ध्य-वेला में जब कि नैश अन्धकार अपना आधिपत्य स्थापित करने को उत्सुक होकर आगे बढ़ता आ रहा है, तब विपर्यस्त जटामुकुट सहित, श्लथ चरणों से मन्द-मन्द शिविर की ओर चलनेवाले राम को देख हमें उनके मानसिक संघर्ष का आभास मिलता है। अनुपम वीर तथा सत्य एवं धर्म का अनुसन्धित्सु होने पर भी राम को जिस परिस्थिति का सामना करना पड़ा, जिस मर्म पीड़ा का अनुभव करना पड़ा, उन सबकी यथार्थ अनुभूति उस कवि के लिए सचमुच सरल है, जिसने स्वयं अपने आदर्शों के पालन के लिए जीवन से ही लड़ाई ठान ली थी।

निराला की कविताओं पर प्रतिपाद्य विषय तथा व्यंजना-शैली के वैचित्र्य के रूप में पड़े हुए आवरण को हटाकर अवलोकन करें तो उन सबमें हम ऐसी एक आत्मा को पा सकेंगे, जो सतत द्वन्द्व संघर्ष में ही पलकर अपरिमेय शक्ति का स्रोत बन गयी है।

'राम की शक्ति-पूजा' में महाकाव्यत्व

निराला जी ने 'राम की शक्ति-पूजा' की वस्तु-योजना मनगढ़न्त ही नहीं की है। उन्होंने इस महान कविता के लिये दो आधार लिये हैं। पहिला आधार देवी भागवत का है। देवी भागवत में वर्णन आया है कि राम-रावण के अन्तिम युद्ध के पूर्व राम ने नारद के आदेशानुसार नवरात्रि का व्रत लिया और देवी को प्रसन्न किया। दूसरा आधार है शिव महिम्न स्तोत्र का जिसमें विष्णु द्वारा शिव की भक्ति-पूजा का जिक्र आया है। इसी वर्णन में पूजा के लिये एक सहस्र कमलों में एक कमल पुष्प कम हो जाने पर विष्णु चिन्तित हो उठे; किन्तु पुंडरीकाक्ष होने के नाते उन्होंने उस कमी को अपनी एक आँख द्वारा पूरी करने की चेष्टा की। इस पर शिव प्रसन्न हो गये। इसी तरह रावण मेघनादादि को भी युद्ध में ही घोर तपस्या करने पर शक्ति से वरदान प्राप्त हुए थे। इन्हीं पौराणिक एवं धार्मिक आख्यानों पर 'राम की शक्ति-पूजा' की कथावस्तु आधारित है। ऊपर कहा गया है कि राम की शक्ति-आराधना युद्ध के अन्तिम दिन नहीं होती। राम पूर्ण रूप से नौ दिनों तक नवरात्रि का व्रत रखते हैं तब तक युद्ध का संचालन-भार लक्ष्मण पर रहता है। शक्ति-पूजा में नारद का कार्य जामवन्त द्वारा सम्पादित होता है। वे ही राम को शक्ति-आराधना की सलाह देते हैं। विष्णु द्वारा शिव की पूजा के लिये सहस्र कमलों की कल्पना यहाँ राम द्वारा शक्ति-पूजा में भी दर्शाई गयी है। शेष सभी शिव-पूजा के समान ही है।

'राम की शक्ति-पूजा' काव्य की सम्पूर्ण कथा, स्थूल रूप से, पाँच भागों में विभाजित है। पहला भाग युद्ध से लौटती हुई वानर सेना के से आरम होता है सेना उदास एव निराश होकर अपने शिविरो

में वापस आ गयी है। लक्ष्मण का चित्त चंचल और घबराया हुआ है। इसीलिये समस्त वानरसेनाध्यक्ष राम के इर्द-गिर्द विचार-विमर्श के लिए बैठ जाते हैं और राम की अन्तिम आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं। दूसरे भाग में लंका में रात्रि का वर्णन है। इस जगह महाकवि ने कथा-सूत्र के शीघ्रतापूर्वक संचालन के लिए छोटे-छोटे स्मृति-चित्रों का सृजन किया है। इससे कथा में एकसूत्रता लायी गयी है। पुष्पवाटिका, धनु-भंग, सीता-मिलन, विश्व-विजय की आकांक्षा, ताड़का, सुबाहु, खर-दूषणादि के वध की स्मृतियाँ चित्रपट की तरह एक के बाद एक वर्णन की गयी हैं। इस दर्शन से रावण की विजय का स्पष्ट आभास मिलता है एवं राम चिंतित, व्यथित और शंकाकुल दिखाई देते हैं।

इसके शीघ्र ही बाद एक छोटी सी कथा की योजना है जिसमें हनुमान राम की विचलित मनोदशा देखकर दुखी हो जाते हैं। यहीं से कथा का तीसरा चरण आरंभ हो जाता है। स्वामी को चितातुर देखकर हनुमान आकाश में उड़ते हैं। वे सम्पूर्ण आकाश को अपने में समेट लेने को उद्यत हो जाते हैं। इस आकस्मिक कार्य से शिव भी भयभीत हो जाते हैं और महाशक्ति को सचेत करते हैं। फलस्वरूप शक्ति अंजना के रूप में अवतरित होती है और वह हनुमान को समझा-बूझाकर वापस भेजने में सफल होती है। हनुमान पुनः अपने स्वामी के पास लौट आते हैं।

चौथा भाग राम को चिन्तातुर देखकर विभीषण के कथन से आरंभ होता है। विभीषण राम को शक्ति की उपासना का परिचय देते हुए उन्हें उत्साहित करते हैं। अशोकवाटिका में सीता की विपन्न अवस्था तथा रावण के अकथनीय अत्याचारों का वर्णन कर उनकी रगों में उत्साह एवं बल का संचार करने की चेष्टा करते हैं। इसके बाद ही राम चित्रपट की भाँति देखते हैं कि महाशक्ति रावण को अपनी गोद में लिये हुए है और इसी कारण उनके समस्त तीर और प्रयास निष्फल जाते हैं। राम इस चित्र को स्मरण कर फिर उदासीन एवं निरुत्साहित हो जाते हैं और उनकी आँखें गीली हो जाती हैं? यहीं जामवन्त राम के समक्ष प्रस्तुत होकर उन्हें शक्ति की उपासना का परामर्श देते हैं और उनकी अनुपस्थिति में लक्ष्मण को सर्वोपरि सेनाध्यक्ष बना देने को कहते हैं। राम को यह सलाह पसन्द आती है और समस्त सेनाध्यक्ष प्रसन्न हो उठते हैं। राम की शक्ति-पूजा प्रारम्भ हो जाती है

पाँचवें चरण में राम योगी की तरह शक्ति की कल्पना कर आराधना का आरंभ कर देते हैं। हनुमान १०८ कमल पुष्प लाते हैं। आराधना के चरम पर एक कमल पुष्प की कमी हो जाती है। राम चिंतातुर हो जाते हैं, किंतु दूसरे ही क्षण अपना एक नेत्र, कमल के एक पुष्प की कमी की पूर्ति में प्रस्तुत करने को उद्यत हो जाते हैं। शक्ति प्रसन्न हो जाती है और वरदान के साथ ही निराला की महान कविता 'राम की शक्ति-पूजा' का अन्त हो जाता है।

शक्ति-पूजा की कल्पना बंगाल की शक्ति-पूजा से गृहीत प्रतीत होती है। बंगाल में शक्ति प्रचण्डता, करालता एवं असुर-विनाशिनी शक्ति के उग्रतम रूप में प्रदर्शित की गयी है। स्वामी विवेकानन्द के 'अम्बास्तोत्र' में तथा 'काली दि मदर' नामक उनकी अँग्रेजी कविता में शक्ति की कल्पना विकरालता एवं जगद्व्यापी रूप में ही की गयी है। विवेकानन्द ने शक्ति को आतंक माना है और उसकी श्वास में मृत्यु की कल्पना की है। वह सर्वसंहारिणी है। निराला जी की शक्ति-कल्पना भी प्रायः विवेकानन्द की तद्विषयक कल्पना से मिलती-जुलती ही है। निराला जी 'राम की शक्ति-पूजा' में लिखते हैं—

सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित शत-हरित-गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर
पार्वती कल्पना है इसकी, मकरन्द बिन्दु,
गरजता चरण-प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु,
दशदिक-समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि-शेखर,
लख महाभाव-मंगल पद-तल धँस रहा गर्व,
मानव के मन का असुर मन्द, हो रहा खर्व।

यह कल्पना विवेकानन्द से मिलती-जुलती ही है। इसी कल्पना को निराला ने काव्यात्मकता प्रदान की है। पर्वत के रूप में शक्ति की कल्पना की गयी है। शक्ति के चरणों में गरजता हुआ समुद्र है। यही सिंह-गर्जना का प्रतीक है। शक्ति सिंहवाहिनी है। दशों दिशाएँ शक्ति के दस हाथ हैं। भारतीय शास्त्रों में यह साधना योगियों की साधना मानी जाती है। राम की शक्ति-साधना भी योगियों के मार्ग के अनुरूप ही है—

चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस

योगी का मन इड़ा, सुषुम्ना तथा पिंगला को पार करता हुआ जब सहस्रार तक पहुँचता है तभी, योग शास्त्रानुसार, योगी को सिद्धि की प्राप्ति होती है। 'राम की शक्ति-पूजा' में आया है कि छठे दिन राम का मन त्रिकुटी पर पहुँचता है और ध्यान की एकाग्रता से द्विदल पर साधना पहुँचती है अर्थात देवी के पद पर साधना पहुँचती है। यह सब योगिक क्रियाएँ ही हैं। योग शास्त्रानुसार आज्ञा चक्र भौंहों के मध्य त्रिकुटी में स्थित है। इस पर स्थित होने से योगी को उच्चतम कोटि की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। साधना की अन्तिम स्थिति में राम का मन जिस सहस्रार को पार करता है वही सहस्रार योग का सहस्रदल कमल माना जाता है। इसकी स्थिति तालुमूल में है। यही सुषुम्ना का प्रवेश-द्वार है। इसी को ब्रह्मरंध्र कहा गया है। तालुमूल से सुषुम्ना नीचे की ओर विस्तरित होती है और मूलाधार चक्र में पहुँच कर वही कुंडलनी को जाग्रत करती है। और ऊपर की ओर अग्रसर होती हुई वही ब्रह्मरंध्र तक पहुँच जाती है। इस रंध्र के छः दुर्गों को कुंडलनी ही खोलती है। ब्रह्मरंध्र में ही प्राणशक्ति का वास है। अब इसे राम की शक्ति-साधना में देखिए कि राम ने अन्तर की गुप्त शक्ति को ही जाग्रत किया और अंत में समस्त शक्ति राम में विलीन हो गयी। इधर विवेकानन्द आत्मा में ही समस्त शक्तियों का निवास मानते हैं। अद्वैतवाद भी हमें यही शिक्षा देता है।

दूसरी स्थिति इस चिंतन में मनोवैज्ञानिक भी है। अर्थात् युद्ध में पराजय से राम के मन में अन्तर्द्वन्द्व होता है। सामरिक हार तथा बार-बार की निराशा से मन पूर्व स्मृतियों की ओर जाता है। राम पुष्पवाटिका में सीता-मिलन की याद करते हैं और धनुर्भंग का स्मरण होते ही उनमें वीरत्व जाग्रत हो जाता है। यह स्मृति-शृंखला एक तरह से रस की उद्रेकावस्था ही है। साधना की चरमावस्था में निराशा एवं विफलता की आशंका निराशा जाग्रत करती है। घोर निराशा में यह आत्मवंचना स्वाभाविक भी है। लेकिन इसी स्थिति में पूर्व स्मृतियों के सहारे से राम को एक युक्ति सूझती है और कौशल्या द्वारा बारबार 'राजीवनयन' कहे जाने की स्मृति के आधार पर नयन को ही कमल मान कर शक्ति-साधना में वे 'नयन' ही भेंट करने को उद्यत हो जाते हैं। यह मानसिक द्वन्द्व पर व्यक्तित्व की विजय ही कही जायगी।

चिंतन की तीसरी स्थिति निराला के स्वयं व्यक्तित्व की मानी जा सकती कवि के कथानकों में चरित्रों का निर्माण कवि के व्यक्तित्व

एवं स्वभाव के अनुकूल ही होता है। निराला का जीवन भी घोर निराशा और भयंकर अन्तर्द्वन्द्व का केन्द्र रहा। किंतु अपनी पुरुषोचित अडिगता ही उन्होंने राम के अन्तर्द्वन्द्व के बाद उनमें प्रदर्शित की।

'राम की शक्ति-पूजा' काव्य-कला की उत्कृष्टता का सर्वोत्तम उदाहरण है। भावों का औदात्य चरम पर स्थित है। कविता मूर्तविधान एवं कल्पना की दृष्टि से सर्वोपरि है। जहाँ इस कविता में वीरत्व व्यंजक परुष भावों का वर्णन है, वहाँ सौंदर्य के कोमलतम भावों का भी अनोखा सम्मिलन है। भावों के अनुरूप ही शब्द-चयन हुआ है। वीर रस के वर्णन में जहाँ कवि ने तदनुकूल शब्दावली का प्रयोग किया है वहीं उसने भावानुकूल वातावरण भी उपस्थित करने में चमत्कार दिखाया है।

हनुमान के आकाशगमन के वर्णन में ओजस्विता एवं विराट चित्र-कल्पना सफलतापूर्वक प्रदर्शित की गयी है। इस वातावरण के अनुकूल ही शब्दों की योजना, ध्वनि और भावों की सम्मिलित रूप से, व्यंजक रही है। इसी प्रकार का एक विराट चित्र लौटते हुए राम का है जहाँ उनके कंधों पर फैले हुए बालों की उपमा कवि ने दुर्गम पर्वत पर उतरते हुए रात्रि के अन्धकार से दी है। इस जगह कवि का प्रतीक-विधान विश्व के महानतम महाकवियों के प्रतीक-विधान की समकक्षता करता है। थोडे से शब्दों द्वारा ही विराट् भव्य चित्रों एवं भावों को काव्यबद्ध कर देने की क्षमता ही उसे महाकवि एवं उसके काव्य को महाकाव्योचित ठहराने के लिए पर्याप्त है। संसार के महान कवि जब अनन्त एवं विराट सत्ता के चित्रों को शब्दों द्वारा व्यक्त करते हैं तभी उनकी कविता निर्बन्ध होकर समस्त प्रकृति को अपने में बाँध लेने में समर्थ होती है। 'राम की शक्ति-पूजा' में ऐसे भव्य एवं विराट वर्णन सफलतापूर्वक कई स्थलों पर वर्णित हुए हैं। इस तरह का सृजन—महान प्रतीक-योजना-शक्ति—ही महाकाव्यत्व का लक्षण है।

यही नहीं, इस कविता में कोमल भावों का भी सफल चित्रण मिलता हैं; जैसे सीता से प्रथम मिलन की स्मृति में। प्रलय एवं विक्षुब्ध वातावरण के अवसर पर जहाँ—

शतघूर्णावर्त्त, तरंग भंग उठते पहाड़

और वीरत्वव्यंजक शब्दावली में जहाँ—

तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्रकर, वेग प्रखर

जैसी शब्दयोजना पायी जाती है, वहीं कोमलतम भावों की व्यंजना के लिये—

किसलय पराग मलय-वलय

आदि चित्र भी विद्यमान हैं। सचमुच शब्द ही यहाँ भावों के स्पष्टीकरण के लिए पर्याप्त हैं। वातावरण एवं भावानुकूल शब्द-योजना तथा अनेक रसों के एक ही काव्य में सफल वर्णन सफल कवि ही कर पाते हैं। तुलसी ने राम के चरित में वीर, शांत तथा शृंगार का एक साथ ही अनुपम वर्णन किया है। निराला ने भी 'राम की शक्ति-पूजा' में यही सफलता प्राप्त की है। निराला ने इस कविता में पौरुष, ओजस्विता, आध्यात्मिकता, दार्शनिकता एवं रोमांटिक प्रवृत्ति (स्वच्छन्दतावादी) के दर्शन एक साथ कराये हैं। इसीलिए इस वर्णात्मक रचना में महाकाव्योचित गांभीर्य एवं औदात्य प्राप्त होता है।

प्रश्न यह उठता है कि क्या, स्थूल रूप में पाँच भागों में विभक्त, इस कविता को, महाकाव्य की शास्त्रीय शैली के अनुसार, कार्य की पाँच अवस्थाओं से सम्बद्ध किया जा सकता है? मूल कथा में हनुमान के वृत्त से मूल कथा आगे को अग्रसर नहीं होती बल्कि एक प्रासंगिक कथा सी लगती है। किंतु यह कथा अपने आप में पूर्ण भी है। पूरी 'राम की शक्ति-पूजा' में यह कथा अन्तर्कथा के समान प्रतीत होती है, इस अन्तर्कथा में कार्यावस्था का नियोजन भी नहीं होता। वस्तुतः कार्य का आरंभ तो मूलकथा के चौथे विभाग से आरंभ होता है। इसके पूर्व तो यह भी जान लेना कठिन है कि राम की शक्ति-पूजा का उद्देश्य क्या है? मूल उद्देश्य तो जामवन्त के प्रस्ताव करने के बाद ही सामने आता है। महाकाव्य की गरिमा जानने के लिए इस पर ध्यान देना भी व्यर्थ सा ही प्रतीत होता है; क्योंकि देखा जाय तो आधुनिक महाकाव्यों में शास्त्रीयता से चिपके रहना प्रायः समाप्त हो गया है। 'कामायनी' महाकाव्य में भी पूर्णतः शास्त्रीयता के दर्शन कहाँ होते हैं? वहाँ भी तो शास्त्रीयता को एक ओर रखकर पूर्ण स्वच्छन्दतावादी रीति का अनुसरण किया गया है। इसी तरह 'राम की शक्ति-पूजा' में महाकाव्य के बाहरी उपकरण ढूँढ़ना वेकार है। उसमें तो व्यंजनार्थ की अवस्थिति ही देखना अभीष्ट होना चाहिए।

'राम की शक्ति - पूजा' में महाकाव्य की खोज में सबसे पहिले भाषा की ओर ध्यान देना है। आदि से अन्त तक इस कविता में एक असाधारण उत्कर्ष एवं गांभीर्य्य के दर्शन होते हैं। दूसरा उपक्रम है चित्रण। चित्रण के सम्बन्ध में स्पष्ट ही है कि इस कविता के प्रायः सभी चित्रण भव्य, विराट एवं वातावरण के अक्षरशः अनुकूल हैं। ये समस्त चित्रण महाकाव्योचित शैली के अनुरूप हैं। हनुमान के आकाशगमन के प्रसग में पाठक पर अलौकिक प्रभाव भी स्पष्ट ही पडता है इन सभी

गुणों से कविता में असाधारण औदात्य प्रकट होता है। कविता में भावों के अनुरूप गांभीर्य्य एवं उदात्त उन्मेष का प्रयत्न भी सर्वत्र ही दर्शनीय है।

'राम की शक्ति-पूजा' में यथेष्ट रूप से नाटकीयता भी पायी जाती है। शक्ति की साधना की चरमावस्था में नेत्रों की भेंट एवं देवी का प्रसन्न होना, यह कविता की चरम नाटकीय स्थिति है। और यह आयोजन भावों के तीव्र संघात को नियोजित करने के हेतु ही किया गया है। साधारणतया महाकाव्यों में पौराणिक कथानकों का ही आधार गृहीत होता है। कल्पना के स्वतंत्र विस्तार के लिए अतीत के कथानक ही श्रेष्ठ होते हैं; क्योंकि जो चमत्कार-बोध अतीत की दूरी के कारण सहज गम्य हो जाता है वह अन्य प्रकार से सुलभ नहीं। वैसे भी परम्परागत भावनावश पौराणिक कथानक ही महाकाव्य के सृजन के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। शक्ति-पूजा में भाषा के औदात्य ने ही इस कविता को अधिकांश में महाकाव्यत्व प्रदान किया है। इतना होने पर भी यथार्थतः 'राम की शक्ति-पूजा' महाकाव्य नहीं है। उसे महाकाव्य का एक सर्ग घोषित करने में कोई आपत्ति नहीं। महाकाव्य में जीवन की सम्पूर्णता का दिग्दर्शन परमावश्यक होता है; किंतु 'राम की शक्ति-पूजा' तो जीवन का एक खण्ड चित्र भर है। निराला ने निस्संदेह इसी खण्ड चित्र में महाकाव्यत्व भरने में कोई कसर नहीं की है और निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वे इसमें पूर्ण रूप से सफल भी हुए हैं।

रामायण

निराला का 'रामायण' (विनयखंड) काशी के 'श्रीराष्ट्रभाषा विद्यालय' से सं० २००५ वि० में प्रकाशित हुआ था। यह तुलसीदास-कृत 'रामचरितमानस' के आरंभिक अंश ('मानस' के १२० दोहे तक) का खड़ीबोली हिंदी में रूपांतर है। इस अनुवाद के मूल में हमें दो कारण निहित दिखाई पड़ते हैं। एक, निराला की राम और तुलसीदास के प्रति भक्ति और दूसरा, 'मानस' को अधिक से अधिक लोगों के लिए सुलभ तथा बोधगम्य बनाने की चेष्टा। दूसरे कारण के संबंध में यह स्मरण रखना है कि हिंदी की एक बोली अवधी में लिखे जाने के कारण 'मानस' उत्तर भारत के हिंदी-भाषा प्रदेशों में ही विशेष रूप से बोधगम्य है। भारत के अहिंदीभाषी दक्षिण तथा अन्य प्रदेशों में इसे समझने में पाठक तथा श्रोता को कठिनाई होती है। परंतु खड़ीबोली हिंदी का व्यवहार भारतव्यापी है और यह निखिल भारत में अल्पाधिक रूप में समझी जाती है। खड़ीबोली हिंदी का जानकार भारत में कहीं भी जाकर अपनी बात को दूसरों पर प्रकट कर सकता है। ऐसी स्थिति में 'रामचरितमानस' के खड़ीबोली हिंदी में रूपांतरित हो जाने से उसके सारे भारत में समझे जाने की संभावना है। दक्षिण भारत की, हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन की ओर विशेष रुचि है। वहाँ के लोग खड़ीबोली हिंदी तो भली भाँति समझ लेते हैं, किंतु अवधी और ब्रज को समझने में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक बार हिंदी की एम. ए. कक्षा के, दक्षिण के एक छात्र ने मुझसे कहा था कि खड़ीबोली हिंदी तो हम अच्छी तरह समझ लेते हैं, मगर अवधी और ब्रज को समझने में हमें बहुत दिक्कत होती है
निराला का ऐसे लोगों के लिए निस्संदेह ही उपयोगी सि-

इस रूपांतर के पहले कारण की ओर भी हमने संकेत किया है निराला में तुलसीदास के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी और राम के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करने के लिए उन्होंने 'राम की शक्ति-पूजा' लिखी, जो महाकाव्य न होते हुए भी महाकाव्य की प्रवृत्तियों से संपन्न छोटा काव्य है और जिसमें निराला ने राम को कर्तव्य की पूर्ति के लिए एक नवीन साधन में रत दिखाया है, जो साधन हिंदी-साहित्य के लिए सर्वथा मौलिक है। उनका 'तुलसीदास' नामक काव्यग्रंथ भी इसी कोटि का है, जो तुलसीदास के प्रति श्रद्धा के कारण ही लिखा गया था।

एक बार 'रामायण' की पांडुलिपि दिखलाते हुए निराला ने मुझसे कहा था—'स्पीरिट और ढंग वही है, भाषा अपनी है।' 'वही' से उनका तात्पर्य तुलसीदास-कृत 'रामचरितमानस' से था। इसमें संदेह नहीं कि इसमें भाषा निराला की है और सब कुछ तुलसीदास का ही है। निराला ने पदावली भी प्रायः तुलसीदास की ही रखी है—विशेषतः वहाँ जहाँ सामासिक पदावली है। इस प्रकार निराला का 'रामायण' अधिकांश स्थलों पर तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का-सा ही है—

मंगलकरा कलिमलहरा तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कुटिल कविता-सरित की जो परम पावन पाथ की।
प्रभु - सुयश - संगति भणित - कलि होगी सुजन-मन-भावनी,
भव-अंग - भूति श्मशान की सुमरे सुहावन - पावनी।

(रामायण)

मंगल करनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की।।
प्रभु-सुजस-संगति भनिति भलि होइहि सुजन-जन-भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनी।

(रामचरितमानस)

इन उद्धरणों को देखने से ज्ञात होता है कि निराला के रूपांतर में तुलसीदास की 'स्पीरिट' और उनके 'ढंग', दोनों की रक्षा की गई है। तुलसीदास तथा निराला, दोनों के काव्यों में भाषा तथा शैलीगत समान प्रवाह है।

इसका भी स्मरण रखना आवश्यक है कि अनुवाद-संबंधी वैसी ही कठिनाइयाँ निराला के सम्मुख भी थीं जैसी अन्यों के सामने रहती हैं। काव्य का रूपांतर काव्य में—और एक पंक्ति का रूपांतर प्रायः एक ही पंक्ति में—होने के कारण कठिनाई और भी बढ़ जाती है रूपांतर में

ऐसी कठिनाई उपस्थित होने पर निराला ने अपनी बुद्धि के अनुसार श्रेष्ठ के संग्रह और सामान्य के त्याग पर दृष्टि रखी है। निम्नलिखित उद्धरणों न निराला ने एक ही उदाहरण दिया है, 'मानस' में दो उदाहरण हैं—

नहीं निबाह उधरने पर। कालनेमि जैसे कपि के घर।
(रामायण)

उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।
(रामचरितमानस)

+ + +

बक हंस को, कुजात जात को। हँसे मलिन खल विमल बात को।
(रामायण)

हंसहिं बक दादुर चातक ही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही।
(रामचरितमानस)

इसमें निराला ने 'दादुर, चातक' की जगह 'कुजात, जात' कर दिया है। इससे तात्पर्य तो आ गया, मगर वे ही शब्द नहीं आ पाए। निम्नलिखित उद्धरण में भी तात्पर्य पर ही दृष्टि रखी गई है—

भाषा - भणित, अल्पमति मेरी। हँसने योग्य, नहीं त्रुटि तेरी।
(रामायण)

भाषा भनित भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहीं खोरी।
(रामचरितमानस)

रूपांतर की कठिनाई एवं परिवर्तन पर दृष्टि के कारण मूल की अभिव्यक्ति से अपर अभिव्यक्ति भी यत्रतत्र हुई है। ऐसा करने से, मेरी ष्टि से, कहीं-कहीं अभिव्यक्तिगत सौंदर्य बढ़ गया है—

हरि-गुण-गाथा कहते - सुनते। शिव के दिन बीते सुख बुनते।
(रामायण)

कहत-सुनत रघुपति-गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा।
(रामचरितमानस)

कहना न होगा कि 'दिन बीते सुख बुनते' में 'कछु दिन तहाँ रहे' ी अपेक्षा अधिक सौंदर्य है, इसमें अभिव्यक्तिगत मार्मिकता है। इसी .कार एक स्थान पर निराला ने 'वर्णन करना' के लिए 'छंदना' ('छंद' नामधातु की क्रिया) का प्रयोग किया है, जो 'वर्णन करना' का अर्थ ने के साथ ही 'छंदों में वर्णन करना' का भी अर्थ देता है—

साधु-असाधु-चरण मैं बंदूँ। दुखप्रद उभय, बीच कुछ छंदूँ।
( )

बंदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना :
(रामचरितमानस)

ऐसे स्थलों पर निराला नवीन अभिव्यक्तियों के कर्तावाले अपने पुराने रूप में सामने आते हैं।

निराला ने 'बृहत् दोहा' के अतिरिक्त वे ही छंद ग्रहण किए हैं जो 'रामचरितमानस' में प्राप्त हैं, अर्थात् दोहा, चौपाई, सोरठा और हरिगीतिका छंद अपने रूपांतर में भी उन्होंने रखे हैं। तुलसीदास ने कुछ अन्य छंदों का भी उपयोग किया है, किंतु वहाँ तक 'रामायण' में अनुवाद ही नहीं है। 'बृहत् दोहा' का उदाहरण दे रहा हूँ—

जो अपार नद, नृपों ने किए सेतु जिन पर सुघर।
पिपीलिका भी परम-लघु उनसे पार हुई निडर।

+ + +

पिता-भवन, उत्सव परम, यदि मुझको आदेश हो।
तो मैं जाऊँ देखने, शत - शत वंदन आपको।

'रामायण' के 'निवेदन' में निराला ने अपने द्वारा व्यवहृत छंदो के संबंध में कहते हुए यह भी कहा है—

'कहीं कुछ परिवर्तन भी है, भाषा में न आ सकने के कारण जैसे बृहत् दोहा एक नपा हुआ है····। इससे छंदशास्त्र की एक वृद्धि हुई है।'

बृहत् दोहे में निराला ने प्रायः लघु-गुरु का ही क्रम रखा है। यत्रतत्र ही लघु-लघु का विधान है, जैसा कि ऊपर के एक बृहत् दोहे में है। यह भी स्मरण रखना है कि बृहत् दोहा 'रामायण' में कम है। छंदशास्त्र में 'बृहत् दोहा' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। इस रूप का भी कोई छंद नहीं है। यह छंद निराला की अपनी रचना है। उद्धरण से भी यह बात प्रमाणित है।

'निवेदन' में निराला कहते हैं—

'आशा है, पाठक पढ़कर राष्ट्रभाषा के विस्तार के प्रयत्न में हमारा उत्साह बढ़ाएँगे।'

इसमें संदेह नहीं कि इसके अनुवाद में निराला का लक्ष्य 'राम-चरितमानस' को अहिंदी भाषा प्रदेशों में पहुँचाना था जिसकी ओर हमने आरंभ में ही संकेत किया है।

विशुद्ध भक्त्यात्मक गीतिकार तुलसीदास और निराला

तुलसी-साहित्य में जितनी सामाजिक चेतना, जनजीवन की प्रतिच्छाया, मानवरूपों की सम-विषम राग-रागिनी, क्रान्तिकारिता एवं क्रान्तिदर्शिता उपलब्ध होती है उतनी निराला को छोड़कर हिन्दी के किसी अन्य कवि की कृतियों में कदापि नहीं परिलक्षित होती। किंतु यह भी अविवाद्य ही है कि तुलसी और निराला प्रवृत्त्या एवं मूलतः भक्त हैं। यह नही विचार करना है कि भक्तिभाव के क्षेत्र में किसने पहले पदार्पण किया, किसने बाद में, किन्तु दोनों के अधिकांश गीतों में भक्ति की मंदाकिनी प्रवाहित दीखती है।

तुलसी को अबोध बचपन से ही द्वार-द्वार बिललाना पड़ा। उन्हें चने के चार दानों को ही चतुर्फल की तरह स्वीकार करना पडा (कवितावली ५, ६३)। जब माता-पिता ने परित्यक्त किया, निष्ठुर विधि ने भाल में कुछ भलाई नहीं लिखी (कवितावली ७, ५८) तो बेचारे के भौतिक दुःख के पारावार का क्या कहना !

निराला भी बाल्यकाल से जीवन-रण में जूझते रहे और अन्त में उन्हें पराजय ही मिली—

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार। अनामिका।

सरोज के क्रूर निधन ने तो उन्हें और भी हतदर्प-हतप्रभ कर दिया। बडी पीड़ा के साथ उन्होंने लिखा—

दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

—अनामिका, सरोज-स्मृति।

सचमच इस भग्न तन, रुग्ण मन और विषण्ण जीवन से क्या

होनेवाला है ! देह क्षीण-क्षीण हो गई। गेह जीर्ण है। प्रलय मेह घिर आये हैं। हाथ चलता नहीं और कोई साथ भी देता नहीं ; इसलिये वह विनत माथ होकर प्रभु की शरण में उपस्थित हुआ है (आराधना—गीत संख्या ६२)।

यह स्थिति ठीक तुलसी की स्थिति है। सब ओर से द्वार बंद देखकर, हताश-निराश होकर प्रभु की शरण वे आ गये हैं। इसलिए वे कहते हैं—

जयति वैराग्य विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप ताप हर्त्ता।
दास तुलसी चरण शरण संशयहरण देहि अवलंब वैदेहि-भर्त्ता।।

—विनयपत्रिका, पद ४४।

तुलसी ने अनेकानेक देवी-देवताओं, पावन सरिताओं एवं तीर्थस्थानों का स्तवन इसलिए किया कि उन्हें रामभक्ति का अनुपम वरदान मिल जाय (विनयपत्रिका, १, २ आदि)। निराला ने भी सुरसरि-स्तवन—(अर्चना) एवं वाणी-वंदन (गीतिका, १) किया है ; लेकिन उन्होंने किसी में राम-भक्ति का उल्लेख नहीं किया। तुलसी ने अनेकानेक देवों की स्तुति कर, राम से अभिन्न दिखलाकर, पुनः राम को सर्वोपरि सिद्ध किया जो अनन्य भक्ति का उत्कृष्टतम अभिसाक्ष्य है (विनयपत्रिका ४९, ६३, १४५, ३)। निराला ने भी अनेक का नामोच्चरित किया। उन्होंने कृष्ण-कृष्ण, राम-राम, हजार नाम जपे हैं (आराधना, १२)। उन्होंने काम-प्रशमन राम तथा अरि-दल-दलन शंकर की एक साथ स्तुति की है (अर्चना, १००)। इस पद में तो शिव, विष्णु, कृष्ण तथा राम, सबको समन्वित कर दिया गया है—

जय अजेय, अप्रमेय।
जय जग के परम पार।
जय जीवों के जप के।
तप के तनु-सूत्रहार।
गरल-कंठ हे अकुंठ
बैठक बैकुंठ धाम।
जय जय शिव, जय विष्णु जिष्णु
शंकर, जय कृष्ण, राम
शत विध नामानुबंध
बाधय हे निराकार।

जय अजेय अप्रमेय
जय जग के परम पार। आराधना, ६४।

किंतु जिस प्रकार तुलसी ने राम के प्रति अपने भक्ति-पूरित हृदयोद्गार समर्पित किये, ठीक उसी प्रकार निराला ने राम के चरणों में ही अपनी द्रवित आस्था का अर्घ्यदान दिया। वे कहते हैं—

अशरण-शरण राम
काम के छवि-धाम।
ऋषि मुनि मनोहंस
रवि-वंश, अवतंस
कर्मरत - निश्शंस
पूरो मनस्काम। आराधना, ४८।

ऐसे भक्तिपरक गीतों के सृजन के मूल में कुछ सर्वश्रेष्ठ भावनाएँ बीजरूप में अंकुरित होती हैं कि उसका आराध्य सर्वश्रेष्ठ है, सर्ववंद्य है और वह स्वयं सर्वनिकृष्ट एवं सर्वोपेक्षित। यदि उसका स्वामी अकलुष, पावन-धवल है तो वह पाप-कर्दमित, अपावन-मलिन। लेकिन तुलसी के भगवान और भक्त का अंतराल हिमालयवत् है, वहाँ निराला के भगवान और भक्त की मध्यरेखा अपेक्षाकृत अतिलघु। तुलसी ने ब्रह्म और जीव के संबंध की चर्चा की है और निराला ने भी, लेकिन वहाँ भी वैभिन्य स्पष्ट है।

तुलसी की धारणा है—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी,
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी।
—विनयपत्रिका, ७९।

× × ×

हौं जड़ जीव, ईश रघुराया
तुम मायापति, हौं बस माया
हौं तो कुजाचक, स्वामि सुदाता
हौं कपूत, तुमहौं पितुमाता। —वही, १७७।

निराला की उक्ति है—

तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष,
मैं प्रकृति, प्रेम-जंजीर
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति
तुम रघुकुल-गौरव
मैं सीता अचला भक्ति —परिमल, पृष्ठ ८६

तुलसी ने प्रभु-प्राप्ति के कई साधन बतलाये हैं। ये ज्ञान-भक्ति नामक साधन सत्य हैं, झूठ नहीं; लेकिन प्रभुकृपा सर्वोपरि है (विनय पत्रिका, ११६)। पुनः वे रघुपति को सर्वाधिक सुलभ एवं हितकारी बताकर उनकी भक्ति करने की सीख देते हैं (विनयपत्रिका, १३६, १०)। निराला भी भक्ति, योग, कर्म, ज्ञान, सबको एक ही मानते हैं; लेकिन फिर भी उनके प्रभु ने भक्ति के भावनामय-प्रेम-पिपासुओं को अतिशय सेवाजन्य प्रेम का उपदेश दिया (परिमल, पंचवटी-प्रसंग)।

भक्ति के साधन के रूप में सत्संग का बड़ा महत्त्व है। तुलसी तो सत्संग के बिना भक्ति का होना मानते ही नहीं (विनयपत्रिका, ८४)। निराला भी सत्संग की कामना करते हुए कहते हैं—

दो सदा सत्संग मुझको
अनृत से पीछा छूटे
तन हो अमृत का रंग, मुझको।

× × ×

शान्त हों कुल धातुएँ ये
बहे एक तरंग
रूप के गुण गगन चढ़कर
मिलूँ तुमसे, ब्रह्म.......... (अर्चना, २१)।

तुलसी का प्रभु अशरण-शरण है। वह माया-भंजक है। वह चाहे तो जगत के सारे क्लेश दूर हो जायँ, वह चाहे तो षड्विकारों को हर ले। वह ऐसा पतित-पुनीत और दीनहित है कि उसने खग, गणिका, गज-व्याध का पाप-प्रक्षालन कर दिया। तुलसी को इस कास ने बड़ा सताया है और वह चाहे तो उसका कष्ट समाप्त हो जाय (विनयपत्रिका, १४७)। कलियुग में राम-नाम कल्पवृक्ष है। वह दारिद्र्य, दुर्भिक्ष, दुख-दोष, सांसारिक घन-घटा तथा ताप-संताप का विनाश करनेवाला है (वही, २५६)।

प्रभु की माया ऐसी है कि लाखों उपाय करके पच मरो लेकिन जब तक उनकी कृपा नहीं होती तब तक इसके पार जाना असंभव है (विनयपत्रिका, ११६)। तम, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध, अज्ञान तथा काम अति उपद्रव करते हैं और तुलसी को अनाथ जानकर मरदने की चेष्टा करते हैं (विनयपत्रिका, १२५)। वह जरा डाँट-डपट दे तो फिर इन तस्करों का कुछ न चलेगा

निराला भी अशरण-शरण हैं ; इसलिए भगवन् से हाथ गहने की प्रार्थना करते हैं—

दुरित दूर करो नाथ
अशरण हूँ, गहो नाथ। अर्चना, ६।

× × ×

चलता नहीं हाथ
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दो शरण दोष रण। (आराधना, १४)

प्रभु काम-रूप हैं—इसलिए काम हरने की प्रार्थना करते हैं—

काम-रूप, हरो काम
जपूँ नाम, राम-राम। अर्चना, ७।

पुनः माया-खंडन के लिए वे कह उठते हैं—

भवसागर से पार करो हे
गह्वर से उद्धार करो हे।
रहूँ कहाँ मैं ठौर न पाकर
माया का संहार करो हे। अर्चना, ७।

निराला को भी ये शत्रु-समुदाय छोड़ते नहीं और इससे उद्धार की कामना भी इन पंक्तियों में है—

मानव का मन शांत करो हे
काम, क्रोध, मद, लोभ, दंभ से
जीवन को एकांत करो हे। अर्चना, ४८।

भगवान के भक्त चार प्रकार (अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी) के हैं (रामचरित मानस १, २१, ३)। किंतु राम के सच्चे उपासक मुक्ति की कामना नहीं करते। मुक्ति के अनेक पंथ, अनेक उपाय हैं, किंतु तुलसी दिन-रात राम का भजन करना चाहते हैं (विनयपत्रिका, १९२)। उन्होंने कहीं भी स्पष्ट शब्दों में मुक्ति की याचना नहीं की। लेकिन निराला भव-सागर पार के लिए लालायित-उत्कंठित दीख पड़ते हैं—

तरणि तार दो
अपर पार को

खे खेकर थके हाथ
कोई भी नहीं साथ
श्रम सीकर भरा माथ
बीच धार ओ। अर्चना, ७१।

अपने इष्ट के प्रति विश्वास की मात्रा तुलसी और निराला में प्रा एक समान है। तुलसी को भी विश्वास है कि इतनी भक्ति के पश्चा आराध्य ठुकराएगा नहीं और अंत में उसने अपनी अर्जी पर सही कर ही ली (विनयपत्रिका, २७९)। निराला भी कहते हैं—

तुम ही न हुए रखवाल
तो उसका कौन होगा ?
फूली-फली तरु-डाल
तो उसका कौन होगा ? अर्चना, ४९।

इस तरह तुलसी और निराला हरि-भजन को ही अपने जीवन का लक्ष्य मान लेते हैं—

सुमिरु सनेह सों तू नाम राम राय को
संबर निसंबर को, सखा असहाय को। विनयपत्रिका, ६९।

× × ×

हरि भजन करो भू-भार हरो। आराधना, ५१।

इस प्रकार विनयपत्रिका तथा अर्चना-आराधना-गीतगुंज के भक्त कवि भाव की पीन धारा में एक प्रकार बहते दीखते हैं। क्या आशा, क्या विश्वास, क्या दर्शन, क्या आचार—दोनों का धरातल एक सम है। किंतु तुलसी का ध्यान स्वदोष-कथन पर अधिक है। प्रभु के माहात्म्य-वर्णन पर अधिक है, वहाँ निराला का ध्यान अपनी असहाय अवस्था और व्यक्तित्व-उद्‌घाटन पर अधिक है।

तुलसी ने अपने को दुत्कारा-फटकारा बहुत है ; लेकिन निराला ने उतना नहीं। तुलसी में अनन्यता पराकाष्ठा का स्पर्श करती है तो निराला में विशुद्ध वेदना का औदात्य शीर्षबिंदु पर प्रतिस्थापित है।

आधुनिक वाद और निराला

विश्लेषण और वर्गीकरण के द्वारा साहित्यिक रचनाओं का मूल्यांकन करने की आधुनिक समीक्षा की प्रवृत्ति मूलतः विज्ञान की है। पदार्थ (Matter) की यथार्थता को समझना विज्ञान का मुख्य लक्ष्य है और उसका संबंध मात्र ज्ञान-क्षेत्र से है। साहित्य ज्ञान-क्षेत्र की वस्तु मात्र न होने के कारण वैज्ञानिक रीतियों के द्वारा उसे समझने का यत्न अपूर्ण ही रहेगा। पदार्थ (जड़ और चेतन) के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध और तज्जन्य अनुभूतियाँ साहित्य के प्राण हैं और वैज्ञानिक विश्लेषण और वर्गीकरण के द्वारा इनको समझा नहीं जा सकता। जिस समीक्षा में साहित्यिक रचनाओं का वर्गों और वादों में विभाजन होता है उसमें समीक्षा रचनाओं के उतने ही भाग की हो पाती है जिसका संबंध मनुष्य के भौतिक जीवन के ठोस विषयों से है। रचनाओं के विषयों अथवा वस्तुओं के प्रतिपादन की प्रणालियों की कोटियाँ निर्धारित करने से भी इस अपूर्णता का निवारण नहीं हो पाता; क्योंकि अभिव्यक्ति और अभिव्यक्त वस्तु, दोनों के अपार्थिव योग से ही साहित्यिक रचना होती है और यह अनोखी प्रक्रिया ही कला है। कला-कृति का मूल गुण अभिव्यक्ति और अभिव्यक्त वस्तु के गुणों से पूर्णतया भिन्न है और इस वजह से उक्त दोनों तत्त्वों को अलग करके कला-कृति का मूल्यांकन करना व्यर्थ यत्न ही होगा। यही विशिष्ट स्थिति कलाकार की भी है। संस्कृति, धर्म, जाति और वंश की रूढ़ प्रवृत्तियाँ और परम्परा से संचित संस्कार कलाकार के व्यक्तित्व के स्थायी अंग हैं। वातावरण और देश-काल से वह प्रभावित होता है और शिक्षा और अनुभूत ज्ञान उसकी कला-सृष्टि में योगदान करते हैं। परंपरागत संस्कार, रूढ़ मन, प्रवृत्तियाँ और बाह्य संसार से संचित र विषेशताएँ को समझने में सहायक अवश्य होती हैं

किंतु उनसे कलाकार की पूर्ण व्याख्या नहीं हो पाती ; क्योंकि कलाकार का व्यक्तित्व उनका समन्वित रूप मात्र नहीं होता।

निराला के वृहद और बहुमुखी व्यक्तित्व का केवल उतना ही भाग उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त हो पाया है जिसका सीधा संबध उनके कलाकार से है। परिवर्तन और विकास की भ्रांति उत्पन्न करनेवाली विनाशोन्मुख भौतिकता के प्रति विद्रोह की भावना, जड़-चेतन के मूल संबंध को जानने की उत्कट इच्छा, परमात्म सत्ता के प्रति जिज्ञासा, कठोर वैयक्तिक साधना और आत्मचिंतन—निराला के व्यक्तित्व में बीज-रूप में वर्तमान इस आध्यात्मिकता का समुचित विकास होता, तो सचमुच उनकी परिणति संत में होती। उनकी अंतिम कविताओं में संत में परिणत होने वाले उनके कलाकार के हमें दर्शन होते भी हैं—

भवसागर से पार करो हे!
गह्वर से उद्धार करो हे!
× ×
लिया दिया तुमसे मेरा था,
दुनिया सपने का डेरा था।
× ×
दो सदा सत्संग मुझको
अनृत से पीछा छुटे,
तन हो अमृत का रंग, मुझको
× ×
लगे तुमसे तन वचन मन
दूर रहे अनंग
बाढ़ के जल बढ़ूँ निर्मल—
मिलूँ एक उमंग, मुझको
शांत हो कुल धातुएँ ये,
बहे एक तरंग
रूप के गुण गगन चढ़कर
मिलूँ तुमसे ब्रह्म।

जहाँ उनकी प्रारंभिक रचनाओं में ('अनामिका', १६२३) हमें बौद्धिकता और अस्पष्ट कल्पनाओं में उलझे रहस्यवादी कवि के दर्शन होते हैं, वहाँ अंतिम दिनों की इन कविताओं में अत्यन्त भावुक संत के दर्शन होते हैं। 'तुम और मैं', 'कौन तम के पार रे कह' 'अविवास'

'पहचाना', 'कैसी बजी बीन', 'मन चंचल न करो', 'डूबा रवि अस्ताचल', 'भर देते हो', 'तरंगों के प्रति' आदि प्रारंभिक कविताएँ छायावाद-रहस्यवाद-वर्ग में स्थान पाती हैं। इनमें अपने में और अणु अणु में व्याप्त अज्ञात और अनंत परमात्म सत्ता के प्रति जिज्ञासा है, हृदय-मंथन है, प्रकृति-प्रेम है और प्रतीकों के द्वारा अपने अंतर को अनावृत करने का यत्न है। ये कविताएँ असल में कवि के विकास-पथ के सूचक चिह्न मात्र हैं। अंतर्मुखी प्रवृत्ति और आध्यात्मिकता उनके काव्य की प्रेरक शक्तियाँ हैं। कलाकार के विकास और पुष्टि में भले ही ये उपयोगी हों, किंतु स्वस्थ सामाजिक संबंध स्थापित करने में अथवा वैयक्तिक जीवन को शिथिल होने से बचाने में ये अत्यन्त घातक हैं। निराला के असंतुलित और शिथिल जीवन का यही कारण है। अस्वस्थ और शिथिल सामाजिक संबंधों से उत्पन्न विषमताओं ने उनमें असंतोष, विद्रोह, निराशा और व्यथा के भाव भर दिए थे।

उनकी छायावादी और रहस्यवादी रचनाओं से भिन्न कविताओं और गद्य रचनाओं को समालोचकों ने परम्परावादी, स्वच्छन्दतावादी और प्रगतिवादी वर्गों में विभक्त करने का यत्न किया है और लोक-मंगल की दृष्टि से ये ही रचनाएँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। परन्तु इन रचनाओं की प्रेरक शक्ति लोक-मंगल की भावना न होकर, सामयिक समाज के प्रति कवि के असंतोष और विद्रोह की भावना और विवशता-जन्य व्यथा और निराशा है। 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति-पूजा', 'पंचवटी - प्रसंग', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', 'दिल्ली' आदि कविताएँ परम्परावादी समझी जाती हैं। इसका मुख्य कारण संभवतः यह है कि इनके विषय पौराणिक या ऐतिहासिक हैं और इनमें सामयिक समाज और वर्तमान से असंतुष्ट कवि की आदर्शवादी और अतीत-गौरव के प्रति आस्था दृष्टिगत होती है। परन्तु प्रतिपादन की प्रणाली, शैली और कल्पनाओं की दृष्टि से ये स्वच्छंदतावादी रचनाओं के ही अधिक निकट हैं। 'जूही की कली', 'प्रेयसी', 'रेखा', 'जागो फिर एक बार', 'कवि', 'बहू', 'वसंत की परी के प्रति' आदि कविताओं में तथा 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा', 'प्रभावती' आदि उपन्यासों में विषय के चुनाव और प्रतिपादन की प्रणाली. दोनों में कवि की स्वच्छन्दता और परम्परागत मान्यताओं के प्रति विद्रोह की प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। इनमें अतिशय भावुकता और तीव्र अनुभूतियाँ हैं, मार्मिक कल्पनाएँ हैं नाटकीय प्रसंग और वैचित्र्यपूर्ण घटनाएँ हैं और विषय-शृंगार प्रेम और विवाह से संबंधित है उपन्यासों की नायिकाएँ कनक अप्सरा'),

शोभा ('अलका'), निरुपमा ('निरुपमा'), प्रभाती ('प्रभावती'), सभी सुकुमार संवेदना, प्रेम और सौष्ठव की देवियाँ हैं और इन कल्पना-प्रसूत नारियों का वर्णन कवि ने कवित्वपूर्ण ढंग से किया है। 'अप्सरा' की किशोरी कनक का वर्णन इस प्रकार है:—'अपनी देह के वृंत पर अपलक खिली हुई ज्योत्स्ना के चन्द्र पुष्प की तरह, सौंदर्योज्ज्वल पारिजात की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु से डोल उठती है।' उपर्युक्त कविताएँ और उपन्यास स्वच्छन्दतावादी रचनाओं के उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नये पत्ते' की बहुत सी कविताएँ 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़' आदि उपन्यास और 'चतुरी चमार', 'देवी' आदि कहानियाँ प्रगतिवादी समझी जाती हैं। परन्तु इनकी सृष्टि की प्रेरक शक्तियों और मूल प्रवृत्तियों का संबंध मार्क्सवादी विचारधारा से नहीं है और इनमें आर्थिक असमानताओं पर अधिष्ठित समाज-व्यवस्था का अंत करने तथा एक वर्गहीन, श्रेणीरहित समाज की स्थापना करने की इच्छा का नितांत अभाव है। त्रस्त मानवता के प्रति करुणा और उत्पीड़कों से विद्रोह—कलाकार में ये भाव अत्यत तीव्र हुआ करते हैं और निराला की इन रचनाओं की तह में करुणा और विद्रोह के ये ही भाव वर्तमान हैं। इन भावों के अधिकारी पात्र समाज के विभिन्न स्तरों और श्रेणियों के हैं और इनके चुनाव में लेखक का आश्रय कोई सिद्धान्त या मतवाद न होकर मात्र अपनी अनुभूति है।

टूटे तरु की छुटी लता सी दीन विधवा ('विधवा'), इलाहाबाद के पथ पर झुलसाती हुई लू में पत्थर तोड़नेवाली मजदूरिन ('तोड़ती पत्थर'), मुँह-फटी पुरानी झोली का फैलाकर दर्दनाक शब्दों में मुट्ठी भर दाने की याचना करनेवाला साकार दीनता सा भिक्षुक ('भिक्षुक'), बकरी पालनेवाला ब्राह्मण बकरिहारा बिल्लेसुर ('बिल्लेसुर बकरिहा'), अत्यन्त दयनीय परिस्थितियों में अंग-अंग गलकर मिटनेवाला समाज-सेवी कुल्ली भाट पथवारी दीन भट्ट ('कुल्लीभाट'), चमार चतुरी ('चतुरी चमार'), गूँगी-बहरी और मातृत्व भाव से भरी उन्मत्त भिखारिणी ('देवी')—कवि की करुणा और सहानुभूति के पात्र थे। व्यक्ति विभिन्न जातियों और समाज के विभिन्न स्तरों के हैं और इनमें समान रूप से वर्तमान एकमात्र प्रवृत्ति दीनता है। यद्यपि इन पात्रों में वर्गगत विशेषताएँ वर्तमान हैं, तो भी इनके चरित्र और व्यक्तित्व इतने असाधारण हैं कि ये अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते; ये मात्र व्यक्ति ही बने रहते हैं दीनता

के प्रति कवि के मन में जितनी तीव्र करुणा है, उत्पीड़न और शोषण के प्रति उतनी ही तीव्र विद्रोह की भावना भी है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए कवि ने व्यंग्य का आश्रय लिया है। स्वार्थ, अर्थलोलुपता, अंध धर्मानुराग अनैतिकता, पाखंड, ढोंग, राजनीतिक ढकोसले—सभी पर उनका व्यंग्य इतना अधिक मार्मिक है कि अत्यंत तीव्र आलोचना या भर्त्सना से भी अधिक गहरा असर इसका पड़ता है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं:—

दौड़ते हैं बादल ये काले काले
हाइ कोर्ट के बकले मतवाले
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे ('खजोहरा')

× ×

'मासको डायलाग्स' की पुरानी किंतु अब अप्राप्य प्रति और अपना उपन्यास बगल में थाम कर कवि के पास आए हुए स्वार्थी और मूर्ख साहित्यिक गिडवानी का वर्णन इस प्रकार है:—

देखा उपन्यास मैंने,
श्री गणेश में मिला—
पृय असनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है
इसको फिर रख दिया,
देखा मासको डायलाग्स
देखा गिडवानी को।
('मासको डायलाग्स')

'श्रीमान शास्त्री जी ने श्रीमती गजानंद शास्त्रिणी के साथ यह चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी के पिता को षोडशी कन्या के लिए पैंतालीस वर्ष का वर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख्तियार किए शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने के साथ शास्त्रिणी का साइन बोर्ड टाँगा, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चालना कर चलीं, धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है धर्म की रक्षा के लिए।'

('श्रीमती गजानंद शास्त्रिणी')

स्वस्थ सामाजिक संबंध स्थापित करने में अथवा वैयक्तिक जीवन को शिथिल होने से बचाने में कलाकार प्रायः असमर्थ रहता है। व्यावहारिक और सामाजिक जीवन में इसी कारण से वह असफल रहता है अपनी अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण वह इस स्थिति को समझ नहीं पाता

और वह अधिकाधिक मात्रा में अपने में ही सिमटने लगता है। यह स्थिति सचमुच दयनीय है और कलाकार ऐसे अवसरों पर या तो अपनी पराजय और दीनता का वर्णन करता है या बड़े गर्व के साथ अपने त्याग और साधना की गाथा गाता है जो असल में अपने आहत अहं को आश्वासन देने का यत्न मात्र है। बेनेडेटो क्रोचे ने कलाकर की इस मानसिक स्थिति का अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है❀। निराला ने अपनी अनेक कविताओं में दीनता और गर्व के भाव प्रकट किए हैं जो असल में उपर्युक्त मानसिक स्थिति की ओर ही संकेत करते हैं—

जला है जीवन यह
आतप में दीर्घ काल

('उक्ति')

ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे यद्यपि
मैं ही वसंत का अग्रदूत;
ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वछवि।

('हिन्दी के सुमनों के प्रति')

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

× ×

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त

('सरोज-स्मृति')

❀ 'If I may notice one small trait in the psychology of artists, the unpractical nature of art, as I have defined it, is the root of their frequently remarkable ineptitude and lack of realism in practical life. This is sometimes carried to the pitch of pride and is made a boast of : sometims it humbles itself to a sense of inferiority and is expressed in lamentations like the moan of the gentle romantic Wackenroder.'

Benedetto Croce, 'Problems of Ethetics and Aesthetics, page 139.

निराला के काव्य में प्रकृति-चित्रण

हिन्दी कविता में प्रकृति के विविध दृश्यों एवं कार्य-व्यापारों क चित्रण हुआ है। प्रत्येक युग के हिन्दी कवि प्रकृति-चित्रण में किसी न किसी रूप में सचेष्ट रहे हैं। छायावाद-युग प्रकृति-वर्णन-सौंदर्य की दृष्टि से बड़ा समृद्ध रहा है। पंत की कोमल कल्पनाओं ने प्रकृति के लहराते हुए अंचल को सुकुमार भावनाओं से भर दिया है, महादेवी की विरह-व्यथा-पूर्ण पुकार ने क्षितिज तक फैली हुई रम्य वनस्थली के कण-कण को प्रतिध्वनित कर दिया है और निराला के ओजपूर्ण 'बादल राग' ने प्रकृति के प्रतीकों द्वारा जन-जीवन की नई चेतना का उद्घाटन किया है।

द्विवेदी-युग के कवियों की प्रवृत्ति प्रकृति के यथार्थवादी चित्रण की ओर अधिक रही। उन्होंने प्रकृति को जैसा का तैसा काव्य में चित्रित किया। छायावादी कवि एक नया दृष्टिकोण लेकर आए और उन्होंने प्रकृति के नाना रूपों में नई चेतना के दर्शन किए। उन्होंने प्रकृति में प्राण-प्रतिष्ठा करके उसका मानवीकरण किया। कुछ विद्वान इसे पाश्चात्य-साहित्य की प्रवृति मानते हैं; किन्तु वास्तव में यह भारतीय कवियों की प्रवृत्ति है। भारतीय कवि सदा से ही प्रकृति की चेतना-शीलता का प्रत्यक्ष अनुभव करते रहे हैं। निराला जी उन मनीषियों में थे जिनके काव्य के प्रत्येक अक्षर में भारत की मिट्टी की रस-गंध है। उनका विद्रोहात्मक स्वर प्रकृति के ही माध्यम से मुखरित हुआ है।

'जुही की कली' निराला जी की एक अमर रचना है। इसमें कवि ने नए युग के मानवीय धरातल पर नवीन प्रेम और सौंदर्य की कल्पना की है। उसमें मानवीय प्रेम और शृंगार का आरोप किया गया है। किन्तु 'जुही की कली' के इस कोमल कलेवर में विद्रोह का वह स्वर दबा है जिसने द्विवेदी-युग की मर्यादित बँधी हुई प्रेम को एक खुली

और वह अधिकाधिक मात्रा में अपने में ही सिमटने लगता है। यह स्थिति सचमुच दयनीय है और कलाकार ऐसे अवसरों पर या तो अपनी पराजय और दीनता का वर्णन करता है या बड़े गर्व के साथ अपने त्याग और साधना की गाथा गाता है जो असल में अपने आहत अहं को आश्वासन देने का यत्न मात्र है। बेनेडेटो क्रोचे ने कलाकर की इस मानसिक स्थिति का अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है❀। निराला ने अपनी अनेक कविताओं में दीनता और गर्व के भाव प्रकट किए हैं जो असल में उपर्युक्त मानसिक स्थिति की ओर ही संकेत करते हैं—

जला है जीवन यह
आतप में दीर्घ काल

('उक्ति')

ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे यद्यपि
मैं ही वसंत का अग्रदूत ;
ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वछवि।

('हिन्दी के सुमनों के प्रति')

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

× ×

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त

('सरोज-स्मृति')

❀ 'If I may notice one small trait in the psychology of artists, the unpractical nature of art, as I have defined it, is the root of their frequently remarkable ineptitude and lack of realism in practical life. This is sometimes carried to the pitch of pride and is made a boast of ' sometims it humbles itself to a sense of inferiority and is expressed in lamentations like the moan of the gentle romantic Wackenroder.'

Benedetto Croce, 'Problems of Ethetics and Aesthetics page 139

निराला के काव्य में प्रकृति-चित्रण

हिन्दी कविता में प्रकृति के विविध दृश्यों एवं कार्य-व्यापारों क चित्रण हुआ है। प्रत्येक युग के हिन्दी कवि प्रकृति-चित्रण में किसी न किसी रूप में सचेष्ट रहे हैं। छायावाद-युग प्रकृति-वर्णन-सौंदर्य की दृष्टि से बड़ा समृद्ध रहा है। पंत की कोमल कल्पनाओं ने प्रकृति के लहराते हुए अंचल को सुकुमार भावनाओं से भर दिया है, महादेवी की विरह-व्यथा-पूर्ण पुकार ने क्षितिज तक फैली हुई रम्य वनस्थली के कण-कण को प्रतिध्वनित कर दिया है और निराला के ओजपूर्ण 'बादल राग' ने प्रकृति के प्रतीकों द्वारा जन-जीवन की नई चेतना का उद्घाटन किया है।

द्विवेदी-युग के कवियों की प्रवृत्ति प्रकृति के यथार्थवादी चित्रण की ओर अधिक रही। उन्होंने प्रकृति को जैसा का तैसा काव्य में चित्रित किया। छायावादी कवि एक नया दृष्टिकोण लेकर आए और उन्होंने प्रकृति के नाना रूपों में नई चेतना के दर्शन किए। उन्होंने प्रकृति में प्राण-प्रतिष्ठा करके उसका मानवीकरण किया। कुछ विद्वान इसे पाश्चात्य-साहित्य की प्रवृति मानते हैं; किन्तु वास्तव में यह भारतीय कवियों की प्रवृत्ति है। भारतीय कवि सदा से ही प्रकृति की चेतना-शीलता का प्रत्यक्ष अनुभव करते रहे हैं। निराला जी उन मनीषियों में थे जिनके काव्य के प्रत्येक अक्षर में भारत की मिट्टी की रस-गंध है। उनका विद्रोहात्मक स्वर प्रकृति के ही माध्यम से मुखरित हुआ है।

'जुही की कली' निराला जी की एक अमर रचना है। इसमें कवि ने नए युग के मानवीय धरातल पर नवीन प्रेम और सौंदर्य की कल्पना की है। उसमें मानवीय प्रेम और शृंगार का आरोप किया गया है। किन्तु 'जुही की कली' के इस कोमल कलेवर में विद्रोह का वह स्वर दबा है जिसने द्विवेदी-युग की मर्यादित बँधी हुई प्रेम को एक खुली

चुनौती दी है। प्रकृति-चित्रण के माध्यम से उन्होंने 'जुही की कली' क रूप में युग के नए व्यक्तित्व की सृष्टि की है।

निराला जी के प्रकृति-चित्रण में दो विशेषताएँ मुख्य रूप से मिलती हैं—(१) प्रकृति में रहस्य-दर्शन (२) प्रकृति का मानवीकरण।

१—प्रकृति में रहस्य दर्शन—निराला जी ने प्रकृति के माध्यम से दार्शनिक भावनाओं को व्यक्त किया है। प्रकृति का विस्तृत प्राङ्गण उनके दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति का प्रमुख क्षेत्र बन गया है। विश्व के अनंत सौंदर्य और वैभव को देखकर कवि के मन में कुतूहल जाग्रत होता है। वह सोचता है कि प्रकृति के रमणीय अंचल के पीछे भी कोई अदृश्य सत्ता अवश्य है। उस असीम सत्ता के दर्शनों के लिए वह व्याकुल हो उठता है। रवि, शशि, तारे, विकसित सुमन, कमलदल, लोल लहरें और नीलाकाश सब उसी अलक्ष्य सत्ता की रचना हैं। अतः प्रकृति की अनन्त सौंदर्य- राशि में बिखरी अनुपम कांति को वह उसी की मधुर मुसकान और दिव्य ज्योति के रूप में देखता है। उसके प्राण पुलक उठते हैं और वह गा उठता है:—

रहा तेरा ध्यान,
जग का गया सब अज्ञान।
गगन घन - विटपी, सुमन नक्षत्र-ग्रह, नव-ज्ञान।
बीच में तू हँस रही ज्योत्स्ना - वसन - परिधान।
देखने को तुझे बढ़ता विश्व-पुलकित - प्राण।
सकल चिंता - दुरित - दुख - अभिमान करता दान।

गीतिका—गीत सं० ५८

कवि उस विकसित छवि में ऐसा विभोर हो उठता है कि उसका भावुक हृदय एक अनिर्वचनीय आनन्द में झूम उठता है। वह न तो उस सौंदर्य में लीन होकर अपनी चेतन सत्ता को उसमें मिलाना ही चाहता है और न तद्रूप होकर 'सोऽहम्' का ही रूप धारण करना चाहता है। वह उस असीम सत्ता का एक अंश बनकर अपना पृथक अस्तित्व सिद्ध करना चाहता है। भक्ति भावना में निमग्न होकर वह अपने को उसी अनन्त स्रोत का एक कण मानता है। जिस प्रकार हिमालय के अंक से प्रवाहित होनेवाली गंगा है, जिस प्रकार सूर्य-किरणों के स्पर्श से विकसित कमल है तथा जिस प्रकार नन्दनकानन के विटपों की छाया है, उसी प्रकार वह भी उस अखण्ड सत्ता से गंगा की भाँति जन्म धारण कर, कमल की भाँति उसके स्पर्श से खिलकर छाया की भाँति इस विश्व में विचरण करता

है। प्रकृति क नाना रूपो ने कवि की रहस्य-भावना का मार्मिक उद्घाट किया है। उसकी आनंदानुभूति में जड़ प्रकृति भी शाश्वत-चेतना-भः होकर हास करने लगती है। उनकी 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में यह रहस्य-भावना व्यक्त हुई है:—

तुम तुङ्ग - हिमालय - शृङ्ग ।
और मैं चञ्चल गति सुरसरिता ।
तुम विमल हृदय - उच्छ्वास
और मैं कान्त कामिनी कविता ।
× × ×
तुम दिनकर के खर किरण - जाल,
मैं सरसिज की मुसकान । परिमल (तुम और मैं)

प्रकृति और मानव का एकीकरण भारतीय एकात्मवाद की भावना के कारण हुआ है। छायावादी कवियों की अंतर्मुखी प्रवृत्ति रहस्यवाद मे प्रकृति के माध्यम से और भी मुखरित हो उठी है। निराला जी ने प्रकृति के बाह्य रूप का ही चित्रण नहीं किया है वरन् उसके समस्त क्रिया व्यापारों द्वारा रहस्य-भावना की भी स्थापना की है। प्रकृति आत्मा-परमात्मा के बीच की कड़ी के रूप में चित्रित हुई है। प्रकृति की गंभीरता एवं उसका विस्तार ही अदृश्य सत्ता की ओर संकेत करता है। कवि प्रकृति में फैले अंधकार को देखकर प्रश्न करता है:—

कौन तम के पार ?—(रे कह)
अखिल पल के स्रोत, जल-खग
गगन घन-घन-धार—(रे, कह) । गीतिका (गीत १२)

(२) प्रकृति का मानवीकरण:—निराला जी ने प्रकृति को आनन्द-दायिनी, आल्हादिनी छटा के रूप में देखा है। उसमें उन्हें अपने भावों की छाया स्पष्ट दिखाई दी है। उन्होंने उसमें मानवीय संवेदनशीलता का प्रत्यक्ष अनुभव किया है। अन्य छायावादी कवियों की भाँति निराला जी की प्रकृति सजीव और सप्राण है। उनकी 'संध्या श्यामा' एक रमणी की भाँति मंथर गति से पृथ्वी पर अवतरित हुई है। संध्या में प्राण प्रतिष्ठा करके उसे पूर्ण मानवीयता प्रदान की गई है:—

देकर अंतिम कर
रवि गए ऊपर पार
श्रमित चरण आए
गृहि जन निज निज द्वार ।

अम्बर-पथ से मन्थर संध्याश्यामा,
उतर रही पृथ्वी पर कोमल-पद भार। गीतिका (पद ८७)

परिमल में 'संध्या-सुन्दरी' का एक ऐसा ही मनोरम चित्रण है जिसमें प्रकृति की सजीवता मुखर हो उठी है:—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिराञ्चल में चञ्चलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर - मधुर हैं दोनों उसके अधर,—
किन्तु जरा गंभीर—नहीं है उनमें हास विलास।

'बादल राग' निराला जी की प्रतिनिधि रचना है। ये बादल उनकी भावनाओं के साकार रूप हैं, जो कवि के विचारों के अनुरूप नए नए रूप धारण करते हैं। बादल में युग का व्यक्तित्व प्रतीकों में मूर्त होकर बोलता है। जैसे इन बादलों में युग का स्वर मुखरित हो उठा है।

रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
अङ्गना-अंग से लिपटे भी,
आतंक अंक पर काँप रहे हैं,
धनी, वज्र गर्जन से बादल !
त्रस्त नयन मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण-बाहु है शीर्ण-शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !
चूस लिया है उसका सार,
हाड़मांस ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावार।
—परिमल (बादल राग (६))

छायावादी युग के कवियों का प्रकृति-चित्रण सोद्देश्य है। उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसके भीतर निहित तत्वों का अनेक प्रकार से निरूपण किया है। प्रकृति-चित्रण की भी अनेक पद्धतियाँ हैं। निराला-काव्य में प्रकृति के यथार्थ और काल्पनिक, दोनों ही प्रकार के वर्णन हैं।

१. प्रकृति का यथार्थ चित्रण—निराला जी ने प्रकृति के वास्तविक
त भी खींचे हैं जिनमें उसका यथातथ्य वर्णन मिलता है। उनमें
ल्पनिक आवरण नहीं है। फिर भी ऐसे चित्रों में सर्वत्र सजीवता
मान है। निम्नलिखित कविता में प्रकृति का वास्तविक रूप चित्रित
ा है:—

छाए आकाश में काले काले बादल देखे,
झोंके खाते हवा में सरसी के कमल देखे।
कानों में बातें बेला और जूही करती थीं,
नाचते मोर, झूमते हुए पीपल देखे।

—बेला (पृ० ३०)

सप्राण बेला और जूही कानों में बातें करती थीं। यथार्थ चित्रण में प्रकृति चेतना-शून्य नहीं है। उसी भाँति संध्या के वर्णन में:—

डूबा रवि अस्ताचल
संध्या के दृग छल छल।
स्तब्ध अंधकार सघन
मंद गंध-भार-पवन ;
ध्यान लग्न नैश गगन,
मूँदे पल नीलोत्पल।

—गीतिका (गीत ७२)

२, प्रकृति का चेतनामय रूप—प्रकृति की गति में एक चेतना है।
रत प्रकृति गतिशील है। वह कभी निश्चेष्ट होकर नहीं बैठ सकती ;
, किरणें, वायु, पुष्प, पक्षी, सभी के कार्य-व्यापार निरंतर चलते रहते
प्रकृति के क्रियाकलाप में एक आनन्ददायिनी गति है। निराला जी का
ऐसा ही वर्णन देखिए:—

पड़े थे नींद में उनको प्रभाकर ने जगाया है।
किरन ने खोल दी आँखें, गले फिर फिर लगाया है।
हवा ने हल्के झोंकों से प्रसूनों की महक भर दी,
विहंगों ने द्रुमों पर स्वर मिलाकर राग गाया है।

—बेला, पृ० ७४

बसंत के आगमन से सारी जड़ प्रकृति चेतन होकर झूम उठी है।
ाएँ नव-पल्लव-परिधान धारण कर वृक्षों का आलिंगन करने लगी हैं।
कोकिल की मधुर कूक ने वनस्थली को राग-रंग से भर दिया है। समस्त
ति जैसे अँगड़ाई लेकर जगी हो और अपने शृंगार में निरत हो—

सखि बसंत आया।
महा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया!
किसलय वसना नव-वय-लतिका,
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका।
मधुप-वृंद वंदी—
पिक-स्वर नभ सरसाया। गीतिका (गीत ३)

इस प्रकार के चेतना-मय प्रकृति के रूप निराला-काव्य में सर्वत्र मिलने हैं। चेतनता ही उसका प्राण है। प्रकृति की यह चेतना दो रूपों में प्रकट हुई है—(१) कोमल एवं (२) ओजपूर्ण। छायावाद के अन्य कवियों ने प्राय: प्रकृति के कोमल रूप का ही चित्रण अधिक किया है, किन्तु निराला का प्रकृति-चित्रण भी ओजपूर्ण है। प्रकृति की कोमलता के वर्णन में मधुर पदावली का संयोजन हुआ है। उसके अर्ध-विकच-सौंदर्य पर अलंकारों का झीना आवरण डालकर कवि ने उसे द्विगुणित कर दिया है। शुभ्रकिरण-वसना उषा का एक रूप-चित्रण देखिए:—

कौन तुम शुभ्र किरण वसना?
सीखा केवल हँसना-केवल-हँसना
शुभ्र किरण-वसना।
मंद मलय भर अंग-गंध मृदु
बादल अलकावलि कुंचित ऋतु,
तारक तार, चंद्र-मुख, मधु ऋतु,
सुकृत-पुञ्ज-अशना।
चंचल कैसे रूप - गर्व - बल,
तरल सदा बहतीं कल-कल-कल,
रूप राशि में टल मल-टल मल,
कुन्द-धवल - दशना। गीतिका (गीत २८)

निराला का ओजपूर्ण प्रकृति चित्रण उनकी अपनी विशेषता है। इस गार के वर्णन में उनका अपना ओजपूर्ण व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। दल राग' में यह विशेषता दर्शनीय है:—

ऐ निर्बन्ध!
अन्धतम - अगम - अनर्गल बादल!
ऐ स्वच्छन्द!
मंद -रय पर उच्छृंखल

ऐ उद्दाम !

अपार कामनाओं के प्राण !

बाधा-रहित विराट !

ऐ विप्लव के प्लावन !

उक्त वर्णन में रूप-योजना एवं शब्द-संयोजन, दोनों ही ओजपूर्ण हैं।

प्रतीक-चित्रण—प्रतीक-प्रयोग एवं लाक्षणिकता छायावाद काव्य के प्रकृति-चित्रण की बहुत बड़ी विशेषता है। प्रतीकों के प्रयोग द्वारा जीवन के सुख-दुःख, आनन्द-वेदना आदि की अभिव्यक्ति हुई है। प्रतीकों के द्वारा कवि कहता कुछ और है किन्तु व्यंग्यार्थ कुछ और ही निकलता है। निराला-काव्य में प्रकृति के नाना रूप-व्यापार प्रतीकों के रूप में व्यक्त हुए हैं। एक चित्रण देखिए:—

उनके बाग में बहार,

देखता चला गया।

कैसा फूलों का उभार,

देखता चला गया। बेला, पृ० ३७

इसमें बाग और फूल शरीर एवं अंगों के प्रतीक हैं, बहार और उभार क्रमशः सौंदर्य एवं यौवन-विकास के प्रतीक हैं। प्रकृति के प्रतीकों द्वारा सौंदर्य-चित्रण सजीव और भावपूर्ण बन गया है।

प्रकृति-पृष्ठभूमि के रूप में:—पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण काव्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। बिना वातावरण की सृष्टि के घटना का प्रभाव कम हो जाता है। प्रसाद वातावरण-चित्रण के सिद्धहस्त कवि हैं। वातावरण द्वारा रमणीयता, भयानकता आदि की व्यंजना होती है। निराला जी के वातावरण-चित्रण बड़े ही प्रभावपूर्ण एवं रसानुकूल हैं। 'तुलसीदास' में प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है। "राम की शक्ति-पूजा" कविता में जो वातावरण चित्रित हुआ है उसमें आशंका, भय और भीषणता का प्रभावशाली वर्णन हुआ है—

है अमानिशा ; उगलता गगन घन अंधकार ;

खो रहा दिशा का ज्ञान ; स्तब्ध है पवन-चार ;

अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल ;

भूधर ज्यों ध्यानमग्न ; केवल जलती मशाल।

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर संशय

रह रह उठता जग जीवन में भय

'अनामिका' में 'नर्गिस' कविता में भी कवि ने बड़ा ही सुन्दर और सफल वातावरण चित्रण किया है। वातावरण-चित्रण में कवि बड़ा कुशल है। इसमें प्रकृति के प्रभावपूर्ण दृश्य उपस्थित किए गए हैं।

आलंकारिक चित्रणः—भावाभिव्यक्ति के लिए आदिकाल से कवियों ने प्रकृति को माध्यम बनाया है। उसे मार्मिक बनाने के लिए कवियों ने प्रकृति के नाना उपकरणों एवं क्रिया-व्यापारों को अलंकारों के रूप मे नियोजित किया है। मानव-सौंदर्य के उपमान के रूप में प्रकृति का सदैव प्रयोग होता है। निराला जी ने भी प्रकृति का आलंकारिक वर्णन किया है। उपमान के रूप में तो अपेक्षाकृत कम, किन्तु रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के लिए प्रकृति का प्रयोग निराला जी ने अधिक किया है। सादृश्य-मूलक एक चित्रण देखिए:—

बिखरी छूटीं शफरी - अलकें,
निष्णात नयन - नीरज - पलकें।

—तुलसीदास, पृ० ४४

इसमें मछली के समान लटें और कमल के समान नेत्रों का वर्णन किया गया है। संदेहालंकार से युक्त नेत्रों का एक वर्णन देखिए:—

मद भरे ये नलिन-नयन मलीन हैं,
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं।—परिमल (नयन)

यहाँ 'नलिन' और 'मीन' बहु प्रचलित उपमान हैं। प्रकृति-चित्रण में मूर्त के किए अमूर्त अप्रस्तुत-विधान में निराला जी बड़े कुशल शिल्पी हैं। विधवा का चित्रण बड़ा ही मार्मिक है:—

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शांत भाव में लीन।
वह क्रूरकाल-ताण्डव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत ही की विधवा है।

—परिमल (विधवा)

निराला जी के प्रायः सभी काव्य-ग्रंथों में प्रकृति के आलंकारिक चित्रण के रूप उपलब्ध होते हैं। सादृश्य-मूलक उपमानों की योजना में प्रकृति का सुन्दर उपयोग हुआ है। अन्योक्ति के रूप में भी कवि ने प्रकृति को भाव व्यक्त किए हैं। अनामिका में 'अनताप' शीर्षक कविता इसी प्रकार की है। रूपकों के प्रयोग में व बडे सफल हैं तुलसीदास

के युग में भारत की सांस्कृतिक अवस्था को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने संध्या का रूपक बाँधा है। गीतिका में रूपकों के अनेक प्रयोग मिलते हैं।

प्रकृति का उपदेशात्मक चित्रण—प्रकृति के माध्यम से उपदेश देने की प्रथा बड़ी पुरानी है। प्रकृति के क्रिया-व्यापारों से मनुष्य को प्रेरणा प्राप्त होती है। कवियों ने प्रकृति में उपदेशात्मकता के भी दर्शन किए हैं। भक्तिकालीन कवियों के उपदेशपूर्ण विचारों की सबसे सशक्त माध्यम प्रकृति ही रही है। छायावादी कवियों ने भी ऐसे प्रयोग किए हैं। निराला जी ने निम्नलिखित गीत में झरने के माध्यम से मानव को प्रगति-पथ पर गाते हुए आगे बढ़ते रहने का उपदेश दिया है:—

ऊँचा रे, नीचे आता,
जीवन भर भर दे जाता;
गाता, वह केवल गाता—
"बंधु तारना-तरना।"
सूखते हुए निर्जीवन
होंने से पहले तक, मन
बढ़ना, मरकट बनना घन,
धारा नूतन भरना।

गीतिका (गीत १००)

निराला-काव्य में ऊपर वर्णित प्रकृति-चित्रण की प्रायः सभी प्रमुख पद्धतियाँ मिलती हैं। उनकी पूर्ववर्त्ती कविताओं में प्रकृति के प्रति तन्मयता एवं आकर्षण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। प्रकृति के दृश्य-विधान में मानवीय भावनाओं का आरोप उन्हें अधिक प्रिय है। व्यक्त में अव्यक्त छवि देखने और उसका निरूपण करने की प्रवृत्ति निराला जी में बहुत अधिक है।

निराला जी का प्रकृति-चित्रण किसी विशेष शैली या पद्धति को लेकर नहीं हुआ है। इसीलिए पंत-जैसा, प्रकृति-चित्रण के विकास का इतिहास निराला में नहीं मिलेगा। पर अपने क्षेत्र में निराला का क्षेत्र बड़ा ही उज्ज्वल एवं मौलिक है। उन्होंने प्रकृति के जिन विराट् रूपों की सृष्टि की है वे कम से कम हिन्दी काव्य-क्षेत्र में तो सर्वथा अनूठे और मौलिक हैं। उनके विचारों के अनुकूल उनका प्रकृति-वर्णन भी युग की प्रगतिशील काव्य-धारा का प्रतिनिधित्व करता है। प्रकृति के प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता झांकती दिखाई देती है। विवेकानन्द से प्रभावित कवि प्रकृति में उस अज्ञात अनादि शक्ति का दर्शन नहीं भूलता है इसी भारतीय

दृष्टिकोण ने उसे इतना ऊँचा स्थान दिया है। युग, मानव और उस अखण्ड सत्ता को लेकर निराला जी ने प्रकृति को त्रिवेणी का संगम बना दिया है। परिमल की भूमिका में वह स्वयं लिखते हैं—'पल्लवों के हिलने में किसी अज्ञात चिरंतन अनादि सर्वज्ञ का हाथ के इशारे अपने पास बुलाने का इंगित प्रत्यक्ष करते हैं। इस तरह चित्रों की सृष्टि असीम सौंदर्य में पर्यवसित की जाती है। और वही जाति के मस्तिष्क में विराट् दृश्यों के समावेश के साथ ही साथ स्वतंत्रता की प्यास को भी प्रखरतर करते जा रहे हैं।'

निराला के काव्य का दार्शनिक तत्व प्रकृति-चित्रण में ही व्यक्त हुआ है। उन्होंने प्रतीकों एवं कल्पनावैभव पर अधिक जोर न देकर जग और जीवन के विविध मार्मिक पक्षों के उद्घाटन की ओर अधिक ध्यान दिया है। प्रकृति में उनका दार्शनिक तादात्म्य बड़ा गंभीर है। प्रकृति के रमणीय अंक में वह आत्मविस्मरण के अभिलाषी न होकर आत्म-बोध चाहते हैं। उनके प्राकृतिक चित्र जीवन और समाज की व्यंजना करते हुए दिखाई देते हैं। उनकी आशा और आकांक्षाएँ, हर्ष और विषाद, देश-समाज संबंधी भाव और विचार, सभी प्रकृति के माध्यम से सरलतापूर्वक व्यक्त हुए हैं। अणिमा में कवि निराश होकर अपने पके बालों का ध्यान कर कह उठता है—

मैं अकेला, मैं अकेला,
आ रही मेरे गगन की सांध्यवेला।

कवि के जीवन की सांध्य-वेला सचमुच उस दिन आ ही गई और निरंतर जीवन से संघर्ष करने वाला, तिल-तिल जूझने वाला ओजपूर्ण व्यक्तित्व अंधकार का वक्ष चीर, 'उस पार' के रहस्य को ज्ञात करने के लिए इस असार संसार का मोह छोड़कर चला गया।

निराला-काव्य में प्रकृति

काव्य का प्रणयन हुआ और प्रकृति को प्रश्रय मिला। युग-युग से प्रकृति काव्य को अनुप्राणित करती आई है। वह काव्य को सत्यं, शिवं से सुन्दरं की ओर ले जाती है। यही कारण है कि काव्य में प्रकृति-वर्णन विभिन्न प्रकार का पाया जाता है। कहीं प्रकृति मानव की सहचरी है, कहीं प्रेयसी। कहीं वह माँ है, तो कहीं वह पत्नी। कहीं वह उपदेशिका है, तो कहीं दूतिका। कहीं प्रकृति के उपमान द्वारा मानव-सौन्दर्य की श्री-वृद्धि की जाती है, तो कहीं वह प्रकृति मानव की प्रतिकृति ही बन गई है। कहीं प्रकृति मानव के लिए कौतुहल का विषय बन गई है, तो कहीं वह मानव की जिज्ञासा का समाधान करती है। कहीं वह अभिसारिका है—तो कहीं वह पालिका बन गई है। कहीं वह मानव के सुख-दुख की सहचरी है, तो कहीं वह सुख-दुख को तीव्र करनेवाली है। इतना ही नहीं, कवि प्रकृति की ओट में अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को भी अभिव्यक्त करता है।

कवि निराला ने विविध रूपा प्रकृति की स्निग्ध छाया में अपने जीवन के अनेक महत्वपूर्ण क्षण व्यतीत किए थे। कवि ने प्रकृति को नया रूप दिया, प्रकृति ने कवि को नया रूप दिया, और दोनों ने नया रूप दिया कविता को।

उत्मुक्त सौन्दर्य की साकार प्रतिमा प्रकृति कवि के लिए जड़ नहीं रह जाती। वह प्रकृति का मानवीकरण कर उसे व्यक्तित्व प्रदान करता है। कवि-कल्पना में सन्ध्या अन्धकार फैलानेवाली ही नहीं है, वह एक सुन्दरी है, जो दिवावसान के समय परी की भाँति धीरे-धीरे क्षितिज से आ रही है तिमिराञ्चल है उसका, किन्तु उसमें चंचलता नहीं। उसके मधुर अधरों में हास-विलास नहीं है किन्तु गम्भीरता है। उसके

घुँघराले काले बाल हैं, जिनमें सौन्दर्य-वृद्धि के लिए तारा गूँथा हुआ है। अलसता की वह लता है, कोमलता की वह कली है। वह मौन है, अनुराग का राग नहीं आलापती। उनके नूपुरों में रुन-झुन ध्वनि नहीं। मदिरा की वह नदी बहाती आती है। थके हुए जीवों को सस्नेह एक प्याला पिलाती है।

'यमुना के प्रति' कविता में कवि ने यमुना की स्रोतस्विनी के रूप में ही नहीं देखा है, वह कोमलहृदया प्रेम-विभोर एक नारी है। यमुना की कल-कल ध्वनि सुनकर कवि उससे पूछता है—

सुन कर यमुने, तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान
पथिक-प्रिया सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान।

समय बदला, किन्तु यमुना वही है जो द्वापर युग में थी। वह अवश्य ही श्रीकृष्ण के विषय में जानती है। इसीलिए कवि यमुना से पूछता है—

बता कहाँ अब वह वंशीवट!
कहाँ गए नटनागर श्याम।

कवि को प्रकृति में सर्वत्र प्रेम ही प्रेम दिखाई देता है—

लहर रही शशि किरण चूम निर्मल यमुनाजल,
चूम सरित की सलिल राशि खिल रहे कुमुद दल,
कुमुदों के स्मिति-मन्द खुले वे अधर चूम कर
बही वायु स्वच्छन्द, सकल पथ घूम घूम कर।

'जुही की कली' कविता में जुही की कली विरह-विधुरा एक नायिका है जिसका पति मलयानिल उसे छोड़कर किसी दूर देश चला गया है। वह सुहाग से भरी, स्नेह-स्वप्न में डूबी आँखें मूँदकर विजन-वन-वल्लरी पर शिथिल पत्रांक में सो रही है। मलयपवन को अतीत-मिलन की बात स्मरण हो जाती है, वह—

उपवन - सर - सरित गहन-गिरि कानन कुञ्ज लता,
पुञ्जों को पार कर पहुँचा जहाँ उसने की केलि कली, खिली साथ।

किन्तु कली सो रही थी, उसने प्रिय के आगमन को न जाना। नायक ने कपोल चूमे और डोल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल' पर यौवन की मदिरा पिये हुए मतवाली कली जागी नहीं उस पर निर्दय

नायक ने निपट निठुराई की। उसने झोंके की झाड़ियों से सुन्दर सुकुमार देह झकझोर डाली। उसके गोरे गोल कपोल मसल डाले। वह चौंक पड़ी—उसने चकित चितवन चारों ओर फेरी, प्रिय दिखाई दिया। वह उससे मिल कर मुस्करा उठी। कितनी सुन्दरता से कवि ने जुही की कली के खिलने का वर्णन किया है। जुही की कली सुप्ति से जागरण में आती है—यहाँ हमें कवि के दार्शनिक विचार अवगत होते हैं। कवि ने स्वयं इस कविता के दार्शनिक पक्ष की व्याख्या करते हुए कहा है—'हिंदी साहित्य-सम्मेलन के एक नेता ने उसे साहित्य कहा है, जो मानव जाति को उठाता हो, यहाँ जुही की कली में जो कला है वह ऐसी ही है या नहीं, देख लीजिए। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की काव्य में उतारी हुई (यह) तस्वीर है।...............क्योंकि मन के अन्धकार के बाद है जागरण, आत्म-परिचय, प्रिय-साक्षात्कार, मन का प्रकाश। कली सोते से जगी हुई, प्रिय से मिली हुई, खिली हुई पूर्ण मुक्ति के रूप में सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या सी लगती है या नहीं, देखें'। अत' इस कविता में एक ओर लौकिक शृंगार की सुन्दर अभिव्यक्ति है, दूसरी ओर आध्यात्मिक रूपक के द्वारा कवि ने अपने दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त किया है।

'शेफालिका' कविता में भी, 'जुही की कली' की भाँति एक ओर लौकिक शृंगार के दर्शन होते हैं, दूसरी ओर आध्यात्मिकता के—

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार में, यौवन उभार के,
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके।

शेफाली का प्रिय आता है, मिलन होता है, 'आशा की प्यास एक रात में भर जाती हैं, सुबह को आली शेफाली झर जाती है।'

'वधू' कविता में कवि ने तरंग को 'समीर-प्रिया' और लता को 'विश्व-पत्नी' के रूप में देखा है। मनमोहिनी-मनोरमा लता अंधकारमय जीवन की एक शमा है, साथ ही भावमग्न कवि की एक मुखरता-वर्जित वाणी है। यह 'वर्जित-वाणी' अतीत को गीत बना देती है, अव्यक्त को व्यक्त करती है। लता में कोई चाह नहीं, उसके लिए विषय-वासना तुच्छ है, उसे किसी की परवाह नहीं, किन्तु उसकी साधना है—

केवल निज सरोज मुख पति को ताकना।

मानव-लोक की भाँति प्रकृति में भी कवि को मानवीय सम्बन्ध दिखाई देते हैं। 'वन-कुसुमों की शय्या' में कवि ने शरत् व शिशिर को दो बहिनों के रूप में चित्रित किया है जिसका जीवन वैभव से पूर्ण है

सोती हुई सरोज-अंक पर
शरत् शिशिर दोनों बहनों के
सुख-विलास-मय-शिथिल अंग पर
पद्म-पत्र पंखे झलते थे।

उसी भाँत कवि ने मालती और चाँदनी को भी बहिनों के रूप में चित्रित किया है—

उधर मालती की चटकी जो कली
चाँदनी ने झट चूमे उसके गोल कपोल
और कहा, बस बहन, तुम्हारी सूरत कैसी भोली।
कहा कली ने, हाँ, और दो ऐसे मीठे बोल।

कवि ने ऋतुओं का वर्णन भी अति सुन्दरता से किया है। शरत् तो ऋतुओं की रानी है, चाँद उसका मुख है। चाँद को देखकर कवि शरत् से पूछता है—

शरत्! चाँद यह तेरा मृदु मुखड़ा?
अथवा विजय मुकुट पर तेरे, ऐ ऋतुओं की रानी
हीरा है यह जड़ा।

शरत् आती है—आकर सम्पूर्ण वातावरण को आनन्दपूरित कर देती है—

जुही आन-बान भरी
चमेली जवान परी
मालती खिली निखरी
शीत हवा सरसाई।

इसी भाँति वसन्त भी नव-उत्साह, नव-आनन्द लेकर आता है—

हँसता हुआ कभी आया जब, वन में ललित वसन्त,
तरुण विटप सब हुए, लताएँ तरुणी, और पुरातन पल्लव दल का
शाखाओं से अन्त।

ऋतुपति बसन्त के शृंगार के लिए सम्पूर्ण प्रकृति से कवि का आग्रह है। अतः प्रकृति विभिन्न प्रकार के पुष्पों से बसन्त का शृंगार करती है और बसन्त सजधज कर आता है। 'बसन्त-समीर' कामिनियों के हृदय में, एवं प्रकृति में प्रेम उद्दीप्त करता है—

भरो पुलक नव-प्रेम-प्रकम्पित
कमिनियों के नव तन में
× × ×

नवल प्राण नव गान गगन में
फूले नवल वृन्त पर फूल।

दुखी मानव जीवन पतझड़ की भाँति है। जिस प्रकार पतझड़ की नीरसता का हरण बसन्त करता है, उसी भाँति मानव जीवन की नीरसता को दूर कर बसन्त आनन्द सरसाता है—

वीणा की नव चिर परिचित तव
वाणी सुनकर उठूँ तुरन्त,
समझूँ जीवन के पतझड़ में
आया हँसता हुआ बसन्त।

जग पतझड़ में मुरझाया हुआ था, चिन्ता चारो ओर फैली हुई थी, अग विकृत थे, रंग रिक्त था। प्रजा दीन मलीन थी। जीवन की जटिल समस्याओं में जग तल्लीन था। इतने में बसन्त समीर आया—

उसी समय दी खोल हृदय की
ग्रन्थि, खुल गए उसके द्वार
देखा, नव-श्री-सुख शोभा से
लहराता जग विविध प्रकार।

पावस के आगमन से नील सिन्धु में कमल दल खुले, हरित-ज्योति फैल गई, चपला अति चंचल हो गई, वृक्ष समीर-कम्पित हो थर-थर काँपने लगे। अखिल-विश्व के नव-यौवन की श्री को हरियाली ने हर लिया।

ग्रीष्म ऋतु का ताप विरह ताप को और भी उद्दीप्त कर देता है—

यह गाढ़ तन, आषाढ़ आया, दाहै दमक लगी, जगीरी,
रैन चैन नहीं कि बैरिन नयन नीर नदी बहीरी।

तरंगों को देखकर सहसा कवि के मन में जिज्ञासा का भाव उत्पन्न हुआ। वह कहाँ से आती है? किसका गान गाती है? किससे मिलने जाती है? वह उससे पूछता है—

किस अनन्त का नीला अञ्चल हिल-हिलाकर
आती हो तुम सजी मण्डलाकार?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिला कर
गाती हो ये कैसे गीत उदार?

× × ×

चल चरण बढ़ाती हो किससे मिलने जाती हो?

सरिता और सागर के मिलन की शाश्वत और सनातन कथा ने प्रकृति-प्रेमी सभी छायावादी मूर्धन्य कवियों को आकृष्ट किया है। प्रसाद ने लिखा है—

देव लोक की अमृत कथा की माया, छोड़ हरित कानन की आलस छाया।
विश्राम माँगती अपना, जिसका देखा था सपना। (लहर)

पीछे न मुड़कर देखनेवाली सरिता के प्रति पंत जी कहते हैं—

माँ, उसको किसने बतलाया उस अनन्त का पथ अज्ञात
वह न कभी पीछे फिरती है, कैसा होगा उसका बल—(वीणा)

कोमल तरंगें निराला जी की कल्पना में विकराल रूप भी धारण कर लेती हैं—

हो मरोरती गला शिला का, कभी डाँटती,
कभी दिखाती जगती तल को त्रास।

'जलद के प्रति' कविता में कवि ने जलद को 'मातृ-भक्त पुत्र' के रूप में देखा है। 'होशियारों' ने उसको भड़काने की बहुत चेष्टा की, खूब पढ़ाया, बहकाया। इतना ही नहीं—

'द' जोड़ ग्रेड बढ़ाया, तम पर
जाल फूट का फैलाया,
'जल' से 'जलद' कहा, समझाया—
भेद तुझे ऊँचे बैठाल।

किन्तु वह न माना—

पर तुम कूद पड़े, पहनाया
माँ को हरा बसन सुन्दर
धन्य तुम्हारे भक्ति-भाव को
दुःख सहे, डिगरी खोई।

'बादल राग' कविता में जलद में सेवा-भाव दिखाया गया है—

सिन्धु के अश्रु!
धरा के खिन्न दिवस के दाह!
मौन उर में चिह्नित कर चाह
छोड़ अपना परिचित संसार—
सुरभि का कारागार,
चले जाते हो सेवा-पथ पर।

यहाँ कवि ने प्रकृति को देश-प्रेम का आदर्श चुना है। विदेशी ने उपाधियाँ बाँट कर कितने देशभक्तों को अपनी ओर नहीं

मिलाया ? किन्तु जलद उन सबसे बढ़कर है ; वह उपाधियों से विचलि
नहीं हुआ ।

'जलद' यदि 'देशभक्त' का प्रतिरूप है तो प्रपात में कवि ने गौत
बुद्ध के 'बिम्ब' की अभिव्यक्ति देखी है । कवि 'प्रपात' से कहता है-
जब तुम बहते हो, पिता पर्वत का कोई दूत आकर गतिरोध करता है
तुम पत्थर से टकराते हो, फिर रुक जाते हो । और जब तुम उसको पहिचा
लेते हो—

समझ जाते हो उस जड़ का सारा अज्ञान
फूट पड़ती है ओठों पर तब मुस्कान
बस अज्ञात की ओर इशारा करके चल देते हो,
भर जाते हो उसके अन्तर में तुम अपनी तान ।

नव-जीवन लेकर प्रभात आया । सबमें शक्ति का संचार हुआ
अलसाई हुई रात कूजित हो उठी—

कुञ्जों की रात प्रभात हुई
कूजित, अलसाई गात हुई ।
पलकें मुँद गईं, खुली रेखा,
तिर्यक, सित किरणों में देखा
लिख गई नवल-जीवन लेखा
ज्योति के पद की ज्ञात हुई ।

प्रभात की लालिमा ने कवि-कल्पना में नया ही रूप पाया—

प्रात जब ऊषा रो-रो रात
देख पड़ती रक्तोत्पल गात
भुलाने को किसको नभ जात
वहाँ जाते कर-वीणा-कर ?

दिन भर आनन्द का, प्रकाश का संचार करता हुआ रवि अस्ताचल
ी ओर चल पड़ता है—

ऊपर शोभित मेघ छत्र सित,
नीचे अमित नील जल दोलित
ध्यान-नयन मन चिन्त्य प्राण-धन
किया शेष रवि ने कर अर्पण ।

अन्तिम किरणें देकर रवि 'अपर पार' गए और अम्बर-पथ स
न्थर गति में सन्ध्या-श्यामा उतर आई, मन्द पवन बहने लगी, जुही खिल
ई ।

सौन्दर्य प्रदान करने वाले सातो रंग प्रकृति में विद्यमान हैं, [illegible]
सतरंगिनी इन्द्रधनुषी प्रकृति क्यों न सुन्दर हो—

रँगे जग के पलक, सित मुख, असित अलक।
नील घन सिन्धु जल, शुभ्र शशि-गगन-तल
रक्त पाटल-पटल, हरित तृण की पलक, पीत सायं किरण

यह सतरंगिनी प्रकृति चिर चंचला भी है—
चल समीर, चल कलि दल, चल पल्लव, चल अचल।
चल सौरभ चल चितवन, चल वन, उपवन, जोवन,
चल यौवन, चल कल मन, चल सुरसरि, जल निर्मल।
चल रवि, शशि, तारा दल, चल ग्रह, उपग्रह चंचल,
पृथ्वी, जल, अनिल, अनल, अग, जग, जड़, जीव, चपल।

माया चंचल प्रकृति का ही रूप है, इसीलिए वह विभिन्न रूप धार
करती है—

यों कहीं सुन्दर प्रकृति बन सँवर कर
नृत्य करती नायिका तू चञ्चला
या कहीं लज्जावती क्षिति के लिए
हो रही सरिता मनोहर मेखला।

इस चंचल मायाविनी प्रकृति के चित्र का दूसरा पहलू भी कवि ने
दिखलाया है। 'नील' शब्द भारतीय वांग्मय में गांभीर्य, सौन्दर्य, विशालता
व्यापकता का प्रतीक माना गया है, और यह प्रकृति इसी नील का प्रति
बिम्ब है:—

नील-कमल-अमल-हास, केवल रवि - रजत भास,
नील-नील आस पास, वारिद-नव-नील छलक।
नील-नीर - पान - निरत, जगती के जन अविरत
नील नाल से आनत, तिर्यक-अति नील अलक।

'रास्ते के फूल से' नामक कविता में हम प्रकृति के निर्मल, दुर्बल,
असहाय रूप का दर्शन करते हैं। दलित कुसुम अति दीन भाव से
कहता है—

झटिका के झोंके में तरु था झुका,
बचने पर भी, हाय, अन्त तक न रुका।
खिन्न लतिका को करके छिन्न
आँधी मुझे उड़ा लाई है

किन्तु फिर भी पुष्प में अहं भाव है ; क्योंकि वह कवि की वाणी है, उसकी कल्पना है, उसकी कविता है—

ललित कल्पना— कोमल पद का मैं था मनहर छन्द

'पहचान' कविता में कवि ने प्रकृति के उभार रूप का और मानव के निष्ठुर रूप का वर्णन किया है। पुष्प अति उदार है, किन्तु निष्ठुर माली निरा गँवार है, वह पुष्प की उदारता को नहीं समझता। वह स्वार्थ से भरा हुआ है—

स्वार्थ का मारा यहाँ भटकता,
फूटी कौड़ी पर विनोदमय जीवन सदा पटकता,
तोड़ लिया ललचाई ज्यों ही डाली,
पत्थर से भी कठिन कलेजे का है
चला गया जो वह हत्यारा माली।

कवि को प्रकृति मधुर संगीतमय दिखाई देती है—

शब्द के कलि - दल खुले,
गति पवन भर काँप थर-थर
मींड भ्रमरावलि ढुलें
गीत परिमल बहे निर्मल।

प्रकृति मानव की सहचरी है। मानव भावनाओं के अनुरूप प्रकृति भी अपना रूप बदल लेती है—

आज मन पावन हुआ है, जेठ में सावन हुआ है !

मानव सहचरी प्रकृति के लिए कवि माँ (पृथ्वी) से वरदान माँगता है:—

माँ, मानस के सित शतदल को
रेणु गन्ध के पंख खिला दो,
जग को मंगल मंगल के पग
पार लगा दो, प्राण मिला दो
तरु को तरुण पत्र मर्मर दो।

'पंचवटी-प्रसंग' में शूर्पणखा की अनुचरी के रूप में प्रकृति प्रस्तुत होती है। शूर्पणखा कहती है:—

प्रकृति मेरी अनुचरी है ;
प्रकृति की सारी सौन्दर्य-राशि लज्जा से
सिर झुका लेती जब देखती है मेरा रूप।

'कुकुरमुत्ता' कवि की अनूठी रचना है। इस कविता के माध्यम से कवि ने अपने राजनैतिक विचार प्रतिपादित किए हैं, और इसी के अनुरूप उनकी कोमल-कान्त पदावली भी बदल जाती है। 'कुकुरमुत्ता' समाजवादी सम्प्रदाय का प्रतिनिधि है, और 'कमल' पूँजीवादी दल का। समाजवादी कुकुरमुत्ता पूँजीवादी कमल से कहता है—

अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट।

तू मुझको देख। मैं डेढ़ बालिश्त का हूँ और अपने से उगा हूँ। मैं दाना नही चुनता, मेरी कलम नहीं लगाई जाती।

अतः—

तु है नकली, मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा, मैं हूँ कौलिक
तू रँगा और मैं धुला,
पानी मैं, तू बुल्बुला
तूने दुनिया को बिगाड़ा
मैंने गिरते से उभाड़ा।

कुकुरमुत्ते को अपने रूप का अहंकार है। वह कहता है—चीन ने मेरी नकल कर छाता बनाया है, मेरे जैसा ही भारत का छत्र है। आज पैराशूट ने मेरा रूप लिया है। मैं हूँ विष्णु का सुदर्शनचक्र।

कवि प्रकृति के माध्यम से अपने रहस्यवादी सिद्धन्तों को प्रतिपादित करता है। 'तुम और मैं' कविता में कवि ने रूपक द्वारा जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध स्थिर किया है। जीव और ब्रह्म में भिन्नता नहीं। जीव ब्रह्म का ही एक अंश है—

तुम तुङ्ग-हिमालय-शृंग
और मैं चञ्चल गति सुर-सरिता
× × ×
तुम दिनकर के खर किरण जाल
मैं सरसिज की मुस्कान।

ब्रह्म अज्ञात है. उस रहस्यमय के प्रति कौतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है यही जिज्ञासा हमें निराला जी की इन पक्तियो में दिखाई देती है

कौन तम के पार ?—(रे, कह)
अखिल पल के स्रोत, जल जग
गगन घन - घन - धार—(रे, कह)

निराला जी ने प्रकृति के उपमान एवं रूपकों द्वारा अपने भावों को स्पष्ट किया है। उनके ये भाव अति सुन्दरता एवं कलात्मकता से अभिव्यक्त हुए हैं। कवि 'स्मृति' से कहता है—

जटिल जीवन नद में तिर-तिर
डूब जाती हो तुम चुपचाप
सतत द्रुत गतिमयि अयि फिर फिर
उमड़ करती हो प्रेमालाप;
सुप्त मेरे अतीत के गान
सुना प्रिय हर लेती हो ध्यान।

स्मृति में सुख की अनुभूति है। कवि ने स्मृति को 'सुख-वृन्तों की कलियाँ' कहा है। यह स्मृति मानव-जीवन में आनन्द का संचार करती है—

उषा-सी क्यों तुम कहो द्विदल
सुप्त पलकों पर कोमल हाथ
फेरती हो ईप्सित मंगल,
जगा देती दो वही प्रभात।

'पंचवटी-प्रसंग' में लक्ष्मण अपनी तुलना शैवाल-जाल से करते हैं—

सलिल-प्रवाह में ज्यों बहता शैवाल-जाल
गृह हीन, लक्ष्य हीन, यन्त्र तुल्य,
किन्तु परमात्मा की प्रेममयी प्रेरणा से
मिलता है अन्त में असीम महासागर से
हृदय खोल—मुक्त होता,
मैं भी त्यों त्यागकर सुखाशाएँ,—
घर - द्वार—धन - जन,
बहता हूँ माता के चरणामृत-सागर में;
मुक्ति नहीं जानता मैं, भक्ति रहे, काफी है।

कवि को यौवन-मद की बाढ़ नदी की भाँति प्रतीत होती है और जीवन 'प्रात-समीरण-सा लघु'। विधवा 'टूटे तरु की छुटी लता-सी' है। कामिनी की आँखों से आँसू प्रवाहित होते हैं कमल के कोष से प्राप्त की

ओस ज्यों', और किसान की नई बहू की आँखें कैसी हैं ? 'ज्यों हरीतिमा में बैठे दो विहग बन्द कर पाँखें।'

मानवश्री का वर्णन करने के लिए कवि ने प्रकृति से सुन्दर उपमान खोजे हैं। प्रेयसी का रूप कैसा है ? वह तरल तरंग की भाँति है, ज्योतिर्मयी लता सी है। प्रेयसी के प्रिय उसे कैसे देखते हैं—

सजल शिशिर धौत पुष्प ज्यों प्रात में
देखता है एकटक किरण-कुमारी को।

कवि को आँखें कमल सी, उर सरिता सा, मन परिमल सा, और कपोल कुसुम-दल से प्रतीत होते हैं। जीवन अरण्य सा प्रतीत होता है, कभी पतझड़ सा भी। और यह जीवन आनन्दानुभूति के कारण बसन्त भी बन जाता है। कवि भावों की अभिव्यक्ति में भी प्रकृति का साम्य देखता है—

किसी महाकवि-कलित कण्ठ से
झरता था जैसे अविराम कुसुम-दल।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि निराला के भाव मुखरित हुए प्रकृति के विविध रूपों में, और उनकी कला निखरी प्रकृति के सतरंगों में। उनके जीवन की कोमल भाव-लहरियाँ भी उसी पृष्ठभूमि पर चित्रित हुई हैं ; पौरुष का नाम उसी के स्वर में मुखरित हुआ है, और आध्यात्म के गूढ़ रहस्य को आलोकित करनेवाला आलोक-दीप भी वही है। सत्य, शिव और सुन्दर को अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति से अधिक सशक्त माध्यम नहीं हो सकता।

निराला पर अँगरेजी कवियों का प्रभाव

आधुनिक हिन्दी कविता पर अँगरेजी कवियों का बहुत प्रभाव पडा है और अब भी पड़ रहा है। फोर्ट विलियम कालिज की स्थापना के पश्चात् अँगरेजी साहित्य ने हिन्दी जगत में प्रवेश करना आरम्भ किया। १८४३-१८६८ के संक्राति काल के उपरांत भारतेन्दु-युग का प्रादुर्भाव हुआ और नये हिन्दी साहित्य का जन्म हुआ। इस काल के साहित्य में कुछ नयी प्रवृत्तियों का समावेश हुआ जो अँगरेजी साहित्य और सभ्यता की देन थीं। आगे चलकर द्विवेदी-युग (१९००-१९२०) में नये साहित्य ने और उन्नति की। इस युग की कविता पर अँगरेजी कवियों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि की कविताओं में अँगरेजी के कवियों—कुबे, शेंस्टन, ग्रे, गोल्डस्मिथ आदि का प्रभाव स्पष्ट है। द्विवेदी जी ने स्वयं मिल्टन और वर्डस्वर्थ के काव्य-सिद्धान्तों पर हिन्दी कविता को ढालने का प्रयत्न किया था। १८८४-१९२० के बीच अनेक अँगरेजी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ था। इन अनुवादों का भी प्रभाव बहुत हुआ ; किन्तु १९१३ से सबसे बडा प्रभाव जो हिन्दी कविता पर पड़ा वह था रवीन्द्रनाथ टैगोर का और उनके साथ समस्त बँगला साहित्य का जो स्वयं अँगरेजी साहित्य से प्रभावित था।

इन प्रभावों के फलस्वरूप हिन्दी काव्य-जगत में छायावाद का जन्म हुआ। इसके प्रमुख प्रवर्त्तक जयशंकर प्रसाद ने १९०९ में 'इन्दु' द्वारा नयी कविता के जन्म की घोषणा की। १९१२ में टैगोर की गीतावली प्रकाशित हुई और इसने सोने में सुहागे का काम किया। हिन्दी जगत इससे इतना प्रभावित हुआ कि प्रसाद के प्रयास को आशातीत सफलता प्राप्त हुई और नयी छायावादी कविता बड वेग से लिखी जाने लगी

इस नयी कविता पर अँगरेजी के अतिरिक्त अन्य पश्चिमी साहित्यिक प्रभाव भी पड़े; किन्तु प्रमुख प्रभाव था १७९८-१८३० में लिखी गयी अँगरेजी कविता का जो रोमैंटिक काव्य के नाम से प्रसिद्ध है।

इस रोमैंटिक काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ ये हैं—(१) प्रकृति का स्वच्छंद चित्रण, मानवीकरण, दैवीकरण आदि, (२) मानवतावाद एवं विद्रोहात्मक आदर्शवाद, (३) सौन्दर्यवाद, (४) स्वतंत्रता और नैराश्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति और (५) रहस्यवाद। कलापक्ष के दृष्टिकोण से इस काव्य की प्रमुख विशेषता परम्परागत काव्य-भाषा का परित्याग और नवीन छंदों का प्रयोग थी। प्रचलित काव्य-परम्परा एवं छन्द—'हिरोइक कपलेट' के विरुद्ध रोमैंटिक कवियों ने आन्दोलन किया था। अतएव अपनी काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने नवीन छन्दों का प्रयोग किया और सम्बोधन गीति (ओड), चतुर्दशपदी (सौनेट) आदि गीतिकाव्य का प्रचलन किया। इसके साथ ही इन कवियों ने नयी भाषा को भी अपनाया और शब्दों, प्रतीकों और बिम्बों का नया काव्यात्मक विधान प्रस्तुत किया। फलस्वरूप उनकी काव्य-शैली में इतिवृत्तात्मकता की जगह व्यंजकता, संगीतात्मकता और चित्रात्मकता का समावेश हुआ। इस काव्य में प्रतीकों की भरमार है और कवि शैली के प्रतीक जिनमें जीव और प्रकृति की शक्तियों का मानवीकरण है, अद्वितीय हैं। इनके प्रतीक समस्त रोमैंटिक काव्य के प्रतीकवाद को भलीभाँति प्रस्तुत करते हैं।

अँगरेजी रोमैंटिक काव्य की इन प्रवृत्तियों का समावेश हिन्दी की छायावादी कविता में हुआ। रोमैंटिसिज्म और छायावाद का जन्म चाहे विभिन्न देशों और परिस्थितियों में हुआ हो तथापि हिन्दी के छायावादी कवियों ने रोमैंटिक कवियों से बहुत कुछ ग्रहण किया—कुछ तो सीधे ही अँगरेजी कविता से प्रभावित हुए और कुछ बँगला-साहित्य के माध्यम से। रोमैंटिक कवियों के प्रभाव के अतिरिक्त हिन्दी कवियों पर अँगरेजी के प्रमुख कवि और नाटककार शेक्सपियर का भी प्रभाव इन कवियों पर पड़ा। हिन्दी के कवि समकालीन अँगरेजी लेखकों के प्रभाव से भी नहीं बच सके। अतः बरनर्ड शा, वाल्टर डि ला मेयर, सिटवेल्स, औडन, स्पण्डर आदि का भी प्रभाव हिंदी कविता में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अमेरिका के प्रसिद्ध कवि वाल्टह्विटमैन ने भी कुछ हिन्दी कवियों को अपनी ओर आकर्षित किया है

अतः भाव और भाषा-शैली के दृष्टिकोण को छायावादी और उसके पश्चात् लिखी जानेवाली हिन्दी कविता पर अँगरेजी कवियों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है और इसी प्रभाव के कारण १९१२ से लिखी जानेवाली हिन्दी कविता में नवीन विषयों और उपादानों, नयी शैली और भाषा और नये छन्दों का प्रयोग किया गया है।

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' इस नयी छायावादी कविता के प्रवर्तकों में से थे। वह अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा नवीन बँगला साहित्य से बहुत अधिक प्रभावित थे और इस प्रकार अँगरेजी कविता से भी जिसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का समावेश इस साहित्य में हुआ था। निराला का पालन-पोषण बँगाल में हुआ था और वहीं उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने बँगला साहित्य और संगीत का गंभीर अध्ययन किया था। इसी के साथ संस्कृत साहित्य, भारतीय दर्शन और अँगरेजी के कुछ प्रमुख लेखकों का भी अध्ययन किया था। शेक्सपियर, वर्ड्स्वर्थ, शेली, कीट्स, टेनिसन, शा आदि को उन्होंने पढ़ा था खड़ीबोली साहित्य के प्रति उन्हें अपनी पत्नी से प्रेरणा मिली और शीघ्र ही वह महिषादल राज्य की नौकरी छोड़ कर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उतर पड़े। 'मतवाला' और 'समन्वय' पत्रिकाओं के सम्पादन द्वारा उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन की नींव डाली। अन्तोगत्वा वह एक क्रांतिकारी एवं 'निराला' कवि के रूप में हिन्दी कविता के क्षितिज पर उदय हुए।

निराला जी के आगमन से हिंदी काव्य जगत में हलचल मच गयी थी, क्योंकि वह क्रान्ति का संदेश लेकर आये थे और आते ही उन्होंने परंपरागत रूढ़ियों पर, नये-पुराने बन्धनों पर, भाषा-शैली, छन्द आदि पर प्रहार किये और इस प्रकार प्रसाद जी के प्रयास को और अधिक सफल बनाया। छायावाद के विरोधियों को उन्होंने मुँहतोड़ उत्तर दिये और प्रगाढ़ आत्मविश्वास के साथ छायावाद का समर्थन किया। उनके आगमन से छायावाद को एक अद्‌भुत आत्मबल मिल गया और प्रसाद और पंत के साथ छायावादी कवियों का एक सुदृढ़ संगठन सा बन गया।

कवि निराला के साहित्यिक जीवन का निर्माण विविध साहित्यिक प्रभावों के सम्मिश्रण एवं समन्वय से हुआ था। बँगला साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियाँ, बँगला संगीत, विवेकानन्द का दर्शन, अँगरेजी काव्य की रोमैंटिक प्रवृत्तियाँ अँगरेजी संगीत और अन्त में मार्क्सवाद का मधुर सामंजस्य 'निराला' में हुआ था इन सबका प्रभाव उनकी कविता में स्पष्ट है परन्तु

इतना होने पर प्रश्न यह उठता है कि निराला पर अँगरेजी कवियों का प्रभाव कहाँ तक पड़ा। सच तो यह है कि निराला ने अँगरेजी साहित्य का विशेष अध्ययन नहीं किया था। उन्होंने शेक्सपियर के सौनेट्स, रोमैंटिक कवियों की कविताएँ, विशेषकर शेली की 'एलास्टर' और शा के नाटक पढ़े अवश्य थे, पर उन्होंने कहीं भी इनका प्रभाव स्वीकार नहीं किया है, पंत, रामकुमार वर्मा, इलाचन्द्र जोशी आदि ने पश्चिमी प्रभावों को स्वीकार किया। इसलिए निराला के विषय में यह कहना कठिन है कि किस कवि का कहाँ तक प्रभाव उन पर पड़ा अथवा कौन सा कवि उनको प्रिय था। मेरे विचार में निराला जी अपने समय के वातावरण से अधिक प्रभावित थे और उस वातावरण में रोमैंटिक प्रवृत्तियों का अधिक प्रभाव था जिसके कारण निराला की कविता में अँगरेजी काव्य की प्रायः सब ही प्रवृत्तियों की झलक मिलती है। अस्तु, यह कहना असंगत न होगा कि निराला की कविता पर चाहे अँगरेजी कवियों का सीधा प्रभाव न पड़ा हो तथापि दोनों में अधिक साम्य दृष्टिगोचर होता है। देश और काल की विभिन्नता को दृष्टि में रखते हुए जो समानता एवं प्रभाव हमें निराला की कविता में मिलता है उसका उल्लेख हम नीचे करेंगे।

(१) प्रकृति-चित्रण—अँगरेजी रोमैंटिक काव्य की प्रमुख प्रवृति नवीन प्रकृति-चित्रण थी। वड्सवर्थ ने प्रकृति को नये दृष्टिकोण से देखा। प्रकृति में वड्सवर्थ को दैवी शक्ति की झलक दिखाई दी, प्रकृति और मानवात्मा में उनको ऐक्य का अनुभव हुआ, और प्रकृति उनको स्वच्छंद, सजीव एवं सचेत और सचेष्ट प्रतीत हुई और उसमें हर्ष और उल्लास की अधिक पुट मिली। वड्सवर्थ के इस सर्वचेतनावाद का प्रभाव रोमैंटिक युग के अन्य कवियों पर तो पड़ा ही, साथ में हिंदी के कवियों पर भी पड़ा। शेली को प्रकृति में एक महान बुद्धिवंत की उपस्थिति का आभास हुआ। प्रायः सभी रोमैंटिक कवियों ने प्रकृति को सचेत और उल्लासमय पाया—वड्सवर्थ ने प्रकृति का यही रूप अपनी कविता में चित्रित किया और आगे चलकर वह अपने दृष्टिकोण में अति रहस्यवादी हो गए। बायरन ने प्रकृति के विश्वासात्मक रूप को भी देखा था; लेकिन उनको भी प्रकृति की स्वच्छंदता ने आकर्षित किया था। कीट्स ने भी प्रकृति का स्वच्छंद चित्रण किया है।

हिंदी काव्य में भी प्रकृति का बहुत चित्रण हुआ था; किन्तु अँगरेजी कवियों ने छायावादी कवियों को नवीन दृष्टिकोण दिया और प्रकृति के स्वच्छंद चित्रण के लिए प्रोत्साहित किया। निराला ने भी वड्सवर्थ की भाँति प्रकृति के प्रति रहस्यवादी दृष्टिकोण अपनाया और प्रकृति और

मानवात्मा में सम्बन्ध स्थापित किया। प्रकृति को निराला जी ने कई रूपों में और कई दृष्टिकोणों से चित्रित किया है। प्रकृति को उन्होंने एक सुन्दर नारी और प्रेयसी के रूप में देखा और उसके अति सुन्दर, मनोरम और हृदय-ग्राही चित्र उन्होंने उपस्थित किए हैं। प्रकृति के मानवीकरण के भी अच्छे उदाहरण निराला की कविता में मिलते हैं। अँगरेजी कवियों की भाँति निराला ने भी मानव जीवन की अनुभूतियों और भावनाओं की प्रकृति में अभिव्यक्ति की है। वर्ड्सवर्थ की भाँति निराला को भी प्रकृति में दैवी आत्मा की उपस्थिति का और उल्लासमय जीवन का आभास हुआ था और वर्ड्सवर्थ ही की भाँति निराला ने केवल प्रकृति का स्थूल वर्णन न करके अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट व्यक्त करने का प्रयास किया है। इसी कारण निराला की कविता में प्रकृति का विशाल जगत उन्हीं के व्यक्तित्व के से प्रशस्त रूप में आता है। 'परिमल' और 'गीतिका' की अनेक कविताओं में निराला के प्रकृति सम्बन्धी समस्त दृष्टिकोणों के दर्शन होते हैं।

सर्वांग सुन्दरी के रूप में प्रकृति परिमल की 'बन कुसुमों की शय्या', 'संध्या सुन्दरी' आदि कविताओं में आती है। संध्या सुन्दरी का चित्र देखिए—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे, धीरे, धीरे ....

एक दूसरा चित्र यह है:—

सोती हुई सरोज - अंक पर
शरत-शिशिर-दोनों बहनों के
सुख विलास-मय-शिथिल अंग पर
पद्म पत्र-पंखे झलते थे !
मलती थी कर-चरण समीरण धीरे धीरे आती

इसमें प्रकृति की सजीवता और उसके हर्षमय जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। बसन्तागमन कविता में भी सारी प्रकृति में हर्ष के छा जाने का वर्णन है:—

सखि बसन्त आया
भरा हर्ष बन के मन
नवोत्कर्ष छाया

निराला ने प्रकृति-प्रतीकवाद को भी अँगरेजी कवियों की भाँति अपनाया। उनकी सर्वप्रथम कविता 'जुही की कली' और 'शेफालिका' तथा बाद की ऐसी कविताओं में यह प्रतीकवाद स्पष्ट है। 'शेफालिका' उस मानवात्मा की प्रतीक है जो उत्कर्ष के पश्चात अपने को दैवी आत्मा पर समर्पित कर देती है। उत्कर्षित अथवा परिष्कृत आत्मा स्वतंत्र हो जाती है; उसे अक्षय प्रेम प्राप्त होता है और उसकी सारी अभिलाषाएँ पूरी हो जाती हैं।

'जुही की कली' में उन्होंने अपने इस विश्वास को व्यक्त किया है कि दैवी आत्मा दया और सहानुभूति से प्रेरित होकर छटपटाती हुई मानवात्मा की सहायता करने लगती है। 'जुही की कली' इस छटपटाती हुई अथवा संघर्ष करती हुई मानवात्मा का प्रतीक है और मलियानल जो उसके प्रेमी के रूप में आता है वह सर्वशक्तिमान दैवी आत्मा का प्रतीक है।

निराला ने प्रकृति सम्बन्धी कुछ संबोधन गीत भी लिखे। कवि शेली की 'ओड टु द वेस्ट विंड' के समान निराला ने 'वसन्त समीर' लिखा है। जिस प्रकार शैली पश्चिमी प्रभंजन को सम्बोधित करता है अथवा बायरन 'चाइल्ड हेरोल्ड' में समुद्र को, उसी प्रकार निराला जी 'बसन्त समीर' को सम्बोधित करते हैं, यद्यपि व्यक्त विचारों का अन्तर अवश्य है। निराला जी कहते हैं—

आओ, आओ, नील सिन्धु की
कम्प तरंगों से उठकर
पृथ्वी पर वन की वीणा में
मृदु मर्मर, भर मर्मर स्वर

इसी प्रकार यमुना के प्रति, तरंगों के प्रति, जलद के प्रति, प्रपात के प्रति आदि सम्बोधन गीत हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति के कठोर और कोमल, दोनों रूपों को यदि किसी छायावादी कवि ने अपनाया तो निराला ही ने। एक ओर हमें यदि यह वर्णन मिलता है:—

निशा के उर की खुली कली
भूषण - वसन सजे गोरे - तन,
प्रीति भीति काँपे पग उर - मन
बाजे पुर खन - रिन - रन झन

तो दूसरी ओर बादल राग भी—

झूम झूम मृदु गरज - गरज घनघोर

राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर
झर - झर - झर निर्झर - गिरि सर में,
घर मरु तरु मर्मर सागर में,
सरित - तड़ित गति - चकित पवन में
मन में, विजन - गहन कानन में
आनन - आनन में, रव-घोर कठोर—
राग-अमर अम्बर में भर निज रोर।

इस प्रकार निराला ने प्रकृति को विविध रूपों में वर्णन किया है। कहीं-कहीं पर उनके चित्र स्थूल एवं वासनामय भी हो गए हैं। परन्तु इतना होने पर भी बौद्धिकता के कारण, उनकी कविताओं में वह आत्मविभोरता नहीं मिलती जो अँगरेजी के कवियों में और छायावादी कवि पंत में मिलती है। कवि बायरन की भाँति निराला भी प्रकृति से अपना व्यक्तित्व अलग रखते हैं। वे वर्डस्वर्थ की भाँति प्रकृति में खो नहीं जाते।

(२) नारी चित्रण—प्रकृति चित्रण सौन्दर्यवाद का एक रूप था और इसका दूसरा पक्ष नारी-सौन्दर्य-वर्णन था। सौन्दर्यवाद के इस पक्ष को अधिक अपनाने वाले कवि शेली और कीट्स थे। दोनों मुख्यतया प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। शेली ने तो प्रेम और सौन्दर्य के प्रति एक अति रहस्यवादी दृष्टिकोण अपनाया था। नारी-सौन्दर्य इनके काव्य में अति परिष्कृत रूप में आता है।

निराला जी ने भी अधिकतर नारी-रूप की सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति की ही अभिव्यक्ति की है। वह भी सौन्दर्य और प्रेम के ही कवि हैं और उनका भी दृष्टिकोण रहस्यवादी है। किन्तु निराला ने नारी के स्थूल रूप का भी चित्रण किया है। निराला ने प्रकृति के विभिन्न रूपों में नारी-सौंदर्य की झलक देखी और नारी-रूप का चित्रण अति कोमल और सरस रूपरेखाओं में किया है। यह कहना बिल्कुल असंगत न होगा कि इस सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा निराला को कवि शेक्सपियर, शेली और कीट्स से मिली। शेक्सपियर के सौनेट्स, शेली की 'एलास्टर' नाम कविता से वह विशेषरूप से प्रभावित हुए थे—कीट्स की 'ऐंडीमियन' आदि कविताओं का प्रभाव उन पर रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा पड़ा। 'परिमल' में अनेक स्थलों पर सुप्त सौन्दर्य को जाग्रत करने का भाव व्यक्त हुआ है। 'जागृति में सुप्त थीं' में एक अति सुन्दर रूपक पस्तुत किया गया है निराला जी ने कीट्स की भाँति नारी सौन्दर्य के ऐन्द्रिक चित्र भी खींचे है और उन्मुक्त

निराला ने प्रकृति-प्रतीकवाद को भी अँगरेजी कवियों की भाँति अपनाया। उनकी सर्वप्रथम कविता 'जुही की कली' और 'शेफालिका' तथा बाद की ऐसी कविताओं में यह प्रतीकवाद स्पष्ट है। 'शेफालिका' उस मानवात्मा की प्रतीक है जो उत्कर्ष के पश्चात अपने को दैवी आत्मा पर समर्पित कर देती है। उत्कर्षित अथवा परिष्कृत आत्मा स्वतंत्र हो जाती है; उसे अक्षय प्रेम प्राप्त होता है और उसकी सारी अभिलाषाएँ पूरी हो जाती हैं।

'जुही की कली' में उन्होंने अपने इस विश्वास को व्यक्त किया है कि दैवी आत्मा दया और सहानुभूति से प्रेरित होकर छटपटाती हुई मानवात्मा की सहायता करने लगती है। 'जुही की कली' इस छटपटाती हुई अथवा संघर्ष करती हुई मानवात्मा का प्रतीक है और मलियानल जो उसके प्रेमी के रूप में आता है वह सर्वशक्तिमान दैवी आत्मा का प्रतीक है।

निराला ने प्रकृति सम्बन्धी कुछ संबोधन गीत भी लिखे। कवि शेली की 'ओड टु द वेस्ट विंड' के समान निराला ने 'वसन्त समीर' लिखा है। जिस प्रकार शैली पश्चिमी प्रभंजन को सम्बोधित करता है अथवा बायरन 'चाइल्ड हेरोल्ड' में समुद्र को, उसी प्रकार निराला जी 'बसन्त समीर' को सम्बोधित करते हैं, यद्यपि व्यक्त विचारों का अन्तर अवश्य है। निराला जी कहते हैं—

आओ, आओ, नील सिन्धु की
कम्प तरंगों से उठकर
पृथ्वी पर वन की वीणा में
मृदु मर्मर, भर मर्मर स्वर

इसी प्रकार यमुना के प्रति, तरंगों के प्रति, जलद के प्रति, प्रपात के प्रति आदि सम्बोधन गीत हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति के कठोर और कोमल, दोनों रूपों को यदि किसी छायावादी कवि ने अपनाया तो निराला ही ने। एक ओर हमें यदि यह वर्णन मिलता है:—

निशा के उर की खुली कली
भूषण - वसन सजे गोरे - तन,
प्रीति भीति काँपे पग उर - मन
बाजे पुर खन - रिन - रन झन

तो दूसरी ओर बादल राग भी—

झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर

राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर
झर - झर - झर निर्झर - गिरि सर में,
घर मरु तरु मर्मर सागर में,
सरित - तड़ित गति - चकित पवन में
मन में, विजन - गहन कानन में
आनन - आनन में, रव-घोर कठोर—
राग-अमर अम्बर में भर निज रोर।

इस प्रकार निराला ने प्रकृति को विविध रूपों में वर्णन किया है। कहीं-कहीं पर उनके चित्र स्थूल एवं वासनामय भी हो गए हैं। परन्तु इतना होने पर भी बौद्धिकता के कारण, उनकी कविताओं में वह आत्मविभोरता नहीं मिलती जो अँगरेजी के कवियों में और छायावादी कवि पंत में मिलती है। कवि बायरन की भाँति निराला भी प्रकृति से अपना व्यक्तित्व अलग रखते हैं। वे वर्डस्वर्थ की भाँति प्रकृति में खो नहीं जाते।

(२) नारी चित्रण—प्रकृति चित्रण सौन्दर्यवाद का एक रूप था और इसका दूसरा पक्ष नारी-सौन्दर्य-वर्णन था। सौन्दर्यवाद के इस पक्ष को अधिक अपनाने वाले कवि शेली और कीट्स थे। दोनों मुख्यतया प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। शेली ने तो प्रेम और सौन्दर्य के प्रति एक अति रहस्यवादी दृष्टिकोण अपनाया था। नारी-सौन्दर्य इनके काव्य में अति परिष्कृत रूप में आता है।

निराला जी ने भी अधिकतर नारी-रूप की सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति की ही अभिव्यक्ति की है। वह भी सौन्दर्य और प्रेम के ही कवि हैं और उनका भी दृष्टिकोण रहस्यवादी है। किन्तु निराला ने नारी के स्थूल रूप का भी चित्रण किया है। निराला ने प्रकृति के विभिन्न रूपों में नारी-सौदर्य की झलक देखी और नारी-रूप का चित्रण अति कोमल और सरस रूपरेखाओं में किया है। यह कहना बिल्कुल असंगत न होगा कि इस सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा निराला को कवि शेक्सपियर, शेली और कीट्स से मिली। शेक्सपियर के सौनेट्स, शेली की 'एलास्टर' नाम कविता से वह विशेषरूप से प्रभावित हुए थे—कीट्स की 'ऐंडीमियन' आदि कविताओं का प्रभाव उन पर रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा पड़ा। 'परिमल' में अनेक स्थलों पर सुप्त सौन्दर्य को जाग्रत करने का भाव व्यक्त हुआ है। 'जागृति में सुप्त थीं' में एक अति सुन्दर रूपक पस्तुत किया गया है निराला जी ने कीट्स की भाँति नारी-सौन्दर्य के ऐन्द्रिक चित्र भी खींचे हैं और उन्मुक्त

प्रेम का 'बनबेला' में हृदय-ग्राही रूप चित्रित किया है। नारी का ऐन्द्रिक चित्र 'उसकी स्मृति', 'शूर्पणखा' आदि कविताओं में मिलता है।

'परिमल' में 'प्रेम' पर निराला की अनेक कविताएँ हैं; परन्तु अधिकांशतः कवि ने अपनी दिवंगत पत्नी की आत्मा के प्रति प्रेम व्यक्त किया है। 'उसकी स्मृति' में नारी का वैसा ही चित्रण मिलता है जैसा कि वड्सवर्थ की प्रसिद्ध कविता 'शी वाज् ए फैंटम ओफ डिलाइट' में। मेरा विचार है कि निराला ने वड्सवर्थ की भाँति दाम्पत्य प्रेम ही पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखी थी। 'सन्ध्यापन' एवं 'जुही की कली' आदि कविताओं में उन्होंने प्रेम व नारी-सौन्दर्य का प्रतीकात्मक चित्रण किया; किंतु 'निवेदन' और 'उसकी स्मृति' ऐसी कविताओं में अपनी पत्नी के प्रति उनका प्रेम व्यक्त होता है। 'अनामिका' (दूसरा संस्करण) की कविताओं ने प्रेम के आध्यात्मिक रूप के अनेक चित्र मिलते हैं। शेली की 'एलास्टर' कविता का प्रभाव इनमें लक्षित होता है। इसी प्रकार 'तुम जाओगे चले' कविता में वड्सवर्थ के विचारों की प्रतिध्वनि मिलती है। उनकी सौन्दर्यभावनायुक्त अधिकांश कविताओं में शेली की 'हिम टु इंटेलकछुएल ब्युटी' की भी झलक मिलती है।

(३) मानवतावाद एवं विद्रोहात्मक आदर्शवाद—छायावादी कविता पर रोमैंटिक काव्य की एक और प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ा है और वह है मानवतावाद एवं विद्रोहात्मक आदर्शवाद। रोमैंटिसिज्म की भाँति छायावाद भी मानव की महत्ता को स्वीकार करता है और इसलिए छायावादी कवि सच्चे अर्थ में मानव का कवि है। अँगरेजी रोमैंटिक साहित्य फ्रांस की प्रसिद्ध क्रान्ति से बहुत अधिक प्रभावित था और इसमें क्रन्ति के प्रमुख आदर्शों का समावेश हुआ था। वड्सवर्थ क्रान्ति के राजनीतिक पक्ष से प्रभावित हुआ था, बायरन उसके सामरिक पक्ष से और शेली उसके सैद्धातिक पक्ष से बहुत प्रभावित था। शेली की क्रान्ति में आस्था थी और मानव के पुनरोत्थान में पूर्ण विश्वास। अतएव शेली ही की कविता में क्रान्ति की भावना का वास्तविक रूप मिलता है। फ्रांस की क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य मानव की सर्वांगीण स्वतंत्रता था। इसके आदर्शानुसार सारी मानवता को एक ही मनुष्य का स्वरूप मानना था जिसमें जन्म, सम्पत्ति आदि के दृष्टिकोण से उत्पन्न समस्त भेदभाव मिट जाय और समाज में सब व्यक्ति स्वतंत्र हो जायँ और सबको समान अवसर प्राप्त हो; क्योंकि ऐसी अवस्था में मानव बन्धुत्व के एक सूत्र में बँध सकता है। इस प्रकार

जाति-पाँति, वर्ग, देश आदि का भेद समाप्त हो जायगा और मानवता का केवल एक ही भेद और एक ही राष्ट्र बन जायगा।

युगों से शोषित और पीड़ित भारतवासियों को फ्रांस की इस क्रान्ति में अपनी ही आकांक्षाओं का प्रतिबिंब दृष्टिगोचर हुआ और छायावाद के मानवतावादी कवि ने इस विद्रोह की मूल भावनाओं को अपनी कविता में व्यक्त किया। यों तो इस युग के प्रायः सभी कवियों में इसका प्रभाव लक्षित होता है, किंतु इस विद्रोहात्मक आदर्शवाद का जितना प्रगाढ़ और प्रखर रूप निराला के काव्य में मिलता है उतना और किसी के नहीं। जिस प्रकार रोमैंटिक कवि बायरन की विद्रोहात्मक आत्मा के लिए समुद्र क्रान्ति और स्वतंत्रता का प्रतीक था और शेली के लिए पश्चिमी प्रभजन, उसी प्रकार निराला की विद्रोहात्मक आत्मा को 'बादल' प्रिय थे क्योंकि वे विप्लव एवं क्रान्ति के अग्रदूत थे। बादल-राग की अनेक कविताएँ इसी भावना से ओत-प्रोत हैं।

शेली ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'ओड टु दि वेस्ट विंड' में विध्वंस और नवनिर्माण की भावना को व्यक्त किया है। इस 'वेस्ट विंड' (प्रभंजन) के आगमन से जीर्ण तरुपात टूट कर गिर जाते हैं; किंतु साथ में नव-जीवन के द्योतक-बीज भी पृथ्वी के गर्भ में पहुँच जाते हैं और वसन्त आने पर यह नया वर्ण और नया सौरभ लेकर अंकुरित होते हैं। इसीलिए कवि प्रभंजन को विध्वंसकारी एवं नव-निर्माता के रूप में देखता और सम्बोधित करता है।

इसी प्रकार निराला भी बादलों को सम्बोधित करते हैं जो आकाश पर स्वच्छंद विचर रहे हैं। उनके गर्जन से अंबर भर जाता है और वे झूम झूमकर वर्षा द्वारा नव निर्माण के कार्य में अपना योगदान देते हैं। बादलों को सम्बोधित करता हुआ कवि कहता है—

> आओ, आओ, नील सिंधु के
> कम्प, तरंगों से उठकर
> पृथ्वी पर, वन की वीणा से
> मृदु मर्मर, भर मर्मर स्वर।

फिर

> झूम झूम मृदु-गरज-गरजघन घोर,
> राग अमर! अंबर में भर निज रोर
> अरे वर्ष के हर्ष
> बरस तू बरस बरस रसधार

इन बादलों की उपमा प्रभंजन से भी दी गयी है—

बहता अंध प्रभंजन ज्यों

जिस प्रकार शेली का पश्चिमी प्रभंजन क्षितिज की रेखा पर बादलों को छितरा कर आनेवाले तूफान की सूचना देता है जो वर्षा, विद्युत, उल्कापात आदि से सारी धरा को विकम्पित कर देता है, उसी प्रकार निराला के बादल भी जलधार बरसाते, पत्र, पुष्प, पादप, बन-उपवन को छिन्न-भिन्न कर अपना आतंक जमाते हैं—

ऐ अटूट-टूट पर छूट पड़नेवाले उन्माद..........

छिन्न-भिन्न कर पत्र, पुष्प, पादप वन उपवन
वज्र घोष से ऐ प्रचण्ड
आतंक जमानेवाले
बरसो विप्लव से जलधार।

शेली ने प्रभंजन को कई प्रकार से सम्बोधित किया है जैसे उच्छृंखल आत्मा, अनियंत्रणशील, उद्दाम, भयंकर आत्मा आदि; इसी प्रकार निराला भी अपने बादलों को ऐसे ही नामों से सम्बोधित करते हैं—

ऐ निर्बंध—
अंधतम-अगम--अनर्गल बादल
ऐ स्वच्छंद !
मंद-चंचल-समीररथ पर उच्छृंखल
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण
बाधा रहित विराट् !

शेली अपनी कविता में प्रभंजन का सहचर बनने की तीव्र इच्छा व्यक्त करता है क्योंकि एक समय था जब उसकी अपनी आत्मा भी प्रभंजन के समान स्वच्छंद, निर्बंध, उद्दाम और वेगवती थी। अब उसकी आत्मा शोकातुर है; किंतु फिर उसकी तंत्रियों से सुन्दर संगीतमय गान निकल सकते हैं। अतएव वह प्रभंजन से प्रार्थना करता है कि मुझे अपने गीतों का वाद्य बना ले। निराला भी अपने बादलों से कहते हैं—

पार ले चल मुझको
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-भैरव संसार।

निराला ने विद्रोह की भावना से प्रेरित हो भारत पर विदेशी शासकों द्वारा किये गए अत्याचारों को अनुभव किया और बादल-राग में इस अत्याचार के प्रति विद्रोह के गान गाए—

तुझे बुलाता कृषक अधीर
चूस लिया है उसका सार
हाड़-मास ही है आधार।

और कवि बादल से बरसने के लिए कहता है जिससे धरा अत्याचार से मुक्त हो जाय। इस दृष्टिकोण से निराला पर शेली का प्रभाव बहुत है और दोनों की आत्माओं एवं दृष्टिकोण में जितना साम्य है उतना किसी और कवि में नहीं। शेली ने अपनी विद्रोहात्मक भावना को अनेकों कविताओं से व्यक्त किया है, 'प्रोमीथियस, अन बाऊंड', 'स्वेलफुट टु टाइरेंट', 'रिवोल्ट आफ इस्लाम', 'मास्क आफ अनार्की' आदि कविताओं में क्रान्ति और विद्रोह की भावना की अभिव्यक्ति हुई है। यह विद्रोह सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक बन्धनों और राजनीतिक अत्याचारों के प्रति व्यक्त हुआ है क्योंकि इन सबके कारण मानवात्मा अपनी स्वतंत्रता खो बैठी है। निराला ने भी अपनी कविताओं में इस भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति की है। 'देवी तुम्हें क्या दूँ' में श्यामा क्रान्ति की प्रतीक बन कर आती है और कवि कहता है कि उसके पास केवल क्रान्तिभावना से गीतों के उपहार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस क्रान्ति की भावना का प्रगतिवादी रूप हमें निराला की भिक्षुक, विधवा, 'इलाहाबाद के पथ पर' ऐसी कविताओं में मिलता है।

निराला मार्क्सवादी और प्रगतिवादी कवियों की विद्रोहात्मक भावना से भी प्रभावित हुए। 'अणिमा' की कविताओं में प्रगतिवादी आन्दोलन की झलक स्पष्ट है। इन कविताओं में सामाजिक मानवतावाद के भावों की अभिव्यक्ति हुई है। 'बेला' में कवि श्रमजीवी समाज को क्रान्ति के लिए प्रेरित करता है।

राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावनाओं की जो अभिव्यक्ति निराला ने 'जागो फिर एक बार', 'दिल्ली' आदि कविताओं में की है वह भी उनको रोमैंटिक कवियों से और विशेषकर शेली से मिली थी। सभी रोमैंटिक कवि राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावना से ओतप्रोत थे। बायरन ने तो अपने को स्वयं ग्रीस की स्वतंत्रता के लिए न्योछावर कर दिया था। रोमैंटिक काव्य ने मानव के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण अपनाया था और की अभिव्यक्ति इस काव्य में हुई है निराला भी अँगरजी

काव्य के प्रभाव के कारण स्वच्छंदतावादी, मानववादी, क्रान्तिकारी और आदर्शवादी बन गए और इन सबकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में हुई है।

कला पक्ष : इस स्वच्छंदतावाद का प्रभाव केवल काव्य के विषय और उपादानों तक ही सीमित नहीं रहा, वरन उसके रूप और विधान में भी उसने क्रान्ति उत्पन्न कर दी। रोमैंटिक कवियों ने काव्य की प्रचलित परम्परा का विरोध किया और अपनी काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नवीन छन्दों और नयी भाषा का प्रयोग किया। इस भाषा में चित्रात्मकता व्यंजकता, प्रतीकात्मकता और संगीतात्मकता का समावेश हुआ।

अंगरेजी रोमैंटिक काव्य के इस कलापक्ष का भी प्रभाव हिन्दी के छायावादी कवियों पर पड़ा। इस दृष्टिकोण से भी निराला सबसे अधिक प्रभावित हुए। उनकी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति किसी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं करती थी और रोमैंटिक कवियों से प्रेरित हो उन्होंने हिन्दी कविता की नियमबद्धता पर कठोर प्रहार किये और काव्य को 'बन्धनमय छंदों की छोटी राह छोड़ने' के लिए ललकारा, रीतिकालीन छंद-विधान का बहिष्कार कराया और काव्यभाषा को अति चित्रमयी और संगीतात्मक बनाया। निराला अँगरेज़ी व बँगला संगीत से प्रभावित थे और इस संगीत को उन्होंने अपनी कविता में ध्वनित किया। उन्होने अँगरेजी कविता के रूप-विधानों, छन्दों आदि सब ही का अध्ययन किया और उससे बहुत कुछ ग्रहण भी किया।

छायावादी कवियों में से निराला पर अँगरेजी गीतिकाव्य का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। गीतिकाव्य की परम्परा हिन्दी काव्य में भी थी, परन्तु हिन्दी गीतिकाव्य में गीतमत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। अंगरेजी गीतिकाव्य में भावात्मकता और सहृजानुभूति पर ध्यान रखा जाता है; यह विशुद्ध आभ्यांतरिक काव्य है। निराला जी ने अँगरेजी गीति-काव्य की समस्त विशेषताओं को अपनाया और इनके गीतिकाव्य में यह विशेषताए प्रचुर मात्रा में मिलती है। शब्दों का कुछ सुन्दर प्रवाह, व्यंजकता तथा चित्रात्मकता, सभी उपलब्ध है—

अलि घिर आए घन पावस के
लख ये काले - काले बादल
नील सिन्धु में खुले कमल - दल
हरित, ज्योति, चपला अति चंचल
सौरभ के, रस के

आरम्भ के गीतिकाव्य में निराला ने राग, ताल आदि का अधिक ध्यान रखा था और इसलिए इसमें 'गीतमत्ता का पुट अधिक है और यह मध्यकालीन गीतों की भाँति हो गए हैं ; किन्तु 'अणिमा' के गीतों में संगीतात्मकता नहीं के बराबर है। इसके अतिरिक्त एक दूसरी बात है जो इनके गीतिकाव्य में अखरती है। कहीं-कहीं इनके गीतों में आवेग की मात्रा बहुत बढ जाती है। जैसा कि इनके एक आलोचक ने लिखा है, 'कहीं-कहीं तो कवि ने अनावश्यक और असंबद्ध प्रयोगों के योग से कल्पना को ऊर्जस्वित बनाने का प्रयत्न किया है। परन्तु इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि उनका यह आवेग अँगरेजी कवि बायरन के आवेग से भिन्न नहीं है'।

निराला ने अँगरेजी के संबोधन गीति को भी अपनाया। वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि के आदर्श पर इन्होंने 'यमुना के प्रति', 'वसंत समीर', 'प्रभात के प्रति' आदि अनेक संबोधन गीति लिखे। इसके अतिरिक्त इन्होने अँगरेजी के शोकगीति की परम्परा पर सरोज-स्मृति आदि शोकगीति भी लिखे। इनमें शैली के 'एडोनेस' और टेनीसन के 'इन मेमोरियम' का कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह प्रभाव अधिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अँगरेजी के इन दोनों प्रसिद्ध शोक-गीतों में दार्शनिकता का पुट अधिक है। दोनों में निजी शोक की भावना का परिष्कार पाया जाता है और टेनीसन के गीति में तो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों का उल्लेख भी है। 'सरोजस्मृति' में यह कुछ नहीं पाया जाता, न तो शोक का परिष्करण और न दिवंगत आत्मा का दिव्य रूप प्रतीत होना।

हिन्दी में अतुकान्त छंद का प्रयोग द्विवेदी-युग से आरम्भ हो गया था ; किन्तु छायावाद-युग में इसका प्रचलन और अधिक हो गया और साथ ही साथ काव्य को पिंगल से भी युक्त करने का प्रयास किया गया। इस दशा में भी निराला ने सर्वाधिक सफलता प्राप्त की। अमेरिका के प्रसिद्ध कवि वाल्ट ह्विटमैन की भाँति निराला ने हिन्दी में मुक्त-काव्य की योजना की और फिर अन्य कवियों ने भी इसे अपनाया। साथ ही प्राचीन भारतीय अलंकारों के स्थान पर निराला ने अँगरेजी काव्य के अलंकारों का प्रयोग किया। अँगरेजी कवियों के प्रभाव के कारण छायावादी कविता में ध्वनि और व्यंजना को प्रधानता मिली और निराला ने ध्वन्यर्थ-व्यंजना, मानवीकरण और विशेषण-विपर्यय जैसे पाश्चात्य अलंकारों का बहुत प्रयोग किया। अँगरेजी के कवि टेनीसन का प्रभाव इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है क्योंकि ध्वन्यर्थ-व्यंजना और विशेषणविपर्यय का जितना प्रयोग इन्होंने किया उतना अन्य कवियो ने नहीं। यद्यपि यह संस्कृत और

काव्य के प्रभाव के कारण स्वच्छंदतावादी, मानववादी, क्रान्तिकारी और आदर्शवादी बन गए और इन सबकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में हुई है।

कला पक्ष : इस स्वच्छंदतावाद का प्रभाव केवल काव्य के विषय और उपादानों तक ही सीमित नहीं रहा, वरन उसके रूप और विधान में भी उसने क्रान्ति उत्पन्न कर दी। रोमैंटिक कवियों ने काव्य की प्रचलित परम्परा का विरोध किया और अपनी काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नवीन छन्दों और नयी भाषा का प्रयोग किया। इस भाषा में चित्रात्मकता व्यंजकता, प्रतीकात्मकता और संगीतात्मकता का समावेश हुआ।

अंगरेजी रोमैंटिक काव्य के इस कलापक्ष का भी प्रभाव हिन्दी के छायावादी कवियों पर पड़ा। इस दृष्टिकोण से भी निराला सबसे अधिक प्रभावित हुए। उनकी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति किसी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं करती थी और रोमैंटिक कवियों से प्रेरित हो उन्होंने हिन्दी कविता की नियमबद्धता पर कठोर प्रहार किये और काव्य को 'बन्धनमय छंदों की छोटी राह छोड़ने' के लिए ललकारा, रीतिकालीन छंद-विधान का बहिष्कार कराया और काव्यभाषा को अति चित्रमयी और संगीतात्मक बनाया। निराला अँगरेज़ी व बँगला संगीत से प्रभावित थे और इस संगीत को उन्होंने अपनी कविता में ध्वनित किया। उन्होंने अँगरेजी कविता के रूप-विधानों, छन्दों आदि सब ही का अध्ययन किया और उससे बहुत कुछ ग्रहण भी किया।

छायावादी कवियों में से निराला पर अँगरेजी गीतिकाव्य का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। गीतिकाव्य की परम्परा हिन्दी काव्य में भी थी, परन्तु हिन्दी गीतिकाव्य में गीतमत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। अंगरेजी गीतिकाव्य में भावात्मकता और सहजानुभूति पर ध्यान रखा जाता है ; यह विशुद्ध आभ्यांतरिक काव्य है। निराला जी ने अँगरेजी गीति-काव्य की समस्त विशेषताओं को अपनाया और इनके गीतिकाव्य में यह विशेषताए प्रचुर मात्रा में मिलती है। शब्दों का कुछ सुन्दर प्रवाह, व्यंजकता तथा चित्रात्मकता, सभी उपलब्ध है—

अलि घिर आए घन पावस के
लख ये काले - काले बादल
नील सिन्धु में खुले कमल - दल
हरित, ज्योति, चपला अति चंचल
सौरभ के, रस के

आरम्भ के गीतिकाव्य में निराला ने राग, ताल आदि का अधिक ध्यान रखा था और इसलिए इसमें गीतमत्ता का पुट अधिक है और यह मध्यकालीन गीतों की भाँति हो गए हैं ; किन्तु 'अणिमा' के गीतों में संगीतात्मकता नहीं के बराबर है । इसके अतिरिक्त एक दूसरी बात है जो इनके गीतिकाव्य में अखरती है । कहीं-कहो इनके गीतों में आवेग की मात्रा बहुत बढ़ जाती है । जैसा कि इनके एक आलोचक ने लिखा है, 'कहीं-कहो तो कवि ने अनावश्यक और असंबद्ध प्रयोगों के योग से कल्पना को ऊर्जस्वित बनाने का प्रयत्न किया है । परन्तु इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि उनका यह आवेग अँगरेजी कवि बायरन के आवेग से भिन्न नहीं है' ।

निराला ने अँगरेजी के संबोधन गीति को भी अपनाया । वड्र्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि के आदर्श पर इन्होंने 'यमुना के प्रति', 'बसंत समीर', 'प्रभात के प्रति' आदि अनेक संबोधन गीति लिखे । इसके अतिरिक्त इन्होने अँगरेजी के शोकगीलि की परम्परा पर सरोज-स्मृति आदि शोकगीति भी लिखे । इनमें शैली के 'एडोनेस' और टेनीसन के 'इन मेमोरियम' का कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । यह प्रभाव अधिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अँगरेजी के इन दोनों प्रसिद्ध शोक-गीतों में दार्शनिकता का पुट अधिक है । दोनों में निजी शोक की भावना का परिष्कार पाया जाता है और टेनीसन के गीति में तो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों का उल्लेख भी है । 'सरोजस्मृति' में यह कुछ नहीं पाया जाता, न तो शोक का परिष्करण और न दिवंगत आत्मा का दिव्य रूप प्रतीत होना ।

हिन्दी में अतुकान्त छंद का प्रयोग द्विवेदी-युग से आरम्भ हो गया था ; किन्तु छायावाद-युग में इसका प्रचलन और अधिक हो गया और साथ ही साथ काव्य को पिंगल से भी युक्त करने का प्रयास किया गया । इस दशा में भी निराला ने सर्वाधिक सफलता प्राप्त की । अमेरिका के प्रसिद्ध कवि वाल्ट ह्विटमैन की भाँति निराला ने हिन्दी में मुक्त-काव्य की योजना की और फिर अन्य कवियों ने भी इसे अपनाया । साथ ही प्राचीन भारतीय अलंकारों के स्थान पर निराला ने अँगरेजी काव्य के अलंकारों का प्रयोग किया । अँगरेजी कवियों के प्रभाव के कारण छायावादी कविता मे ध्वनि और व्यंजना को प्रधानता मिली और निराला ने ध्वन्यर्थ-व्यंजना, मानवीकरण और विशेषण-विपर्यय जैसे पाश्चात्य अलंकारों का बहुत प्रयोग किया । अँगरेजी के कवि टेनीसन का प्रभाव इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है क्योंकि ध्वन्यर्थ-व्यंजना और विशेषणविपर्यय का जितना प्रयोग इन्होंने किया उतना अन्य कवियो ने नहीं यद्यपि यह संस्कृत और

काव्य के प्रभाव के कारण स्वच्छंदतावादी, मानववादी, क्रान्तिकारी और आदर्शवादी बन गए और इन सबकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में हुई है।

कला पक्ष : इस स्वच्छंदतावाद का प्रभाव केवल काव्य के विषय और उपादानों तक ही सीमित नहीं रहा, वरन उसके रूप और विधान में भी उसने क्रान्ति उत्पन्न कर दी। रोमैंटिक कवियों ने काव्य की प्रचलित परम्परा का विरोध किया और अपनी काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नवीन छन्दों और नयी भाषा का प्रयोग किया। इस भाषा में चित्रात्मकता व्यंजकता, प्रतीकात्मकता और संगीतात्मकता का समावेश हुआ।

अंगरेजी रोमैंटिक काव्य के इस कलापक्ष का भी प्रभाव हिन्दी के छायावादी कवियों पर पडा। इस दृष्टिकोण से भी निराला सबसे अधिक प्रभावित हुए। उनकी स्वच्छंदतावादी प्रवृति किसी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं करती थी और रोमैंटिक कवियों से प्रेरित हो उन्होंने हिन्दी कविता की नियमबद्धता पर कठोर प्रहार किये और काव्य को 'बन्धनमय छंदों की छोटी राह छोड़ने' के लिए ललकारा, रीतिकालीन छंद-विधान का बहिष्कार कराया और काव्यभाषा को अति चित्रमयी और संगीतात्मक बनाया। निराला अँगरेजी व बँगला संगीत से प्रभावित थे और इस संगीत को उन्होंने अपनी कविता में ध्वनित किया। उन्होने अँगरेजी कविता के रूप-विधानों, छन्दों आदि सब ही का अध्ययन किया और उससे बहुत कुछ ग्रहण भी किया।

छायावादी कवियों में से निराला पर अँगरेजी गीतिकाव्य का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। गीतिकाव्य की परम्परा हिन्दी काव्य में भी थी, परन्तु हिन्दी गीतिकाव्य में गीतसत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। अंगरेजी गीतिकाव्य में भावात्मकता और सहजानुभूति पर ध्यान रखा जाता है; यह विशुद्ध आभ्यांतरिक काव्य है। निराला जी ने अँगरेजी गीति-काव्य की समस्त विशेषताओं को अपनाया और इनके गीतिकाव्य में यह विशेषताए प्रचुर मात्रा में मिलती है। शब्दों का कुछ सुन्दर प्रवाह, व्यंजकता तथा चित्रात्मकता, सभी उपलब्ध है—

अलि घिर आए घन पावस के
लख ये काले - काले बादल
नील सिन्धु में खुले कमल - दल
हरित, ज्योति, चपला अति चंचल
सौरभ के, रस के

आरम्भ के गीतिकाव्य में निराला ने राग, ताल आदि का अधिक ध्यान रखा था और इसलिए इसमें 'गीतमत्ता का पुट अधिक है और यह मध्यकालीन गीतों की भाँति हो गए हैं ; किन्तु 'अणिमा' के गीतों में संगीतात्मकता नहीं के बराबर है। इसके अतिरिक्त एक दूसरी बात है जो इनके गीतिकाव्य में अखरती है। कही-कहीं इनके गीतों में आवेग की मात्रा बहुल बढ़ जाती है। जैसा कि इनके एक आलोचक ने लिखा है, 'कहीं-कहीं तो कवि ने अनावश्यक और असंबद्ध प्रयोगों के योग से कल्पना को ऊर्जस्वित बनाने का प्रयत्न किया है। परन्तु इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि उनका यह आवेग अँगरेजी कवि वायरन के आवेग से भिन्न नहीं है'।

निराला ने अँगरेजी के संबोधन गीति को भी अपनाया। वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि के आदर्श पर इन्होंने 'यमुना के प्रति', 'वसंत समीर', 'प्रभात के प्रति' आदि अनेक संबोधन गीति लिखे। इसके अतिरिक्त इन्होंने अँगरेजी के शोकगीति की परम्परा पर सरोज-स्मृति आदि शोकगीति भी लिखे। इनमें शैली के 'एडोनेस' और टेनीसन के 'इन मेमोरियम' का कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह प्रभाव अधिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अँगरेजी के इन दोनों प्रसिद्ध शोक-गीतों में दार्शनिकता का पुट अधिक है। दोनों में निजी शोक की भावना का परिष्कार पाया जाता है और टेनीसन के गीति में तो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों का उल्लेख भी है। 'सरोजस्मृति' में यह कुछ नहीं पाया जाता, न तो शोक का परिष्करण और न दिवंगत आत्मा का दिव्य रूप प्रतीत होना।

हिन्दी में अतुकान्त छंद का प्रयोग द्विवेदी-युग से आरम्भ हो गया था ; किन्तु छायावाद-युग में इसका प्रचलन और अधिक हो गया और साथ ही साथ काव्य को पिंगल से भी युक्त करने का प्रयास किया गया। इस दशा में भी निराला ने सर्वाधिक सफलता प्राप्त की। अमेरिका के प्रसिद्ध कवि वाल्ट ह्विटमैन की भाँति निराला ने हिन्दी में मुक्त-काव्य की योजना की और फिर अन्य कवियों ने भी इसे अपनाया। साथ ही प्राचीन भारतीय अलंकारों के स्थान पर निराला ने अँगरेजी काव्य के अलंकारों का प्रयोग किया। अँगरेजी कवियों के प्रभाव के कारण छायावादी कविता में ध्वनि और व्यंजना को प्रधानता मिली और निराला ने ध्वन्यर्थ-व्यंजना, मानवीकरण और विशेषण-विपर्यय जैसे पाश्चात्य अलंकारों का बहुत प्रयोग किया। अँगरेजी के कवि टेनीसन का प्रभाव इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है क्योंकि ध्वन्यर्थ-व्यंजना और विशेषणविपर्यय का जितना प्रयोग इन्होंने किया उतना अन्य कवियों ने नहीं। यद्यपि यह संस्कृत और

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भी पाए जाते हैं तथापि इनका प्रयोग इतने सुन्दर ढंग से नहीं हुआ जितना छायावादी काव्य में अँगरेजी प्रभाव के कारण हुआ है। निराला ने मानवीकरण का भी सफल प्रयोग किया है और शेली की भाँति उन्होंने प्रकृति का सुन्दर मानवीकरण किया है—बादलराग इसकी उदाहरण है ; क्योंकि शेली की पश्चिमी प्रभंजन के समान बादल भी मानव-क्रान्ति के प्रतीक हैं। ध्वन्यर्थव्यंजना के प्रयोग में टेनीसन की प्रसिद्ध कविता 'द बुक' का प्रभाव स्पष्ट है ; क्योंकि ध्वन्यर्थ-व्यंजना के साथ ही टेनीसन के काव्य की चित्रात्मकता और गीतमत्ता भी उसमें पायी जाती है—

शतघूर्णवर्त, तरंग - भंग, उठते पहाड़
जन्म राशि राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़....
पहुँचा एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास
रावण महिमा श्यामा विभावरी अंधकार।

निराला ने पंत की भाँति छन्दविधान में बहुत परिवर्तन किये हैं। यह समकालीन अँगरेजी कवि सिटवेल्स की भाँति पंक्तियों को छोटा-बड़ा भी कर देते हैं। 'भिक्षुक' जैसी कविताओं में यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला पर अँगरेजी-काव्य का शक्तिशाली प्रभाव पड़ा। भावपक्ष एवं कलापक्ष, दोनों दृष्टिकोणों से निराला अँगरेजी कवियों से, विशेषकर रोमैंटिक प्रतिवर्तन के कवियों से, प्रभावित हुए थे। इन्होंने अँगरेजी के समस्त काव्य-रूपों का प्रयोग किया और इसी के आदर्श पर नया छन्द-विधान प्रस्तुत करके अतुकान्त, मुक्त एवं स्वच्छंद छन्दों को ये प्रयोग में लाए। यह ठीक है कि उन पर भारतीय दर्शन और साहित्य एवं संस्कृति का भी गहरा प्रभाव था ; परन्तु उन्होंने स्वयं अँगरेजी प्रभाव को गीतिका में स्वीकार किया है—उनके कथनानुसार यद्यपि उन्हें किसी पश्चिमीय देश में रहने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ, किन्तु कलकत्ते जैसे स्थान में, जहाँ कोई भी विश्व के साहित्य अथवा विचारधारा की नवीन प्रवृत्तियों से अपरिचित नहीं रह सकता, पर्याप्त समय तक रहकर नवीन प्रभावों को ग्रहण किया था।

निराला की राष्ट्रीयता

निराला की राष्ट्रीयता पर चर्चा करने के पूर्व 'राष्ट्रीयता' के स्वरूप पर दृष्टि डालनी होगी। राजनीतिक विचारकों ने 'राष्ट्रीयता' शब्द का जितना भ्रामक प्रयोग किया है कदाचित उतना और किसी शब्द का नहीं। कुछ लोगों ने उसे केवल राज्यत्व (statehood) का पर्याय मानकर राजनीतिक संगठन की इकाई माना है और उसकी सांस्कृतिक विरासत तथा आध्यात्मिक एकता का बहिष्कार किया है। सच तो यह है कि राष्ट्रीयता से प्रकट होनेवाली एकता मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक है जब कि राज्य की एकता राजनीतिक है। प्रो० जिमर्न के शब्दों में, 'राष्ट्रीयता धर्म की भाँति आध्यात्मिक है, राज्यत्व भौतिक है; राष्ट्रीयता मनोवैज्ञानिक है, राज्यत्व राजनीतिक है; राष्ट्रीयता मन की स्थिति है, राज्यत्व कानून की स्थिति है।' कहना न होगा कि निराला ने राष्ट्रीयता की अखण्ड आत्मा को जीवन का उमड़ता हुआ विद्रोह और भाव का मुक्त सूक्ष्म आकाश दिया है।

निराला की राष्ट्रीयता राजनैतिक नेताओं की तरह नारेबाजी, दौड़-धूप, तोड़-फोड़ और पद-प्रभुता में व्यक्त नहीं हुई है। वह संस्कृति के जागरूक कवि, अध्यात्म के उद्गायक और क्रांति में उद्गाता के शत-शत स्वरों में अपना रूप निखारती रही है। निराला का कृतित्व ही राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत नहीं है, वरन् उनका व्यक्तित्व भी राष्ट्रीयता के ताने-बाने से गूँथा हुआ है। मुझे तो लगता है कि उनका व्यक्तित्व राष्ट्रीयता का जितना प्रभाव और प्रतिनिधित्व प्रकट करता है उतना शायद ही किसी वर्त्तमान कवि का। बैसवाड़े के जीवन की मस्ती और पिता द्वारा पीठ पर पड़नेवाली चोटों ने उनके जीवन में वह प्यार और प्रतिकार भरा जिससे वे 'मोगल दल बल के जलद यान' से लड़ सके।

दार्शनिक मस्तिष्क, भक्त का सा हृदय, कलाकार से हाथ और पहलवान सा वक्षस्थल—यही तो राष्ट्रीयता है। इसी को व्यक्त करने के लिए 'अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ हैं', 'स्फीत शिराएँ' हैं जिनमें 'स्वस्थ रक्त संचार' करता है और ऊर्जस्वित होता है 'अपार वीर्य।

स्वामी विवेकान्द से आध्यात्मिकता, रामकृष्ण मिशन से अद्वैतवादी भावना तथा गांधी और तिलक से विद्रोह की खाद पाकर निराला की राष्ट्रीयता अंकुरित और पल्लवित हुई थी। तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक जीवन की विषमता, अतीत के उज्ज्वल वैभव की गरिमा और भविष्य की मनोहारिणी कल्पना ने उनकी राष्ट्रीय चेतना को गतिशील बनाया था। भारतेन्दु-युग में राष्टीयता हिंदुत्व की सीमा से सर्वथा मुक्त नहीं थी और न राज-प्रशस्तियों से ही उसका सम्बन्ध छूटा था। द्विवेदी युगीन राष्ट्रीयता ने जाति, समाज और देश की सीमा के बाहर अपना मुँह नहीं निकाला था; पर निराला ने राष्टीयता को मानवता के व्यापक धरातल पर ला उतारा; वह केवल मात्र हिंदूत्व की परिधि में ही सीमित नहीं रही। भारतीयता का सर्वांग-सम्पूर्ण रूप हिंदू और मुसलमान, दोनों को गले लगाकर वह हँस उठा। राज-प्रशास्ति-सी चाटुकारिता को भस्मीभूत कर निराला ने इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोडती हुई मजदूरिन का स्वागत किया। भिक्षुक के प्रति सहानुभूति प्रकट की और हृदय की आँख उठाकर उस भिक्षुक को सर्वप्रथम देखा—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता।

जाति, समाज और देश से आगे बढ़कर निराला की राष्ट्रीयता ने अन्तर्राष्ट्रीयता के साथ कदम मिलाया है। सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व की एकात्मकता पर जोर दिया है। और जड़ता तथा चेतनता में हो रहे द्वन्द्व में भारती (आध्यात्मिकता) की विजय-घोषणा की है—

होगा फिर से दुर्धर्ष समर,
जड़ से चेतन का निशिबासर;
कवि का प्रति छवि से जीवनहर, जीवन भर;
भारती इधर, है उधर सकल

जड़ जीवन के संचित कौशल;
जय, इधर ईश, हैं उधर सबल माया कर।

संक्षेप में निराला की राष्ट्रीयता के निम्नलिखित रूप हैं—

(१) देश की तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर मानसिक क्षोभ।

(२) नारी की महानता और पवित्रता का चित्रण।

(३) अतीत के सांस्कृतिक वैभव का गौरव-गान।

(४) भविष्य के सुखी, स्वाधीन समाज का मधुर चित्र।

(५) राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति अगाध निष्ठा।

(१) तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर कवि का क्षोभ—

निराला ने देश की सामाजिक विभीषिका और आर्थिक शोषण की मनोवृत्ति का कठोर व्यंग्यात्मक शैली में तिलमिला देनेवाला हृदयद्रावक चित्र खींचा है। पद्य की अपेक्षा गद्य में उनका व्यंग्य अधिक खिल उठा है। 'कुल्लीभाट' में बंगाल की मध्यवर्गीय संस्कृति तथा साहित्य और संगीत की रहस्यात्मक कुलीनता के संदर्भ में उन अछूत बच्चों को रखकर पूरे युग पर व्यंग्य कराया है—जो मारे डर के फूलों को निराला के हाथ में इसलिए नहीं दे रहे थे कि छू जाने पर निराला को नहाना पड़ेगा। इससे अधिक हीन भावना और क्या हो सकती है? 'बिल्लेसुर बकरिहा' ग्रामीण जीवन की स्वार्थपरता, ईर्ष्या और पैसे की पूजा का सुन्दर चित्र है और साथ ही है भारतीय किसान की अपराजेय शक्ति एवं दृढ़ता की व्यंग्यभरी कहानी। 'चतुरी चमार' में शूद्रत्व के प्रति उठती हुई विद्रोह की वह चिनगारी है जो अन्त में जमींदारी की कुलीनता को भस्मीभूत करके रहती है।

गिरी हुई अवस्था का सबसे सांगोपांग चित्र 'तुलसीदास' में मिलता है। प्रारंभ के छंदों में कवि ने मुगल संस्कृति के आलोक में मलीन पडती हुई आर्य संस्कृति का दिग्दर्शन कराया है। एक ओर भारतीय आकाश का 'प्रभापूर्ण शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य' अस्त हो रहा है और दूसरी ओर मुस्लिम संस्कृति का चन्द्र पृथ्वी के अधरों का चुम्बन कर रहा है—

झरते हैं शशधर से क्षण-क्षण
पृथ्वी के अधरों पर निःस्वन
ज्योतिर्मय प्राणों के चुम्बन सजीवन।

सांस्कृतिक विकास के नाम पर कपट, धोखा और छलना क साम्राज्य है—

छल छल छल कहता यद्यपि जल
वह मंत्र मुग्ध सुनता 'कल कल'।

वर्ण-व्यवस्था टूट गई है—'पूजा में प्रतिरोध-अनल है जलता' क्षत्रिय 'रक्षा से रहित सर्व', द्विज 'चाटुकार' और शूद्र—

शेष - श्वास, पशु मूक - भाष,
पाते प्रहार अब हताश्वास ;
सोचते कभी, आजन्मग्रास द्विजगण के।

कवि इस सांस्कृतिक पतन को देखकर आन्दोलित हो उठता है और निश्चय करता है—

करना होगा यह तिमिर पार—
देखना सत्य का मिहिर द्वार—
बहना जीवन के प्रखर-ज्वार में निश्चय।

'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नए पत्ते' के व्यंग्य भी हृदय को तिलमिला देने वाले हैं। यहाँ 'कुकुरमुत्ता' का एक व्यंग्य देखिये जो गुलाब पर कसा गया है—

रोज पड़ता रहा पानी
तू हरामी खानदानी

गुलाब 'केपिटेलिस्ट' व्यक्तित्व का प्रतीक है।

(२) नारी की महानता और पवित्रता—

नारी को सन्तों और भक्तों ने वासना की पुतली और मायाविनी के रूप में देखा था। रीतिकाल में नायिका केवल काम-क्रीड़ा का कन्दुक बनकर रह गई थी। छायावादी कवियों ने नारी के मन की सूक्ष्म गहराइयों की थाह ली। निराला ने नारी के 'शक्ति' रूप की उपासना की। वह उनकी दृष्टि में अबला न रहकर सबला होकर समादृत हुई। नारी की दीनता, निराशा और असहायता का चित्रण करते हुए भी निराला ने उसे प्रेरणा और शक्ति-स्रोत के रूप में देखा। वह वासना का विष होकर साधना का अमृत है। 'विधवा' उसे 'इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी' पवित्र और 'दीप-शिखा सी' शान्त लगती है। 'तुलसीदास' में रत्नावली का जो चित्र उतारा गया है वह नारी के अबलापन को, उसके वासनात्मक व्यक्ति को जला देने वाला है। तुलसी का विलासी मन उसे 'सत्य-यष्टि' के रूप में स्वीकार कर उर्द्ध्वगामी होता है। वह 'प्रेम के फाग में आगत्याग की तरुणा' बनकर

तुलसी के 'जड़-युगल किनारों' के बीच स्वर्गंगा बनकर प्रवाहित हो उठती है—

नश्वरता पर आलोक-सुघर दृक्-करुणा।

रत्नावली 'नील वसना शारदा' और 'अनल प्रतिमा' के रूप में तुलसी को धिक्कारती है—

धिक ! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़, चाम।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।

लगता है जैसे कवि ने सम्पूर्ण रीतिकालीन परम्परा को धिक्कारा है। नारी की यही भर्त्सना पाकर तुलसी का मन जागता है और बिखरे हुए तत्त्वों को बाँधकर राष्ट्रीयता का उद्घोष करता है। मुस्लिम संस्कृति का चन्द्र अस्त होता है और 'जागो जागो आया प्रभात'। रत्नावली ही सरस्वती और लक्ष्मी के रूप में

संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख-जल,
प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा।

'पंचवटी-प्रसंग' में लक्ष्मण ने सीता की मातृत्व शक्ति को आत्मार्पण किया है। यहाँ लक्ष्मण उत्कट देशप्रेमी के रूप में और सीता भारतमाता के रूप में ही चित्रित हुई हैं। पराधीन भारत माता को ऐसे ही प्राणोत्सर्ग-मय बलिदानी भाव उसके लाड़ले बेटों ने समर्पित किये थे—

यदि प्रभो मुझ पर सन्तुष्ट हो
तो यही वर मैं माँगता हूँ।
माता की तृप्ति पर
बलि हो शरीर-मन
मेरा सर्वस्व-सार;
तुच्छ वासनाओं का
विसर्जन मैं कर सकूँ;
कामना रहे तो एक
भक्ति की बनी रहे।

क्योंकि उसकी यह माता 'आदि-शक्ति रुपिणी' है जो 'सारे ब्रह्माण्ड के मूल में विराजती' है।

'जुही की कली' के रूप में निराला ने नारी के प्रेमिल हृदय को पहचाना है। वह 'प्यारे' को शय्या के पास देखकर

नम्र मुखी हँसी—खिली,
खेल रंग, प्यारे संग।

(३) अतीत का सांस्कृतिक वैभवः—

निराला ने जहाँ वर्त्तमान की विभीषिका और दुर्दशा का चित्रण किया है वहाँ अतीत के उज्ज्वल वैभव की जानकारी भी दी है। कवि को अपनी संस्कृति की आध्यात्मवादी भावना पर गर्व है। संस्कृति का यह प्रेम रहस्यवाद, प्रकृति-प्रेम और राष्ट्रीय महान आत्माओं के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में व्यक्त हुआ है।

स्वामी शारदानन्द जी महाराज, स्वामी प्रेमानन्दजी आदि को कवि ने भारतीय संस्कृति के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया है। रामकृष्ण मिशन के सम्पर्क से मिली हुई अद्वैतभावना कवि को विश्व-संस्कृति का चितेरा बना सकी। जीव और ब्रह्म के अमिट सम्बन्ध की कैसी कामना निम्नलिखित पंक्तियों में ललकती है—

तुम दिनकर के खर किरण-जाल,
मैं सरसिज की मुसकान,
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान।
तुम भोग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि।

कवि आध्यात्मवाद से प्रभावित होकर भी सांसारिकता से विमुख नहीं है। वह निष्क्रिय जीवन का विरोधी है। उसके लिए साधना ही जीवन है। तभी तो लक्ष्मण का आदर्श है—

(१) 'बहता हूँ माता के चरणामृत-सागर में
मुक्ति नहीं जानता मैं, भक्ति रहे, काफी है।

(२) आनन्द बन जाना हेय है,
श्रेयस्कर आनन्द पाना है।

कवि प्रकृति की ओर भी अधिक आकृष्ट हुआ। उसने बंगाल में बरसते हुए बादलों की बौछारें अपनी पीठ पर सहीं, तभी तो विभिन्न स्वरों में 'बादल-राग' सजग हो उठा। बसन्त के प्रति उसका अटूट विश्वास बना रहा, 'अभी न होगा मेरा अन्त'। 'संध्या-सुन्दरी' के रूप में उसने अपनी मानवीय भावनाओं का परिष्कार किया और 'यमुना के प्रति' तथा 'दिल्ली और खण्डहर' में पुरातन वैभव के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उसे नवीन जीवन दिया।

निराला ने 'महाराज शिवाजी का पत्र' और गुरु गोविंद सिंह पर 'जागो फिर एक बार' नाम की कविताओं में उस राष्ट्रीय जागरण का मंत्र फूँका जो स्वतंत्रता से पूर्व अपने पूरे उभार पर था। औरंगजेब की राष्ट्र विघातिनी नीति के जाल में जयसिंह के फँसने पर शिवाजी उसे ललकारते हुए अफसोस प्रकट करते हैं—

हाय री दासता !
पेट के लिए ही
लड़ते हैं भाई भाई—
कोई तुम ऐसा भी कीर्तिकामी !
वीरवर ! समर में
धर्म-घातकों से ही खेलती है रण क्रीड़ा
मेरी तलवार, निकल म्यान से !

और उद्‌बोधन देते हैं—

शत्रुओं के खून से
धो सके यदि एक भी तुम मा का दाग,
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे !
निर्जर हो जाओगे—
अमर कहलाओगे !

गोविन्दसिंह के शब्दों को उद्‌धृत कर 'जागो फिर एक बार' में कवि ने भारतीय संस्कृति की उत्सर्ग-भावना का चित्र खींचा है—

समर में अमर कर प्राण,
गान गाए महासिंधु से
सिन्धु-नद-तीर वासी !
सैन्धव तुरंगों पर
चतुरंग चमू संग ;
'सवा सवा लाख पर

एक को चढाऊँगा,
गोबिन्दसिंह निज
नाम जब कहाऊँगा।

और आत्मा की अमरता का उद्घोष करते हुए दैन्य, निराशा और कामपरता का परिहार किया है—

तुम हो महान, तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता
ब्रह्म हो तुम,
पद-रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व-भार—
जागो फिर एक बार!

'राम की शक्ति - पूजा' निराला की अन्यतम प्रौढ़ कृति है। इसमें कवि ने राम के व्याज से अपने युग की अनुभूति, निराशा, पराजय, संघर्ष और विजय-कामना का चित्र खींचा है। यहाँ राम का मानवीय रूप हमें अधिक आकर्षित करता है। वे साधक हैं। उनमें शक्ति और पुरुषार्थ है। रावण को परास्त करने की सिद्धि प्राप्त करने के लिए वे शक्ति की पूजा करते हैं; पर देवी द्वारा परीक्षा लेने पर पूजा का कमल न पाकर वे चंचल हो उठते हैं—

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध!

पर शीघ्र ही उनके मस्तिष्क में विचार आता है—

कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन।
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात एक नयन॥

और तभी शक्ति (देवी) आकर उनका हाथ पकड़ लेती है और वह राम के बदन में प्रवेश करती हुई कह उठती है—

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।

(४) सुखी स्वाधीन समाज का चित्र:—

कवि अतीत के वैभवपूर्ण चित्र खींचने में या वर्तमान की अधोदशा [र] आँसू बहाने में ही नहीं लगा रहा, वरन् भविष्य के प्रति आस्थावान [भ]ी रहा है। उसे विश्वास है कि यह दयनीय अवस्था अधिक दिनों तक रहेगी। और सचमुच आज हम 'बाधाविहीन-बंध छन्द ज्यों' विदेशी [स]त्ता से सदा के लिए मुक्त हो गये हैं। 'शत-शत कल्मष के छल' छलका

कर जो रागिनियाँ बहती थीं वे सब सो गई हैं। पर कुछ भी हो, निराला अन्त तक संघर्षों में ही पलते रहे। उनको प्रत्यक्ष जीवन में भौतिक सुखों का आनन्द नहीं मिल सका, भले ही वे कहते रहे—

जागा दिशा-ज्ञान;
उगा रवि पूर्व का गगन में, नव-मान।
हारे हुए सकल दैन्य दलमल चले,—
जीते हुए लगे जीते हुए गले,
वृन्द वह विश्व में गूँजा विजय-गान।

(५) हिन्दी के प्रति अगाध निष्ठा:—

राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा की एकता का होना अनिवार्य नहीं तो आवश्यक शर्त है। निराला नागरी के उद्धार और हिन्दी के सम्मान के लिए जीवन भर लड़ते रहे। हिन्दी साहित्य - सम्मेलन, प्रयाग के इन्दौर अधिवेशन में जब गाँधीजी ने यह कह दिया कि मुझे हिंदी में कोई रवीन्द्रनाथ नजर नहीं आता, तो निराला तिलमिला उठे। उन्हें इस कथन में हिन्दी का अपमान नजर आया और उन्हें लगा, जैसे उनके स्वाभिमान को कोई कुरेद रहा है। वे शीघ्र गाँधी जी के पास पहुँचे और कहने लगे, 'आपने मेरा 'तुलसीदास' पढ़ा है ?' गाँधीजी ने गोस्वामी तुलसी-दास का 'मानस' पढ़ा था, निराला का 'तुलसीदास' नहीं। इस पर निराला बोले—'अगर आपने मेरा 'तुलसीदास' पढ़ लिया होता तो शायद यह कहने की हिम्मत न करते कि हिन्दी में कोई रवीन्द्रनाथ नहीं है।' पर हिन्दी का यह अनन्य सेवक और दृढ़ समर्थक हिन्दी-सेवियों द्वारा ही इतनी उपेक्षा से देखा गया कि जीवन के अन्तिम दिनों में उसे हिन्दी से चिढ़ हो गई और अंग्रेजी को ही अपनी बातचीत का माध्यम बनाकर उसने हिन्दी और हिन्दी-भक्तों के प्रति आक्रोश प्रकट किया। पर इससे उनकी राष्ट्रीयता में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता।

इस प्रकार निराला की राष्ट्रीयता विधिपरक (Positive) है। उसमें विद्रोह है, उत्पीड़न है, पर निगति के लिए नहीं, प्रगति के लिए। निराला का विद्रोह जीवन को निखारता है, उनका दैन्य सामाजिक विद्रूप को कुचलने की प्रेरणा देता है और उनका 'चिरकालिक क्रन्दन' घोषणा करता है—

हो रहे आज जो खिन्न-खिन्न
छुट-छुट कर दल से भिन्न-भिन्न
यह अकल-कला, गह सकल छिन्न, जोड़ेगी।

'निराला' के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म परतन्त्र भारत में सन् १८९६ में हुआ था और काव्यारम्भ सन् १९१५ ई० में। अपने युग की राष्ट्रीय जागृति तथा उथल-पुथल की स्थिति का प्रभाव, उनके काव्य पर सहज ही देखा जा सकता है। निराला की राष्ट्रीय चेतना का एक विशिष्ट स्वरूप है जिसे समझने के लिए उसके प्रेरणा-सूत्रों एवं पूर्वपीठिका की गहराई में भी जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

यद्यपि निराला जी का पैतृक सम्बन्ध आजीवन उत्तरप्रदेश के बैसवाड़े की उत्फुल्ल तथा साहित्यिक-मनीषी निर्मात्री गौरवशीला भूमि से रहा[1], परन्तु उनका जन्म बंगभूमि की महिषादल रियासत में हुआ, जिसके परिणामस्वरूप, वे नव जागरण व राष्ट्रीय संस्कारों को अपने जन्म से ही प्राप्त कर सके। यह सर्वविदित है कि राष्ट्रीय जागृति का श्रीगणेश बंगभूमि की उर्वरा वसुधा से हुआ जिसने गौरांग-महाप्रभुओं को सर्वप्रथम अपने अंक में प्रश्रय प्रदान किया था। इस भौतिक रूप के साथ ही साथ, मानसिक रूप में भी, निराला जी ने बंगभूमि, बंग चिन्तक व बंग साहित्य को भी अपनाया जिसका प्रभाव उनके जीवन व काव्य पर आद्यन्त रहा। निराला जी का, कलकत्ते के रामकृष्ण आश्रम में रहकर, अद्वैतवाद के ग्रन्थों का अनुवाद व 'समन्वय' पत्रिका का सम्पादन करना, उनके जीवन की मूल भित्ति है। इसी युग में उन्होंने वेदान्ती विचारों का अध्ययन किया और उन्हीं को अपनी विचार-यात्रा का पाथेय बनाया। आचार्य वाजपेयी जी का मत है कि निराला में अद्वैतवाद-विचारणा का

---

१ डा० शर्मा 'निराला, पृष्ठ ३१-३२

जन्म वेदान्त के माध्यम से हुआ[१]। रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद ने निराला की उर्वर मनीषा के दिशा-संकेत किये। इन्हीं सूत्रों से निराला ने नव-हिन्दू जागरण की संजीवनी ग्रहण की जो उनके राष्ट्रीय काव्य का केन्द्रबिन्दु बन गई। निराला को विवेकानंद का प्रज्ञापुत्र कहा जा सकता है। "निराला स्वयं अपने में और विवेकानंद में गहरी समता देखते हैं। आज भी वे कहते हैं, 'जब मैं इस प्रकार बोलता हूँ, तो यह मत समझो कि निराला बोल रहा है। तब समझो, मेरे भीतर से विवेकानंद बोल रहे हैं। यह तो तुम जानते ही हो कि मैंने विवेकानंद का सारा वर्क हजम कर लिया है। जब इस प्रकार की बात मेरे अंदर से निकलती है, तो समझो, यह विवेकानंद बोल रहे हैं[२]" । विवेकानंद के स्वर को ही निराला ने अपनी राष्ट्रीय वाणी का शंखनाद बनाया। स्वामी जी कहते थे कि ख्याल, टप्पा बन्द करके लोगों को ध्रुपद गान सुनने का अभ्यास कराना होगा। वैदिक छन्दों की गुरु गम्भीर ध्वनि से देश में प्राण का संचार करना होगा। डमरू सिंग बजाना होगा। नगारे के ब्रह्म ताल का दुंदुभी नाद उठाना होगा[३]। कहना नहीं होगा कि यह नाद प्राबल्य व उद्घोष, कवि की, बादल-राग[४], जागो फिर एक बार[५] आदि क्रांतिवादी व उद्बोधक कविताओं में अपना वितान तानता है। निराला जी पर, बंगभूमि के इन दो सांस्कृतिक अग्रदूतों के अतिरिक्त, रवि बाबू का भी गहन प्रभाव पड़ा था। कवीन्द्र रवीन्द्र की राष्ट्रीय रचनाओं में कहीं भी सामयिकता, हल्कापन अथवा निम्न स्तरीय रूप नहीं दिखाई देता। अपने शासन कर्ताओं के प्रति उन्होंने, कहीं भी, क्षुद्र आक्षेप नहीं किये। इसी उच्चता व उदात्त भावना का रूप निराला की राष्ट्रीय स्थितियों से परिपूर्ण कविताओं में भी देखा जा सकता है। इसीलिए हम निराला जी

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'मध्यप्रदेश सन्देश' में प्रकाशित निराला : व्यक्ति और काव्य, दीपावली विशेषांक, ४ नवम्बर १९६१, पृष्ठ ३२।
२. श्री ऋषि जमिनी कौशिक 'बरुआ'—निराला अभिनंदन ग्रन्थ, ३७ वाँ संस्करण, पृष्ठ ११४।
३. श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार—विवेकानंद चरित, हिन्दी द्वितीय सं०, पृष्ठ ४४२।
४. निराला—अपरा, बादल राग, पृष्ठ २।
५ वही पृष्ठ ६–८।

को रवि बाबू का भावना-पुत्र मान सकते हैं। श्री बाजपेयी ने निराला को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रसात्मक काव्य-माल्य का सुमन कहा है[१]। आचार्य वाजपेयी जी ने भी निराला पर रवीन्द्र का अधिक गंभीर प्रभाव निरूपित किया है[२]। इन समस्त बंगीय मनीषा सूत्रों ने कवि के राष्ट्रीय चेतना के संस्कारों के रूप गढ़ने में निश्चित आयाम उपस्थित किये हैं। इसी मूलसूत्र का आकलन, प्रो० क्षेम की निम्न पंक्ति से किया जा सकता है कि कवि 'निराला' ने व्यक्ति जागरण और राष्ट्रीयता को उठाने के लिए अद्वैतवाद का सहारा लिया। इसे 'निराला' द्वारा पाश्चात्य प्रजातांत्रिक व्यक्तिवाद को भारतीय अद्वैतवादी भूमि देना भी कहा जा सकता है।[३] इसके अतिरिक्त कवि की वैयक्तिक जीवन सम्बन्धी कठिनाइयाँ, सामाजिक उपेक्षा व संघर्ष तथा साहित्यिक वात्याचक्रों ने भी, निराला को अपने विक्षोभ व उद्वेलन को काव्य में प्रकट होने को स्फुलिंग प्रदान किये जो कि व्यंग्य-काव्य के रूप में हमारे समक्ष आता है और इसे भी हम उनके राष्ट्रीय-सामाजिक काव्य का संवेदनशील अंग मान सकते हैं। कवि के काव्य-विकास के साथ ही साथ, हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का विकास भी सहज ही होता गया और इसका प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रभाव भी उसके साहित्य पर आँका जा सकता है। निराला जी के समान गतिशील, प्रखर और समाजोन्मुख कवि का, इन प्रभावों से अछूता बना रहना, सम्भव नहीं था। उनकी काव्य-धारा के मोड़ों ने हमेशा बुद्धि तथा जन-मानस का समन्वय ही स्थापित किया। दर्शन, संगीत, ओज व अक्खड़ता के समन्वय ने ही निराला के व्यक्तित्व व कृतित्व का सृजन किया। निराला जी के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक संस्कारों को, इस पृष्ठभूमि के अभाव में समझना, निश्चित निकष प्राप्ति का ठीक मार्ग नहीं है। इसी मूलभित्ति पर निराला का समूचा वाङ्मय आधारित है।

निराला की राष्ट्रीय चेतना कई रूपों व धाराओं में प्रस्फुटित हुई

---

१. प्रो० अवधप्रसाद बाजपेयी—रवीन्द्र साहित्य और समीक्षा।

२. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी—'मध्य प्रदेश सन्देश', रवीन्द्रनाथ पंडित मोतीलाल नेहरू जन्म-शताब्दी अङ्क, रवीन्द्र और हिन्दी साहित्य, ६ मई, १९६१, पृष्ठ १७।

३. प्रो० क्षेम-छायावाद के गौरव चिन्ह, छायावादी काव्य धारा के सांस्कृतिक तत्व, पृष्ठ ४६।

है। उसके राष्ट्रीय, राजनैतिक व सांस्कृतिक, तीनों पक्ष हैं और इनके भी कतिपय विभेद हैं। सामाजिक स्थिति को भी इससे विलग नहीं किया जा सकता। यद्यपि निराला जी मूलतः छायावादी कवि माने गये हैं, परन्तु छायावादी कविता-धारा को भी, आलोचकों ने वास्तविक अर्थों में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक कविता माना है और उसे राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कहा है। डा० पाण्डेय ने भी लिखा है कि सन् १९३५-३६ से लेकर १९४० ई० तक एक ओर व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ घोर निराशावादी रूप धारण करने लगीं और दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना जन-जागृति के नवीन आदर्शों को ग्रहण कर अपना मार्ग बनाने लगी।[1] इस छायावादी काव्यधारा की बृहत्त्रयी में मध्य स्थान प्राप्त करने पर भी, निराला का दृष्टिकोण अपनी युगीन परिस्थितियों व अन्तर्दशाओं के प्रति वीतरागी नहीं था। निराला की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा में राष्ट्र-वेदना, राजनीति का स्वर, अतीत गायन, दलित पात्रों के प्रति समवेदना, वर्तमान दुर्दशा तथा व्यंग्यप्रधान रचनाओं के द्वीप अवस्थित हैं।

अपने समकालीन कवियों के समान, महाकवि निराला ने भी राष्ट्र-वन्दना के गीत गाये और अपनी निष्कपट भावनाओं की सरस अभिव्यंजना की है। निराला के वन्दना-गीतों में निरालापन भी है। भारत के सम्बोधन को हटाकर, हम उन्हें सामान्य देश-वन्दना के रूप में भी प्रयुक्त कर सकते हैं और इस प्रकार वे देशकाल की सीमा से ऊपर उठकर सार्वभौमिक रूप ग्रहण कर सकते हैं। अन्य राष्ट्रीय कवियों के सदृश, प्रसाद व निराला के वन्दनापरक गीत विशिष्ट देश-भूमि से; स्थूल रूप में, सम्बद्ध नहीं हैं। स्थूलता तथा मातृभूमि-स्तवन की साधारण व परम्परागत रेखाओं का वे अतिक्रमण करते हैं। इस रूप में उनमें जहाँ काव्यात्मकता की मात्रा में श्रीवृद्धि होती है, वहाँ वे शाश्वत तथा सार्वजनीन अंश भी सहज ही प्राप्त कर लेते हैं। 'प्रसाद' जी का 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और 'निराला' का 'भारति जय विजय करे' इसी उच्च कोटि के गीतों में अपना स्थान पाते हैं। इन गीतों में भौगोलिक उपादानों के अतिरिक्त, सांस्कृतिक निधि की ओर भी संकेत मिलता है। राष्ट्रीय स्पन्दन व संस्कृति की सुधा का ऐसा सामंजस्य दुर्लभ है। 'निराला' के इस भारती-वंदना की कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

---

१. डाक्टर शम्भूनाथ पाण्डेय—आधुनिक हिंदी काव्य में निराशावाद, अध्याय ४, छायावादी युग, राजनीतिक परिस्थिति पृ० १४९।

लंका पदतल शतदल, गर्जितोर्मि सागर जल,
धोता शुचि चरण युगल, स्तव कर बहु अर्थ भरे।
मुकुट शुभ्र हिम तुषार, प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार, शत-मुख शतरव मुख रे।
भारति, जय विजय करे, कनक-शस्त्र कमल धरे।[1]

डा० नरेन्द्र का मत है कि इस चित्र में मंदिर का वातावरण और भी मुखर हो गया है[2]। कवि ने अपने एक गीत में भारत के लिए ही पुरातन व जीर्ण-शीर्ण का विध्वंस कर, नूतनता के आलोक को प्रसरित करने की विनम्र प्रार्थना की है।[3] गीतिका के अनेक गीतों में उदात्त राष्ट्रीय भावना को स्थान प्राप्त हुआ है। इसके गीत हिंदी के श्रेष्ठ गीतों की पंक्ति में शोभायमान किये जा सकते हैं। कला व स्तवन का यह परिपाक हिंदी काव्य की उल्लेखनीय उपलब्धि है। भारत को कवि ने जीवन-धन के रूप में ग्रहण किया है :—

भारत ही जीवन धन,
ज्योतिर्मय परम रमण,
सर-सरिता वन-उपवन।
तप पुंजगिरि कन्दर,
निर्झर के स्वर पुष्कर,
दिक् प्रांतर मर्म-मुखर,
मानव मानव-जीवन।[4]

निराला जी ने सामान्य रूप से भी मातृभूमि की वंदना कई गीतों में की है। इसमें किसी देश-विशेष का नाम अथवा उनकी विशिष्टताओं का उल्लेख नहीं है। जन्मभूमि की अर्चना की परम्परा में इन गीतों का अनुपमेय स्थान है। स्तोत्र-शैली में लिखित, इसी कोटि का एक सुन्दर गीत, पठनीय है :—

बन्दूँ पद सुन्दर तव, छन्द नवल स्वर-गौरव,
जननि, जनक जननि-जननि जन्मभूमि भाषे।

---

१. अपरा, पृ० ६।
२. डा० नगेन्द्र—आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृतियाँ, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, पृ० २६।
३. गीतिका, पृ० ३६।
४ अणिमा, गीत।

जागो, नग-अम्बर भर, ज्योतिस्तर-वासे।
उठे स्वरोर्मियो-मुखर, दिक्-कुमारिका-पिक-रव।[1]

देश के प्रति कवि की वंदना, इस गीत में भी मुखर हो पड़ी है—

अनगिनित आ गये शरण में जन, जननि,
सुरभि सुमनावली खुली, मधुऋतु अवनि।
स्नेह से पंक उर हुए पंकज मधुर,
ऊर्ध्व दृग गगन में देखते मुक्ति - मणि।
बीत रे गई निशि, देश लख हँसी दिशि,
अखिल के कण्ठ की उठी आनन्द ध्वनि।[2]

डी० एल० राय के स्वर में भी कवि ने जन्मभूमि का गायन किया है :—

बन्दूँ मैं अमल कमल,
चिरसेवित चरण युगल—
शोभामय शांति पापताप हारी,
मुक्त बन्ध, घनानंद मुदमंगल कारी।
वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी,
जन्मभूमि मेरी जै जगन्महारानी।[3]

ऐसे भव्य तथा महान् राष्ट्र का गरिमापूर्ण अतीत भी प्रेरणास्पद रहा है। कवि की दृष्टि अतीत की ओर भी जाती है। अतीत जहाँ सलोना लगता है, वहाँ हमारी नसों में उत्तेजना भरता है और हमारे उचित मार्ग का निदर्शन करता है। इस अतील दर्शन की अभिव्यक्ति कवि ने अपनी 'यमुना के प्रति', 'खण्डहर', 'सहस्राब्दि', 'दिल्ली', 'यही' अदि कविताओं में की है। यह कवि की काव्यधारा का सांस्कृतिक पक्ष है जिसमें स्वामी विवेकानन्द की जागरण-ध्वनि गुम्फित हो गई है। यमुना को देखकर, कवि को पुरातन युग की वैभव-सम्पदा की स्मृति हो आती है :—

वह नयनों का स्वप्न मनोहर, हृदय-सरोवर का जलजात,
एक चन्द्र निस्सीम व्योम का, वह प्राची का विमल प्रभात,

---

१. गीतिका, पृष्ठ ८३।
२. 'प्रभा', जन्मभूमि, छन्दप्रथम, जून, १९२०, पृ० ४०।
३ अपरा, शरण में जन जननि, पृष्ठ ११

लंका पदतल शतदल, गर्जितोर्मि सागर जल,
धोता शुचि चरण युगल, स्तव कर बहु अर्थ भरे।
मुकुट शुभ्र हिम तुषार, प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार, शत-मुख शतरव मुख रे।
भारति, जय विजय करे, कनक-शस्त्र कमल धरे।[1]

डा० नरेन्द्र का मत है कि इस चित्र में मंदिर का वातावरण और भी मुखर हो गया है[2]। कवि ने अपने एक गीत में भारत के लिए ही पुरातन व जीर्ण-शीर्ण का विध्वंस कर, नूतनता के आलोक को प्रसरित करने की विनम्र प्रार्थना की है।[3] गीतिका के अनेक गीतों में उदात्त राष्ट्रीय भावना को स्थान प्राप्त हुआ है। इसके गीत हिंदी के श्रेष्ठ गीतों की पंक्ति में शोभायमान किये जा सकते हैं। कला व स्तवन का यह परिपाक हिंदी काव्य की उल्लेखनीय उपलब्धि है। भारत को कवि ने जीवन-धन के रूप में ग्रहण किया है :—

भारत ही जीवन धन,
ज्योतिर्मय परम रमण,
सर-सरिता वन-उपवन।
तप पुंजगिरि कन्दर,
निर्झर के स्वर पुष्कर,
दिक् प्रांतर मर्म-मुखर,
मानव मानव-जीवन।[4]

निराला जी ने सामान्य रूप से भी मातृभूमि की वंदना कई गीतों में की है। इसमें किसी देश-विशेष का नाम अथवा उनकी विशिष्टताओं का उल्लेख नहीं है। जन्मभूमि की अर्चना की परम्परा में इन गीतों का अनुपमेय स्थान है। स्तोत्र-शैली में लिखित, इसी कोटि का एक सुन्दर गीत, पठनीय है :—

बन्दूँ पद सुन्दर तव, छन्द नवल स्वर-गौरव,
जननि, जनक जननि-जननि जन्मभूमि भाषे।

---

१. अपरा, पृ० ८।
२. डा० नगेन्द्र—आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, पृ० २९।
३. गीतिका, पृ० ३९।
४. अणिमा, गीत।

जागो, नग-अम्बर भर, ज्योतिस्तर-वासे।
उठे स्वरोर्मियों-मुखर, दिक्-कुमारिका-पिक-रव।[1]

देश के प्रति कवि की वंदना, इस गीत में भी मुखर हो पड़ी है—

अनगिनित आ गये शरण में जन, जननि,
सुरभि सुमनावली खुली, मधुऋतु अवनि।
स्नेह से पंक उर हुए पंकज मधुर,
ऊर्ध्व दृग गगन में देखते मुक्ति - मणि।
बीत रे गई निशि, देश लख हँसी दिशि,
अखिल के कण्ठ की उठी आनन्द ध्वनि।[2]

डी० एल० राय के स्वर में भी कवि ने जन्मभूमि का गायन किया है :—

बन्दूँ मैं अमल कमल,
चिरसेवित चरण युगल—
शोभामय शांति पापताप हारी,
मुक्त बन्ध, घनानंद मुदमंगल कारी।
वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी,
जन्मभूमि मेरी जै जगन्महारानी।[3]

ऐसे भव्य तथा महान् राष्ट्र का गरिमापूर्ण अतीत भी प्रेरणास्पद रहा है। कवि की दृष्टि अतीत की ओर भी जाती है। अतीत जहाँ सलोना लगता है, वहाँ हमारी नसों में उत्तेजना भरता है और हमारे उन्नित मार्ग का निदर्शन करता है। इस अतीत दर्शन की अभिव्यक्ति कवि ने अपनी 'यमुना के प्रति', 'खण्डहर', 'सहस्राब्दि', 'दिल्ली', 'यहीं' आदि कविताओं में की है। यह कवि की काव्यधारा का सांस्कृतिक पक्ष है जिसमें स्वामी विवेकानन्द की जागरण-ध्वनि गुम्फित हो गई है। यमुना को देखकर, कवि को पुरातन युग की वैभव-सम्पदा की स्मृति हो आती है :—

वह नयनों का स्वप्न मनोहर, हृदय-सरोवर का जलजात,
एक चन्द्र निस्सीम व्योम का, वह प्राची का विमल प्रभात,

---

१. गीतिका, पृष्ठ ८३।
२. 'प्रभा', जन्मभूमि, छन्दप्रथम, जून, १९२०, पृ० ४०।
३. अपरा, शरण में जन जननि, पृष्ठ ११।

वह राका की निर्मल छवि, वह, गौरव रवि, कवि का उत्
किस अतीत से मिला आज वह, यमुने तेरा सरस प्रवा

यमुना की कल-कल ध्वनि में जहाँ विगत सौभाग्य की
योग्य है, वहाँ 'खण्डहर' में गौरव के आख्यान के साथ ही सा
की संवेदना है। भारत की सांस्कृतिक विजय का प्रतिपादन
कवि उसके मरणासन्न रूप को भी सामने लाता है। वह कहता

आर्त भारत ! जनक हूँ मैं
जैमिनि-पतंजलि-व्यास ऋषियों का,
मेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर
तेरा है बढ़ाया मान
राम कृष्ण भीमार्जुन-भीष्म नर देवों ने।
तुमने मुख फेर लिया,
मुख की तृष्णा से अपनाया है गरल,
हो बसे नव छाया में,
नव स्वप्न ले जगे,
भूले वे मुक्त प्राण, साम-गान, सुधा पान।
बरसो आशीष, हे पुरुष-पुराण,
तव चरणों में प्रणाम है।[2]

'सहस्राब्दि' में ऐतिहासिक चेतना व राष्ट्रीय जागरण
मिली है। इसमें भारतीय इतिहास तथा संस्कृति का ओजस्वी
है। कवि का सिंहावलोकन इतिहास के अध्यायों को पार करत
होता है :—

आ रही याद,
वह उज्जयिनी, वह निरवसाद
प्रतिमा, वह इतिवृत्तात्म कथा,
वह आर्य धर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता,
पाटलीपुत्र की बौद्धश्री का अस्त रूप,
वह हुई और भू, हुए जनों के और भूप,
वह नव रत्नों की प्रभा-सभा के सुद्ध स्तम्भ,

---

१. अपरा, पृ० ८८।
२ अपरा, पृ० १२२-२३।

वह प्रतिमा से दिगनाग-दलन,
लेखन में कालिदास के अमला-कला-कलन,
वह महाकाल के मंदिर में पूजोपचार,
वह शिप्रावात, प्रिया से प्रिय ज्यों चाटुकार ।[1]

'दिल्ली' में निराला की वीर-पूजा-भावना को अभिव्यक्ति मिली है कवि का यह यथार्थवादी चित्र प्रशंसनीय है :—

आज वह 'फिरदौस', सुनसान है पड़ा ।
शाही दीवान आम स्तब्ध है हो रहा,
दुपहर को, पार्श्व में, उठता है झिल्ली रव,
बोलते हैं स्यार रात यमुना-कछार में,
लीन हो रहा है, रव, शाही अंगनाओं का,
निस्तब्ध मीनार, मौन हैं मकबरे ।[2]

'यहीं' में यमुना के तट की प्रेम-कथाओं की स्मृति है ।[3] कवि ने अपनी एक कविता 'जागरण' में उपनिषद्-काल की आश्रम-सभ्यता का चित्र खींचा है :—

हरित पत्रों से ढके, श्यामल छाया के वे,
शांति के निबिड़ नीड़ मलयज, सुवास स्वच्छ,
पुष्परेणु पूरित वे आश्रय तपोवन,
प्रांगण विभूति का, बालिका की क्रीड़ाभूमि,
कल्पना की धन्य गोद, सभ्यता का प्रथम विकास स्थल है[4] ।

इस प्रकार कवि ने भारतीय इतिहास व संस्कृति के उपनिषद्-काल से पराधीनता के युग तक की श्रृंखला को अपने अतीत गायन में प्रस्तुत किया है और इनकी प्रमुख कड़ियों को भी वह विस्मरण नहीं कर सका है । भगवान बुद्ध, संत कवि रविदास, तुलसीदास, छत्रपति शिवाजी आदि के प्रति कवि ने अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है । 'भगवान बुद्ध' में वर्तमान पार्थिव प्रगति और वैज्ञानिक उपलब्धियों पर कवि ने गहरी चोट की है :—

---

१. अपरा, पृ० १६९ ।
२. अनामिका, दिल्ली ।
३. अनामिका, यहीं, सन् १९२४ ।
४. परिमल, जागरण कविता ।

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर,
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर,
स्पष्ट दिख रहा ; सुख के लिए खिलौना जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन ; केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं मानव के ; स्थल-जल अम्बर
रेल तार - बिजली - जहाज नभयानों से भर
दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्गगण,
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण ।[1]

कवि, सन्त कवि रविदास का अभिवादन करता है:—

छुआ पारस भी नहीं तुमने, रहे
कर्म के अभ्यास में, अविरत बहे
ज्ञान-गंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार,
चरण छूकर कर रहा मैं नमस्कार ।'[2]

'तुलसीदास' निराला की उन रचनाओं में है जिन्होंने कवि को अमर बनाया है। इसमें छायावादी काव्य-कला की चरम परिष्कृति मिलती है। यह काव्य यद्यपि चिन्तन प्रधान, दार्शनिक व अन्तर्मुखी है, फिर भी इसमें युग का प्रभाव, राष्ट्रीय-चेतना और समवेदना देखी जा सकती है। मानवता व राष्ट्रोपासना का स्वर्णिम समन्वय इस कृति में अपने पंख खोल रहा है। कवि की राष्ट्र-परक प्रवृत्तियों ने यहाँ, सांस्कृतिक पतन व परतंत्रता से निर्मुक्त होने की दिशा में पग उठाये हैं। 'जागो जागो आया प्रभात'[3] और 'इस जग के मुक्त प्राण ! गाओ विहंग सध्वनित् गान'[4] में राष्ट्रीय स्वर ही मूल स्वर बनकर आया है।

श्री रायकृष्णदास ने लिखा है कि आलंकारिक रूप से कवि ने पहले मुगलों के आक्रमण का वर्णन किया है और बताया है किस प्रकार हिन्दू शासन-सम्बन्ध में ही नहीं पराजित हुए, वरन् उनकी सभ्यता और संस्कृति को भी भारी धक्का पहुँचा।'[5]

---

१. अपरा, पृष्ठ १५१
२. अणिमा, संतकवि रविदास कविता।
३. तुलसीदास।
४. वही।
५. श्री रायकृष्णदास—तुलसीदास, परिचय, पृष्ठ १-४।

निराला जी ने सांस्कृतिक ह्रास का चित्र प्रारम्भ में ही चित्रि
:—

भारत के नभ का प्रभा पूर्ण,
शीतलच्छाय सांस्कृति सूर्य
अस्तमित आज के तमस्सूर्य दिगमंडल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है ऊर्मिल जल, निश्चल प्राण पर शतदल।'[1]

'महाराज शिवाजी का पत्र' हिन्दी की बहुमूल्य सम्पदा है। क
स्वी स्वर ऐतिहासिक नायक का स्पन्दन प्राप्त कर, प्रखर हो जात
कविता में वीर रस के साथ ही साथ हिन्दू जागरण व सांस्कृति
को प्रश्रय प्राप्त हुआ है। इस ओजपूर्ण लम्बी कविता के अन्त
वातावरण भी वातायन से झाँक उठता है:—

जितने विचार आज
मारते तरंग हैं,
साम्राज्यवादियों की भोग वासनाओं में,
नष्ट होंगे चिरकाल के लिए।
आयेगी भाल पर भारत की गई ज्योति
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जायँगे
सेना घन-घटा-सी,
मेरे वीर सरदार घेरेंगे गोलकुण्डा बीजापुर,
चमकेंगे खड्ग सब विद्युत्दुति बार बार,
खून की पियेंगी धार,
संगिनी सहेलियाँ भवानी की,
धन्य हूँगा, देव-द्विज-देश को
सर्वस्व सौंपकर।'[2]

उस अतीत की प्राप्ति में, नव-जागरण की बेला में, कवि फिर
जगाता है और हमारे विगत भव्य दृष्टान्तों को पिरोता है। वंग-भं

तुलसीदास, छंद प्रथम।
अपरा, पृष्ठ ८१

के राष्ट्रीय ज्वर से निराला पूर्वरूपेण परिचित थे। बंकिम तथा डी०एल० राय का स्वर भी वे अपनी आत्मा में गुंजायमान कर चुके थे। 'जागो फिर एक बार' में गीता का कर्मयोग और वेदान्त का पुरुषार्थ घुलमिलकर समरस बन गया है। राजनीति, दर्शन व कला का सामंजस्य ही इस कविता को ऊँची भूमिका प्रदान करता है। इस कविता का निर्माण सन् १९१८ व १९२१ ई० में हुआ जबकि हमारा देश राष्ट्रीय क्रांति के ज्वार से अभिभूत था। कवि का उद्‌बोधन प्राण फूँकने वाला है:—

सिंहों की गोद से छीनता है शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण ?
रे अजान,
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल वह—
छिनती सन्तान जब,
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है।
किन्तु क्या ?
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं,
गीता है, गीता है,
स्मरण करो बार बार—
जागो फिर एक बार![1]

अतीत-स्तवन के साथ ही साथ कवि का ध्यान जब वर्तमान भारत की दुर्दशा पर गया, तो वह उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा। दुर्दशा के पक्षों में उसे राजनीतिक व सामाजिक पार्श्व दृष्टिगोचर हुए। सर्वप्रथम कवि ने पराधीनता को ही दुरावस्था की मूल भित्ति माना और उसके प्रति अपनी भावाभिव्यंजना की। परतन्त्रता कवि की पीड़ा का कारण बनती है। वह कहता है:—

मिला ज्ञान से जो धन, नहीं हुआ निश्चेतन,
बाँधो उससे जीवन, साधो पग-पग यह डग।[2]

---

१. अपरा, पृष्ठ ९-१०।
२. गीतिका, पृष्ठ ८१।

बिजली उनके मन की कौंधी, कर दी सीधी खोपड़ी औंधी,
सर पर सरसर करते धाये, न आये वीर जवाहरलाल[1]।

अपनी सम-सामयिक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के अन्तर्गत, कवि की दृष्टि सम्राट एडवर्ड अष्टम की ओर भी गई थी और वह उनके सिंहासन त्याग, नूतन संस्कृति की भक्ति और स्वतंत्र विचारणा से प्रभावित हुआ था। यह शुद्ध मानसिक श्रद्धा-प्रकटीकरण था; स्तुति, राज्यभक्ति या चाटुकारिता कदापि नहीं। इस कविता का मर्म इन पंक्तियों में निहित है—

जो करे गंध-मधु का वर्जन, वह नहीं भ्रमर,
मानव - मानव से नहीं भिन्न, निश्चय,
हो श्वेत, कृष्ण अथवा, वह नहीं क्लिन्न,
भेद कर पंक निकलता पवन जो मानव का
वह निष्कलंक हो कोई सर[2]।

'पांचक' कविता में कवि ने बंगाल की अकालग्रस्त स्थिति पर सहानुभूति प्रकट की[3]। 'खून की होली जो खेली' में सन् १९४६ के आइ० ए० एस० से सम्बन्धित विद्यार्थियों पर किये गये गोलीकाण्ड पर कवि की भावभीनी वेदनांजलि है[4]। कवि ने चर्खे के चित्र को भी उपस्थित किया[5] और राष्ट्रीय नेताओं व गांधीवादी नीति को भी अपने शिष्ट व्यंग्य का केन्द्रबिन्दु बनाया[6]। 'तारे गिनते रहें' में तत्कालीन भारत का चित्र उभरकर आया है जिसमें निराला की राष्ट्रीय-चेतना का प्रगतिशील रूप देखा जा सकता है।[7]

वर्तमान भारत की दुर्दशा के चित्रण में निराला जी ने सामाजिक पक्ष की गहराइयों में भी डटकर प्रवेश किया। उन्होंने इस दुर्दशा के प्रति विक्षोभ भी प्रकट किया है:—

---

१. बेला, १९४२ की जनता कविता।
२. अनामिका, सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति कविता।
३. 'हंस', बंगाल-अंक, पृष्ठ ३२।
४. नये पत्ते, खून की होली जो खेली कविता।
५. नये पते, चर्खा चला कविता, पृष्ठ ३०।
६. नये पते, मँहगू मँहगा रहा, पृष्ठ ९९।
७. नये पते, तारे गिनते रहे कविता, पृष्ठ ३२।

के राष्ट्रीय ज्वर से निराला पूर्णरूपेण परिचित थे। बंकिम तथा डी०एल० राय का स्वर भी वे अपनी आत्मा में गुंजायमान कर चुके थे। 'जागो फिर एक बार' में गीता का कर्मयोग और वेदान्त का पुरुषार्थ घुलमिलकर समरस बन गया है। राजनीति, दर्शन व कला का सामंजस्य ही इस कविता को ऊँची भूमिका प्रदान करता है। इस कविता का निर्माण सन् १९१९ व १९२१ ई० में हुआ जबकि हमारा देश राष्ट्रीय क्रांति के ज्वार से अभिभूत था। कवि का उद्‌बोधन प्राण फूँकने वाला है:—

> सिंहीं की गोद से छीनता है शिशु कौन ?
> मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण ?
> रे अजान,
> एक मेषमाता ही
> रहती है निर्निमेष—
> दुर्बल वह—
> छिनती सन्तान जब,
> जन्म पर अपने अभिशप्त
> तप्त आँसू बहाती है।
> किन्तु क्या ?
> योग्य जन जीता है,
> पश्चिम की उक्ति नहीं,
> गीता है, गीता है,
> स्मरण करो बार बार—
> जागो फिर एक बार ![१]

अतीत-स्तवन के साथ ही साथ कवि का ध्यान जब वर्तमान भारत की दुर्दशा पर गया, तो वह उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा। दुर्दशा के पक्षों में उसे राजनीतिक व सामाजिक पार्श्व दृष्टिगोचर हुए। सर्वप्रथम कवि ने पराधीनता को ही दुरावस्था की मूल भित्ति माना और उसके प्रति अपनी भावाभिव्यंजना की। परतन्त्रता कवि की पीड़ा का कारण बनती है। वह कहता है:—

> मिला ज्ञान से जो धन, नहीं हुआ निश्चेतन,
> बाँधो उससे जीवन, साधो पग-पग यह डग ![२]

---

१. अपरा, पृष्ठ ९-१०।
२. गीतिका, पृष्ठ ८१।

हमारी पारस्परिक फूट ही हमारे विनाश का मूल सूत्र है। हमारी त्रुटियों व दुर्बलताओं ने ही, एक अन्य जाति को हमारे ऊपर शासन करने की लोलुपता उत्पन्न की है :—

जितनी विरोधी शक्तियों से
हम लड़ रहे हैं आपस में,
सच मानो खर्च है यह
शक्तियों का व्यर्थ ही।[1]

इस कविता में आज का राजनीतिक सत्य मुखर हो पड़ा है:—

छोड़ो यह हीनता,
साँप आस्तीन का,
फेंको दूर
मिलो भाइयों से,
व्याधि भारत की छूट जाय।[2]

डा० भटनागर का यह मत है कि छायावाद-काव्य में इतना भी राजनीतिक इंगित निराला को छोड़ कर और किसी कवि के काव्य में नहीं है। पंत और प्रसाद और महादेवी का सारा काव्य (पन्त की नई प्रगतिवादी कविताओं को छोड़कर) राजनीतिक चेतना से हीन है। इस राजनीतिक इंगित और परुष कण्ठ ने भी निराला के काव्य को लोकप्रिय बनाने में सहायता दी।[3] राष्ट्रीय काव्य के राजनीतिक-पक्ष में विप्लव धारा को भी प्रवहमान होने का अवसर मिला। क्रान्तिदूत निराला ने सन् १९२० में 'बादल-राग' की सृष्टि करके, अपनी युग-चेतना के अनुरूप कार्य किया था। बादल-राग में निहित विप्लव का नाद श्रवण-योग्य है:—

रुद्ध देश है, है क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र गर्जन से, बादल,
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण - बाहु, है शीर्ण शरीर,

---

१. अपरा, छत्रपति शिवाजी का पत्र, पृष्ठ ७९।
२. वही।
३. डा० रामरतन भटनागर—कवि निराला, पृष्ठ १२२-१२३।

तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर[1]।

सम-सामयिक व्यक्तियों पर भी कवि ने अपनी भावांजलि प्रस्तुत की। राष्ट्रीय संग्राम व सांस्कृतिक क्षेत्रों के उन्नायकों में श्रीमती विजय-लक्ष्मी पंडित[2] और उनके पति श्री आर० एस० पंडित[3], स्वामी प्रेमानंद जी महाराज[4], स्वामी शारदानंद महाराज[5], परमहंस श्री रामकृष्ण देव[6] आदि पर भी उन्होंने कविताएँ लिखी थीं। निराला जी ने 'वन-बेला' के व्यंग्य के द्वारा जहाँ साहित्य व राजनीति की साधना का तुलनात्मक विवेचन किया है, वहाँ जवाहरलाल नेहरू की ओर भी व्यंग्यात्मक संकेत किया है:—

लिख अग्र लेख अथवा छापते विशाल चित्र
इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
होता मैं, शिक्षा पाता अरब समुद्र पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पंडित,
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल चित्त
होते उग्र तर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार,
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर,
कुछ लोग बेचते गा - गा गर्दभ-मर्दन स्वर[7]।

कजली के तर्ज पर एक लोकगीत में कवि ने सन् १९४२ की जनता की कुण्ठित भावनाओं का चित्रण किया था जिसके केन्द्र भी जवाहरलाल ही हैं:—

काले - काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल,
कैसे - कैसे नाग मँडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।

---

१. अपरा, पृष्ठ ३।
२. अणिमा, माननीया श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित के प्रति कविता।
३. नये पत्ते, तिलांजलि कविता।
४. अणिमा, स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज कविता।
५. अणिमा, स्वामी शारदानन्द महाराज और मैं कविता।
६. नये पत्ते, युगावतार परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति कविता।
७. अनामिका, वन-बेला कविता।

बिजली उनके मन की कौंधी, कर दी सीधी खोपड़ी औंधी,
सर पर सरसर करते धाये, न आये वीर जवाहरलाल[१]।

अपनी सम-सामयिक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के अन्तर्गत, कवि की दृष्टि सम्राट एडवर्ड अष्टम की ओर भी गई थी और वह उनके सिंहासन त्याग, नूतन संस्कृति की भक्ति और स्वतंत्र विचारणा से प्रभावित हुआ था। यह शुद्ध मानसिक श्रद्धा-प्रकटीकरण था; स्तुति, राज्यभक्ति या चाटुकारिता कदापि नहीं। इस कविता का मर्म इन पंक्तियों में निहित है—

जो करे गंध-मधु का वर्जन, वह नहीं भ्रमर,
मानव - मानव से नहीं भिन्न, निश्चय,
हो श्वेत, कृष्ण अथवा, वह नहीं क्लिन्न,
भेद कर पंक निकलता पवन जो मानव का
वह निष्कलंक हो कोई सर[२]।

'पांचक' कविता में कवि ने बंगाल की अकालग्रस्त स्थिति पर सहानुभूति प्रकट की[३]। 'खून की होली जो खेली' में सन् १९४६ के आइ० ए० एस० से सम्बन्धित विद्यार्थियों पर किये गये गोलीकाण्ड पर कवि की भावभीनी वेदनांजलि है[४]। कवि ने चर्खे के चित्र को भी उपस्थित किया[५] और राष्ट्रीय नेताओं व गांधीवादी नीति को भी अपने शिष्ट व्यंग्य का केन्द्रबिन्दु बनाया[६]। 'तारे गिनते रहें' में तत्कालीन भारत का चित्र उभरकर आया है जिसमें निराला की राष्ट्रीय-चेतना का प्रगतिशील रूप देखा जा सकता है।[७]

वर्तमान भारत की दुर्दशा के चित्रण में निराला जी ने सामाजिक पक्ष की गहराइयों में भी डटकर प्रवेश किया। उन्होंने इस दुर्दशा के प्रति विक्षोभ भी प्रकट किया है:—

---

१. बेला, १९४२ की जनता कविता।
२. अनामिका, सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति कविता।
३. 'हंस', बंगाल-अंक, पृष्ठ ३२।
४. नये पत्ते, खून की होली जो खेली कविता।
५. नये पते, चर्खा चला कविता, पृष्ठ ३०।
६. नये पते, मँहगू मँहगा रहा, पृष्ठ ९९।
७. नये पते, तारे गिनते रहे कविता, पृष्ठ ३३।

दुःख भार भारत तम केवल,
वीर्य-सूर्य के ढके सकल दल,
खोलो उषा-पटल निज कर अयि
छविमय, दिन-मणि के[1] ।

निराला जी समाज के प्रति अपने महत् दायित्व से भलीभाँति अवगत थे। उनकी समवेदना का अक्षय कोष दलित-पतित व त्रस्त-ग्रस्त पात्रों के प्रति मानसिक तथा भौतिक, दोनों ही रूपों में सर्वदा खुला रहता था। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि इन बेचारे दीन जनों को, भारत के इन पददलित मनुष्यों को उनका वास्तविक स्वरूप समझाना होगा। जाति, वर्ण तथा सबलता व दुर्बलता के भेद-भाव को छोड़कर सभी स्त्री-पुरुषों एवं प्रत्येक बालक-बालिका को सुना दो तथा सिखा दो कि सबल, दुर्बल, उच्च, नीच सभी के हृदय में अनन्त आत्मा मौजूद है।[2] निरालाजी की करुणा की दृष्टि इन पात्रों पर थी:—

दलित जन पर करो करुणा, दीनता पर उतर आये
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा, हरे तन मन प्रीति पावन
मधुर हो मुख मनोभावन, सहज चितवन पर तरंगित,
हो तुम्हारी किरण तरुणा[3] ।।

इस क्षेत्र में कवि ने विधवा[4], भिक्षुक[5], पत्थर तोड़ने वाली मजदूरिन[6] को अपने ममत्व-पाश से आबद्ध किया। 'कुत्ता भौंकने लगा'[7], 'छलाँग मारता गया'[8], 'डिप्टी साहब'[9] आदि में कृषकों की दयनीय व प्रताड़ित स्थिति का चित्रण है और इसके विपरीत 'राजे न रखवाली

१. अपरा, जागो जीवन-धनिके, पृष्ठ २६ ।
२. श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार—विवेकानन्द चरित्र, पृष्ठ १८७ ।
३. अपरा, दलित जन पर करो करुणा, पृष्ठ १५० ।
४. अपरा, पृष्ठ ४७-४८ ।
५. वही, पृष्ठ ५७ ।
६. वही, पृष्ठ १९-२० ।
७. नये पत्ते, पृष्ठ ५४ ।
८. वही, पृष्ठ ८५ ।
९. वही, पृष्ठ ८६ ।

की[1], दगा[2], 'झींगुर डटकर बोला[3] आदि में सामंती व्यवस्था, आधुनिक सभ्यता व जमींदारों के अत्याचारों व दोषों का चित्रण है। यथार्थवादी कविता 'रानी और कानी' में विवाह की कुरीतियों का व्यंग्यपूर्ण आख्यान प्रस्तुत किया गया[4]। कवि ने शूद्रों के प्रति भी अपनी सहानुभूति प्रकट की:—

मैंने देखा बड़ा मेला
मन उसका समाज से
चोट खाई वह रामजी के राज से
शूद्रों को मिला कहीं
जिनसे कुछ भी नहीं[5]।

'कुकुरमुत्ता' काव्य में समाज के उच्च वर्ग के प्रति व्यंग्य है जहाँ निम्न वर्ग उपेक्षित रहता है। स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में भी निराला की सहानुभूति मानव के साथ है और उनकी राष्ट्रीयता मानवतावादी क्षेत्र का आलिंगन करने लगती है। कवि की वेदना इन पंक्तियों में फूट पड़ी है:—

जहाँ मनुष्य बैल घोड़ा है, कैसा तन-मन का जोड़ा है।
देख रहा है विश्व आधुनिक, वन्य भाव का कोड़ा है।
पक-पक कर ऐसा फूटा है, जैसे सावन का फोड़ा है।

वर्तमान की दुर्दशा के चित्रण के बावजूद भी, कवि भविष्य के प्रति आशावादी है:—

गहकर अकल तूलि, रंग - रंग कर बहु
जीवनोपाय, भर दो घर,
भारति भारत को फिर दो वर
ज्ञान विपणि-खनिके[6]।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के पुष्प के रूप में, कवि एक नूतन विश्व संस्कृति की कल्पना करता है जो कि उसकी चरम परिणति है:—

---

१. अपरा, पृष्ठ २४।
२. नये पत्ते, पृष्ठ २८।
३. वही, पृष्ठ ५६।
४. वही, पृष्ठ ८९।
५. वही, स्फटिक शिला, पृष्ठ ४८।
६. गीतिका, जागो, जीवनधनिके गीत।

नहीं आज का यह हिन्दू, आज का मुसलमान,
आज का ईसाई, सिक्ख, आज का यह मनोभाव,
आज की यह रूपरेखा, नहीं यह कल्पना,
सत्य है मनुष्य, मनुष्यत्व के लिए,
बंद हैं जो दल अभी किरण सम्पात से
खुल गये वे सभी।[1]

निराला जी के काव्य में निहित राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन करने के पश्चात्, अब हम निश्चित निष्कर्ष पर आ जाते हैं। निराला-काव्य के संदेश और उनकी राष्ट्रीयता के स्वरूप के विषय में मत स्थिर करना ही, निष्कर्ष के रूप में, आ सकता है। आचार्य बाजपेयी जी ने निराला जी को भारतीय नव जागरण का अन्यतम कवि मानते हुए, उनके काव्य को राष्ट्रोन्नति के लिए महत्वपूर्ण बतलाया है और उनके काव्य के संदेश को उत्थानमूलक माना है। वह संस्कृति, मानव-व्यवहार और उच्च नैतिकता का काव्य है।[2] निराला की राष्ट्रीय चेतना में हमें तात्कालिक वृत्ति या भावावेश की स्थिति नहीं दिखाई देती, अपितु उसमें राष्ट्र की महिमा, संस्कृति, नैतिकता, सामाजिकता आदि का प्रबल वेग है। उसमें सामयिकता की अपेक्षा चिरन्तन रूप के दर्शन अधिक होते हैं। राष्ट्रीयता के विराट व विस्तृत रूप को निराला जी के काव्य ने अंगीकृत किया जिसमें अतीत, वर्तमान, भविष्य और राजनैतिक व सामाजिक परिपार्श्वों के स्पन्दन को स्थान दिया गया। श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने लिखा है कि उनकी राष्ट्रीयता भी अन्य भावनाओं के अनुसार एक विराट भाव-रूप समष्टि में प्रतिष्ठापित है जिससे देश-विशेष की मौलिक सीमा के वर्णन से अधिक उसके सुख स्वास्थ्य की आकांक्षा ही उभर कर सामने आती है।[3] वास्तव में निराला के काव्य की मूलभित्ति अत्यंत परिपक्व, भारतीय चिन्ता-धारा से उद्भूत तथा सुदृढ़ रही है जिससे उनकी राष्ट्रीय चेतना में छिछलेपन का अभाव है। इसी मूलाधार ने उनके दृष्टिकोण को सदैव उदार या प्रांजल बनाये रखा, भले ही परिधान बदलते चले गये। श्री धनंजय वर्मा ने निराला जी को राष्ट्रकवि प्रतिपादित करते हुए लिखा है—'देश-काल की सीमा

---

१. अणिमा, उद्‌बोधन कविता।
२. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी—'मध्य प्रदेश संदेश', दीपावली-विशेषांक निराला व्यक्ति और काव्य, ४ नवम्बर, १९६१, पृष्ठ ३२।
३ श्री पाण्डेय महाप्राण निराला पृष्ठ २८१

पार कर व्यापक सहानुभूति का सम्प्रेषण उनके गीतों की विशेषता है। जैसे सूर्य के पास कोई सीमा और विकल्प नहीं, उसके प्रकाश का बंधन नहीं, वैसे ही ज्ञान भी सीमातीत है। निराला की यही व्यापक साधना उनको एक ऐसा राष्ट्रकवि का परिवेश देती है जो राष्ट्र के भौतिक संकुचित घेरे को भंगकर सार्वभौमिक और विशुद्ध मानवीय भूमि की साधना करता है। वर्तमान और तत्काल हिंदी कविता की समीक्षा में राष्ट्रकवि की यह संज्ञा अधिकाधिक प्रयोगभ्रष्ट हो चुकी है। हम उसका प्रयोग उसी अर्थ में नहीं करते। राष्ट्रीय कवि की संज्ञा इतनी बड़ी और महत्वपूर्ण है कि सरलता से किसी कवि का नाम उससे सम्बद्ध नहीं करना चाहिए। संक्रमण-काल में प्राय: शब्दों का व्यवहार अर्थापकर्ष का उदाहरण बनता है। इस अर्थापकर्षित संज्ञा का प्रयोग हम अर्थोत्कर्ष के बाद करते हैं। विशुद्ध राष्ट्रीय चेतना का विस्तार सीमा और समय की अवमानना करता हुआ विस्तृत पटभूमि में संस्कृति की गहन गहराइयों में जड जमाता है। निराला इसी अर्थ में राष्ट्रकवि हैं। युगीन वस्तुपरक घटनाओं का वर्णनात्मक आलेख ही उसका एकमात्र निष्कर्ष नहीं होगा। निराला की राष्ट्रीयता कभी भी देश-काल की सीमा में आबद्ध नहीं रही। उनके गीत ऐसी भावना को व्यक्त करते हैं जो किसी भी काल में, किसी भी देश में, किसी भी कवि की होनी चाहिए—यदि वह शुद्ध राष्ट्रीयता का कवि है। भारतीय स्वतंत्रता के प्रति जितना वेग उनके काव्य में मिलता है; उतना समय के स्वर में और कही नहीं मिलता।''[1]

---

१ प्रो॰ धनजय वर्मा—निराला काव्य और व्यक्तित्व, पृष्ठ १२४।

विद्रोह का वर्चस्व—निराला

साहित्य की सभी विधाओं के समर्थ स्रष्टा श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' हिंदी के एक यथानाम महाकवि थे। वे कविता के रचयिता मात्र नहीं, स्वयं एक विराट महाकाव्य के नायक बनकर जिए और इतिहास बनकर उन्होंने १५ अक्टूबर, '६१ के पूर्वाह्न में ९ बजकर २३ मिनट पर दारागंज (प्रयाग) में अपनी जीवनलीला समाप्त की। विद्रोही महाकवि निराला की साहित्य-साधना जितनी संश्लिष्ट और वैविध्यपूर्ण है, उनका व्यक्तित्व भी उतना ही विलक्षण और इंद्रधनुषी था। उनकी मृत्यु से रवीन्द्रनाथ के बाद एशिया का दूसरा सबसे महान् कवि उठ गया। निराला ने जीवन का जितना कटु संघर्ष झेला और आपदाओं की रगड़ से जिस प्रकार उनकी छाती छिलती रही, वैसा संभवतः भारत के किसी भी दूसरे इतने बड़े साहित्यकार के साथ न हुआ होगा। कबीर के बाद उन्होंने ही जीवन में सबसे अधिक विरोधों के गरल का पान किया था और आश्चर्य नहीं, इसीलिए उनमें कबीर के समान ही अखण्ड आत्मविश्वास, रूढ़ियों के प्रति आक्रामक भाव और क्रांतिदर्शिता पाई जाती है। निराला का सारा जीवन सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और मानवता को कुंठित करनेवाली अर्गलाओं पर प्रहार करते बीता। उनके साहित्य का एक बहुत बड़ा अंश उनके इसी संघर्ष का दस्तावेज है।

यों तो हिंदी साहित्य में 'छायावाद' के उन्नायकों में प्रसाद, निराला और पंत की 'वृहत्त्रयी' का उल्लेख किया जाता है, पर पूर्वाग्रह-रहित होकर विचार किया जाय तो इसके प्रवर्तन का सर्वाधिक श्रेय निराला को मिलना चाहिए और छायावाद का सबसे व्यापक, प्राणवान और क्रांतिकारी स्वरूप भी निराला की रचनाओं में ही मिलता है। प्रसाद का साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश अवश्य ही पंत और निराला, दोनों से पहले हो चुका था,

लेकिन उनकी प्रारंभिक कविताएँ ब्रजभाषा में निबद्ध हैं और उनमें और परंपरागत शैली की कविताओं में बहुत अधिक अंतर भी नहीं है। खड़ीबोली में भी उनके 'झरना' (प्रथम संस्करण, १९१८ ई०) तक के काव्य-संकलन विषय-वस्तु और अभिव्यंजना-पद्धति, दोनों ही दृष्टियों से कोई नवीनता अथवा विशिष्टता नहीं दर्शित करते। प्रसाद जी की कवि-प्रतिभा का विकास क्रमिक रूप से हुआ है। इसके विपरीत, निराला जन्मजात महाकवि थे। उनकी पहली ही कविता 'जुही की कली', जो लिखी १९१२ ई० में गई थी, प्रकाशित हुई बहुत बाद 'मतवाला' के अठारहवें अंक में और जिसके साथ पहली बार कवि का पूरा नाम सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' छपा, इतनी प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि बहुतों को तो विश्वास भी नहीं होता कि यह कवि की पहली कृति हो सकती है। 'जुही की कली' एकाधिक दृष्टियों से युगांतरकारी रचना है और इसमें प्रायः वे सभी प्रवृत्तियाँ वर्तमान हैं, जिनका विकसित रूप 'छायावाद' की संज्ञा पा सका। प्रकृति का आलंबन-रूप-चित्रण, प्रेम के रूढ़ि-भंजक और उन्मुक्त स्वरूप का प्रदर्शन, शरीर के मांसल मिलन से चलकर अतीन्द्रिय आत्म-समर्पण तक का भावन, रसानुकूल सौंदर्यक्षम भाषा और मुक्तछंद की योजना—ये सभी इसकी विशिष्टता के विभिन्न आयाम हैं। अपनी चतुरस्र नवीनता के कारण ही रचना कुछेक तत्कालीन पांडित्याभिमानी पत्र-संपादकों के गले के नीचे नहीं उतर सकी थी और संयोगवश 'मतवाला' जैसे क्रांतिकारी पत्र का प्रकाशन न हुआ होता तो पता नहीं, इसे और कितने दिनों तक प्रकाशन का मुँह देखना नसीब न होता।

निराला के भावों में तो रूढ़ियों के प्रति बगावत और नवीनता थी ही, पर भावों की नूतनता से भी अधिक हिंदी की परंपरा-प्रेमी मेधा को चौंकाया विषममात्रिक अतुकांत छंदोयोजना ने। कविता के लिए छंदों का बंधन अनिवार्य है, यह बात रीति-युग में जितनी आस्थापूर्वक मानी जाती थी, उतनी ही आस्था के साथ रीतिकालीन मनोवृत्ति का घोर विरोध करनेवाले द्विवेदी-युग में भी। छंदों की पायल उतार देने पर भी काव्य का सर्जन संभव है, यह बात उस समय अकल्पनीय थी। फलतः निराला के मुक्तछंद का घनघोर विरोध हुआ, उसे उपहास के लिए सर्वतंत्र स्वतंत्र छंद, रबड़ छंद, केंचुआ छंद, कंगारू छंद आदि अनेक नाम दिए गए, और सभा-सम्मेलनों से लेकर पत्र-पत्रिकाओं तक में उसकी भरपूर हँसी उड़ाई गई। लेकिन निराला के इस 'मुक्तछंद' के पीछे केवल रुचि-वैचित्र्य का आग्रह न था। जिस प्रकार अमेरिका की जनता की

स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति प्रसिद्ध अमेरिकन कवि वाल्ट ह्विटमैन की रचना 'लीव्ज आफ द ग्रास' (१८५२ ई०) के फ्री वर्स (verslibre) में अभिव्यंजित हुई है, उसी प्रकार निराला के मुक्तछंद में जातीय जागरण की अनुगूँज वर्तमान है। उनके युग में जो वैयक्तिक और सामूहिक धरातल पर स्वाधीनता का संघर्ष चल रहा था, छंदों की मुक्ति उसका साहित्यिक, कलात्मक प्रतिरूप है। उन्होंने स्वयं अपनी मुक्तछंदवाली रचनाओं को व्यापक सांस्कृतिक और सामाजिक पीठिका प्रदान करते हुए लिखा है—'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं—फिर भी स्वतंत्र, इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किंतु जिससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन-चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है' (परिमल—भूमिका, पृ० १४)। इतना ही नहीं, कहा तो यहाँ तक जाता है कि निराला के मुक्त छंदों में जितना ओज और फिर भी जितनी गंभीर लयात्मकता है, वह स्वयं वाल्ट ह्विटमैन के मुक्तछंद में वर्तमान नहीं। अँग्रेजी साहित्य के इतिहास में ह्विटमैन को अधिक से अधिक एक पथ-प्रदर्शन का दर्जा दिया गया है, पर निराला हिंदी में पथ-प्रदर्शक के अतिरिक्त शैली की पूर्णता के साधक भी हैं। अस्तु, निराला का मुक्तछंद हिंदी साहित्य में एक वरदान बनकर आया और न केवल उसने काव्य का कलेवर बदला, बल्कि सदियों की दबी, प्रसुप्त भावनाओं को उभार कर उसकी भावभूमि और शब्दयोजना में भी अभूतपूर्व संक्रांति उपस्थित कर दी। और आज तो वह, निश्चय ही, हिंदी कविता का राज-मार्ग बन चुका है। मुक्त छंद उन कुछेक पुराने तुकाग्रही कवियों के लिए भी कसौटी बन गया, जो केवल मुखर तुकों के जोर पर अपनी नीरस और गद्यात्मक पंक्तियों को भी कविता की कोटि में स्थान दिलाते रहे थे।

निराला की स्वच्छंदतावादी वृत्ति हिंदी साहित्य में अनेक रूपों में व्यक्त हुई है। कहीं-कहीं कवि ने सामंती बंधनों का निषेध कर उन्मुक्त प्रेम का राग अलापा है, जैसे 'धारा', 'प्रगल्भ प्रेम' या 'सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति' शीर्षक कविताओं में। 'प्रगल्भ प्रेम' शीर्षक कविता में कवि अपनी प्रेयसी कल्पना का आवाहन करता हुआ कहता है—

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अर्द्ध-विकच रस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़कर बंधनमय छंदों की छोटी राह !
गजगामिनि वह पथ तेरा संकीर्ण,
कंटकाकीर्ण !

'सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति' कविता में अष्टम एडवर्ड का चित्रण एक आदर्श प्रेमी के रूप में हुआ है और उन्हें प्रेम की रक्षा के निमित्त इंग्लैंड का महान् सिंहासन ठुकरा देने पर बधाई दी गई है—

तुम नहीं मिले—
तुमसे हैं मिले हुए नव योरप-अमेरिका।
सौरभ प्रयुक्त !
प्रेयसी के हृदय से हो तुम प्रतिदेशयुक्त,
प्रति जन, प्रति मन,
आलिंगित तुमसे हुई सभ्यता यह नूतन।

इसका ही एक रूप वह भी है, जहाँ पौराणिक आख्यानों को नए संदर्भ में देखा गया है, जैसे 'पंचवटी-प्रसंग' में कवि ने सूर्पणखा को कुरूप और कुलटा के रूप में न चित्रित कर एक रूपवती नायिका के रूप में उपस्थापित किया है और उसे अपनी सहानुभूति प्रदान की है। 'पंचवटी-प्रसंग' में निराला के राम पंचवटी में बैठकर लक्ष्मण के साथ केवल ज्ञान और वैराग्य की चर्चा नहीं करते; सीता को नैसर्गिक जीवनक्रम की महिमा बतलाते हुए वे कहते हैं:—

छोटे से घर की लघु सीमा में—
बँधे हैं क्षुद्र भाव
यह सच है प्रिये,
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर।

कहीं यह वृत्ति सीमा को छोड़कर असीम की ओर जाने की ललक में दिखलाई पड़ती है, जैसे 'परिमल' की 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता, 'हमें जाना है जग के पार' शीर्षक गीत या 'गीतिका' के कुछ अन्य गीतों में। इन अरूप और असीम के प्रेम की व्यंजना करने वाली रचनाओं को पहले मिथ्या रहस्यवादी घोषित कर इनका मखौल उड़ाया गया; फिर इन्हें कवि की पलायनवादी वृत्ति का प्रतीक मान कर इनका अवमूल्यन हुआ।

लेकिन दोनों ही प्रकार के आलोचकों ने इनकी वास्तविकता को समझने का प्रयास नहीं किया। इनका असीम न तो कोई आध्यात्मिक सत्ता है और न प्रत्यक्ष से पलायन का प्रमाण। यह केवल तत्कालीन सामाजिक संकीर्णता और वैज्ञानिक जड़ता के प्रति कवि के असंतोष का संकेत है और इसके माध्यम से भी कवि की एक उच्चतर और महत्तर समाज-रचना की अभिलाषा व्यक्त होती है। कविवर बच्चन ने इसे उचित ही 'स्वप्न का सत्य के प्रति विद्रोह कहा है' (नए-पुराने झरोखे—पृ० १३२)।

किंतु इस स्वच्छंदतावाद का सबसे स्वस्थ, सबल और ओजस्वी रूप हमें कवि की दीनों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति में दिखलाई पड़ता है। छायावाद के पुरोधा कवि होने पर भी निराला कोरे व्यक्तिवादी कभी नहीं रहे। उन्होंने स्वयं जीवन के निर्मम झकोरों का सामना किया था, इसलिए उनमें एक ओर जहाँ दर्शन की ऊँची उड़ान है, वहीं यथार्थ का तीखा आग्रह भी। यदि उन्होंने 'तुम और मैं' या 'कौन तम के पार रे कह' आदि कविताओं में पारलौकिक सत्ता के अस्तित्व का आभास पाया है तो छोटी-सी लकुटी के सहारे राजमार्ग पर चलते 'भिक्षुक' का रेखाचित्र भी उपस्थित किया है और इलाहाबाद के जन-पथ पर पत्थर तोड़ती मजदूरनी की आँखों में झाँककर उसकी विवश वेदना को भी देखा है। निराला के इस दुहरे व्यक्तित्व का पूर्णतया प्रतिनिधित्व उनका निर्बन्ध और उन्मुक्त बादल करता है, जो व्योमबिहारी होकर भी शोषितों का मित्र है। उसका भैरव रण-गर्जन सुनकर एक ओर धनी अंगना-अंग में लिपटकर थर-थर काँप उठते हैं, दूसरी ओर जीर्ण-बाहु और शीर्ण-शरीर अधीर कृषक हाथ उठाकर इस 'विप्लव के वीर' का आवाहन करता है। निराला का अवतरण भी कुछ ऐसी ही भूमिका में हिंदी साहित्य में हुआ था। आज से लगभग चार दशक पूर्व निराला की वर्ग-चेतना कितनी प्रबुद्ध थी, यह देखकर आश्चर्य होता है। यदि कवि 'यमुना के प्रति' शीर्षक कविता में अतीत की सुरम्य वीथियों में खो गया है तो 'सरोज-स्मृति' में वर्तमान का मार्मिक मूल्यांकन है। 'सरोज-स्मृति' कविता तो निस्संदेह हिंदी का सर्वश्रेष्ठ शोकगीत (elegy) है। इसमें कवि ने अपनी एकमात्र कन्या सरोज के स्वर्गारोहण की दुःखद घटना का आख्यान तो किया ही है, अपने जीवन के सारे संघर्ष और घात-प्रतिघातों का भी निश्छल चित्र उपस्थित कर दिया है—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही ?

यह न केवल इस कविता की केंद्रीय पंक्ति है, बल्कि कवि निराला के संपूर्ण जीवनानुभव का निचोड़ भी है। जिस कवि ने अपने हाथों से मातृहीना सरोज की सुहाग की सेज सजाई, उसे ही उसकी चिता भी सजानी पड़ी, भाग्य की इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है? आर्थिक संघर्ष ही क्या कम थे, जो मानसिक वेदना भी भुगतनी पड़ी? यह निराला का ही धीर-गंभीर व्यक्तित्व था, जो आपदाओं के तीव्रतम आघात और उपेक्षा का दारुण दंशन सहकर भी यही कहता रहा—'अभी न होगा मेरा अंत!'

निराला की सर्वश्रेष्ठ प्रबंधात्मक रचनाएँ 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' हैं। जीवन में आवेग तत्त्व की प्रधानता के कारण उनके प्रबंधों में कसाव है। 'राम की शक्तिपूजा' तो अपने लघु आकार के बावजूद महाकाव्य की उदात्तता और गरिमा अपने में समेटे हुए है। अभिनव नाटकीय कथावस्तु, जीवन की बहुमुखी परिस्थितियों के प्रभावशाली चित्रण, उदात्त वर्णनशैली और दृढ़बंधवाली गंभीर समर्थ भाषा के कारण यह रचना हिंदी साहित्य में तो अकेली है ही, संसार के दूसरे साहित्यों में भी इसकी समकक्षता का दावा करनेवाले काव्य अधिक नहीं मिलेंगे। एक ओर—

> राघव-लाघव—रावण-वारण—गतयुग्मप्रहर,
> उद्धत लंकापति-मर्दित कपि-दल-बल-विस्तर,
> अनिमेष राम—विश्वजिद् दिव्य शरभंग-भाव—
> विद्धांग-बद्ध-कोदंड-मुष्टि—खर-रुधिर-स्राव।

जैसी समस्त और ओजस्विनी भाषा और दूसरी ओर—

> काँपते हुए किसलय, झरते पराग-समुदय,
> गाते खग नवजीवन-परिचय, तरु मलय-वलय,—
> ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छबि प्रथम स्वीय,
> जानकी नयन कमनीय, प्रथम कंपन तुरीय।

जैसी मसृण और कोमलकांत पदावली कवि के उत्कृष्ट सम्मूर्तन विधान और विपुल भाषाधिकार का प्रमाण है। इसी प्रकार 'तुलसीदास' में मुगलकाल के सांस्कृतिक सूर्य के अस्तमित हो जाने से लेकर भारतीय क्षितिज पर तुलसी के अभ्युदय तक की परिस्थितियों का बड़ा घात-प्रतिघातपूर्ण और मनोवैज्ञानिक चित्र उभरा है। 'तुलसीदास' में युग की व्यंजना के साथ प्रकृति और पुरुष के चिरंतन संघर्ष की झाँकी प्रस्तुत की गई है और उसके समष्टि (चित्रकूट के नैसर्गिक दृश्य) और व्यष्टि

(रत्ना) रूपों की प्रेरणाशीलता का भावन हुआ है। ये दोनों रचनाएँ वस्तुतः इस तथ्य की स्वीकृति हैं कि काव्य की श्रेष्ठता उसके विशाल आकार-प्रकार और विपुल सर्गों और छंदों के संभार में निहित नहीं, महत् क्षणों के साक्षात्कार और उनकी समर्थ अभिव्यक्ति में समाहित है और साथ ही यह भी कि आधुनिक युग की समस्त गद्यात्मक रुक्षता और गुणशीलता के बावजूद अभी उत्कृष्ट प्रबंध काव्यों की सम्भावना निःशेष नहीं हुई है। वस्तुतः 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास', 'कामायनी' और 'उर्वशी' के साथ आधुनिक हिंदी कविता की अन्यतम उपलब्धियाँ हैं।

लेकिन 'तुलसीदास' के बाद निराला के काव्य की दिशा बिलकुल बदल-सी गई। यह मोड़ निराला के लिए सर्वथा अप्रत्याशित तो नहीं कहा जा सकता, पर उसके इस अतिवादी रूप की संभावना कम लोगों ने की होगी। सन् १९४२ ई० में 'कुकुरमुत्ता' लिखकर निराला ने हिंदी कविता को लगभग उतना ही बड़ा झटका दिया, जितना बडा झटका उन्होंने १९१६ ई० में 'जुही की कली' लिखकर दिया था। 'जुही की कली' द्वारा निराला ने साहित्य में एक नवीन जीवन-चेतना, नए सौंदर्य-बोध की प्रतिष्ठा करनी चाही थी, 'कुकुरमुत्ता' अभिजात और शिष्ट के विरुद्ध सामान्य और अनगढ़ की प्रतिष्ठा का जयघोष बनकर आया। तनिक राजनीतिक शब्दावली का सहारा लिया जाय तो 'जुही की कली' में सामंती बंधनों में जकड़े मध्यवर्ग की मुक्तिकामना और नैसर्गिक प्रेम-भावना व्यक्त हुई थी। 'कुकुरमुत्ता' शोषक श्रेणी के विरुद्ध शोषितों की दर्पस्फीत ललकार का प्रतीक है। यों, निराला के 'कुकुरमुत्ता' से पहले पंतजी प्रगतिवाद की ओर मुड़ चुके थे और उन्होंने 'ग्राम-श्री', 'धोबियों का नृत्य', 'कहारों का रुद्र नृत्य' आदि लिखना शुरू भी कर दिया था। लेकिन 'ग्राम्या' तक में उनमें 'सुन्दरम्' के प्रति मोह अवशिष्ट है। वे कालाकाँकर के राजभवन में बैठकर ग्रामीण जीवन की मनोरम कल्पना करते रहे। इस दृष्टि से उनके प्रगतिवाद को 'फैशनेबुल प्रगतिवाद' कहा जा सकता है। पर निराला 'परिमल' और 'गीतिका' की दार्शनिक कविताएँ लिखते समय भी शरीर से श्रमजीवियों के साथ थे। उन्होंने 'परिमल' की 'अधिवास' शीर्षक कविता में बड़ी स्पष्टता से कहा था कि यदि दुःखी भाई के दैन्य पर दृष्टिपात करने में मैं आध्यात्मिक चिंतन से विमुख होता होऊँ तो इसकी मुझे परवाह नहीं—

फँसा माया में हूँ निरुपाय,

कहो, फिर कैसे गति रुक जाय ?
उसकी अश्रुभरी आँखों पर मेरे करुणांचल का स्पर्श
करता मेरी प्रगति अनंत किंतु तो भी मैं नहीं विमर्ष ;
छूटता है यद्यपि अधिवास,
किंतु फिर भी न मुझे कुछ त्रास ।

उनकी इसी लोक-चेतना ने 'कुकुरमुत्ता' में गुलाब के बहाने पूँजीपतियों को चुनौती देकर सर्वहारा की श्रेष्ठता का स्वर मुखर किया है। बरसात में कूड़े-करकट के ढेर पर अनायास उग आनेवाला कुकुरमुत्ता नवाब साहब के उद्यान में यत्न से पोषित और माली द्वारा सेवित गुलाब को दो टूक शब्दों में चुनौती देता है—

अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट ।
× × ×
तू नहीं, मैं ही बड़ा !

कहने की आवश्यकता नहीं कि निराला की भाषा भी पूर्णतया भावानुगामिनी है। 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' की तत्समता और समास-बहुलता के विपरीत यहाँ विदेशी शब्दों का खुलकर ग्रहण हुआ है और उनके संयोग से भाषा की व्यंजकता बढ़ाई गई है। आत्मभाव की प्रखरता, शैली की ताजगी और भाषा के पैनेपन के कारण ही 'कुकुरमुत्ता' हिंदी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकाव्य बन गया है। इसी तरह 'गर्म पकौड़ी', 'महगू महगा रहा', 'प्रेमसंगीत' आदि में लोकसंस्कार उभरे हैं। 'कुकुरमुत्ता', 'नए पत्ते' और 'अणिमा' की अधिकांश रचनाओं में निराला एक व्यंग्यकार की मुद्रा में सामने आते हैं। उन्होंने अपने चारों ओर के जीवन को आँखें खोलकर देखा है और उस पर निर्भीकता से चाबुक चलाया है। 'मास्को डायलाग्स' में रँगे समाजवादियों का खाका खींचा गया है तो 'खजोहरा' में एक ओर हाईकोर्ट के वकीलों की खासी खबर ली गई है, दूसरी ओर गाँव की संकीर्ण नैतिकता का पर्दाफाश किया गया है। 'खुशखबरी' में कृत्रिम कला-प्रेम पर व्यंग्य है तो 'प्रेम-संगीत' जातीय दंभ पर आघात है। टी० एस० इलियट और आज के प्रयोगवादी कवि भी निराला की पैनी दृष्टि की पकड़ से नहीं बच पाए हैं। जिस तरह 'गीतिका' में कवि ने शास्त्रीय संगीतानुवर्त्ती गीत लिखने का

सफल प्रयास किया था, उसी तरह 'बेला' में गजलों पर हाथ आजमाइश हुई है। इन गजलों का विषय भी परंपरागत प्रेम-विरह, आँहो-कराह-माशूकों की बेवफाई या हृदयहीनता मात्र नहीं, बल्कि इनमें सामाजिक जीवन के सत्यों का भी विनियोग हुआ है। 'बेला' में एक कजली मँहगाई और बेरोजगारी से संबद्ध है, जो 'न आए वीर जवाहरलाल' की टेक बनाकर लिखी गई थी। एक दूसरी गजल का मसला है—

खुला भेद विजयी कहाए जो लहू दूसरों का पिए जा रहे हैं।

'बेला' और 'अणिमा' के समाजोन्मुख यथार्थवाद के बाद निराला की काव्यसाधना ने एक और मंजिल तय की। 'अर्चना', 'आराधना' और 'गीतगुंज' का स्वर आध्यामिक है। इन कविता-संग्रहों में न तो 'परिमल' और 'अनामिका' के आवेशतत्व की प्रधानता है, न भाषा में ही वैसी झंकृति है। इनमें जैसे एक भरी हुई गागर की गंभीरता, एक प्रशांत लय है, मानो जीवन की सारी हलचलों को पारकर यात्री अपने गंतव्य के निकट पहुँच गया हो। कहीं इनमें रहस्यवादी की दार्शनिक मुद्रा है तो कहीं भक्त का अपने आराध्य के सम्मुख निष्कपट दैन्य और उत्कट समर्पण भाव मुखर हो उठा है। कहीं-कहीं पिछले संस्कारों के परिणामस्वरूप प्रेम की एक हल्की-सी टीस भी है। इन गीतों की शैली में सूत्रों जैसी संश्लिष्टता है। इनके अधिकांश गीतों में 'अणिमा' के ही इस गीत का स्वर-प्रसार है—

जानता हूँ, नदी-झरने
जो मुझे भी पार करने
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख कोई नहीं मेला।
मैं अकेला।

वस्तुतः निराला का काव्य आधुनिक हिंदी कविता के संघर्षपूर्ण प्रसार और उसकी गहराई का मापदंड है। उन्होंने हिन्दी के तीन युगों (छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद) का सफलतापूर्वक नेतृत्व ही नहीं किया, उनके उत्कृष्टतम उदाहरण भी अपनी कृतियों के द्वारा उपस्थित किए। उनकी रचनाओं में भारत की सांस्कृतिक उच्चता और सामाजिक विचित्रता पूर्णतया प्रतिबिंबित है। उन्होंने दर्शन की गरिमा को जीवन के यथार्थ से संगृहीत कर धरती और स्वर्ग के बीच एक महासेतु निर्मित कर दिया। भारत को उसकी संपूर्ण विराटता और वैविध्य के साथ प्रतिबिंबित करनेवाला इससे श्रेष्ठ दूसरा दर्पण इस शताब्दी की सरस्वती नहीं जानती।

आलोक के कवि निराला

विज्ञान के युग में अध्यात्म की बात करना कदाचित् रूढ़िवादिता ही मानी जायगी ; परंतु वास्तव में यह मान्यता केवल उन विद्वानों की है जो यह नहीं जानते या मानते कि विज्ञान अपनी प्रगति में निषेधात्मक नहीं होता, किसी विशिष्ट परिस्थिति में विज्ञान अपनी सीमायें स्वीकार कर अवश्य लेता है, परंतु किसी विषय के परिणाम पर अविश्वास नहीं करता। कुछ आधुनिक विद्वानों ने प्राचीन एवं आधुनिक साधकों की जीवनचर्या का, उनकी साधना का, तथा साधना से प्राप्त भौतिक तथा मानसिक परिवर्तनों का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन किया है, तथा सिद्ध किया है कि सभी साधकों क साधना में एक ऐसा स्तर अवश्य आता है जहाँ जाकर वे अपनी वाह्य सीमाओं को खोने लगते हैं और एक प्रकार की ऐसी सामान्य स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं जहाँ सम्पूर्ण भौतिकता अपना स्वरूप खोने लगती है तथा सारा संसार एक अभौतिक पदार्थ से परिव्याप्त लगने लगता है। ऐसे आलोकमय संसार की कल्पना सभी धर्मों में तथा सभी युगों में सामान्य रूप से मिलती हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि दर्शनों या धर्मों का रूप भिन्न हो सकता है परंतु आध्यात्मिक सिद्धि की जो अनिवार्य विशेषता है—यथा आलोकमयता, सृजनात्मकता, सर्वत्र आत्मानुभूति आदि—वे सर्वत्र सामान्य रूप से मिलती हैं। यह सब कुछ साधकों की साधना की साक्षी पर ही नहीं, वरन् कलाकार-साधकों की कलात्मक अभिव्यक्तियों के आधार पर भी सिद्ध किया जा सकता है। साधक कलाकारों की कलाकृतियों में एक प्रकार की ऐसी आलोक-मयता देखी गयी है जो उन्हें कृत्रिम या बौद्धिक रहस्यवादियों से सहज ही भिन्न सिद्ध कर देती है। आधुनिक हिन्दी को केवल एक ही साधक रहस्यवादी कवि मिला है और वह है महाकवि निराला, जिसके चिंतन और

आचरण में एकरूपता मिलती है, साथ ही उस समूचे साहित्य में जो साधना से संबन्धित है, सर्वत्र आलोक अनिवार्य रूप से मिलता है, सदा नये-नये रूपों में। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रहस्यवाद की जो कटु समीक्षा की थी वह केवल उसके अनुभूति-पक्ष की दुर्बलता तथा साधारणीकरण की असम्भावना के कारण ही। मूलतः वे रहस्यवाद के विरोधी नहीं थे। इसीलिए उन्होंने कबीर, जायसी, मीरा आदि के रहस्यवाद की आलोचना नही की, क्योंकि वे जानते थे कि इनका रहस्यवाद अनुभूत है, सत्य है, जबकि आधुनिकों का, काल्पनिक है, बौद्धिक है, इसलिए असत्य है। निराला जी के साधक-रूप को कदाचित् आचार्य शुक्ल देख नहीं पाये थे। बाद में निराला जी का वह रूप हिन्दी में बहुत - कुछ 'विक्षिप्त' के नाम से प्रसिद्ध हो गया या कर दिया गया।

निराला जी का जैसा अद्वितीय व्यक्तित्व था वैसा ही अद्वितीय व्यक्तित्व उनकी कविता का है। कविता का व्यक्तित्व कविता के उन गुणों से बनता है जो एक कविता को दूसरी कविता से भिन्न सिद्ध कर देते हैं। इन्ही भिन्न विधायक गुणों या तत्वों का जब किसी विशेष कवि के समस्त काव्य में सामान्य रूप से अस्तित्व मिलता है तो हम उस कवि के काव्य को व्यक्तित्व-निष्ठ काव्य कह सकते हैं। यदि इसी दृष्टि से विचार करें तो स्पष्टतः ज्ञात होगा कि आधुनिक काल के समस्त हिन्दी कवियों में निराला-काव्य सर्वाधिक व्यक्तित्व-निष्ठ काव्य है, अर्थात् निराला जी के काव्य को वह व्यक्तित्व प्राप्त है जो स्वयं 'निराला' है, अपने आप में अकेला है, स्वयं प्रकाशित है। निराला-काव्य-व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ हैं, परंतु उनमें सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है आलोक। 'आलोक' शब्द से मेरा तात्पर्य केवल भौतिक प्रकाश मात्र से नहीं है, परंतु दार्शनिक और कलात्मक अर्थों से है!

कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह जी ने मुझे बताया है कि एक बार जब निरालाजी गीतिका के प्रसिद्ध गीत—

तुम्ही गाती हो अपना गान
व्यर्थ मैं पाता हूँ सन्मान।

लिख चुके थे तो उन्होंने निराला जी से पूछा कि 'पंडित' जी यह सब क्या है, इसका मतलब क्या है ?' इस प्रश्न पर निराला जी का उत्तर था—'जिस समय मैं लेखनी पकड़ता हूँ तो ऐसा लगता है कि जैसे कोई एक प्रकाश-पुंज मेरे अँगूठे पर, पुंजीभूत हो गया है और वही सब कुछ लिख जाया करता है, मैं कुछ नहीं लिखता।' इस प्रसंग के

अतिरिक्त और भी कई ऐसे ही प्रसंगों की साक्षी दी जा सकती है, परंतु सबसे बड़ी साक्षी तो निराला जी के वे गीत ही हैं जिनमें उक्त तथ्य स्वतः-साक्ष्य बनकर उपस्थित है। गीतिका के ४२, ६१, ८० संख्यक गीत इस कथन की पुष्टि करते हैं।

'आलोक' शब्द या आलोकवाची शब्दों का प्रयोग निराला-काव्य में 'प्रायः सर्वत्र' मिलता है जो अपनी अर्थ-छाया (shades of meaning) की दृष्टि से इतना वैविध्यपूर्ण है कि उसको यहाँ किसी एक अर्थ-कोटि में बाँध लेना असम्भव है। आलोक, ज्योति, प्रकाश, आभा, आतप, वह्नि, अनल, किरण, प्रतिभा, ज्योत्स्ना आदि अनेक शब्दों का प्रयोग निराला जी ने केवल अपनी व्यंगात्मक कविताओं को छोड़कर 'प्रायः सर्वत्र,' परंतु सर्वत्र ही भिन्न अर्थाभासों या छायाओं के साथ किया है। 'राम की शक्ति-पूजा' का प्रारंभ—

रवि हुआ अस्त ज्योति के पत्र में लिखा अमर
रह गया राम रावण का अपराजेय समर।

से होता है। इसी प्रकार 'तुलसीदास' का आरम्भ भी भारत के सांस्कृतिक सूर्य के अस्त के साथ होता है। प्रार्थना के प्रायः सभी गीतों में कवि ने प्रकाश की याचना की है। ऐसा लगता है कि निराला जी का अभीष्ट केवल प्रकाश ही है अपने लिए ही नहीं, वरन् जग के लिए भी वे यही माँगते हैं:—जग को ज्योतिर्मय कर दो।

अथवा—

आओ मेरे आतुर उर पर
नव जीवन के आलोक ....। गीत २७, परिमल।
काट अंध उर के बंध-स्तर
बहा, जननि ज्योतिर्मय-निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश कर,
जगमग जग कर दे। गीत, १ परिमल।

गीतिका के गीत ११ से स्पष्ट लगता है कि निराला जी ने अपनी प्रतिभा को अग्नि ही माना है, वे कहते हैं:—

मेरे स्वर की अनल-शिखा से
जला सकल जग जीर्ण दिशा से
हे अरूप, नव रूप विभा के
चिर स्वरूप पा के आओ
मेरे प्राणों में आओ।

गीतिका के ही १६वें गीत में कवि ने पुनः पुनः 'ज्योतिर्मयी' का आह्वान किया है तथा तम को 'किरणासव' पिलाकर 'उर मिला' ने की कामना की है। 'परिमल' की 'क्या दूँ' कविता में भी हमें यही आलोक-कामना दिखाई पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि निराला जी को आलोक के आभास मात्र से संतोष नहीं होता, उन्हें क्रियाशील, वेगवान आलोक प्रिय है, अर्थात् जिस आलोक की उन्होंने पुनः पुनः कामना की है वह परम ज्ञान की निभ्रान्त शांत स्थिति का प्रतीक ही नहीं, वरन् जीवन की प्रगतिशील चेतना का द्योतक भी है। स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त में जैसा ज्ञान और कर्म का सुन्दर समन्वय मिलता है वैसा ही जीवन की सम्पूर्णता का समाहार निराला जी के आलोक में दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए उन्होंने अनेक स्थानों पर 'ज्योतिःप्रपात' की बात की है। तथा 'प्रभाती' (परिमल) में बताया है कि 'जीवन प्रसून के उषा नभ' में खुलते ही 'धाराएँ ज्योति सुरभि उर भर, चर्तुदिक कर्मलीन' हो बह चलती हैं। कवि अपने प्रिय से कहता है कि तुम:—

गत-स्वप्न-निशा का तिमिर-जाल
नव-करणों से धो लो
मुद्रित दृग खोलो।

लेकिन निराला-काव्य में आलोक केवल प्रार्थित पदार्थ नहीं है; वह तो उनकी कल्पना में सदा उपस्थित एक ऐसी सत्ता है, जिससे उनका प्रत्येक गीत सदा आलोकित होता रहता है। निराला जी ने अपने गीतों को 'जागरण' (जो आलोक का ही परिणाम या कार्य है) कहा है। यह 'गीत जागरण' कवि तब पाता है, जब 'अजस्र-रूप-रस-वन-किरणों' को देखकर 'जीवन की विद्युत-शत-तरंग कम्पित' होकर 'नयन-च्युत-सित-मधुर-ज्योति से चुम्बित होकर', 'घन-चरण-कमल' रूपी जीवन खुल जाता है। गीतिका (४२ वाँ गीत) में कवि ने कहा है—

छंद की बाढ़ वृष्टि अनुराग
भर गये रे भावों के झाग।
आ गया बन जीवन-मधुमास।
हुआ मन का निर्मल आकाश।
रच गया नव किरणों का रास।
खेलते फूल ज्योति के फाग। (गीतिका, ८०वाँ गीत)

अपने 'मुखर गीत' के स्वर की तुलना में कवि कहता है कि 'विद्युत ज्यों घन में'। निराला जी की आलोक-[illegible] का दूसरा प्रमाण उनका

आलोकमूलक उपमान-विधान है जिसके कुछ उदाहरण यहाँ देखे जा सकते हैं:—

फूल सी देह द्युति-सारी
मुसका दी आभा ला दी
मार दी मुझे पिचकारी (गीतिका, ५५वाँ गीत)

× ×

गंगा ज्योति जल कण । (भारती-वंदना)

और भी—

रिपु के समक्ष जो था प्रचण्ड
आतप ज्यों तम पर करोद्दण्ड । (तुलसीदास, ४)

× ×

ज्योतिर्मय प्राणों के चुम्बन संजीवन (तुलसीदास, ८)

इस प्रकार की, आलोकमूलक उपमान-विधान की अनूठी उक्तियाँ निराला-काव्य में स्थान-स्थान पर देखी जा सकती हैं: इसलिए यहाँ दो चार और उदाहरण देकर ही संतोष करेंगे। गीतिका के गीत सं० ४४ में दुख अरण्य के किसलयों को 'ज्वाला' कहा गया है, गीत सं० ४७, में 'शशिप्रभा-दृग' से वहते अश्रुओं को 'ज्योत्स्नास्रोत, और तुलसीदास सं० ८६ में रत्नावलि को 'अनला प्रतिमा' कहा गया है।

निराला-काव्य का कोई भी सचेत विद्यार्थी यह पता लगा सकता है कि आलोक की कुछ विशेष भंगिमा निराला जी की अभिव्यंजना की ऐसी विशेषता बन गयी है कि जो अपनी मौलिकता में अनुपमेय है तथा अन्य किसी कवि में नहीं खोजी जा सकती। 'ज्योति की तन्वी' निराला जी की एक ऐसी ही उक्ति है। 'वन-बेला' कविता में बेला को कवि 'सम्बोधन' करता है—'हे वन्य वन्हि की तन्वि नवल'। इसी प्रकार प्रकाश की केवल एक ही किरण का मार्मिक वर्णन गीतिका के ८३ गीत में द्रष्टव्य है तथा प्रभात की किरणों का वर्णन परिमल की 'प्रथम प्रभात' नामक कविता में। इस सबसे ऐसा प्रतीत होता है कि निराला जी को जैसे सर्वत्र एक प्रकार का आलोक दृष्टिगोचर होता था जो उनको इतना प्रिय भी था कि वह उनकी अभिव्यक्ति का अनिवार्य तत्व बन गया है। कुछ ऐसे विशिष्ट स्थल, ऐसी स्थितियाँ तथा अनुभूति-रूप हैं, जहाँ निराला-काव्य का गम्भीर विद्यार्थी यह तो सहज अनुमान कर लेता है या कर सकता है कि अब आलोक अनिवार्यतः आ रहा है, परन्तु उसकी भंगिमा क्या होगी, उसका रूप क्या होगा, कुछ भी कल्पनीय नहीं रहता क्योंकि निराला-काव्य में

गीतिका के ही १६वें गीत में कवि ने पुनः पुनः 'ज्योतिर्मयी' का आह्वान किया है तथा तम को 'किरणासव' पिलाकर 'उर मिला' ने की कामना की है। 'परिमल' की 'क्या दूँ' कविता में भी हमें यही आलोक-कामना दिखाई पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि निराला जी को आलोक के आभास मात्र से संतोष नहीं होता, उन्हें क्रियाशील, वेगवान आलोक प्रिय है, अर्थात् जिस आलोक की उन्होंने पुनः पुनः कामना की है वह परम ज्ञान की निर्भ्रान्त शांत स्थिति का प्रतीक ही नहीं, वरन् जीवन की प्रगतिशील चेतना का द्योतक भी है। स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त में जैसा ज्ञान और कर्म का सुन्दर समन्वय मिलता है वैसा ही जीवन की सम्पूर्णता का समाहार निराला जी के आलोक में दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए उन्होंने अनेक स्थानों पर 'ज्योतिःप्रपात' की बात की है। तथा 'प्रभाती' (परिमल) में बताया है कि 'जीवन प्रसून के उषा नभ' में खुलते ही 'ताराएँ ज्योति सुरभि उर भर, चतुर्दिक कर्मलीन' हो वह चलती हैं। कवि अपने प्रिय से कहता है कि तुमः—

गत-स्वप्न-निशा का तिमिर-जाल
नव-करणों से धो लो
मुद्रित दृग खोलो।

लेकिन निराला-काव्य में आलोक केवल प्रार्थित पदार्थ नहीं है; वह तो उनकी कल्पना में सदा उपस्थित एक ऐसी सत्ता है, जिससे उनका प्रत्येक गीत सदा आलोकित होता रहता है। निराला जी ने अपने गीतों को 'जागरण' (जो आलोक का ही परिणाम या कार्य है) कहा है। यह 'गीत जागरण' कवि तब पाता है, जब 'अजस्र-रूप-रस-घन-किरणों' को देखकर 'जीवन की विद्युत-शत-तरंग कम्पित' होकर 'नयन-च्युत-सित-मधुर-ज्योति से चुम्बित होकर', 'घन-वरण-कमल' रूपी जीवन खुल जाता है। गीतिका (४२ वाँ गीत) में कवि ने कहा है—

छंद की बाढ़ सृष्टि अनुराग
भर गये रे भावों के झाग।
आ गया बन जीवन-मधुमास।
हुआ मन का निर्मल आकाश।
रच गया नव किरणों का रास।
खेलते फूल ज्योति के फाग। (गीतिका, ८०वाँ गीत)

अपने 'मुखर गीत' के स्वर की तुलना में कवि कहता है कि 'विद्युत ज्यों घन में'। निराला जी की आलोक-प्रियता का दूसरा प्रमाण उनका

आलोकमूलक उपमान-विधान है जिसके कुछ उदाहरण यहाँ देखे जा सकते हैं:—

फूल सी देह द्युति-सारी
मुसका दी आभा ला दी
मार दी मुझे पिचकारी (गीतिका, ५५वाँ गीत)
× ×
गंगा ज्योति जल कण। (भारती-वंदना)

और भी—

रिपु के समक्ष जो था प्रचण्ड
आतप ज्यों तम पर करोद्दण्ड। (तुलसीदास, ४)
× ×
ज्योतिर्मय प्राणों के चुम्बन संजीवन (तुलसीदास, ८)

इस प्रकार की, आलोकमूलक उपमान-विधान की अनूठी उक्तियाँ निराला-काव्य में स्थान-स्थान पर देखी जा सकती हैं; इसलिए यहाँ दो चार और उदाहरण देकर ही संतोष करेंगे। गीतिका के गीत सं० ४४ में दुख अरण्य के किसलयों को 'ज्वाला' कहा गया है; गीत सं० ४७, में 'शशिप्रभा-दृग' से बहते अश्रुओं को 'ज्योत्स्नास्रोत, और तुलसीदास सं० ८६ में रत्नावलि को 'अनला प्रतिमा' कहा गया है।

निराला-काव्य का कोई भी सचेत विद्यार्थी यह पता लगा सकता है कि आलोक की कुछ विशेष भंगिमा निराला जी की अभिव्यंजना की ऐसी विशेषता बन गयी है कि जो अपनी मौलिकता में अनुपमेय है तथा अन्य किसी कवि में नहीं खोजी जा सकती। 'ज्योति की तन्वी' निराला जी की एक ऐसी ही उक्ति है। 'बन-बेला' कविता में बेला को कवि 'सम्बोधन' करता है—'हे वन्य वन्हि की तन्वि नवल'। इसी प्रकार प्रकाश की केवल एक ही किरण का मार्मिक वर्णन गीतिका के ८२ गीत में द्रष्टव्य है तथा प्रभात की किरणों का वर्णन परिमल की 'प्रथम प्रभात' नामक कविता में। इस सबसे ऐसा प्रतीत होता है कि निराला जी को जैसे सर्वत्र एक प्रकार का आलोक दृष्टिगोचर होता था जो उनको इतना प्रिय भी था कि वह उनकी अभिव्यक्ति का अनिवार्य तत्व बन गया है। कुछ ऐसे विशिष्ट स्थल, ऐसी स्थितियाँ तथा अनुभूति-रूप हैं, जहाँ निराला-काव्य का गम्भीर विद्यार्थी यह तो सहज अनुमान कर लेता है या कर सकता है कि अब आलोक अनिवार्यतः आ रहा है, परन्तु उसकी भंगिमा क्या होगी, उसका रूप क्या होगा, कुछ भी कल्पनीय नहीं रहता; क्योंकि निराला-काव्य में

जैसा कि स्वयं निराला जी ने परिमल की भूमिका पृष्ठ, २३ पर कहा है, पुनरुक्ति से ही नितान्त मुक्त वरन अधिकांश कल्पना उनकी निजी है।

उक्त विभिन्न उपमान या प्रतिमान-विधान में आलोक के साथ-साथ कवि ने आलोक या आलोकवाची शब्दों का प्रयोग आलोक से भिन्न अर्थ में भी किया है। "शिवाजी का पत्र" नामक कविता में कई स्थानों पर कवि ने भारत की "गई ज्योति" की ओर संकेत किया है जहाँ उसका अर्थ भारत का अतीत गौरवलोक ही कवि को अभीष्ट लगता है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक कविताओं में जीवन, आशा, करुणा, प्रेम, सौंदर्य, रूप आदि अनेक शब्दों के साथ किरण, आभा आदि कोई न कोई आलोकवाची शब्द जोडकर कवि ने इन शब्दों के अर्थ की आलोकमयता व्यंजित करने के साथ साथ वैचारिक भूमिका पर इन शब्दों को अनूठा अर्थ-विस्तार प्रदान कर दिया है।

उपरिकथित आलोक की, निराला-काव्य में स्थिति के अतिरिक्त एक और अभिव्यंजना-प्रणाली है जहाँ निराला जी विशेष रूप से सफल हुए हैं, और वह है प्रतीक-योजना। प्रतीक शब्द का जो अर्थ पश्चिम में, विशेष रूप से फ्रेंच साहित्य में, symbol शब्द द्वारा व्यक्त होता है, उसका वास्तविक, स्वाभाविक और मार्मिक प्रयोग केवल निराला-काव्य में ही मिलता है, आधुनिक हिन्दी के अन्य कवियों में प्रतीक बहुत-कुछ रूपक, रूपकातिशयोक्ति, लुप्तोपमा या एलैगरी की सीमा तक ही आ कर रह जाता है। शुद्ध प्रतीक अपने वास्तविक अर्थ में मुझे निराला-काव्य में ही मिले हैं, अन्यत्र जहाँ भी मिले हैं वे तो बहुत-कुछ कृत्रिम या अनुकृत ही लगते हैं, अस्तु।

अब हमें देखना है कि निराला-काव्य की प्रतीक-योजना में आलोकविधान का रूप व स्थान क्या है। निराला जी के प्रतीक-विधान का जो लघु रूप है उसके विषय में यहाँ कुछ भी कहना असम्भव है। अतः उनके किसी वृहद काव्य के आलोक-सम्बन्धी प्रतीक का उदाहरण देकर संतोष करेंगे ; क्योंकि निराला जी की प्रायः सभी बड़ी कविताएँ अन्ततोगत्वा प्रतीकात्मक हो जाती हैं। निराला जी जिसे 'कविता की परिणति'* कहा करते थे, वह प्रतीक-योजना की अंतिम मरोड ही है। (द्रष्टव्य है 'जागो फिर एक बार' शृंगार वाली कविता की अंतिम पंक्तियाँ या 'वह तोड़ती पत्थर' की अन्तिम

---

*इससूचना के लिए मैं श्री कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह जी के प्रति आभारी हूँ। उन्होंने मुझे बताया था कि श्री निराला जी बार बार यह कहा करते थे कि "आधुनिक हिन्दी के कवियों की कविता में वह परिणति नहीं मिलती" इस वाक्य का प्रयोग व बहुत किया करते थे

पंक्ति। ये पंक्तियाँ कविता के प्रथम सरलार्थ को एक ऐसा मरोड़ दे देती हैं कि कविता फिर से पढ़नी पड़ती है और प्रतीकार्थ एक दम स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है)। 'राम की शक्ति-पूजा' और 'तुलसीदास'- इन दोनों कविताओं मे आलोक-मूलक प्रतीक बड़े ही स्पष्ट हैं। राम की शक्ति-पूजा में जो आलोक-मूलक प्रतीक-विधान हैं वे पूरी कविता में व्याप्त नहीं हैं, परन्तु 'तुलसीदास' में तो इसके दो-तीन स्तर हैं।

तुलसीदास में आये दोनों पात्र, तुलसी और रत्नावली, चारित्रिक विकास की दृष्टि से क्रिया-शून्य हैं, परन्तु परिवर्तन कवि ने दोनों ही पात्रों में प्रदर्शित किया है। यह परिवर्तन कार्य-कलापों के घात-प्रतिघात के परिणामस्वरूप या घटनाओं के कारण, न बता कर कवि ने स्पष्ट ही इन दोनों पात्रों को प्रतीकात्मक बना दिया है। अर्थात् इन पात्रों की मानवीयता का सहज चित्रण बहुत ही कम अंशों में कवि ने सप्रयोजन किया है, साथ ही अधिकांश में इनमें स्वतःस्फूर्त मानसिक तथा आध्यात्मिक परिवर्तनों का चित्रण करके (जो कई स्थानों पर mythmaking और mystic हो गया है) कवि ने इन पात्रों के चरित्रार्थ की बहु-विधि सम्भावनायें प्रस्तुत कर दी हैं, इसीलिए ये सामान्य प्रबंध काव्य के सहज पात्र न रह कर प्रतीकात्मक बन गये हैं।

तुलसी का पात्र एक सामान्य प्रतीक का सुन्दर उदाहरण है जबकि रत्नावली का पात्र आलोक-मूलक प्रतीक के रूप में हमारे सामने आता है। रत्नावली का पात्र हमारे सामने केवल दो स्थलों पर विशेष रूप से आता है, एक, तुलसी की कल्पना में चित्रकूट-दर्शन के समय, और दूसरे, तुलसी के श्वसुर गृह में पहुँचने पर तथा क्षणिक रूप में अपने भाई से वार्तालाप करते समय, जब वह उसे लिवा जाने के लिए आता है। तीनों ही स्थानों पर रत्नावली का चित्रण कवि ने आलोकपुंज के रूप में ही किया है। उसके चरित्र की निश्चयात्मक रेखाएँ उभर कर आती ही हैं कि सारे पात्र को कवि ने ऐसे आलोक से आवरित चित्रित कर दिया है कि उसकी ये आलोक-रेखाएँ अपने आप में प्रतीकात्मक मूल्य तथा महत्व प्राप्त कर जाती परिणामस्वरूप रत्नावली का पात्र मानवीय न रह कर, दैवी हो जाता है, मात्र अभिधेयार्थ न रह कर प्रतीकार्थ बन जाता है और इसके, प्रतीकात्मक अर्थ-विकल्प की अनेक सम्भावनाएँ हमारे सम्मुख प्रस्तुत हो जाती हैं, सफल प्रतीक-योजना की यह महती विशेषता है। रत्नावली के पात्र के प्रतीकार्थ के लिए निम्नलिखित छंद विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं:—३८,४६, ५१, ५८, ५७, ८४, और ८६।

निराला काव्य में करुणत्व

करुणा का मूल सिद्धान्त है पराये अनुभवों को अपना बनाना। दूसरे शब्दों में, इसी को हम सहानुभूति (सह + अनुभूति) कहते हैं। यही वह अनुभूति है जिससे न केवल आत्मा का परिष्कार ही बल्कि विकास भी होता है। आत्मा के इस परिष्कृत स्वरूप और विकास में एक अलौकिक आनंदानुभूति का सतत वास रहता है, जो रचनाकार को ऊर्ध्वगामी बनाये रहता है। महाकवि रहीम ने अपनी इस आनंदानुभूति को एक दोहे में बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है:—

रहीमन यों सुख होत है बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियन निरखि अँखियन को सुख होत॥

पराये सुख में अपना सुख निहित है और पराये दुख में अपना दुख; जो लेखक या कवि अपने आपको इस साँचे में ढाल देता है, वही वास्तव में अपनी रचनाओं से पाठकों को स्वर्गिक आनंद का रसास्वादन करा सकता है।

वैसे काव्य की उत्पत्ति भी करुणा से है। आदि कवि वाल्मीकि ने जब क्रौंच पक्षी को निषाद के तीर से छटपटाते हुए मरते देखा तो शोक की तीव्रता से मुनि का हृदय झकझोर उठा और उनके द्रवित हृदय से ही प्रथम काव्य फूट पड़ा:—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥

दूसरी ओर काव्य-कला का एक उद्देश्य सौंदर्य का उन्मेष करना है क्योंकि सौंदर्य चेतना है और चेतना जीवन है। सौंदर्य दिग्दर्शन द्वारा कवि एक सचेतक का काम कर हमें सौंदर्यानुभूति-सागर में निमज्जित करवाता है। प्रकृति के प्रसाधनों—वृक्ष, पशु, पक्षी, बादल, चाँद, सरिता द्वारा

'तुलसीदास' की प्रथम पंक्ति और अंतिम पंक्ति यदि ध्यान से पढी जाय तो स्पष्ट होगा कि इस प्रबंधकाव्य की कथा 'सूर्य के अस्त और उदय' की कथा है, निराला जी ने इस सूर्यालोक के अस्तोदय के प्रतीक का बड़ा ही सफल और सुन्दर नियोजन किया है। कथानक के आदि-अन्त में ही प्रकाशपुंज सूर्य का नियोजन नहीं, वरन् इस कथानक के विकास में घटनाओं के घात-प्रतिघात की अपेक्षा प्रकाश-पुंजों की क्रिया-प्रतिक्रिया अधिक दृष्टिगोचर होती है। भारत के सांस्कृतिक सूर्य के अस्त के साथ ही मोगल संस्कृति के शशधर की किरणों का पृथ्वी के अधरों पर ज्योतिर्मय प्राणों के चुम्बन, उसी के बीच ज्योति-चुम्बिनी कलशों से युक्त राजापुर से निकल कर प्रतिभालोक से मंडित तुलसी का चित्रकूट की आलोकित प्रकृति में मिहिर-द्वार-दर्शन की कामना आदि-आदि अनेक ऐसे वर्णन मिलते हैं जिनसे सम्पूर्ण कथानक की विकासधारा प्रकाश-पुंजों से गुँथी सी लगती है, और इसीलिए प्रथम पंक्ति में सूर्य का अस्त होना और अंतिम पंक्ति में 'प्राची दिगंत उर में पुष्कल रवि रेखा' का उल्लेख अपने सामान्य अर्थ से ऊपर प्रतीकात्मक महत्व प्राप्त कर लेते हैं। परिणामस्वरूप 'तुलसीदास' काव्य का कथानक अपनी प्रबंध-वक्रता के कारण प्रतीकात्मक बन जाता है, और यह प्रतीक भी आलोक-मूलक ही है।

यहाँ अतिशय प्रयुक्त आलोकवाची शब्द, कवि की पुनः पुनः आलोक कामना, आलोक-मूलक विभिन्न उपमानों तथा प्रतीकों की सम्यक व्याख्या करने का अवकाश नहीं है; फिर भी आलोक-सम्बन्धी निराला जी के इन सभी प्रयोगों को देखकर इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि निराला जी की काव्य-योजना में और चिन्तनधारा में आलोक का विशेष महत्व है। यह शब्द उनकी विशिष्ट दार्शनिक मान्यता तथा साधनात्मक अनुभूति का परिचायक है। वैसे भारतीय चिन्तनधारा की परम्परा में यह शब्द ज्ञान के प्रतीक के रूप में प्रचलित है; परन्तु निराला जी ने इस शब्द के परम्परा प्राप्त दार्शनिक अर्थ को भावनात्मक विस्तार प्रदान किया है जिसकी समुचित व्याख्या निबंध की सीमा में सम्भव नहीं है। कवि के इन शब्दों के साथ—

प्रतिपल तुम ढाल रहे सुधा मधुर ज्योति धार।
मेरे जीवन पर प्रिय यौवन बन के बहार।
कितनी ही तरुण अरुण किरणें।
देख रहा हूँ अजस्र दूर ज्योति यान द्वार।

महाकवि के चरणों में परिश्रमप्रसून की श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित है।

निराला काव्य में करुणत्व

करुणा का मूल सिद्धान्त है पराये अनुभवों को अपना बनाना। दूसरे शब्दों में, इसी को हम सहानुभूति (सह+अनुभूति) कहते हैं। यही वह अनुभूति है जिससे न केवल आत्मा का परिष्कार ही बल्कि विकास भी होता है। आत्मा के इस परिष्कृत स्वरूप और विकास में एक अलौकिक आनंदानुभूति का सतत वास रहता है, जो रचनाकार को ऊर्ध्वगामी बनाये रहता है। महाकवि रहीम ने अपनी इस आनंदानुभूति को एक दोहे में बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है:—

रहीमन यों सुख होत है बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियन निरखि अँखियन को सुख होत॥

पराये सुख में अपना सुख निहित है और पराये दुख में अपना दुख; जो लेखक या कवि अपने आपको इस साँचे में ढाल देता है, वही वास्तव में अपनी रचनाओं से पाठकों को स्वर्गिक आनंद का रसास्वादन करा सकता है।

वैसे काव्य की उत्पत्ति भी करुणा से है। आदि कवि वाल्मीकि ने जब क्रौंच पक्षी को निषाद के तीर से छटपटाते हुए मरते देखा तो शोक की तीव्रता से मुनि का हृदय झकझोर उठा और उनके द्रवित हृदय से ही प्रथम काव्य फूट पड़ा:—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥

दूसरी ओर काव्य-कला का एक उद्देश्य सौंदर्य का उन्मेष करना है क्योंकि सौंदर्य चेतना है और चेतना जीवन है। सौंदर्य दिग्दर्शन द्वारा कवि एक सचेतक का काम कर हमें सौंदर्यानुभूति-सागर में निमज्जित करवाता है। प्रकृति के प्रसाधनों—वृक्ष, पशु, पक्षी, बादल, चाँद, सरिता द्वारा

देश और काल को गहराई से समझते हुए जो रचना निसृत होती है, वह व्यापक प्रभावशालिनी होती है।

उपर्युक्त आधारभूत तत्वों के अतिरिक्त कवि के अपने जीवन की कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ होती हैं जो उसके सारे जीवन-दर्शन पर आच्छादित रहती हैं। भौतिक व आध्यात्मिक, दोनों ही दृष्टियों से जो विराट और भव्य थे, ऐसे महाप्राण निराला के व्यक्तित्व में से ये घटनाएँ सदैव दुलहिन की भाँति काव्य-पर्दे में से झाँका करती हैं। कवि के जीवन पर एक के बाद एक, तीन ऐसे भीषण प्रहार हुए जिन्होंने कवि को क्षत-विक्षत कर दिया। बचपन में स्नेहमयी माँ का साया उन पर से हट गया। जवानी में जीवन-संगिनी ने धोखा दिया। उसके बाद युवती कन्या ने मुँह मोड़ लिया। एक ओर पिता के प्यार से वंचित रहे तो दूसरी ओर उनके औरस पुत्र ही उनसे अलग हो गये। इस क्षणभंगुर और अनोखी दुनिया का क्या कहना? निराला दुख से जर्जरित हो गये। मायावी संसार से उन्हें तीव्र विरक्ति होने लगी। नये विश्वासों ने पुरानी आस्थाओं को डिगाना प्रारंभ कर दिया।

इधर अर्थाभाव उनको खाये जा रहा था। प्रकाशकों की क्षुद्रबनिया प्रवृति ही यद्यपि अधिकांशतः उसकी दोषी थी, तथापि अपनी निराली दान-वीरता (औघड़ता) के कारण भी इनको यथेष्ट कष्ट उठाने पड़े। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि एक ओर जहाँ उनमें पीड़ित, शोषित और त्रस्त मानवता में निहित परिश्रम, सच्चाई और अभावों के प्रति विश्वास का पारावार हिलोरें लेने लगा और अदम्य विद्रोह का अनवरत स्रोत फूट पड़ने लगा तो दूसरी ओर पर-पीड़ा से उत्पन्न वेदना की कसक उनको बराबर सालती रही।

तत्कालीन राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियों का उन पर पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। आर्य-समाज और ब्रह्म-समाज की सामाजिक क्रांति, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और योगीराज अरविंद के दर्शन के साथ-साथ मार्क्सवाद और गांधी जी के नैतिकवाद ने उनके जीवन-दर्शन को बदलने में महत्वपूर्ण योग दिया। इन सबसे उन्हें बल मिला और वे देश की परतंत्रता, अशिक्षा, कुरुढ़ियों के प्रति सदैव लड़ते रहे। युग-प्रवर्तक निराला इस जर्जरित समाज को विनष्ट कर नये समाज की कामना करते हैं; लकीर की फकीर साहित्यिक प्रवृत्तियों को बदल, नये छंद, नये भाव, नई ताल तथा नई गति से पूरित देखना चाहते हैं और उस वर्ग के प्रतिनिधित्व की माँग करते हैं, जो सर्वहारा है और तभी तो अपनी कविता

'वर दे वीणावादिनि वर दे' में उन्होंने सबमें परिवर्तन की, नवीनता की याचना की—

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद—मंद्र रव,
नव नभ के नव विहग-वृन्द को,
नव पर नव स्वर दे।

करुणा का पहला विस्फोट—सरोज की मृत्यु पर हुआ जब कवि का पिता-हृदय निराशा से अभिभूत, अपनी विपन्नावस्था में रोकर दिल हलका कर सकने के अतिरिक्त कुछ न कर सका। एक शोकगीत में उनके उद्‌गार बरबस फूट पड़े:—

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी—
घन वेला से।
धन्ये! मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरा हित कर न सका।
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता गया मैं स्वार्थ समर
....

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

और—

बहती जातीं साथ तुम्हारे स्मृतियाँ कितनी
दग्ध चिता के कितने हाहाकार।
नश्वरता की थीं सजीव कृतियाँ कितनी
अबलाओं की कितनी करुण पुकार।

कवि के पास संचय स्वरूप केवल विगत जन्मों के अपने कर्म हैं और इसीलिए अंत में—

कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण।

निराला ने कल्पना के वाहन पर लम्बी और ऊँची उड़ानें अवश्य भरी हैं, पर मूलतः वे मानवतावादी थे और इसीलिए जन-जीवन से उनका संपर्क अंतिम समय तक बना रहा। छोटे-मोटे, ऊँच-नीच, सभी पर तो

उनकी मर्मभदिनी दृष्टि गई करुणा-उपेक्षित, पर अपक्षित 'भिक्षुक' कितना सजीव बन पड़ा है—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करके पछताता पथ पर—
....

घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

जब कि 'दिनकर' के शब्दों में—

श्वानों को मिलते दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।

निराला ने अपनी 'दान' नामक कविता में जगत की व्यावहारिकता पर और उसके अंग-प्रत्यंग में व्याप्त निष्करुणता पर तीखा व्यंग किया—

झोली से पुये निकाल दिये, बढ़ते कपियों के हाथ दिए।
देखा भी नहीं, उधर फिरकर, जिस ओर जा रहा था,
वह भिक्षु इतर।।

मानव के बच्चों के इस निर्मम व्यवहार से बिंधकर ही कवि इस तथ्य के उद्घोषक हो गये कि:—

मानव के बच्चे हम सब,
क्यों न एक हों, मानव मानव सभी परस्पर।

उनकी सदाशयता के कण यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे हुए हैं, जो उनको घेरे चतुर्दिक दुख से उत्पन्न ऐसे प्रसून हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा दी, पर अफसोस कि उसका मूल्यांकन न तो उनके जीवन-काल मे ही और न मृत्योपरांत ही संभव हो सका है। अस्तु, राष्ट्रकवि मैथिली-शरण गुप्त ने भारतीय संस्कृति के उदात्त गुणों से विभूषित, उर्मिला और यशोधरा और उनके द्वारा शत शत भारतीय नारियों की घनीभूत पीड़ा को कितनी मार्मिकता से व्यक्त किया है :—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।

परन्तु निराला ने तो 'विधवा' में इस चिर-दुखिता के अस्तित्व का भी हृदय-द्रावक दृश्य चित्रित किया है। क्या पति-विहीना होने पर उसे जीने का अधिकार नहीं है? क्या वह मानवी नहीं है? क्या वह ममता से भरी किसी की माँ और किसी की स्नेहसिक्ता बहन अब नहीं रही? और तो और, जब परमात्मा ने भी उससे मुँह फेर लिया तो कवि की आत्मा चीत्कार उठी:—

क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल ?
या किया करते रहे सबको विकल ?

इसीलिये तो वह ऐसी बेसहारा है :—

वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन।
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा-सी।
दलित भारत की विधवा है।

अपनी लज्जा को बचाये नीची दृष्टि डाले वह रोती ही रहती है, पर कोई भी तो ऐसा साहसी नहीं जो उसको धीरज दे सके, सहानुभूति के दो शब्द कह सके :—

कौन उसको धीरज दे सके
दुख का भार कौन ले सके

क्योंकि—

यह दुख, वह जिसका नहीं कुछ छोर है।

दूसरी ओर अपनी 'कण' नामक कविता में धूल के कण के रूप में दलितों और शोषितों पर हो रहे अत्याचारों से द्रवित होकर तथा साथ ही उनके पतन की पराकाष्ठा को देखकर कवि उनको उद्बोधित करता प्रतीत होता है :—

बीत गये कितने दिन मास
पड़े हुए सहते हो अत्याचार
पद पद पर सदियों के पद-प्रहार,
बदले में पद में कोमलता लाते,
किंतु हाय, वे तुम्हें नीच ही कह जाते
....

क्यों रज ! विरज के लिए ही इतना सहते हो ?

बेचारे रज के पास आराधना-संबल के अतिरिक्त है ही क्या ? वह तो शरणागतवत्सल की ओर ही टकटकी लगाये हुए है। हृदय के मरु-तरु को पल्लवित करने के लिए वही करुणाब्धि है :—

मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा
स्तब्ध दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा ?
× × ×
मेरे दुख का भार झुक रहा,
इसीलिये प्रतिचरण रुक रहा,

स्पर्श तुम्हारा मिलने पर, क्या
महाभार यह झिल न सकेगा ?

और तभी इलाहाबाद के पथ पर उन्होंने एक ऐसी सर्वहारा मजदूरि के दर्शन किये, जिसे न घाम की परवाह थी, न कड़कड़ाती ठंड की। वह तो यंत्र है न ? उसका हाथ तो अनवरत चलता रहना चाहिए। विश्राम कैसा ? ऊपर से मार पड़ी तो :—

जो मार खा रोई नहीं
....

एक छन के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
मैं तोड़ती पत्थर।

निष्कपट और निर्मल आत्माओं के साथ किये गये ऐसे ही व्यवहार ने शक्ति के उपासक निराला में अदम्य विद्रोह भर दिया, नहीं तो कौन क सकता है कि अन्य छायावादी कवियों के भाँति कल्पनाओं में परिवेष्टित व भी अस्पष्ट ही रहते। पर वे तो सिंह-सदृश हैं—

सिंही की गोद से छीनता है शिशु कौन ?
....

एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल वह—
छिनती संतान जब,
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है।

इस 'उत्पीड़न का राज्य, दुख ही दुख में' सुख की आभा भी कहाँ ? क्योंकि 'क्रूर यहाँ पर कहलाते हैं शूर' और 'स्वार्थ सदा रहता, पारर्थ दूर यहाँ तो 'सदा अशांति' है।

और अपनी समस्त शक्तियों को केंद्रित कर तथा उन्हें महाप्राण समर्पित कर कवि अन्त में जग-जननि से केवल एक करबद्ध प्रार्थन करता है :—

दे मैं करूँ वरण
जननि, दुख हरण पद-राग-रंजित मरण।

'निराला' की कवि-प्रतिभा

'निराला' जी की पितृभूमि उन्नाव जिले के गाँवों में निराला-विषयक एक लोकोक्ति प्रचलित है—'कविन मा आला था निराला गढ़ाक्वाला का' अर्थात् गढ़ाक्वाला ग्राम के कवि निराला, कवियों में श्रेष्ठ हैं। इस उक्ति के द्वारा उनके प्रान्त के जन-समुदाय ने उनकी कवि-प्रतिभा का अभिनन्दन किया है। जनसाधारण में कवि-प्रतिभा का अभिनन्दन और वह भी एक कविता की पंक्ति के रूप में सामान्यतया प्राप्त होना बड़ा कठिन होता है, परन्तु उनके व्यक्तित्व और कवित्व, दोनों ही से उनकी कवि-प्रतिभा प्रचड रूप से प्रकट होती है और इसीसे उसकी इतनी व्यापक प्रशंसा हुई। परन्तु इससे यह अनुमान न लगना चाहिए कि निराला जी को यह अभिनन्दन एवं कवि-प्रतिष्ठा सहज ही मिल गयी थी। परंपरावादी आलोचकों और कवियों से तो 'निराला' को लोहा लेना पड़ा ही, और कहा जा सकता है कि उनके व्यक्तित्व का निखार समाज के संघर्ष से और उनके कृतित्व का उदात्त स्वरूप साहित्य-क्षेत्र के संघर्ष से भी प्रकट और प्रस्फुटित हुआ।

निराला जी का काव्य और व्यक्तित्व असुविधाओं और आघातों के बीच विकसित हुआ। ये असुविधायें और आघात उनके व्यक्तिगत भी थे और समाजगत भी। बचपन में ही माता का निधन, पिता का कर्कश-कठोर व्यवहार उन्हें स्वच्छन्द, उग्र और सब-कुछ झेल लेने के स्वभाववाला बनाने में सफल हुआ। परन्तु इसके लिए उनका जन्मजात व्यक्तित्व भी सहायक था। उनका पौरुष, ओज और स्वच्छन्दता उनके शारीरिक व्यक्तित्व के साथ-साथ उनके काव्य के गुणों के रूप में भी प्रकट हुए। कहा जा सकता है कि निराला का जैसा पौरुष और ओजभरा उदात्त काव्य सामान्यता नहीं मिलता। हिंदी साहित्य में एक से एक ओजस्वी कवि, वीर रस के कवि मिल जायेंगे, पर निराला के काव्य में बोज ओज—की ऐसी

मूलभूत विशषता है जो कि उनकी ललित शृंगारी रचनाओ मे भी दखी जाती है। निराला का ओज विराट् और कभी-कभी दुर्धर्ष है और प्राय: श्रोता और पाठक के मन और हृदय में पूरी तरह समा नहीं पाता जैसे ऊपर ऊपर से निकल जाता हो। एक ही विषय पर लिखी गयी पन्ते, प्रसाद और निराला की रचनाओं में हमें जो प्रधान अन्तर मिलता है, वह निराला के उदात्त विराट् ओज के कारण और हम कह सकते हैं कि निराला के इस प्रभूत एवं अजस्र ओज को न सँभाल सकने के कारण ही, उन्हें बँधे छन्दों को छोडकर स्वच्छन्द छन्दों का आविष्कार करना पडा। उनके छन्द, स्वच्छन्द छन्द, उन शंकर के समान हैं जिन्होंने निराला की ओजमयी वाणी के गंगावतरण को सँभाला है। अतः कुछ प्रयोगवादियो के फैशनगत प्रयोग के समान ही निराला का छन्दावतरण नहीं है; वरन् वह पौरुषमय काव्य का प्रकृत स्वरूप है। ओज निराला के काव्य की मूलभूत प्रकृति है।

परन्तु जहाँ एक ओर उनकी ओजमयी प्रकृति का विकास हुआ; वहीं, दूसरी ओर, लालित्य और सौंदर्य का भी दिव्य-भव्य रूप निराला के काव्य में विद्यमान् है। इसमें भी उनकी सहज वृत्ति के साथ उनकी पत्नी का संस्कार, पुत्री का प्यार और बँगला काव्य और कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव घुला-मिला है। अतः उनके काव्य में ओज और लालित्य का प्रायः मिश्रग मिलता है। शृंगार भी है, तो वह उदात्त और प्रगल्भ शृंगार है, वासनामय एवं पंकिल कुंठाओं का रूप उसमें प्रवेश नहीं कर पाता; क्योंकि निराला के पास छिपाने को कुछ नहीं था। उनकी अनुभूति के ज्वालामुखी को थोड़ी सी भी छेड़छाड़ में भभक उठने में देर नहीं लगती थी। उसका रूप कुछ भी हो सकता था।

ओज और शृंगार के समान ही निराला का हास्य भी जीवन्त है। यह हास्य उनके कथा के चरित्रों में सहज रूप में तथा समाज की विषमता के चित्रण में व्यंग्य-रूप में बड़ा ही चुटीला होकर आया है। उनके व्यंग्य-काव्य का बड़ा सुन्दर और चुभता हुआ उदाहरण 'कुकुरमुत्ता' है। 'कुकुरमुत्ता' को पढ़कर कोई कल्पना नहीं कर सकता कि यह वही कवि है जिसके 'बादलराग', 'यमुना के प्रति' और 'जुही की कली' तथा 'राम की शक्ति-पूजा' और 'तुलसीदास' की रचना की है। उपर्युक्त विभिन्न रचनाओं को पढ़ने से कवि की प्रतिभा की विशालता का पता चलता है। इस प्रतिभा की विशालता को केवल चामत्कारिक विविधता कहकर प्रकट नहीं किया जा सकता। वह उनकी प्रतिभा की व्यापक विशालता है।

उनकी प्रतिभा की विशालता अपने भीतर अनेक तत्वों को समेटे हुए है अर्थात् वह अनेक रूपों में देखी जा सकती है। इन अनेक रूपों को एक साथ देखने पर उनकी कवि-प्रतिभा की व्यापक विशालता और इनमें से एक एक का विश्लेषण करने पर उसकी बारीक सूक्ष्मता प्रकट होती है। अतः हम उनकी विशाल कवि-प्रतिभा की सूक्ष्म विशेषताओं का इन विविध प्रसंगों में अवलोकन कर सकते हैं, जो हैं—छन्द, शैली, और कल्पना।

छन्दगत विशेषता—निराला जी का काव्य प्रबंध, मुक्तक, गीत, छन्दमुक्त छन्द आदि में प्रकट हुआ है। पर इन सभी रूपों में निराला का निरालापन या मौलिकता दिखलायी देती है। किसी में भी परंपरा की लकीर इनका मार्ग नहीं बन सकी ; क्योंकि इनके लिए प्रशस्त पथ चाहिए। निराला जी ने इसीलिए अपनी काव्य-रचना में प्रारम्भ से ही मुक्त छन्द का प्रयोग अपनाया। उनकी १९१६ में प्रकाशित सबसे प्रथम रचना 'जुही की कली' मुक्त छन्द परम्परा का प्रारंभ है। मुक्त छन्द का तात्पर्य छन्द से मुक्ति नहीं, वरन् छन्द का ऐसा मूलभूत स्वच्छन्द, बन्धनहीन रूप है जिसमें भाव-प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। मुक्त छन्द के विषय में निराला जी का स्पष्ट विचार है :—

मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना। मुक्त काव्य साहित्य के लिये कभी अनर्थकारी नहीं होता किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की मूल होती है.........।

मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्त है.... ....मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है, वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम-साहित्य उसकी मुक्ति—निराला, 'परिमल' की भूमिका।

इस उद्धरण से निराला की मुक्त छन्द की धारणा स्पष्ट है। निराला ने मुक्त छन्द को कई स्थितियों में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनकी सर्वप्रथम पुस्तक 'परिमल' में मुक्त छन्द के प्रयोग की ये स्थितियाँ स्पष्ट हुई हैं, जिसमें तीन खण्डों में सममात्रिक, विषममात्रिक, सान्त्यानुप्रास तथा पूर्ण मुक्त रचनाओं के उदाहरण हैं। इन तीनों में अपने मर्यादित नियम तथा क्रमशः उनसे मुक्ति या स्वच्छन्दता देखने को मिलती है। सममात्रिक छन्दों में मात्रा-क्रम के लघु-गुरु की आवृत्ति प्रत्येक पंक्ति में एक

नहीं है ; फिर भी समग्र पंक्ति में कहीं सम, कहीं अर्धसम मात्रिक विशेषता विद्यमान् है । इसी प्रकार से तुक या अन्त्यानुप्रास भी अधिक स्वच्छन्द हैं। इन सममात्रिक छन्दों में जो छन्द की मुक्ति प्रधानरूप से देखी जा सकती है वह है विभिन्न सममात्रिक छन्दों की पंक्तियों का एक रचना में स्वच्छन्दता पूर्वक प्रयोग । यह प्रयोग विशेष रूप से पंक्तियों की संख्या से सम्बन्ध रखता है। परम्परागत नियमानुसार सम और अर्धसम छन्द प्रायः चार पंक्तियों में लिखे जाते हैं, जिसके अन्तर्गत चार चरणों में पूर्णता की कल्पना है। सममात्रिक छन्दों में चारों चरणों में समान मात्रायें और हिन्दी छन्दों में प्रायः सान्त्यानुप्रास की विशेषता रहती है। निराला ने इनमें स्वच्छन्दता अपनायी है । एक ही मात्रा वर्ग के विभिन्न छन्दों की पंक्तियों को एक छन्द में गूँथ कर उन्होंने सममात्रिक छन्द के अन्तर्गत मुक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया है । छन्द-शास्त्र के नियम से ऐसा करना दोष है, पर भाव-प्रवाह की अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह दोष, दोष न रह कर मुक्त भावाभिव्यक्ति का रूप धारण करता है । निराला ने यही किया है । इतना ही नहीं, उन्होंने चार छः दस सममात्रिक पंक्तियों के बाद एक दो कम या अधिक मात्राओं की पंक्तियाँ रखकर भाव-प्रवाह के मोड़ को स्पष्ट किया है और उसके बाद फिर अन्य सम या अर्धसम मात्रिक पंक्तियों की योजना से रचना को पूरा किया है। उदाहरणार्थ निराला की 'विधवा' रचना को हम ले सकते हैं:—

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी	—	२२
वह दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन	—	२१
वह क्रूर काल-तांडव की स्मृति रेखा सी	—	२२
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन	—	२१
दलित भारत की ही विधवा है।	—	१७
षड् ऋतुओं का शृंगार,	—	१३
कुसुमित कानन में नीरव पद संचार,	—	२०
अमर कल्पना में स्वच्छन्द बिहार	—	२०
व्यथा की भूली हुई कथा है,	—	१७
उसका एक स्वप्न अथवा है।	—	१७
उसके मधु सुहाग का दर्पण	—	१६
जिसमें देखा था उसने	—	१४
बस एक बार बिम्बित अपना जीवन धन	—	२२

इसमें प्रथम चार पंक्तियाँ २२, २१, २२, २१ के रूप में अर्द्धसम

छन्द की विशेषता से युक्त हैं। पाँचवीं पंक्ति टेक-जैसी १७ मात्राओं की है। फिर छठी पंक्ति १३ की और सातवीं आठवीं २०, २० की पंक्तियाँ हैं। फिर दुहरे टेक के रूप में दो १७, १७ मात्राओं की पंक्तियाँ हैं और उसके उपरान्त १६, १४ और २२ मात्राओं की पंक्तियाँ हैं। इनमें प्रत्येक पंक्ति किसी छंद की लय को लेकर चलती है और इस प्रकार इस कविता में अलग अलग अनेक छंदों की लयों का समाहार है। ऐसी संयोजना ऊटपटाँग नहीं है; क्योंकि किसी अन्य छंद की पंक्ति चुनने में लय की संगति बैठाना आवश्यक है। हिंदी छंद को निराला जी की तत्संबंधी प्रतिभा की यह एक उपयोगी देन है।

छंद की स्वच्छंदता और अधिक पूर्ण रूप में वहाँ देखी जाती है जहाँ इन्होंने किसी भी मात्रा या वर्ण-संख्या की आवृत्तियों की योजना न करके अनवरत प्रवाह की गति या लय को ही स्वीकार किया है। निराला जी की ऐसे छंदों की कल्पना एक नदी के प्रवाह की स्थिति से मेल खाती है। नदी का प्रवाह जिस प्रकार तरलता की सप्राणता से गतिवान होता रहता है, जल का ओघ जिस प्रकार आगे बढ़ने के उल्लास में स्पन्दित और वेगवान होता है और तरलता और उल्लास उसकी गति को प्रेरित करता है उसी प्रकार भाव की नदी के प्रवाह की भी दशा है। निराला की छंद-सम्बन्धी कल्पना कुछ इसी प्रकार की है। यों संसार में जितनी भी सुन्दर गतियाँ और जितने भी प्रभावकारी स्पन्दन हैं वे सभी छंद के ही रूप की प्रेरणा दे सकते हैं, पर मुख्यतया छंद की कल्पना नृत्य में गति-सौष्ठव के सदृश है। जिस प्रकार हम नित्यप्रति अनेक आते, जाते, चलते, दौड़ते व्यक्तियों के पद-संचालन पर ध्यान नहीं देते, परन्तु एक नर्तक या नर्तकी के पद-संचालन पर विशेष रूप से मुग्ध होते हैं, उसी प्रकार साधारण बोलचाल की अपेक्षा छंदयुक्त वाणी का अपना आकर्षण है। प्राचीन छंद-शास्त्रियों ने छंद के नियम-पालन की दृढ़ता में भाव की उपेक्षा ही न की, वरन् प्रायः भाव का बलिदान भी हो गया। पर निराला भाव की अभिव्यक्ति में पूर्णता लाने के लिये कम से कम छांदसिक अनुशासन को स्वीकार करने के पक्ष में हैं।

वास्तव में दोनों ही पक्षों की अपनी अपनी विशेषतायें हैं और कला की पूर्णता वहाँ है जहाँ पर अधिक से अधिक सुष्ठु गति की उपलब्धि करते हुए अधिक से अधिक भावाभिव्यक्ति को पूर्णता प्राप्त हो सके। कविता का उत्कृष्ट सौन्दर्यमय रूप इसी अवस्था में पूर्णतया खिलता है। अन्य स्थितियों में उसमें अधूरापन या एकांगिता ही रहती है। निराला ने छंदों के अतिशय बन्धन में भाव-विकास को घुटते हुए देखकर तथा तुकबन्दी के पिंजड़े में

बँधे हुए कल्पना के कीर को उड़ने की शक्ति खोते हुए देखकर छंदों के बहुविधि मुक्ति का मार्ग उद्घाटित किया। अतः उन्होंने अनेक प्रतिभाशील व्यक्तियों के लिए नयी दिशा प्रदान की, इसको मानते हुए भी हम यह नहीं स्वीकार कर सकते कि मुक्त छंद का मार्ग ही कविता के लिये सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। वास्तव में छंद का बंधन अपनी अपनी प्रकृति के अनुरूप चलता है जिस प्रकार जीवन में बहुत से व्यक्ति संयम एवं मर्यादा के भीतर रह कर अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करते हैं और कुछ लोग अतिशय संयम में कुचल जाते हैं और स्वच्छंद होकर ही विकसित हो पाते हैं, उसी प्रकार की स्थिति छंद-संयम और भावाभिव्यक्ति की है ; जहाँ यह बात सत्य है कि अतिशय अनुशासन से भाव के विकास में बाधा पड़ती है वहाँ कुछ लोगों के लिये यह भी सही है कि छान्दसिक साँचे के अन्तर्गत रहकर उनकी कल्पना में एक विशेष शक्ति आती है और उनकी भावना को अधिक सबल स्पन्दन प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्तियों के लिये सदैव मुक्त छंद आवश्यक नहीं हैं, परन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति हैं कि जिनमें भाव का तूफान इतनी जोर से उमड़ता है कि उसे किसी भी छान्दसिक बन्धन में बाँधना सम्भव नहीं है; ऐसे ही व्यक्तियों के लिये मुक्त छंद का निर्बाध मार्ग अधिक उपयोगी समझना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि निराला के मुक्त छंद के आन्दोलन से छंदों का परम्परागत कला-वैभव नष्ट और व्यर्थ हो गया, ऐसा सोचना भ्रम है। अधिक संगत यह है कि हम निराला के द्वारा प्रशस्त मुक्त छंद के निर्बाध वायुमार्ग को काव्य-रचना के लिये एक नये प्रशस्त क्षेत्र के रूप में स्वीकार करें, जिसके साथ छंद की पटरियों और सड़कों पर चलनेवाली कला की उपयोगिता और आनन्द में कोई कमी नहीं आती। हमें यह समझना चाहिये कि छंदों की अनन्त विविधता का मार्ग हमारे सामने खुल गया है और अपने अपने संस्कारों, प्रतिभाओं, योग्यताओं और आवश्यकताओं के अनुसार कवि इनमें से किसी भी प्रकार के छंदों को स्वीकार कर काव्य-रचना कर सकते हैं। अधिक नियमबद्ध छंद में शब्दावली की संक्षिप्तता, अर्थगर्भता के साथ-साथ व्यापक स्मरणीयता की विशेषता अवश्य रहती है जिसका कि लोक-जीवन में अपना विशिष्ट महत्व है। छंद-मुक्तता की बहुविधि कल्पना और उसकी सम्यक् साधना निराला की छान्दसिक प्रतिभा का ज्वलन्त प्रमाण है। मुक्त छंद के नवीन मार्ग में आधुनिक हिन्दी कविता का एक नया ही स्वरूप विकसित हुआ। स्वच्छंद रचना के ऊबड़ खाबड़ पहाड़ी मार्ग को ठीक और सुगम्य बनाने में सब से बड़ा श्रेय निराला जी को ही प्राप्त है।

शैली:—निराला की प्रतिभा का बड़ा व्यापक रूप उनकी शैली की विविधता में देखा जाता है। यद्यपि इनकी शैली का मूलभूत गुण ओज और उदात्तता है फिर भी काव्य-शैली के अनेक रूपों में निराला जी के सफल प्रयोग उनकी शैलीगत विविधता के परिचायक हैं। उदात्त और ओजपूर्ण शैली के भी बहुविधि रूप हमें दिखलाई देते हैं जिनमें कहीं भावना का ओज और कहीं नाद की उदात्तता मुखरित हुई है। उनकी रचना 'तुलसी-दास' का प्रारंभिक अंश, छत्रपति शिवाजी का पत्र, आवाह्न, सहस्राब्दि आदि में उनका भावना का ओज और बादल राग जैसी रचनाओं में नाद का मन्द्र गांभीर्य प्रकट हुआ है। उनकी ओजपूर्ण और उदात्त शैली के उदाहरण प्रायः सर्वत्र देखे जा सकते हैं। परन्तु निराला की रचना में ललित सुकुमार शैली और हास्य-व्यंग्य-शैली तथा प्रसाद शैली के भी प्रभूत और सुन्दर उदाहरण मिलते हैं, यह एक आश्चर्यपूर्ण बात है। इन सभी शैली-रूपों में निराला जी को उत्कृष्ट सफलता मिली है क्योंकि उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह हृदय की आन्तरिक प्रेरणा से लिखा है, बाह्य दबाववश या लिखने के लिये नहीं लिखा। निराला के गीतों में, स्मृतियों में और प्रकृति-चित्रणों में प्रायः हमें ललित शैली के दर्शन होते हैं; जहाँ इनकी शब्दावली बड़ा उज्ज्वल रूप धारण कर प्रकट होती है। 'गीतिका' में यह शैली विशेष रूप से प्रकट हुई है। उदाहरण के लिये एक गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

अलि, घिर आये घन पावस के।
लख, ये काले काले बादल
नील-सिन्धु में खुले कमल-दल,
हरित ज्योति चपला अति चंचल,
सौरभ के, रस के।
द्रुम समीर-कम्पित थर-थर-थर,
झरती धारायें झर-झर-झर,
जगती के प्राणों में स्मर-शर
बेध गये, कस के।
हरियाली ने अलि, हर ली श्री
अखिल विश्व के नव यौवन की,
मन्द-गन्ध कुसुमों में लिख दी
लिपि जय की हँस के।

ऐसे उदाहरण उनकी अनेक रचनाओं में मिलते हैं।

उपर्युक्त शैलियों में प्रायः निराला की समास-शैली दिखलाई देती है जिसके प्रभाव को पूर्णतया समझने के लिये विशेष शब्द-संस्कार की आवश्यकता रहती है; परन्तु निराला की ऐसी भी अनेक रचनायें हैं जो बोल-चाल की सहज स्वाभाविक भाषा में हैं और उनकी समास शैली से ही परिचित व्यक्ति को ऐसी रचनायें देखकर आश्चर्य होगा। ये रचनायें प्रायः हास्य-व्यंग्य-प्रधान हैं। उनकी 'गर्म पकौड़ी' और 'कुकुरमुत्ता' इस शैली की अति प्रसिद्ध रचनायें हैं। इस शैली के उदाहरणार्थ कुकुरमुत्ता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं जिनमें कुकुरमुत्ता और गुलाब का संवाद है। गुलाब धनिक वर्ग का प्रतीक है और कुकुरमुत्ता श्रमिक वर्ग का। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

आया मौसिम, खिला फारस का गुलाब,
बाग पर उसका जमा था रोबो दाब,
वहीं गन्दे पर उगा देता हुआ बुत्ता
उठा कर सर शिखर से अकड़कर बोला कुकुरमुत्ता-
अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट;
देख मुझको, मैं बढ़ा,
डेढ़ बालिश्त और ऊँचे पर चढ़ा,
और अपने से उगा मैं
नहीं दाना पर चुगा मैं;
कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता;
तू रँगा और मैं धुला,
पानी मैं, तू बुलबुला;
तूने दुनिया को बिगाड़ा,
मैंने गिरते से उभाड़ा;
तूने जनखा बनाया, रोटियाँ छीनीं,
मैंने उनको एक की दो-तीन दीं।
चीन में मेरी नकल, छाता बना,
छत्र भारत का वही, कैसा तना;
हर जगह तू देख ले,

आज का यह रूप पैराशूट ले।
विष्णु का मैं ही सुदर्शन-चक्र हूँ,
काम दुनियाँ में पड़ा ज्यों, वक्र हूँ;
उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी,
और भी लम्बी कहानी—
मुझी में गोते लगाये आदि कवि ने, व्यास ने
मुझी से पोथे निकाले भास-कालीदास ने
देखते रह गये मेरे ही किनारे पर खड़े
हाफिज और टैगोर जैसे विश्ववेत्ता जो बड़े।
कहीं का रोड़ा कहीं का लिया पत्थर
टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रख कर
कहा—कैसा लिख दिया संसार सारा।
देखने के लिये आँखें दबा कर
जैसे सन्ध्या को किसी ने देखा तारा
जैसे प्रोग्रेसिव का लेखनी लेते
नहीं रोका रुकता जोश का पारा,
× × ×
यहीं से सब हुआ
जैसे अम्मा से बुआ

यह उनकी हास्य-व्यंग्य शैली का एक उदाहरण है। निराला जी की शैली सम्बन्धी प्रतिभा का दर्शन अपूर्ण होगा यदि उनकी दो विशेषताओं का उल्लेख न किया जाय। इनमें से एक है निर्बाध वर्णन एवं भाव प्रवाह और दूसरी है विशेषण-बहुलता। निर्बाध वर्णन एवं भाव-प्रवाह की सिद्धि के लिये ही निराला ने मुक्त छन्द को अपनाया और अनेक स्थलों पर उनकी इस विशेषता के उदाहरण देखे जा सकते हैं। जहाँ पर उन्होंने गति या प्रवाह का चित्रण किया है उनकी प्रसिद्ध रचना 'जूही की कली' में प्रिया की याद आते ही नायक जिस तीव्र गति से चलता है उसका चित्रण निराला ने उसके उपयुक्त समुचित शब्दावली में किया है जो निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :—

आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात
आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात
फिर क्या? पवन

उपवन, सर, सरित गहन गिरि कानन
कुंजलता पुंजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली खिली साथ सोती थी

जिस प्रकार इस रचना में पवन के गमन का चित्रण है उसी प्रकार उनकी 'संध्या सुन्दरी' नामक रचना में नीरवता का अबाध चित्रण इस प्रकार हुआ है—

सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप, चुप, चुप,'
है गूँज रहा सब कहीं—
व्योम-मण्डल में—जगतीतल में—
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल-कमलिनी-दल में—
सौन्दर्य-गर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में—
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में—
उत्ताल-तरंगाघात - प्रलय - घन-गर्जन - जलधि प्रबल में—
क्षिति में—जल में—नभ में—अनिल-अनल में—सिर्फ एक ....

उनकी विशेषण-बहुलता के उदाहरण भी अनेक रचनाओं मे प्राप्त हैं। प्रायः प्रकृति-वर्णन, चरित्र-चित्रण-सम्बन्धी रचनाओं और सम्बोध 'गीतियों' में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से देखी जाती है। विशेषण-बहुलता की प्रवृत्ति केवल निराला की ही नहीं, वरन् यह समस्त छायावादी कवियों की प्रवृत्ति है और उसी रूप में निराला की रचनाओं में भी इसकी अवस्थिति है। इसके उदाहरण के लिये 'यमुना के प्रति' नामक गीत से एक उदाहरण इस प्रकार है। यमुना के तट पर हुए अनेक क्रिया-कलापों को स्मरण करता हुआ कवि कहता है:—

वह कटाक्ष-चंचल यौवन मन
वन - वन प्रिय-अनुसरण-प्रयास
वह निष्पलक सहज चितवन पर
प्रिय का अचल अटल विश्वास;
अलक-सुगंध-मदिर सरि-शीतल
मन्द अनिल, स्वच्छन्द प्रवाह,
वह विलोल हिल्लोल चरण, कटि,
भुज, ग्रीवा का वह उत्साह;

इस विशेषण-बहुलता का ही एक रूप उनके उल्लेख अलंकार के व्यापक प्रयोग करने वाली रचनाओं में देखा जाता है इस शैली में अनेक

सूक्ष्म गुणों और विशेषताओं के वर्णन का प्रयत्न रहता है। शैली के इन गुणों पर अँग्रेजी रोमाण्टिक कवियों का प्रभाव अवश्य है फिर भी वह प्रेरणारूप में ही है। छायावादी कवियों में शैली का यह विविध विस्तार अन्यों में नहीं मिलता।

कल्पना—कवि-प्रतिभा का मुख्य रूप उसकी कल्पना में देखा जाता है। इसी कल्पना के सहारे ही कवि बहुविध बिम्बों की सृष्टि करने में समर्थ होता है। निराला के बिम्ब-विधान में सूक्ष्म संश्लिष्ट सांगोपांग चित्रों की कारीगरी की अपेक्षा विराट् चलचित्रों की सृष्टि अधिक देखने को मिलती है। पृथ्वी, आकाश, नक्षत्रमंडल, वन, पर्वत, प्रकृति के परिवर्तित रूप, वसन्त, पावस, शरद आदि उनकी चलचित्रावली के अंग बन कर आते हैं। उनकी उर्वर एवं गतिशील कल्पना किसी एक चित्र या दृश्य में रमकर उसी की सूक्ष्मता उद्‌घाटित करने में तल्लीन नहीं रहती; वरन् किसी वस्तु या दृश्य को देखकर वह समग्र संसार के भूत-वर्तमान इतिहास और भूगोल का चक्कर लगाने लगती है। निराला की कल्पना की गतिशीलता इतनी तीव्र है कि पाठक या श्रोता उसके द्वारा प्रस्तुत एक बिम्ब को पकड़ नहीं पाता कि दूसरा बिम्ब सामने आ जाता है और जो प्रायः पहले से इतना भिन्न होता है कि रस-ग्रहण की प्रक्रिया अपूर्ण ही रह जाती है। इन बहुविध दृश्यावलियों से पाठक की कल्पना कभी-कभी अभिभूत हो जाती है। अतः उनके इन बिम्बों के समग्र रूप-रंजन के लिए हमें पंक्तियों को बार-बार दुहराना आवश्यक हो जाता है। निराला जी की अधिकांश रचनाओं में यह बिम्बवैभव छलका पड़ता है। प्रकृति और मानव-जीवन का सामंजस्य उपस्थित करने वाले अनेक बिम्ब हमें उनकी रचनाओं में मिलते हैं। उनकी रचना 'नाचे उस पर श्यामा' की प्रारंभिक पंक्तियाँ देखिए:—

फूले फूल सुरभि व्याकुल अलि
गूँज रहे हैं चारों ओर
जगती तल के सकल देवता—पुष्प
भरले शशिमृदु-हँसी हिलोर। —सुगन्धि तरंगें
गन्ध-मन्द गति मलय पवन है
खोल रही स्मृतियों के द्वार,
ललित-तरंग नदी-नद-सरसी
चल शतदल पर भ्रमर विहार।

दूर गुहा में निर्झरिणी की, तान तरंगों का गुञ्जार
स्वरमय किसलय - निलय विहंगों के बजते सुहाग के तार।
तरुण चितेरा अरुण बढ़ाकर, स्वर्ण तूलिका-करसुकुमार
पट - पृथिवी पर रखता है जब कितने वर्णों का आभार
धरा अधर धारण करते हैं रंग के रागों के आकार
देख - देख भावुक जन मन में जगते कितने भाव उदार।

और इसी के आगे—

गरज रहे हैं मेघ, अशनि का गूँजा घोर निनाद - प्रमाद,
स्वर्ग धरा व्यापी संगर का छाया विकट कटक उन्माद
अंधकार उद्गीदण करता अंधकार घनघोर अपार
महा प्रलय की वायु सुनाती श्वासों में अगणित हुंकार।

हम देखते हैं कि पहले प्रभात की रमणीय माधुर्यमय दृश्यावली और उसके बाद ही भयंकर मेघमाला और वज्रपात का दृश्य और इसी प्रकार अन्य अनेक बहुविध बिम्ब निराला जी की एक कविता में मिल सकते हैं। उनकी इस बहुविध बिम्बयोजना के पीछे प्रबल गतिमती कल्पनाशक्ति काम करती है। इसी शक्ति के कारण उनकी रचना ऐसे चित्रों और बिम्बों से समृद्ध है। और उनकी कल्पना की सफलता तुरंत वांछित वातावरण की सृष्टि में देखी जा सकती है। वातावरण के निर्माण द्वारा गहरा प्रभाव डालने में निराला जी सदैव सफल हैं। विधवा, भिक्षुक, जमुना के प्रति आदि अनेक कविताओं में इस प्रकार की विशेषता देखी जा सकती है।

निराला की कल्पना के विधायक रूप के साथ-साथ उसका स्मृतरूप भी बड़े प्रभावकारी ढंग से प्रकट हुआ है। ऐसे स्मृत रूप-विधानों में तो भावुकता टपकी पड़ती है। वहाँ शब्दावली भी अधिक सुगम और सरल है। साथ ही विशेषण-बहुलता के स्थान पर क्रिया प्रधान हो गयी है। ऐसी पंक्तियाँ तुरन्त ही गहरा प्रभाव डालने में सक्षम हैं। उदाहरणार्थ यमुना के प्रति कविता में—

कहाँ छलकते अब वैसे ही, ब्रज नागरियों के गागर?
कहाँ भीगते अब वैसे ही, बाहु, उरोज अधर अंबर?
बँधा बाहुओं में घट क्षण-क्षण, कहाँ प्रकट बकता अपवाद?
अलकों को, किशोर पलकों को, कहाँ वायु देती संवाद?

कहाँ कनक कोरों के नीरव, अश्रुकणों में भर मुस्कान
विरह-मिलन क एक साथ ही खिल पड़ते ये भाव महान

और इसके साथ ही—

कहाँ सूर के रूप बाग के दाड़िम, कुन्द विकच, अरविन्द,
कदली चंपक, श्रीफल, मृगशिशु, खंजन शुक, पिक, हंस मिलिन्द !
एक रूप में कहाँ आज वह हरि मृग का निर्वैर विहार,
काले नागों से मयूर का, बन्धुभाव सुख सहज अपार !
पावस की प्रगल्भ धारा में कुंजों का वह कारागार,
अब जग के विस्मित नयनों में दिवस स्वप्न सा पड़ा असार !

इन पंक्तियों के पढ़ने के साथ-साथ ही हम भावों से भर जाते हैं। चित्रों की उलझन और जटिलता इनमें नहीं और बिम्बों की क्लिष्ट कल्पना से भी ये मुक्त हैं। निराला की कविता में स्मृति को जगाकर विभोर कर देनेवाली रचनायें भी बहुत अधिक हैं।

निराला की कल्पना की अक्षय शक्ति उनकी अनेक रचनाओं में देखी जा सकती है। उनकी अनेक लम्बी रचनाओं में सुदीर्घ भावचित्रावलियाँ इसकी प्रमाण हैं। जहाँ उनमें से एकाध चित्र या भावविभूति ही एक पूर्ण कविता की सामग्री बन सकती थी, वहाँ अनेक दृश्यावलियों की योजना निराला की कल्पना की विराट् शक्ति की द्योतक है। उनकी अनेक लम्बी विस्तृत रचनाओं में दृश्य-विधान की यही अक्षय विशेषता देखकर हम उन्हें महाकवि कहते हैं। 'निराला' ने कोई महाकाव्य नहीं लिखा, फिर भी महाकाव्यकार की जो विशेषताएँ होती हैं, वे हमें उनकी अनेक रचनाओं में देखने को मिलती हैं।

ये सब बातें उनकी प्रतिभा को स्पष्ट करती हैं। इनका सारा जीवन, व्यक्तित्व और काव्य उनकी विराट् प्रतिभा का प्रमाण है। निराला की प्रतिभा दुर्धर्ष एवं वैलक्षण्यपूर्ण है। ऐसे प्रचुर प्रतिभासंपन्न कवि अनुकरणीय नहीं होते। निराला भी अनुकरणीय नहीं हैं। वे मुक्त कविता के कबीर हैं। कबीर का भी अनुसरण बहुत हुआ, परन्तु उनका अनुकरण उनकी उग्र प्रतिभा के कारण असंभव था। निराला के लिए भी यही सत्य है। उनके मार्ग का अनुसरण हो सकता है, उनका अनुकरण नहीं।

निराला जी के प्रतिभादीप्त काव्यवैभव की समग्र शोभा को स्पष्ट करने में युगों का समय लगेगा। कालिदास, कबीर, तुलसी, रवीन्द्र आदि के काव्यवैभव का विश्लेषण कब से चला और आज तक चल रहा है। निराला के काव्यवैभव के विश्लेषण का भी अब श्रीगणेश हो रहा है और धीरे-धीरे हम उसे समझने में सफल होंगे।

गीतिकार-निराला

जब हृदय की भावना चरम सीमा का स्पर्श करने लगती है तो सहजस्रोत निर्झर की भाँति भावाभिव्यक्ति से गीति-काव्य का सृजन होता है। सरल 'आत्माभिव्यक्ति' से अनुप्राणित 'गीति-तरंग' 'संगीत' की सुमधुर ध्वनि से उद्वेलन कर उमड़ चलती है। गीति-कार वाह्य जगत् के तत्वों को अन्तःकरण की भाव-सरिता में निमज्जित कर उन्हें रंजित कर देता है। ऐसा ही व्यक्तित्व उद्‌भट मनीषी कवि निराला का था। प्रसाद एवं पन्त के आश्रय में पल्लवित सौन्दर्य एवं सुकुमार भावनाएँ निराला का साहचर्य पाते ही ओजस्विनी हो उठीं तथा इस वृहत्रयी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में अविस्मरणीय-युग की स्थापना कर 'छायावाद' का ज्योति-स्तंभ आलोकित कर दिया।

महाकवि निराला का काव्य में योगदान जानने के पूर्व तत्कालीन परिस्थिति जन्य प्रेरणाओं एवं अन्य आवश्यक प्रेरक तत्वों का जानना अविनार्य है।

हिन्दी कविता के संक्रान्ति-काल में पुरातन-पंथी विचारधाराओं के स्थान पर नवीन उत्थान-काल का प्रारम्भ हो रहा था। नवीन युग का सूत्र-पात हुआ जिसके उन्नायकों में निराला जी का नाम अग्रगण्य है।

पारिवारिक संकटों के भीषण पर्वत से उद्वेलन पाकर उनका काव्य-निर्झर सहज रूप से अवाध-गति से प्रवाहित हो उठा। केवल २२ वर्ष की अल्पायु में उनके विधुर जीवन ने उन्हें मर्माघात तो अवश्य पहुँचाया परन्तु उनकी समस्त चित्तवृत्तियाँ साहित्य-साधना की ओर केन्द्रित हो गयीं और कविवर पन्त की यह उक्ति कवि निराला के लिये भी सत्य ही चरितार्थ हो उठी—

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर नयनों से चुपचाप, बही होगी कविता ॥

निराला जी ने अनामिका, परिमल, गीतिका, अपरा, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला और नए पत्ते आदि अनेक काव्य-ग्रन्थ-सुमनों द्वारा वीणावादिनी की आराधना कर साहित्यसाधना की।

रवीन्द्र-युग का बंगला-काव्य, द्विवेदीयुगीन प्रतिक्रिया, तत्कालीन-युग-चेतना, धार्मिक संकीर्णताओं की घुटन, सामाजिक अभावों के दर्शन, आर्थिक संकटों की विभीषिका एवं राष्ट्रीयता से संवलित सामूहिक जन-चेतना की प्रेरक शक्तियों ने निराला की काव्यधारा को अनुप्राणित किया तथा सभी प्रेरिका-धाराओं का समन्वित रस-संचयन कर निराला-काव्य निराला-काव्य-सागर ही बन गया।

गीति-काव्य के क्षेत्र में आप हमारे सम्मुख विविध रूपों में आए। आपका व्यक्तित्व निरन्तर विकासशील रहा। आपने युग तथा परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार अपने उत्तरदायित्व का प्रदर्शन किया। गीतों में विविधता की इन्द्रधनुषी शोभा उनके काव्य का अप्रतिम सौन्दर्य है।

उनकी काव्य-धारा की संक्षिप्त झाँकी अवलोकनीय है जिसमें छायावाद, रहस्यवाद एवं प्रगतिवाद की त्रिवेणी अबाध रूप से प्रवाहित हो रही है। छायावादी कृतियों के रूप में 'परिमल' एवं 'गीतिका' का महत्व अक्षुण्ण है। अँग्रेजी के रोमांटिक काव्य की कतिपय विशेषताएँ छायावादी काव्य में परिलक्षित हैं।

काव्य के लक्ष्य-क्रम में 'सुन्दरम्' छायावाद का प्राण है। यह सौन्दर्य-प्रेम निराला के सुन्दर चित्रों में सजीव हो उठा है। आपके सौन्दर्य-चित्रण में सुकुमारता के साथ भावात्मकता है। 'परिमल' की मुक्त छन्द की कविताओं में सौंदर्य-चित्र सुन्दर हैं। यह सौन्दर्य-वृत्ति चेतन की भाँति अचेतन प्रकृति में चेतनता के आरोप में विशेष है। सौन्दर्यवादी कवि निराला के सन्ध्या-सुन्दरी सप्राण चित्र में उपर्युक्त दोनों विशेषताओं का स्पष्ट निदर्शन है:—

> दिवसावसान का समय
> मेघमय आसमान से उतर रही है
> वह संध्या सुन्दरी परी सी
> धीरे धीरे धीरे
> तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
> मधुर - मधुर हैं दोनों उसके अधर,
> किन्तु जरा गंभीर, नहीं है उनमें हास-विलास ....

प्रकृति चित्रण में मानवीकरण उनकी प्रमुख शैली है प्रकृति पर नारीत्व भावनाओं का आरोप इसकी प्रमुख विशेषता है। 'जुही की कली' आपकी इस प्रकार की सर्वप्रथम रचना है जिसमें मानवी सम सौन्दर्य और प्रौढ़ता, दोनों ही उन्नत दशा में हैं:—

विजन वन बल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न-मग्न
अमल कोमल तन तरुणी जुही की कली
दृग बंद किये शिथिल पत्रांक में।
वासन्ती निशा थी। ....

इस प्रकार कवि ने प्रकृति के प्रति प्रेम को इस नूतन दृष्टि से नितान्त अभिनव सज्जा प्रदान की जिसमें प्रकृति के चिर-परिचित सौन्दर्य को अभिनव रीति से सजा कर सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति, नूतन सौन्दर्य-बोध और उदार प्रेम दर्शाया है

छायावादी काव्य में कल्पना का प्रधान सूत्र सर्वत्र पिरोया हुआ है। वह एक अमोघ शक्ति है एवं प्रमुख प्रेरिका भी। निराला की कविता भी 'कल्पना के कानन की रानी' है। यह उनकी कल्पना की ही प्रेरणा थी जिसने अपने कोमल संस्पर्श से प्रकृति के जड़ सौन्दर्य को चेतना प्रदान की, पीड़ित वर्तमान के लिये मधुर स्वप्न-लोक का निर्माण किया, अतीत की स्वर्णिम आभा दर्शाकर भविष्य का स्वर्ग चित्रित किया। इतना ही नहीं, 'शिवं' का स्वरूप भी इसी कल्पना ने चित्रित कर सार्वभौम मंगल-भावना का विकास भी किया।

कल्पना की प्रधानता स्वीकार करने का लक्ष्य यह नहीं कि इसमें अनुभूति का अभाव है। 'सत्यं' का आधार नहीं, छायावाद की आत्मा 'रति' की अनुभूति है। आपके काव्य में प्रेम के स्वच्छन्द एवं प्रगलभ रूप के दर्शन होते हैं। यह 'प्रेम' विविध रूपों में अभिव्यक्त हुआ है—रहस्य-प्रेम, मानव-प्रेम, प्रकृति-प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द जी के दार्शनिक विचार तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर का काव्य उनके काव्य के प्रमुख प्रेरक तत्व हैं जिनका प्रत्यक्ष दर्शन उनके काव्य में गंभीर दार्शनिक तत्वों के समावेश में देखा जा सकता है।

निराला के 'नाद-वेद-आकार-सार' परोक्ष सत्ता के ही प्रतिरूप हैं जिनके प्रति कवि की बौद्धिक साधना अभिव्यक्त हुई है, जिसमें कवि की

सरल जिज्ञासा, सहज कौतूहल एवं विस्मय-विमुग्धता प्रधान रूप से प्रकट है। आप बुद्धि से अद्वैतवादी होते हुए भी हृदय से भक्तिवादी थे। 'जागरण', 'मैं और तुम', 'रेणु' आदि रचनाएँ आपके सूक्ष्म दार्शनिक विचारों की परिचायिका हैं। 'जागो फिर एक-बार' में ब्रह्म-जीव-विवेचन स्पष्ट है—

पर क्या है,
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा - विहीन-बंध छंद ज्यों
डूबे आनंद में सच्चिदानंद-रूप।
महामन्त्र ऋषियों का
अणुओं - परमाणुओं में फूँका हुआ
तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता, ब्रह्म हो तुम।

अद्वैतवाद पर आस्था रखने वाले दार्शनिक चिन्तन-शील कवि की रहस्य-भावना बुद्धि स्तर पर 'सोऽहम्' के समकक्ष भले ही हो, परन्तु परोक्ष प्रिय का आकर्षण उनके भक्त-हृदय में भावुकता का रस उड़ेल देता है। उन्हें विश्वास है कि उनके भक्तहृदय की वेदना, व्याकुलता एवं पीड़ा उनके प्रिय के शरणापन्न होते ही विलीन हो जायगी—

एक दिन थम जायगा रोदन
तुम्हारे प्रेम-अंचल में।

इसीलिये वे भक्त की भाँति दीन रूप में भगवान को आर्त्त स्वर से आह्वान भी करते हैं—

डोलती नाव, प्रखर है धार
सँभालो जीवन-खेवनहार।

प्रेमी निराला जिस उदात्त प्रेम की पावन धार में रससिक्त रहते हैं, वह सर्व-साधारण के वश की बात नहीं—

प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर
प्रेम की महोर्मि माला तोड़ देती क्षुद्र ठाट
जिससे संसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग,
तृण सम बह जाते हैं।

परन्तु—

दिव्य देह-धारी ही कूदते हैं इसमें प्रिय
पाते हैं प्रेमामृत
पीकर अमर होते हैं।

इस प्रेम-रस की स्निग्ध धार ने उनके रहस्यवाद में भी त्रिवेणी प्रवाहित की है। भाव-प्रधानता, चिन्तन-प्रधानता तथा साधना-प्रधानता उसकी त्रिधाराएँ हैं। आपके अद्वैतवाद में ईश्वरीय विभूति का चिन्तन है, साधक की जिज्ञासा एवं विरह स्थिति का निरूपण है—

प्राण धन को स्मरण करते।
नयन झरते नयन झरते॥
कितनी बार पुकारा, खोल दो द्वार, बेचारा।

निराला जी के अद्वैतवाद में एक ओर वैयक्तिक साधना का समर्थन है तो दूसरी ओर अध्यात्मानुभूति को केवल आत्मविकास में ही नही अपितु समाज-विकास, देश-विकास और विश्व-कल्याण के लिये उपयोगी बनाने की प्रेरणा भी है। आपका यह सिद्धान्त है कि जब साधक ब्रह्म से अद्वैत की अनुभूति प्राप्त कर लेता है तो वह आत्मद्रष्टा हो जाने के कारण जन-सेवा की ओर अधिक सुचारु रूप से प्रवृत्त हो सकता है। 'अधिवास' नामक कविता में आपने यह मानवीय संवेदना चित्रित की है—

कहाँ ?—
क्या कहा ? रुकती है गति जहाँ।
भला इस गति का शेष
सम्भव है क्या
करुण स्वर का जब तक मुझमें रहता है आवेश ?

यही 'करुण स्वर' पीड़ित मानवता का स्वरूप है।

आपके दार्शनिक विचारों में कलाकार की कल्पना एवं भावुकता का सुन्दर समन्वय है। इसीलिये उक्त विचारों में साधक की अपेक्षा कलाकार के हृदय की सांकेतिक अभिव्यक्ति विशेष है। उदाहरणार्थ प्रकृति को दार्शनिक चिन्तन में तन्मय दिखाकर उन्होंने मानवीकरण की मौलिक परम्परा का सूत्रपात किया तथा आध्यात्मिकता की सूक्ष्म व्यंजना भी की —

सोचती अपलक आप खड़ी।
खिली हुई वह विरह वृन्त की
कोमल कुन्द कली

चमका हीरक हार हृदय का
पाया अमर प्रसाद प्रणय का
मिला तत्व निर्मल परिणय का
लौटी स्नेह भरी।

इसी प्रकार परिमल, गीतिका और अनामिका की अनेक रचनाओं में उनका रहस्य-प्रेम एवं दार्शनिक चिन्तन अभिव्यक्त हुआ है।

उनके रहस्य-प्रेम की अनुभूति की प्रेरणा ने उन्हें मानवता के प्रति सजग एवं जागरूक कर दिया। कवि की करुणा में बड़ा विस्तार है। उस करुणा का क्षेत्र मानव-समाज तक ही विस्तृत नहीं अपितु जड़ पदार्थों तक भी है। कवि की व्यक्तिगत वेदना समष्टिगत वेदना में परिणत हो जाती है। संसार में व्याप्त करुण पुकार से उनकी करुणवृत्ति उच्छ्वसित हो उठती है—

मैंने मैं शैली अपनाई,
देखा दुखी एक निज भाई
दुःख की छाया बढ़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई
उसके निकट गया मैं धाय—
लगाया उसे गले से हाय—

आपका हृदय उपेक्षित एवं पीड़ित वर्ग की ओर विशेष रूपेण सहानुभूति प्रदर्शित करता है। उन गीतों में समाज की यथार्थवादी विषमताओं और शोषक वर्गों के अत्याचारों के सजीव एवं अद्वितीय चित्र अंकित हैं।

'भिक्षुक' एवं 'राह में पत्थर तोड़ती हुई दीन नारी' के प्रति आपने अपनी गहन सहानुभूति का पर्याप्त प्रदर्शन किया है।

'कण' गीत में आपने दलितवर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए विद्रोह की प्रेरणा भी दी है—

पड़े सहते हो अत्याचार
पद पद पर सदियों से पद-प्रहार।

यथार्थ मार्मिक-चित्रण के साथ-साथ उस शोषण के अन्त की प्रबल कामना भी आपने प्रकट की है—

एक बार बस और नाच तू श्यामा
सामान सभी तैयार,

कितने ही हैं असुर, चाहिये कितने तुमको हार
कर मेखला मुंड मालाओं से बन और अभिरामा,
एक बार............ ।

'बेला' एवं 'नए पत्ते' नामक काव्य-संग्रहों में आपके विचारों में नवीनता का समावेश है। फारसी की गजल-पद्धति में आपने शोषित वर्गो के सुंदर भविष्य की भी आशा की है और वर्ग-संघर्ष समाप्त कर वर्गहीन समाज की स्थापना के प्रयत्न किये हैं।

एडवर्ड अष्टम की प्रशस्ति में उन्हें वीर रूप में दर्शा कर यह दिखाया है कि वे पद-मर्यादा के सामाजिक बंधनों को दूर हटानेवाले हैं इसलिये प्रशंसा के पात्र हैं। इस गीत से यह स्पष्ट होता है कि निराला सामाजिक बंधनों से भी मुक्त होना समाज के लिए श्रेयस्कर मानते थे।

प्रगतिवादी युग में प्रतिभासंपन्न कलाकार निराला ने शोषितों की वाणी को मुखरित कर इस युग का भी पथप्रदर्शन किया। आपने केवल शोषितों का चित्रण ही नहीं किया अपितु यथार्थवाद के साथ अपने गीतों में व्यंग्यों की प्रधानता भी दर्शायी और आर्थिक विषमता का प्रतिपादन भी किया। उनके इन प्रगतिवादी गीतों के चित्रों में जीवन है, शक्ति है, प्रभावोत्पादकता है; जनसाधारण का संबल प्राप्त है, ध्येय मानवतावादी है, लक्ष्य स्वस्थ है। मधुर संगीत के साथ जीवन की आस्था व्यंजित करना इन मानवतावादी गीतों की विशेषता है।

मानव-प्रेम की भाँति राष्ट्र-प्रेम की अभिव्यंजना भी निराला जी के गीतों में कई रूपों में हुई है। एक ओर 'दिल्ली', 'यमुना के प्रति', 'खँडहर' आदि गीतों में भारत के स्वर्णिम अतीत की सुन्दर झाँकी है तो 'जागो फिर एक बार' में पुनर्जन्म-मरण एवं पुनरुत्थान की ओजस्विनी वाणी मुखरित हुई है। आपका अत्यन्त प्रसिद्ध एक उद्‌बोधन-गीत इस प्रकार है—

जागो फिर एक बार
उगे अरुणाचल में रवि
आई भारती रति रवि कंठ से
पल पल में परिवर्तित होते रहते प्रकृति पट, जागो।

आपके हृदय में देश के प्रति अपार ममत्व है जिसका स्पष्ट दिग्दर्शन 'भारती वंदना' में है

भारति जय विजय करे कनक शस्य कमल धरे,
लंका पदतल शतदल गर्जितोर्मि सागर जल,
धोता शुचि चरण जुगल स्तव कर बहु अर्थ भरे
मुकुट शुभ्र, हिम तुषार, प्राणप्रणव ओंकार
शतमुख शतरव ध्वनित दिशाएँ उदार।

आपके आशा के प्रतीकस्वरूप गीतों में पुरातन के स्थान पर नूतन की कामना है—

आँखों में नवजीवन का तू अंजन लगा पुनीत।
बिखर झर जाने दे प्राचीन।

इसी प्रकार जलद के प्रति, महाराज शिवाजी का पत्रादि रचनाओं में भी आपकी ओजपूर्ण देश-भक्ति अभिव्यंजित है।

आपने भाव-पक्ष की विविधता एवं सुन्दरता के अनुरूप ही कला-गीतों के कला-पक्ष में भी अभिनव प्रयोग किए। खड़ीबोली को संस्कृत की तत्सम कोमल-कान्त पदावली एवं पद-लालित्यमयी बँगला पदावली द्वारा सुसज्जित किया। लाक्षणिकता, चित्रोपमता, सांकेतिकता, गीतिमत्ता की चतुर्दिक साज-सज्जाओं ने निराला की भाषा-सुन्दरी को अभिनव रूप प्रदान कर दिया। शब्द-शिल्पी निराला का शब्द-चयन अत्यन्त व्यक्तित्व-पूर्ण है। शब्दों के प्रयोग में आप उदार व्यवहारिकतावादी हैं। आपने साहित्यिक खड़ीबोली में समास-योजना का प्रयोग भी किया है जिससे कहीं-कहीं अस्पष्टता आ गई है—

शत-सहस्र नक्षत्र-चन्द्र रवि
संस्तुत नयन-मनोरंजन।

इसके विपरीत आपने बोलचाल की मुहावरेदार भाषा का भी प्रयोग किया है। भाषा की शक्तियों में अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना, तीनों पर आपको समानाधिकार प्राप्त है। आपकी भाषा में नवीन शक्ति, नवीन अर्थवत्ता एवं नवीन व्यंजना है। आपने शब्दों के प्रयोगों में अर्थ-विवेक एवं ध्वनिबोध, दोनों का सामञ्जस्य किया है। आपकी शब्दावली में प्रवाह है, गति है।

आपने मात्रिक एवं मुक्त, दोनों छंदों का प्रयोग किया है। आपके मुक्त छंद के विषय में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के ये शब्द उल्लेखनीय हैं—निराला अन्तःपुर के समस्त वैभव और उसकी परतन्त्रता से मुक्त कर कविता देवी को खुली हवा में लाये.........परन्तु कविता कामिनी को

खुली हवा में ले आने के बाद नये युगोपयोगी परिधान भी उसे पहनाये गये। स्वयं मुक्त छंद में सुघरता ला दी।

छंदों के चरणों में स्वच्छन्द विषमता अपनाना आपकी सबसे बड़ी विशेषता है। लम्बा, छोटा, अनेक प्रकार का छन्द देख कर लोग उसे 'रबर छंद', केचुआ छंद आदि कहने लगे। परन्तु कुछ भी हो, आपके मुक्त छंद साहित्य में एक नवीन देन हैं जिनमें नवीन प्रयोग किये गये; सुकुमार प्रसाधन, सूक्ष्मकल्पना एवं आवश्यक आभरणों का प्रयोग किया गया। इन छन्दों की स्वच्छन्दता में निराला का निरालापन सर्वविदित है जिनमे सहज प्रवाह है—

जड़े नयनों में स्वप्न,
खोल बहुरंगी पंख विहग से,
सो गया सुरा-स्वर
प्रिया के मौन अधरों में
क्षुब्ध एक कम्पन सा निद्रित
सरोवर में।

आपकी अलंकार-योजना में परम्परागत रूढ़िवादिता का अभाव तथा नूतन सौंदर्य-चेतना का प्रादुर्भाव है। नवीन उपमानों का प्रयोग है। मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, प्रतीक-विधान आदि रूप आपकी भाषा के विशेष अलंकरण हैं। प्राचीन उपमानों का प्रयोग भी आपने वहीं किया है जहाँ वास्तविकता या प्रकृति-निरीक्षण की अनुकूलता है। 'विधवा' नामक कविता की प्रत्येक पंक्ति में सार्थक उपमानों की आलंकारिक योजना है—

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी,
वह दीप-शिखा सी शांत, भाव में लीन
वह क्रूर काल-तांडव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।

'जुही की कली' तथा 'सान्ध्य सुन्दरी' का मानवीकरण अपनी सानी नहीं रखता। विशेषण-विपर्यय का भी आपने सुन्दर प्रयोग कर भावाधिक्य की व्यंजना की है—

चल चरणों का व्याकुल पनघट,
कहाँ आज वह बृंदा धाम ?

'ध्वन्यर्थ-व्यंजना' आपके गीतों की सर्वप्रमुख अलंकृति है।

इन काव्यालंकारो से चित्रमय ध्वनि-व्यंजना एवं भाव-व्यंजना की अलौकिक सृष्टि हुई है।

प्रगीत पद्धति में 'नाद-सौन्दर्य' की ओर विशेष ध्यान होता है; इसीलिये उसमें संगीत का विशेष समावेश रहता है। प्रसिद्ध गीतकार निराला ने भी संगीत को काव्य के निकट लाने का सर्वाधिक प्रयास किया। सचेतन कला, नाद तथा लय लाने के प्रयास से गीति का पूर्ण विकास हुआ। निराला के संगीत में लय और गीत का सुन्दर सामंजस्य है। 'परिमल' में 'बादल राग' इसका स्पष्ट निदर्शन है—

झूम झूम मृदु गरज-गरज घनघोर।
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर।
भर झर झर निर्झर-गिरि-सर में।
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
मन में, विजन-गहन कानन में,
आनन-आनन में, रव-घोर-कठोर
राग-अमर। अम्बर में भर निज रोर।

इसमें कवि की प्रतिभा द्वारा चयन किये शब्दों द्वारा ही पदों का अर्थ शब्दों के नाद से ही प्रतिध्वनित हो जाता है। निराला की 'गीतिका' में पद-शैली का चरम विकास है।

विविध भावरश्मियों एवं कला-किरणों से समन्वित आपके कला-गीत अमर आकाश-दीप हैं जो समाज एवं साहित्य के पद को ही आलोकित नहीं करते, अपितु उनके रूप में निराला हमारे मध्य आज भी अमर हैं।

— —

महाकवि निराला का व्यंग्य-काव्य

हिंदी साहित्य में स्वच्छन्द तथा सजीव काव्यधारा का स्रोत प्रवाहित करने के कारण महाकवि निराला का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनका काव्य उनके मौलिक तथा असाधारण व्यक्तित्व का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। एक प्राणचेता कवि होने के नाते उन्होंने अपने काव्य के लिए सर्वथा नूतन उपादानों का संकलन किया है और उसे एक नितान्त मौलिक दिशा प्रदान की है। उनके द्वारा खड़ीबोली की काव्यधारा निश्चय ही महती समृद्धि की ओर उन्मुख हुई है। संगीत की मधुरता और लोहपुरुष की दृढ़ता, दोनों हमें उनकी कविता में मिलती हैं। प्रज्ञातत्व की रहस्यमय पुट उनके वेदान्त-चिंतन ने दी है। छायावाद की कल्पना में प्रज्ञातत्व की पुट देनेवाला कवि हिन्दी में 'निराला' ही सिद्ध हुआ है। संस्कृत की संस्कृति, हिन्दी की भाषा, बँगला का स्वर और अँग्रेजी की व्यंजना-शैली निराला की कविता में मूर्त्त हुई है। उनमें 'ज्ञान की गरिमा है, चिंतन की प्रौढ़ता है, कवि की भावुकता है, परन्तु साम्प्रदायिक कट्टरता नहीं' (ना० प्र० सभा का हीरक जयन्ती अंक)।

महाप्राण निराला की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। साहित्य का प्रत्येक अंग उनकी विलक्षण प्रतिभा से चमत्कृत हो गया था। कहानी, रेखाचित्र, उपन्यास, कविता आदि सभी क्षेत्रों में उनकी देन अतुलनीय है। क्या गद्य, क्या पद्य, निराला जी की शैली की रोचकता एवं नवीनता सर्वत्र दिखायी देती है और दोनों प्रकार की कृतियों में उनकी व्यंग्य शैली ने चार चाँद लगा दिये हैं। विषय-विवेचन करते-करते वे बीच-बीच में ऐसी चुटकी लेते हैं कि पाठक तिलमिला उठते हैं। निराला जी की जीवनगंगा भी वास्तव में विधि के विधान पर एक व्यंग्य था। महाप्राण निराला मूलतः अनुभूतिवादी कवि थे। ऐसे कवि को व्यक्तिगत तथा

सामाजिक परिस्थितियाँ अत्यन्त प्रभावित करती हैं। निराला जी की विनोद और व्यंग्यप्रधान सृष्टियाँ भाषा के नवीन और प्रचलित रूप का दर्शन कराती हैं। उन्होंने गद्य में व्यंग्य का समुचित, शिष्ट एवं हृदयभेदी प्रयोग किया था। 'चतुरी चमार', 'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुल्लीभाट' के व्यंग्य से जैसे साहित्य में व्यंग्य-प्रयोग का एक आदर्श ही स्थापित हो गया है। कविता में भी वैसे ही व्यंग्य का प्रयोग करके निराला जी ने लोगों के उस विचार को भ्रमपूर्ण सिद्ध कर दिया कि गद्य ही व्यंग्य का क्षेत्र है—पद्य नहीं।

व्यंग्य को प्रतिक्रियात्मक मानना भ्रम है। इतना माना जा सकता है कि प्रयोक्ता की थोड़ी सी भी असावधानी से वह विषवमनकारी हो सकता है। परन्तु शिष्ट व्यंग्य औचित्य की सीमा का उल्लंघन नहीं करता; हाँ, अपना प्रभाव पैदा करने के लिए कभी-कभी अवसरानुसार उसे निष्ठुर, प्रचण्ड और तीक्ष्ण होना पड़ता है। व्यंग्यलेखक तत्कालीन वस्तुस्थिति को स्वीकार करके उस पर वाचिक प्रहार करता है। हास्य लेखक की भाँति उसका सम्बन्ध पाठक की स्थायी एवं आधारभूत मनोवृत्तियों से नहीं होता। वह तो अपनी दृष्टि से जो कुछ अनुचित है, उसका उपहास करता है, खिल्ली उड़ाता है। जिस वस्तु, प्रवृत्ति या व्यक्ति पर व्यंग्य किया जाता है उसे पाठक की दृष्टि में हेय दिखलाना और यदि सुसाध्य हो तो उसे क्षति पहुँचाना, व्यंग्य-लेखक का दृष्टिकोण होता है। हास्य तथा व्यंग्य में मूलभूत अन्तर यही है कि प्रथम में लेखक का उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन होता है और उसकी दृष्टि सहानुभूतिमूलक होती है—लेखक हास्य के द्वारा पाठक का मन निर्विकार उल्लास से भर देता है और मानवसुलभ कमजोरियों को विलक्षण ढंग से सामने लाकर चमत्कृत करता है। परन्तु व्यंग्यकार का प्रहार खटाका बनकर सुनाई देता है। लक्ष्य की प्राप्ति न होने तक उसे चैन कहाँ? यही कारण है कि कुछ लोग व्यंग्य को, पद्य के नहीं, गद्य के अनुकूल मानते हैं। परन्तु निराला जी जैसे समर्थ कवियों के हाथ में पड़कर अपनी, मार्मिकता और कलात्मकता के कारण वह कभी-कभी पद्य में भी स्थायित्व धारण कर लेता है।

उच्च श्रेणी के व्यंग्यकर्त्ताओं का उद्देश्य मानवता का सुधार करना होता है। जनता के आध्यात्मिक पतन में जीवनारोपण करने में असमर्थ होने पर भी वह पतन के कारणों को अवश्य नष्ट करने का प्रयत्न करता है। इसीलिए उनका स्थान प्रचारक एवं वाक्चतुर के मध्य का होता है

प्रचारक के समान उसका ध्येय होता है और वाग्विदग्ध व्यक्ति की भाँति वह अपने साधनों का प्रयोग करता है। व्यंग्य-लेखक में प्यार और घृणा, दोनों होनी चाहिए; क्योंकि जो वस्तु उसे प्रेरित करती है उसमें असत्य एवं अन्याय के प्रति घृणा से अधिक सत्य एवं न्याय के प्रति प्रेम होता है❀।

व्यंग्यकर्ता संत का भी कार्य करता है। वह दुर्गुणों को स्पष्ट करता है। सत्य को चिंतनशील बनाने के लिए वह स्मित को भी स्थान देता है। उसके अन्दर विरक्त की चेतना भी होती है। अतः वह व्यंजित वस्तुओं के प्रति सहानुभूति का भाव भी रखता है। उसका व्यंग्य व्यक्तिगत नहीं, समूहगत होता है। उसकी कविता विश्वास से अधिक सामाजिक और साहित्यिक चेतावनी होती है। व्यंग्य-काव्य का सम्बन्ध हृदय से कम, दिमाग से अधिक होता है। उसका अनिवार्य ध्येय उन सारी सहानुभूतियों को समाप्त कर देने का होता है जो पाठक के हृदय में कृति-विशेष को पढ़ने से उत्पन्न होती हैं। इसीलिए व्यक्ति की अज्ञानता तथा मूर्खता दिखलाना व्यंग्यकर्ता के शिल्प का अनिवार्य अंग है।

निराला जी व्यंग्य के सम्राट थे। व्यावहारिक क्षेत्र में वे जिस प्रकार तीव्रतर हो चुके थे, रचनाओं में भी उसी प्रकार उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली ग्रहण की। राजनैतिक नेताओं से बातचीत में और साहित्य-सम्मेलनों में जैसी व्यंग्यात्मक उक्तियों का वे प्रयोग करते थे, उनसे उनका स्वरूप पहचाना जा सकता है। 'कुल्लीभाट' हास्यरस की जीवनी ही नहीं, प्रत्युत यह एक चुभता हुआ सामाजिक व्यंग्य है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' व्यंग्यात्मक हास्य का स्केच है और 'कुकुरमुत्ता' व्यंग्यात्मक काव्य होते हुए भी एक नवीन प्रयोग है। निराला जी के काव्य में व्यंग्य के साथ-साथ परिहास, उपहास, विनोद के रूप भी मिलते हैं; परन्तु वाग्विदग्धता में वे विचित्रता के सर्जक हैं। उनके व्यंग्य-काव्य ने साहित्य में आलोचकों का कार्य किया है।

❀The satirist holds a place halfway between the preacher and wit. He has the purpose of the first and uses the weapons of the second. He must love and hate. For what impels him to write is not less the hatred of wrong and injustice than a love of the right and just

Notes on English Verses Sat re, Humbert wolfe

व्यंग्य के सभी शिष्ट तथा संस्कृत रूप निराला जी के काव्य में मिलते हैं। अपनी प्रारंभिक रचनाओं से लेकर अन्तिम रचनाओं तक यथास्थान निराला जी ने व्यंग्य का प्रयोग किया है। परिमल, अनामिका, अणिमा, बेला, तुलसीदास, अपरा और कुकुरमुत्ता के व्यंग्य वास्तव में उनकी व्यंग्य-कविता के प्रगति-चिन्ह हैं। जहाँ कहीं उन्हें व्यंग्य करने का मौका मिला, वे चूके नहीं; यहाँ तक कि 'सरोज-स्मृति' जैसी शोक-कृति में भी उन्होंने सामाजिक ढोंग एवं पाखण्डप्रिय धर्माधिकारियों का भंडा-फोड़ किया है। व्यंग्य लिखना है, इसलिए किसी रचना में व्यंग्य ठूँसना उनका ध्येय नहीं रहा। व्यावहारिक जीवन में जिस प्रकार मौका पड़ने पर ही व्यंग्य का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार निराला जी नें स्वाभाविक व्यंग्य-वर्णन अपनी कृतियों में करके उसकी अस्वाभाविकता के दोष को दूर रखा है।

'अनामिका' उनकी कविताओं का पहला संग्रह है जिसमें जहाँ-तहाँ व्यंग्य का प्रयोग मिलता है। 'मित्र के प्रति' शीर्षक कविता में उनका यह व्यंग्य, द्रष्टव्य है—

वही जो सुवास मन्द,
मधुर - भार - भरण छन्द।
मिली नहीं तुम्हें, बन्द
रहे, बन्धु, द्वार ?

'दान' शीर्षक कविता में निराला जी ने मानव के उस ढोंगी धर्म का चित्रण किया है जहाँ बन्दरों को तो पुए खिलाये जाते हैं स्वार्थ के कारण, किंतु पथ के कृष्णकाय कङ्कालशेष मृत्युप्राय नर की तरफ दाता आँख उठाकर भी नहीं देखता। समाज की यह कैसी असंगति है—

ढोता जो वह, कौन-सा शाप ? भोगता कठिन कौन-सा पाप ?

श्रीमन्नारायण जपनेवालों, शिव पर बारहों मास पानी की धारा चलानेवालों को कवि का यह व्यंग्य तिलमिला देनेवाला है—

झोली से पुए निकाल लिये,
बढ़ते कपियों के हाथ दिये;
देखा भी नहीं उधर फिर कर,
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,
चिल्लाया किया दूर मानव,
बोला मैं धन्य, श्रेष्ठ मानव

'खण्डहर के प्रति' कविता में कवि आधुनिक सन्तानों के प्रति उपेक्षा का दर्शन कराता है—

बाट जोहते हो तुम मृत्यु की,
अपनी सन्तानों से बूँद भर पानी को तरसते हुए ?

'तोड़ती पत्थर' में सामाजिक असमानता का वर्णन कवि—

गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार-बार प्रहार,
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार ।

कहकर करता है ।

'वन वेला' में कवि ने सामाजिक और राजनीतिक ढोंग की के नाम पर खिल्ली उड़ाई है । बताया है कि सर्व गुण कंचन लेने का युग अभी इस स्वतन्त्रता की पुकार करनेवाले युग में है तीखा, परन्तु कितना सच्चा व्यंग्य है—

फिर लगा सोचने यथा सूत्र, मैं भी होता यदि राजपुत्र-
मैं क्यों सदा कलंक ढोता—
ये होते जितने विद्याधर मेरे अनुचर,
मेरे प्रसाद के लिए विनत-शर उद्दत-कर ;
मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर,
सम्मिलित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
जीवन चरित्र
लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र ।
इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
होता मैं, शिक्षा पाता अरब-समुद्र-पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पण्डित
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल-चित्त
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार,

राष्ट्रीयता का विकास क्या किराये के टट्टुओं के गर्दभ-म से हो सकता है—

पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर,
कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ - मर्दन स्वर ।

और ऐसे ही लोगों का सम्मान जब साहित्यिक सभा

फिर ही मालिक है

हिन्दी सम्मेलन भी न कभी पीछे पग
रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो न डगमग ।

'हिन्दी के सुमनों के प्रति' नामक कविता में वे सामाजिक
ग्य कसते हैं—

मैं ही वसंत का अग्रदूत
ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत ।

'सरोज-स्मृति' वास्तव में शोकगीत है ; परन्तु कान्य-कुब्
वयं कान्यकुब्ज होते हुए भी) वे नहीं छोड़ते—

ये कान्यकुब्ज कुल कुलाङ्गार ;
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके वर कन्या, अर्थ खेद ।

'परिमल' में 'महाराज शिवाजी का पत्र' नामक कविता
सरे अधीन गुलाम राजाओं पर कड़ा व्यंग्य किया गया है—

कारण संसार के विश्व रूप, तुम पर प्रसन्न हों
हृदय की आँखें दीं, देखो तुम न्याय-मार्ग ।
सिंह भी क्या स्वाँग कभी करता है स्यार का ।

चुनौती के रूप में उनका व्यंग्य प्रायः और भी निखर आत

हो घायल मरेंगें सिंह,
जङ्गल में गीदड़ ही गीदड़ रह जायँगे ।

जयसिंह के अन्दर आत्मग्लानि जगाने के लिए कवि
चुटकी ली है—

मढ़ गये ऐसे तुम तुर्कों में,
करते अभिमान भी किन पर
विदेशियों पर, विधर्मियों पर ।
काफिर तो कहते न होंगे कभी तुम्हें वे ?
विजित भी न होगे औ' गुलाम भी नहीं ?
कैसा परिणाम यह सेवा का ?
लोभ भी न होगा तुम्हें मेवा का महाराज ?

'अणिमा' में, 'यह है बाजार, सौदा करते हैं सब
में उनका सामाजिक व्यंग्य निखरा है जब वे
ली, क्या जानें ब्याही का प्यार' और फिर उन पुरु

(कम से कम अपने आप में) डर इस बात का है कि व
धरोहर कोई दूसरा न उठा ले, चोर के घर डाका न पढ़ जाय
दूसरा तो सिह से हूँ स्यार'।

पेटुओं के बारे में निम्नलिखित व्यंग्य कितना सुन्दर है—

एक-दूसरे ने कहा—

रसगुल्ले आ रहे हैं, अभी कहाँ जाते हैं,
कटु हुई है चिह्वा, मीठी कर लीजिये।

और अन्तिम कविता तो मानो दुनियादारी पर एक बड़
व्यंग्य है जो हमें महाकवि तुलसीदास जी की उक्ति 'सुर नर मुनि
यह रीती। स्वारथ लागि करें सब प्रीती' की याद दिला रहा है—

चूँकि यहाँ दाना है,
इसीलिए दीन है, दीवाना है।
लोग हैं, महफिल है,
नज्मे हैं, साज है, दिलदार है और दिल है,
शम्मा है, परवाना है,
चूँकि यहाँ दाना है।..............
............दोनों आँखोंवाला है, काना है,
चूँकि यहाँ दाना है।
अम्मा है, बप्पा है,
झापड़ है और गोलगप्पा है,
नौजवान मामा है और बुड्ढा नाना है,
चूँकि यहाँ दाना है।

इसी प्रकार 'बेला' में भी कहीं-कहीं व्यंग्य के दर्शन होते हैं

............बाबा बैठे झारे बहारे।
............यात्री जाते हैं श्राद्ध करते हैं,
बाबा साधक हैं और कढ़े भी हैं
खारुए की पोथियाँ पढ़े भी हैं
आँखों में तेज है, छाया है।

'अपरा' में बहुत-कुछ ऐसी ही कविताओं का संग्रह है।
में समाज की इस असमानता को कवि ने दिखलाया है—

............चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए

'तुलसीदास' 'लघु महाकाव्य के अन्दर—

भारत के उर के राजपूत
उड़ गये आज वे देवदूत,
जो रहे शेष नृप, वेश सूत बन्दी जन।

कह कर तत्कालीन राजपूतों की रजपूती की खिल्ली उड़ाई गयी है।

उपरोक्त कविताओं में कुछ जगह मिश्रित व्यंग्य और कहीं-कहीं व्यंग्य की झलक मात्र देखने को मिलती है। शुद्ध व्यंग्य-काव्य तो 'कुकुरमुत्ता' ही में मिलता है। कुकुरमुत्ता व्यंग्य का बड़ा ही प्रौढ़ प्रयोग है। इसकी भूमिका में निराला जी ने 'एक बात' में कहा है—'युग के अनुरूप इसकी रूपरेखा है..........वे कविता के एक आधुनिक अङ्ग की भाषा की लीक पकड़ सकेंगे।

'मास्को डायलाग्ज' में साम्यवादियों की संस्कारहीनता पर व्यंग्य है। कवि का संकेत है कि साम्यवादी देश में क्रान्ति करना चाहते हैं, मगर भाषा की अज्ञानता की तरफ नहीं देखते। 'ऐ बापू, यदि मुर्गी तुम खाते' में कवि ने महात्मा गाँधी जी को अधिक उदार दृष्टि अपनाने का संकेत किया है और उनसे अनुरोध किया है कि अपनी दृष्टि में जरा परिवर्तन करें। 'रानी और कानी' यथार्थवादी रचना के अन्दर मनोवैज्ञानिक सूत्रों की पकड़ करनेवाला व्यंग्य-काव्य है। माँ अपनी बेटी को चाहे वह कितनी ही कुरूप क्यों न हो, रानी से किसी प्रकार कम नहीं समझती। हालाँकि उसका रूप यह है—

लेकिन था उलटा रूप
चेचक मुँह दाग, काली नाक, चिपटी
गंजा सर, एक आँख कानी।

इस प्रकार की सर्वांग—सुन्दरी की शादी कैसे हो? पड़ौसी भी व्यंग्य करते हैं और शादी न होने पर कानी को भी अपनी दशा पर दुःख होता है............।

लेकिन वह बाईं आँख कानी............
ज्यों की त्यों रह गई करती निगरानी।

बायीं आँख उसके दुख पर और आँसू न बहा सकी; जो यथार्थ है, वह यथार्थ है; उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता।

'कुकुरमुत्ता' का स्थान व्यंग्य कविताओं में अमर रहेगा।

टी० एस० इलियट की तरह भाषा में यह एक प्रयोग है। अन्योक्ति की शैली में कवि पूँजीपतियों और साम्यवादियों, दोनों पर बड़ा, करारा व्यंग्य करता है—

अबे, सुन बे, गुलाब।
भूल मत जो पाई, खुशबू, रङ्गोआब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट।
डाल पर इतरा रहा है कैपिटेलिस्ट ॥

जब बादशाह कहता है कि कुकुरमुत्ता पैदा करो, लगाओ तो कुकुरमुत्ता का यह उत्तर (माली द्वारा) वास्तव में कम्यूनिस्ट विचारधारा की असांस्कृतिता के ऊपर एक व्यंग्य है—

माली ने कहा, मुआफ करें खता,
कुकुरमुत्ता उगाया नहीं उगता।

इस तरह कुकुरमुत्ता हिन्दी में व्यंग्य-काव्य के चरमोत्कर्ष का सूचक है। इसका व्यंग्य बड़ा गहरा और अनेकमुखी है। गुलाब आधुनिक कृत्रिमतापूर्ण पूँजीवादी सभ्यता का प्रतीक होने के कारण उपहास्य है, तो साम्यवादियों की सभ्यता और संस्कृति का उपयुक्त प्रतीक कुकुरमुत्ता है। कम्यूनिस्टों ने पहले कुकुरमुत्ता की बड़ी प्रशंसा की थी किन्तु उनकी समझ में जब इसका असली अर्थ आया तो अपने किये पर मन ही मन पछताकर मौन हो गये।

'खजोहरा' नामक कविता रवीन्द्रनाथ की 'विजयिनी' की अनुकृति काव्य (parody) है।

इस प्रकार भाव, भाषा, अर्थ एवं प्रयोग की दृष्टि से निराला जी का व्यंग्य - काव्य अत्यन्त ही सफल एवं प्रशंसनीय है। भाषा-भावों के अनुसार ढलती चली गई है। संक्षेप में, निराला जी एक महान् व्यंग्यकार थे।

महाकवि निराला की काव्य-भाषा

साहित्यकार या कवि की अर्थमयी भावमग्न चेतना जब उद्बुद्ध होकर मानस से बाहर प्रकट होना चाहती है तब वह शब्दों में नहीं, अपितु वाक्यों में ही अपने स्वरूप को उपस्थित करती है। अर्थ की यह सरस एवं चमत्कारमयी अभिव्यक्ति ही 'साहित्य' कहाती है। अर्थ और वाक्य का यह मेल ही तो 'साहित्य' नाम से विख्यात हुआ है। अर्थमयी चेतना का वैखरी रूप ही तो 'भाषा' है। कवि की यह चेतना जब रसमयी बन जाती है तो उसकी अभिव्यक्ति केवल 'भाषा' ही नहीं, अपितु 'काव्य-भाषा' कहाती है। इसीलिए सामान्य साहित्य-भाषा से काव्य-भाषा सदा अधिक सरस तथा प्रभावशालिनी होती है। उसके प्रभाव का मूल कारण उसका अपना सौन्दर्य तथा रमणीयता है। काव्य-भाषा की रमणीयता वाक्यांशों तथा वाक्यों में आये हुए शब्दों की शक्तियों पर ही विशेषरूपेण निर्भर करती है। आचार्यों ने उन्हें अभिधा, लक्षणा, व्यंजना तथा तात्पर्य नाम से अभिव्यक्त किया है।

वाक्य से पद और पद से शब्द का स्वरूप समझा जा सकता है। एक प्रकार से शब्द ही 'वाणी' का पर्याय है। हमारे शास्त्रों में जो उपमान वाणी को प्राप्त हुए हैं उनमें से 'कामधेनु' और 'जलदांगना' नाम बड़े सार्थक हैं। शब्द-धेनु आदि मानव-समाज से आज तक निरन्तर दुही जा रही है, किंतु उसके दुग्ध में लेश-मात्र भी कमी नहीं आयी। काव्य-भाषा में तो यह जलदांगना अनेक रूपाकार रखकर विभिन्न ऊँचाई के भाव-प्रदेशों में अर्थ की वर्षा किया करती है। वाणी की इस वर्षा में स्नान करके विज्ञ सहृदय पाठक को आनंद ही नहीं अपितु प्राप्त होता है।

महाकवि भवभूति ने वाणी का विशेषण 'अमृता'※ लिखकर उपर्युक्त कथन का ही समर्थन किया था।

एकबार अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछा कि जलों में जल कौन सा श्रेष्ठ है? तो बीरबल ने बताया कि जमना-जल। इस पर बादशाह अकबर ने झुँझलाते हुए कहा—'बीरबल! दुनिया तो श्रेष्ठता तथा पवित्रता की दृष्टि से जलों में जल 'गंगा-जल' बताती है और तुम जमना-जल को सर्वोत्तम बता रहे हो।' बीरबल ने फिर भी अपनी ही बात को दुहराते हुए निवेदन किया—'बादशाह सलामत! जलों में जल तो जमना-जल ही है। गंगा-जल 'जल' नहीं है, वह तो 'अमृत' है। जलों में उसकी गिनती करना अपने ऊपर पाप चढ़ाना है।' इसी दृष्टि-बिंदु से यह कहा जा सकता है कि काव्येतर विधाओं की भाषाएँ यदि जल हैं तो काव्य-भाषा 'अमृत' है।

वैसे तो पद-संयोजना से भाषा को कोमल, मधुर अथवा कठोर बनाया जा सकता है; किन्तु कुछ भाषाएँ अपनी प्रकृति के अनुसार स्वयं भी कोमल या कठोर हुआ करती हैं। अलीगढ़ जनपद की बोली कोमल है तो मेरठ जनपद की कठोर। ठीक उसी प्रकार कोई कवि यदि वैदर्भी रीति या माधुर्य गुण का प्रेमी है तो दूसरा गौड़ी रीति और ओज गुण का; और तीसरा पांचाली रीति और प्रसाद गुण का। ऐसा भी होता है कि वस्तु-सामग्री अर्थात् वर्ण्य विषय के अनुसार कवि की भाषाभिव्यक्ति विभिन्न रूपिणी बन जाती है; किन्तु फिर भी गीतकार कवि के गीतों में सर्वांगीण दृष्टि से एक विशेष स्वर भी सुनाई पड़ा करता है। यदि हम महाप्राण श्री निराला जी के काव्य-ग्रंथों—परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका (नवीन), कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अपरा और अर्चना—का भाषा-रचना की दृष्टि से अध्ययन करें तो विदित होगा कि उनमें शब्द-संयोजना आवश्यकतानुसार कोमल, सरस और कठोर है। फिर भी हमारे इस कवि का अपना एक विशिष्ट स्वर है जिसकी शैली में ओज का प्राधान्य स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। इस महाप्राण कवि के शब्द-विन्यास को गौड़ी रीति के माध्यम से अभिव्यक्त होना ही अधिक प्रिय है।

अर्थ से पृथक् शब्द में अपनी निजी एक कोमलता, मधुरता अथवा कठोरता हुआ करती है जिसका मूलाधार उस शब्द का वर्णविन्यास हुआ करता है। 'रवि' और 'मार्तण्ड' शब्द अर्थ में समान होते हुए भी श्रोता

※ 'वन्दमहि च ता वाणीं अमृता आत्मन कलाम्' भवभूति

के मानस-पटल पर अपना प्रभाव पृथक-पृथक् प्रकट करते हैं। 'रवि' माधुर्य को प्रकट करता है तो 'मार्तण्ड' ओज से परिपूर्ण है। 'मार्तण्ड' का व्यंजन-संयोग और टवर्गीय वर्ण का पुट अर्थ से पृथक एक निराली ध्वन्यात्मक प्राणता तथा उग्रता प्रस्तुत कर रहा है। वर्णों और उनसे निर्मित शब्दों की ऐसी ध्वन्यात्मक प्राणता की प्रकृति का अध्ययन करने के उपरान्त ही तो काव्य-प्रकाशकार आचार्य मम्मट ने यह घोषित किया था कि जब काव्य में पद-विन्यास के समय प्रत्येक वर्ग के प्रथम वर्ण के साथ द्वितीय वर्ण का संयोग हो अथवा अन्य वर्णों के साथ 'र' का संयोग हो अथवा टवर्गीय वर्ण और श, ष द्वित्व के साथ आवें और उनकी लम्बी-लम्बी समासान्त पदावली भी हो तो वह रचना ओज गुणपूर्ण कहाती है।* टवर्गीय वर्णों के शब्दों में पौरुष और ओज रहता है। तभी तो 'वेणु' शब्द पुल्लिंग और उसका पर्यायवाची 'बाँसुरी' शब्द स्त्रीलिंग है।

वर्णों की ध्वनि के आधार पर हम यदि गहरी और पैनी निगाह से देखें तो पर्यायवाची दो शब्द भी अपना अलग-अलग अर्थ रखते हैं। शब्दार्थ-मर्मी कुशल कवियों के लिए 'पानी' और 'जल', 'लड़ाई' और 'युद्ध', 'शंकर' और 'रुद्र' तथा 'निर्मल' और 'स्वच्छ' का एक अर्थ नहीं है। इसीलिए वेदार्थ-मर्मी यास्क मुनि ने कहा है कि शब्द में से अर्थ इस प्रकार झलक देता है जिस प्रकार बारीक तथा झीने वस्त्र में से शरीर की कान्ति दृष्टिगोचर हुआ करती है। मुनीश्वर यास्क के लिए अर्थ देवता है और भागवतकार के लिए अर्थ अव्यक्त ओंकार है। उसका वैखरी रूप ही व्यक्त-शब्द ब्रह्म है*१ किस शब्द में वर्णविन्यासोद्भूत ओज और किसमें माधुर्य है, इसे महाकवि निराला की लेखनी पूर्णरूपेण परख लेती है। वह समुचित तथा समुपयुक्त शब्दों में अर्थ को अभिव्यक्त करना जानती है। नर और नारी अथवा पुरुष और प्रकृति के रूप और सम्बन्ध को उपस्थित करनेवाले चित्र कवि ने 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में जिस शब्दार्थ-कौशल के साथ चित्रित किये हैं, वे संपूर्ण हिन्दी-साहित्य में अप्रतिम हैं। नर का ओज एवं पौरुष और नारी की सरसता एवं कोमलता जिन प्रतीकों

---

* "योग आद्य तृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यगुम्फ उद्धत ओजसि॥"

—मम्मट, काव्यप्रकाश, सूत्र १०० ।

*१. "शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः"

—श्रीमद्भागवत ३-१२ ४८ ।

एवं उपमानों से व्यक्त की जा सकती है, उनके समुपयुक्त शब्दों को कवि ने चुन-चुनकर प्रयुक्त किया है। ओज और म साथ आनन्द यदि सच्चे शब्द-कौशल में कहीं प्राप्त किया जा स निराला जी की इन निम्नांकित कुछ पंक्तियों में—

तुम तुङ्ग हिमालय श्रृंग,
और मैं चंचलगति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास,
और मैं कान्त-कामिनी कविता।
× × ×
तुम रण ताण्डव उन्माद नृत्य,
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि।
तुम नाद वेद ओङ्कार सार,
मैं कवि श्रृंगार शिरोमणि।

शुद्ध गौड़ी रीति, परुषा वृत्ति और ओज गुण की पदावल प्राणता यदि कोई देखना चाहता है तो उसे महाप्राण निराला की शक्ति-पूजा' शीर्षक कविता को अवश्य पढ़ना चाहिए। पाठक को विदित हो जायगा कि निराला जी के नाम के पहले विशेषण क्यों जोड़ा जाता है—

राघव-लाघव—रावण वारण—गत युग्म प्रहर,
उद्धत लंकापति - मर्द्दित-कपिदल - बल-विस्तर,
अनिमेष राम विश्वजिद् दिव्य शरभङ्ग-भाव,—
विद्धाङ्ग बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर रुधिर-स्राव,
रावण - प्रहार - दुर्वार विकल वानर - दल-बल—
मूर्च्छित-सुग्रीवाङ्गद - भीषण - गवाक्ष-गय-नल—
वारित-सौमित्र - भल्लपति - अगणित-मल्ल-रोध,
गर्जित-प्रलयाब्धि - क्षुब्ध हनुमत् - केवल-प्रबोध,
उद्गीरित-वह्नि-भीम - पर्वत-कपि-चतुः प्रहर—
जानकी-भीरु - उर आशाभर - रावण - संवर।

'तुलसीदास' नामक खण्ड - काव्य में कविवर निराला तथा कोमला वृत्तियों का गंगा-जमुनी सम्मेलन प्रदर्शित कि स्वभाव के अनुसार उसमें भी कवि परुषा वृत्ति की ओर ही हुआ मालूम पड़ता है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही निराला जी अप चेतना को इन शब्दों में प्रकट करते हैं

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य,
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मण्डल।

संयुक्त व्यंजन एवं दीर्घ समासों की पदावली वीर, भयानक और रौद्र रसों का स्वरूप उपस्थित करने में सफल सिद्ध होती है, शृंगार और करुण रस के लिए समासरहित सरल पदावली ही उत्तम ठहरती है। इसे निराला जी के अंतस् का कवि अच्छी तरह जानता है। इसीलिए 'अनामिका' और 'गीतिका' नामक काव्य-पुस्तकों की अनेक कविताएँ आपको ऐसी मिलेंगी जिनकी भाषा पांचाली रीति अर्थात् कोमला वृत्ति से परिपूर्ण है। सारांश यह है कि उनकी पद-रचना असमस्त, सरल और प्रसाद गुणयुक्त पायी जाती है। 'प्रिया से' शीर्षक कविता के पद-विन्यास का सारल्य देखिए—

मेरे इस जीवन की है—
तू सरस साधना कविता।
मेरे तरु की है तू—
कुसुमित प्रिये कल्पना-लतिका।।
—'अनामिका' से

पत्थर तोड़ती हुई एक मजदूरनी का करुण चित्र कवि ने वैसी ही सरल शब्दावली में चित्रित किया है—

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
—(अनामिका से)

'गीतिका' की निम्नांकित चार पंक्तियाँ भी समासहीन सरल पद-रचना में अभिव्यक्त हैं क्योंकि इनका रस शृंगार है—

सोचता उन नयनों का प्यार।
अचानक भरा सकल भण्डार।।
आज और ही और संसार।
और ही मुक्त मंजु पावन!

कवि की उद्बुद्ध चेतना का चित्र जब शब्दरूपा कला के माध्यम से कविता का रूप धारण करता है, तब ऐसे विलक्षण क्षण भी आते हैं कि वाच्यार्थधारिणी अभिधा-शक्ति हार मानकर बैठ जाती है, उस समय कुशल कवि के मानस की प्रतिमा का वेगवान् बल पाकर शब्द वाच्य के

एवं उपमानों से व्यक्त की जा सकती है, उनके समुपयुक्त शब्दों को कवि ने चुन-चुनकर प्रयुक्त किया है। ओज और माध साथ आनन्द यदि सच्चे शब्द-कौशल में कहीं प्राप्त किया जा स निराला जी की इन निम्नांकित कुछ पंक्तियों में—

तुम तुङ्ग हिमालय शृंग,
और मैं चंचलगति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास,
और मैं कान्त-कामिनी कविता।
× × ×
तुम रण ताण्डव उन्माद नृत्य,
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि।
तुम नाद वेद ओङ्कार सार,
मैं कवि शृंगार शिरोमणि।

शुद्ध गौडी रीति, परुषा वृत्ति और ओज गुण की पदावली प्राणता यदि कोई देखना चाहता है तो उसे महाप्राण निराला जी की शक्ति-पूजा' शीर्षक कविता को अवश्य पढ़ना चाहिए। उ पाठक को विदित हो जायगा कि निराला जी के नाम के पहले विशेषण क्यों जोड़ा जाता है—

राघव-लाघव—रावण वारण—गत युग्म प्रहर,
उद्धत लंकापति - मर्द्दित-कपिदल - बल-विस्तर,
अनिमेष राम विश्वजिद् दिव्य शरभङ्ग-भाव,—
विद्धाङ्ग बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर रुधिर-स्राव,
रावण - प्रहार - दुर्वार विकल वानर - दल-बल—
मूर्च्छित-सुग्रीवाङ्गद - भीषण - गवाक्ष-गय-नल—
वारित-सौमित्र - भल्लपति - अगणित-मल्ल-रोध,
गर्जित-प्रलयाब्धि - क्षुब्ध हनुमत् - केवल-प्रबोध,
उद्गीरित-वह्नि-भीम - पर्वत-कपि-चतुः प्रहर—
जानकी-भीरु - उर आशाभर - रावण - संवर।

'तुलसीदास' नामक खण्ड - काव्य में कविवर निराला ज तथा कोमला वृत्तियों का गंगा-जमुनी सम्मेलन प्रदर्शित किया स्वभाव के अनुसार उसमें भी कवि परुषा वृत्ति की ओर ही अ हुआ मालूम पड़ता है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही निराला जी अपन चेतना को इन शब्दों में प्रकट करते हैं

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य,
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मण्डल।

संयुक्त व्यंजन एवं दीर्घ समासों की पदावली वीर, भयानक और रौद्र रसों का स्वरूप उपस्थित करने में सफल सिद्ध होती है, शृंगार और करुण रस के लिए समासरहित सरल पदावली ही उत्तम ठहरती है। इसे निराला जी के अंतस् का कवि अच्छी तरह जानता है। इसीलिए 'अनामिका' और 'गीतिका' नामक काव्य-पुस्तकों की अनेक कविताएँ आपको ऐसी मिलेंगी जिनकी भाषा पांचाली रीति अर्थात् कोमला वृत्ति से परिपूर्ण है। सारांश यह है कि उनकी पद-रचना असमस्त, सरल और प्रसाद गुणयुक्त पायी जाती है। 'प्रिया से' शीर्षक कविता के पद-विन्यास का सारल्य देखिए—

मेरे इस जीवन की है—
तू सरस साधना कविता।
मेरे तरु की है तू—
कुसुमित प्रिये कल्पना-लतिका।।

—'अनामिका' से

पत्थर तोड़ती हुई एक मजदूरनी का करुण चित्र कवि ने वैसी ही सरल शब्दावली में चित्रित किया है—

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।

—(अनामिका से)

'गीतिका' की निम्नांकित चार पंक्तियाँ भी समासहीन सरल पद-रचना में अभिव्यक्त हैं क्योंकि इनका रस शृंगार है—

सोचता उन नयनों का प्यार।
अचानक भरा सकल भण्डार।।
आज और ही और संसार।
और ही सुकृत मंजु पावन!

कवि की उद्बुद्ध चेतना का चित्र जब शब्दरूपा कला के माध्यम से कविता का रूप धारण करता है, तब ऐसे विलक्षण क्षण भी आते हैं कि वाच्यार्थधारिणी अभिधा-शक्ति हार मानकर बैठ जाती है; उस समय कुशल कवि के मानस की प्रतिभा का वेगवान् बल पाकर शब्द वाच्य की

भाँति ऊपर को उठता है और फिर जलद की भाँति भारी होकर ऐसी अर्थ-वर्षा करता है कि उसके उपरान्त कवि-चेतना के चित्र इन्द्र-धनुष की तरह स्वतः ही मधुर रूप में दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ऐसे मधुर चित्र लक्षणाशक्ति चित्रित किया करती है। काव्यशास्त्र के बीसियों अलंकारों की जननी यही लक्षणा-शक्ति है। लक्षणा ही तो नेत्रों को कमल, मीन, खंजन, मृग आदि कहती है। काव्य-रचना के मार्ग में जहाँ लक्षणा थक कर बैठ जाती है, वहाँ व्यंजना-शक्ति के सहारे ही कवि की कला प्रकट होती है। वास्तव में भाषा का अर्थ-जगत् उसका लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ ही है। कवि-मानस का सीमातीत सूक्ष्म अर्थ व्यंजना (ध्वनि) के ही साथ आता है। इसीलिए प्रतिभाशील कुशल कवि अपने भावों को व्यंजना के माध्यम से विस्तृत बनाया करते हैं और शब्द की गागर में अर्थ का सागर भरा करते हैं। कवि की सन्ध्या-सुन्दरी अम्बर-पथ से किस प्रकार चली है, उसकी रूप-सज्जा और कवि के शब्दों का व्यंजना-व्यापार निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

अलसता-की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली।
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।

उक्त पंक्तियों में शब्द अपने अभिप्राय की प्रधानता का परित्याग करके कुछ विशेष अर्थों को व्यक्त कर रहे हैं। इसीलिए यह शब्द-योजना ध्वनि-काव्य कहलाने की अधिकारिणी है। सन्ध्या की सखी नीरवता (शान्ति) है। मैत्री एक-सी प्रकृतिवालों में ही हुआ करती है; अतः इससे ध्वनित है कि सन्ध्या स्वभाव से शान्त प्रकृतिवाली है। सखियाँ प्रायः कुमारियों की ही होती हैं, विवाहिता नारियों को सखियों की उतनी आवश्यकता नहीं होती। अतः सखी का साथ में होना यह व्यंजित करता है कि सन्ध्या-सुन्दरी अभी कुमारी ही है। सखी (नीरवता) के कन्धे पर बाँह डालना यह भी प्रकट करता है कि संध्या-सुन्दरी अभी मुग्धा नवयौवना है और स्वभाव की अल्हड है। सखी के कन्धे पर बाँह डाले हुए आना यह भी ध्वनित करता है कि सखी (नीरवता) के साथ संध्या सुन्दरी की बड़ी गहरी मित्रता है। संध्या के लिए 'छाँह' का उपमान प्रस्तुत करने से यह व्यंजित है कि सन्ध्या-सुन्दरी शरीर से बड़ी पतली है। अम्बर-पथ से नीचे उतरने में संध्या ने सखी के कन्धे का सहारा लिया है; अतः वह सुकुमारी एव भी है यदि हिन्दी भाषा की उर्दू शैली

में कहें तो यह कहा जा सकता है कि शाम एक नाज़नी और नाज़पर्वरदह् है। संध्या-सुन्दरी न तो भूलोक की नारी है और न उसे कभी इस पृथ्वी पर चलने का काम ही पड़ा है, जिससे उसका शरीर सबल और कठोर बनता अथवा कठोरता सहने का अभ्यासी होता। उक्त पंक्तियों में महाकवि निराला जी ने मानवीकरण के द्वारा छायारूपिणी संध्या को कुमारी का रूप देकर कमाल कर दिया हैं। यहाँ अनेक वस्तु-ध्वनियों का सम्मेलन दिखाई पड रहा है। श्री निराला जी के ऐसे ही ध्वनिपरक चित्रों पर मुग्ध होकर श्री जयशंकर 'प्रसाद' जी ने निराला जी के काव्य के सम्बन्ध में लिखा था—'चित्रों की रेखाएँ पुष्ट, वर्णों का विकास भास्वर है। दार्शनिक पक्ष गंभीर और व्यंजना मूर्तिमती है।'

निराला जी ने अपनी कविताओं में व्याकरण-सम्बन्धी कुछ विशेष प्रयोग भी किये हैं। ऐसे प्रयोग कर्ता और क्रिया के रूपों से विशेष सम्बन्ध रखते हैं। निराला जी के मत से 'तुम' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है—(१) अपने से बडे के लिए सम्मानार्थ में और (२) समान आयु अथवा समान पद वाले के अर्थ में। जब सम्मानार्थ में 'तुम' का प्रयोग होता है तब निराला जी भूतकालीन क्रिया को अनुनासिक बना देते हैं, जैसे—'तुम जातीं थीं।' किन्तु जब समानता के अर्थ में प्रयोग किया जाता है तो वे लिखते हैं—'तुम जाती थी।' अर्थात् सहायक क्रिया अनुनासिकता से रहित प्रयुक्त की जाती है। 'गीतिका' के ६१ वें गीत में कवि ने लिखा है—'कण्ठ की तुम्हीं 'रही' स्वर-हार।' यहाँ 'रही' के स्थान पर हिन्दी व्याकरणानुसार 'रहीं' होना चाहिए था। इसे हम भाषा के क्षेत्र में कवि का एक क्रान्तिकारी चरण-न्यास ही कह सकते हैं। 'मार दी तुझे पिचकारी'—(गीतिका, छन्द ५५), 'जग धोका तो रो क्या ?' —(गीतिका, छन्द ४९), '(जब) चाह, तुम्हें चहते।'—(गीतिका, छन्द २१) आदि निराला जी के भाषा-विषयक ऐसे ही अपने प्रयोग हैं। इनका कारण संगीत के स्वर भी हो सकते हैं जिनमें बँध जाने के कारण कवि को वैसा लिखने के लिए बाध्य होना पड़ा होगा। बंग-साहित्य से प्रभावित होने के कारण निराला जी ने अपनी कविताओं में संगीत को कवित्वमय और कवित्व को संगीतमय बनाने की अधिक चेष्टा की है। इसीलिए कहीं-कहीं अर्थ-बाधकतावाले पद-विन्यास की परवाह उन्होंने नहीं की। बँगला भाषा के प्रभाव के कारण ही उनकी कविताओं में क्रियापदों का प्रायः लोप पाया जाता है। सारांश यह कि उनके वाक्य-विन्यास पर बंग-शैली का स्पष्ट प्रभाव प्रतिलक्षित होता है

महाकवि निराला की भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से परिपूर्ण साहित्यिक खड़ीबोली है जिसे संगीत के मंच पर सुशोभित करके शृंगार की मधुरिमा और वीर का ओज प्रदान किया गया है। इसीलिए खड़ीबोली की कर्कशता निराला जी की कविताओं में नहीं है। उनकी रचनाओं में जहाँ बौद्धिक तत्त्व अधिक है वहाँ भाषा जटिल और दुरूह हो गई है किन्तु हृदय-तत्त्व की प्रधानता प्राप्त करके वह संस्कृत की ललित एवं कोमलकान्त पदावली की स्वरलहरी से अभिमण्डित भी हो गई है। वह कोमलकान्त पदावली विशेषतः अभिधात्मक शब्दों को लेकर ही चली है।

बँगला भाषा के कुछ शब्द बड़े सुन्दर ढंग से निराला जी ने अपनी कविताओं में प्रयुक्त किये हैं। फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों को तो वे बड़े विचार के साथ ही प्रयुक्त करते हैं। उन शब्दों के प्रयोग से भाषा प्राणवन्त ही बनी है।

कलामर्मज्ञ कुशल कवि की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह सदा पूर्ण समर्थ एवं अर्थव्यंजक शब्दों का ही प्रयोग किया करता है। संज्ञा शब्दों के साथ में अनेक विशेषण शब्दों का प्रयोग कवि की असमर्थता तथा अल्पज्ञता का द्योतक है। सच्चे कवि उच्छिष्ट-भोजी नहीं होते और विशेषणों का अधिक प्रयोग भी नहीं करते। शब्द-मर्मी कुशल कवि 'नील कमल' के स्थान पर 'इन्दीवर' और 'पूर्णमासी के चन्द्र' के स्थान पर 'राकेश' लिखना अधिक कलापूर्ण मानता है। यह बात हमें निराला जी की काव्य-पुस्तकों में भी मिलती है। अनुप्रासमयी शब्द-योजना के तो वे पूर्णतः सफल कवि हैं—

वसन वासनाओं के रँग रँग।

—(अनामिका, पृ० ३१)

× × ×

नीरज-नीलनयन, बिम्बाधर।

—(अनामिका, पृ० १०७)

× × ×

तरु की तरुण-तान शाखें।

—(अनामिका, पृ० १४२)

अन्त में सारांश रूप में यही निवेदन किया जा सकता है कि निराला जी की लेखनी ने खड़ीबोली हिन्दी को नवीन संगीत शैली के गीत

प्रदान किये हैं और गीतों के शब्दों में ओज और माधुर्य को भरा है। उनके गीतों में ध्वनिमूलक अलंकारों की संगीतमयी शोभा देखते ही बनती है—

मौन रही हार।
प्रिय-पथ पर चलती सब कहते श्रृंगार।
कण-कण कर कंकण किणि-किणि रव किंकिणी।
रणन-रणन नूपुर उर लाज लौट रंकिणी।

× × ×

बजें सजे उर के इस सुर के सब तार॥ मौन०॥

खड़ीबोली की कविता को छन्द के बन्धन से मुक्त करके श्री निराला जी ने उसे नये स्वर तथा अभिनव संगीत-शैली प्रदान की है। 'कुकुरमुत्ता' में हमें कवि की विचित्र व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। काव्य में नये-नये प्रतीकों* का प्रयोग कोई इस कवि से सीख ले।

निराला की काव्य-कला

आधुनिक हिंदी साहित्य में निराला जी विद्रोह, क्रांति और परिवर्तन के कवि माने जाते हैं। विरोध और संघर्ष को स्वीकार कर अपनी काव्यधारा को नवीन मार्ग से प्रवाहित करने की जैसी सामर्थ्य निराला में है वैसी हिंदी के किसी अन्य कवि में नहीं है। कदाचित् उनकी इस दुर्द्धर्ष क्षमता को देखकर ही उन्हें महाप्राण कवि कहा जाता है। युगांतरकारी साहित्य-सर्जन की प्रेरणा से निराला ने साहित्य के विविध रूपों को ग्रहण किया है। गद्य और पद्य, दोनों ही क्षेत्रों में उनके द्वारा जो प्रयोग किए गए हैं, वे ऐसे हैं जिनका महत्व आँकना सरल नहीं है। जिस समय निराला अपनी प्राणवत्ता के साथ हिंदी साहित्य के प्रांगण में अवतरित हुए, साधारण पाठक उनकी रचनाओं की गहराई में सहज रूप से प्रवेश न कर सका। फलतः निराला की रचनाओं को क्लिष्ट और अस्पष्ट बताकर दूर रखने का प्रयास किया गया, किंतु जिस काव्य में शक्ति और ओज होता है वह क्लिष्टता के क्षणिक आरोप से दबाया नहीं जा सकता।

निराला जी का शैशव बंगाल में व्यतीत हुआ और प्रारंभिक शिक्षा भी बंगला भाषा में ही हुई। जिन दिनों निराला जी बंगाल में अपनी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उन दिनों स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा का वहाँ की शिक्षित जनता पर बहुत व्यापक प्रभाव था। अद्वैतवाद की नवीन दृष्टि से जैसी व्याख्या स्वामी विवेकानद ने की थी, वह देश-विदेश में बड़े सम्मान के साथ ग्रहण की जा रही थी। बालक सूर्यकान्त पर भी इन विचारों की गहरी छाप पड़ना स्वाभाविक था। अद्वैत वेदान्त की इस प्रवृत्ति को तब और प्रश्रय मिला जब सूर्यकांत त्रिपाठी को रामकृष्ण मिशन की ओर से प्रकाशित होनेवाले 'समन्वय' पत्र के विभाग में काम करने का अवसर मिला

बँगला भाषा, वेदान्ती भावना, विरक्त साधु-संन्यासियों की विचार-धारा आदि ने निराला की प्रारम्भिक रचनाओं को अत्यधिक प्रभावित किया। जब निराला ने हिंदी में कविता लिखना प्रारम्भ किया तब वे हिंदी की अपेक्षा बँगला और संस्कृत के अधिक निकट थे। सौभाग्य से पत्नी तो हिंदीभाषिणी थी, उसकी प्रेरणा से हिंदी के प्रति नैसर्गिक अनुराग जाग्रत हुआ और हिंदी को ही आपने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। जब इन्होंने लिखना प्रारम्भ किया तो इतना तीव्र प्रवाह चला कि उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध, आलोचना सभी दिशाओं में लेखनी घूम गई।

निराला ने जिस युग में कविता लिखना प्रारंभ किया वह द्विवेदी युग का अंतिम चरण और छायावाद युग का उन्मेष काल था। कविवर प्रसाद की छायावादी रचनाएँ शनैः शनैः प्रकाश में आने लगी थीं और हिंदी कविता में नई दिशा की सूचना मिलना प्रारंभ ही हुआ था। कवि निराला की पत्नी का असामयिक देहान्त होने से कवि के मानस पर उसका वियोगजन्य प्रभाव पड़ा। कवि ने शून्य में निहारते हुए 'जुही की कली' कविता लिखी जो कल्पना के वेग को ग्रहण कर भावाभिव्यक्ति में समर्थ हुई। इस कविता की शैली, प्रसाधन, भंगिमा सब कुछ एकदम नवीन था। इतना अभिनव कि हिंदी का पाठक उसे अपनाने में हिचकिचाया; उसे लगा कि कहीं यह सब किसी और भाषा का तो नहीं है। किंतु, हिंदी में नूतन शक्ति-क्षमता भरनेवाली यह कविता कवि की प्राणवत्ता का परिचय देती हुई भावी काव्य-परिच्छेद का भी संकेत प्रस्तुत कर गई—

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी
स्नेह स्वप्न मग्न अमल
कोमल तनु तरुणी
जुही की कली, दृग बन्द किए
शिथिल पत्रांक में।

'जुही की कली' आज हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व वाली रचना मानी जाती है। इस रचना के भीतर केवल रचयिता की शक्ति का ही आभास नहीं, वरन् उस युग के भावी परिवर्तन का भी संकेत छिपा है। निराला जी की प्रवृत्ति वेदान्त की ओर होने से उनकी प्रारंभिक रचनाओं में दार्शनिक गूढ़ता (या दूसरे शब्दों में हम उसे 'रहस्यवादिता' भी कह सकते हैं) का सन्निवेश रहा है। निराला की अद्वैत भावना को व्यक्त करनेवाली उनकी प्रसिद्ध कविता तुम और मैं' है

इस कविता में निराला ने ब्रह्म की सत्ता को सत्य मानते हुए अपने अहं को उसी में लीन करके देखा है—स्त्रीत्व के रूप में नहीं वरन् उसी शक्ति का एक लघु रूप मानकर। अग्नि के स्फुलिंग की भाँति अहं को उस विराट् का एक अंश मानना ही अभिप्रेत है। भाव-वस्तु के साथ कविता में काव्य-गुण भी इतना उच्चकोटि का है कि कविता दार्शनिक परिवेश में भी पाठक के मन को पूर्णता के साथ पकड़ने में समर्थ होती है—

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त कामिनी कविता।
तुम प्रेम और मैं शांति, तुम सुरापान घन अंधकार।
मैं हूँ मतवाली भ्रांति।

इस कविता का मूलभाव वेदान्त पर आवृत है, किन्तु जगत् या जीवन के प्रति ऐसी कोई विरक्ति इसमें से प्रतिध्वनित नहीं होती जो 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का संदेश देकर साधक को संसार से विरत कर सके। कवि के सामने संसार है और उसमें आत्म का बोध है। यह आत्मबोध ही आशावाद का स्रष्टा है। नैराश्य को दर्शन का अंग माना भी क्यों जाय? इसी भाव को एक दूसरी कविता में बड़ी शक्ति के साथ कवि ने व्यक्त किया है—

जीवन की विजय, सब पराजय,
चिर अतीत आशा, सुख, सब भय,
सबमें तुम, तुम में सब तन्मय।

'परिमल' संग्रह में आशा और जागरण की भावना से परिपूर्ण अनेक कविताओं द्वारा कवि ने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि ब्रह्म की सत्ता अखंड और सत्य होने पर भी यह जीवन नैराश्य या कुण्ठा के लिए नहीं मिला है। ब्रह्म-चिन्तन निराला जी का प्रिय विषय रहा है। औपनिषदिक चिन्ता-धारा का अनुसरण करते हुए उसका अद्वैत भावना के साथ समन्वय करने की कला निराला जी को प्राप्त है। परिमल की चिन्तनप्रधान तथा भावनाप्रधान, दोनों ही कोटि की कविताओं में कवित्व का मांसल पुट दृष्टिगत होता है। नीचे की कविता में चिन्तन की प्रधानता है—

तुम हो अखिल विश्व में या यह अखिल विश्व है तुममें।
अथवा अखिल विश्व तुम एक यद्यपि देख रहा हूँ तुम में भेद अनेक।
बिन्दु विश्व के तुम कारण हो या यह विश्व तुम्हारा कारण।
पाया हाय न अब तक इसका भेद,
सुलझी नहीं ग्रन्थि मेरी कुछ मिटा न खेद

दार्शनिक चिन्ताधारा के साथ निराला के मन पर भारतीय जीवन-दर्शन की छाप भी गहरी पड़ी है। अतीत के सुन्दर चित्र अंकित करते हुए करुणा, प्रेम और समवेदना को निराला ने अपने काव्य-विषयों में स्थान दिया है। जगत् में चारों ओर बिखरे हुए दुख-दैन्य को कवि ने अपने काव्य में करुणा के माध्यम से गाया है। जिन कारुणिक दृश्यों से हमारी भावना सिक्त होती है और हम द्रवित हो उठते हैं कवि निराला ने उन्हें गहराई से समझा और दृढ़ता से पकड़ा है। विधवा, भिक्षुक, दीन मजदूर आदि विषयों का चयन कवि के अन्तर की करुणा का ही प्रतिरूप है। इन कविताओं में शब्दों के माध्यम से सूक्ष्म करुणा को जहाँ कवि ने मूर्तिमन्त और सजीव किया है वहाँ साथ ही साथ काव्य के अलंकृत उपकरणों को भी अपनी परिपूर्णता तक पहुँचाया है। प्रत्येक कविता सामाजिक अभिशाप पर व्यंग्य और प्रहार की दुर्निवार शक्ति लेकर सामने आती है। प्रगतिवादी विचार-धारा में जो विद्रोही स्वर पनपा था वैसा ही स्वर इन कविताओं के अन्तराल में छिपा है, मानो कवि ने आने वाली प्रगति को बीस वर्ष पहले ही समझ लिया हो। 'विधवा' शीर्षक कविता का काव्य-शिल्प अद्भुत है—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी,
वह दीपशिखा सी शांत, भाव में लीन
वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन
दलित भारत की विधवा है

'भिक्षुक' शीर्षक कविता अपने सजीव वर्णन के लिए हिंदी साहित्य में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है—

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता।

निराली की कविता में जन-जागरण तथा राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण गीतों का भी विशेष स्थान है। अपने अतीत गौरव का स्मरण करते हुए उद्बोधन के उद्देश्य से ऐसे ओजस्वी गीत उन्होंने लिखे जो परतंत्र देश की जनता में जीवन-संचार की अद्भुत क्षमता रखते हैं। अपने राष्ट्र की महानत

करते हुए कवि ने प्रार्थना के स्वर में जिस उदात्त गरिमा का स... किया है वह देखते ही बनता है:—

मुकुट शुभ्र हिम तुषार, प्राण प्रणव ओंकार।
ध्वनित दिशाएँ उदार, शतमुख शतरव मुख रे।

इस गीत का मूल भाव, प्रार्थना है, किन् इसकी पृष्ठभूमि सांस्कृतिक चेतना है तथा राष्ट्रीयता इसकी ध्वनि है जिसे सुनकर प्रार्थना करनेवाले का अन्तःकरण दीप्त और भास्वर हो उठता है। भारतवर्ष के अतीत गौरव का स्मरण करानेवाली कविताओं में 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'यमुना', 'जागो जीवन धनिके' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। सांस्कृतिक धरातल पर आधृत आख्यानक कविताओं में 'पंचवटी-प्रसंग', 'राम की शक्ति पूजा', 'सहस्राब्धि' मुख्य हैं। 'यमुना' कविता में एक ओर सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का सौन्दर्य है तो दूसरी ओर काव्य शिल्प का मनोहारी रूप भी उसे कान्तिमय बना रहा है। छायावादी कविता के प्रतीकात्मक अलंकरण इस कविता में अपने सौन्दर्य के निखार पर हैं—

बता कहाँ अब वह वंशीवट, कहाँ गये नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट, कहाँ आज वह वृन्दाधाम ?
कभी यहाँ देखे थे जिनके श्याम विरह से तप्त शरीर,
किस विनोद की तृषित गोद में आज पोंछतीं वे दृग नीर ?

व्यंग्य, विप्लव, विद्रोह और संघर्ष को व्यक्त करने के लिए निराला ने जो कविताएँ लिखीं उनमें केवल पैना दंश ही नहीं, वरन् निर्माण का स्वर भी गूँजता है। 'कुकुरमुत्ता' उनकी एक व्यंग्यप्रधान रचना है। अँग्रेजी में जिसे 'सेटायर' कहते हैं वह इस पर चरितार्थ होता है। 'कुकुरमुत्ता' से पहले भी आपने व्यंग्य-प्रधान अनेक कविताएँ लिखी थीं किंतु इसमें आकर आपका व्यंग्य प्रहार के चरम बिंदु तक पहुँच गया है। 'कुकुरमुत्ता' में कवि ने आध्यात्मिक एवं भौतिकवादी उपादानों पर तीव्र प्रहार किया है। अद्वैतवाद और पैराशूट, दोनों का उपहास करते हुए निराला ने 'कुकुरमुत्ता' को प्रयोग की देहली पर ला खड़ा किया है। गुलाब को देखकर कुकुरमुत्ता कहता है—

खून खींचा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।

गुलाब को कैपिटलिस्ट बताकर साम्राज्यवादी वर्ग का प्रतीक ठहराया है सामाजिक व्यंग्य की दृष्टि से कुकुरमुत्ता का स्थान बहुत ऊँचा है

निर्धन वर्ग के जीवन को 'कुकुरमुत्ता' के समान चित्रित करते हुए कवि ने साम्यवादी बना डाला है।

विप्लव और विद्रोह की भावना को व्यक्त करने के लिए निराला जी ने अनेक कविताएँ लिखी हैं, किन्तु 'बादल राग' को उनकी सबसे अधिक विप्लव-कारिणी कविता कहा जाता है। छह रागों में कवि ने कविता को समेटा है। प्रथम राग मधुर है। दूसरा भैरव है। बादल को कहीं विप्लवकारी, कहीं आतंकवादी, कहीं क्रान्तिकारी रूप में चित्रित करके कवि ने विप्लव का रूप खड़ा किया है।

निराला ने 'सरोज-स्मृति' शीर्षक कविता शोकगीति की शैली में लिखी है जिसमें अपनी पुत्री के असामयिक निधन से उद्भूत करुण-शोकमयी भावनाओं को कवि ने 'ऐलेजी' की शैली से वर्णित किया है। पुत्री के निधन पर कवि को उसका बाल्यकाल स्मरण हो आता है जब सवा साल की आयु में ही नन्ही बच्ची की माँ का देहावसान हो गया था। इस कविता में विवाह सम्बन्धी रूढ़ियों पर भी कवि ने व्यंग्य किया है। सरोज की मृत्यु पर कवि के मर्माहत शब्द पुकार उठे—

दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

निराला के काव्य में प्रकृति-चित्रण का सुन्दर रूप उनके 'गीतिका' संग्रह में दृष्टिगत होता है। प्रकृति को नारी के रूप में चित्रित करने की प्राचीन परिपाटी का कवि ने निर्वाह नहीं किया है, वरन् स्वतंत्र रूपांकन के रूप में ही प्रकृति के मनोहर चित्रों को अंकित किया है। प्रकृति को रहस्यवादी दृष्टि से देखने का मोह दार्शनिक कवि निराला संवरण नहीं कर सके हैं। प्रकृति के सुन्दर पदार्थों में निहित चरम सौन्दर्य को पा लेने की इच्छा कवि के अन्तर में सतत विद्यमान रही है, जिसके फलस्वरूप प्रकृति-चित्रण पर रहस्यवाद का झीना आवरण पड़ना स्वाभाविक है। किन्तु यह स्थिति सर्वत्र नहीं है। 'शेफालिका' कविता में जहाँ अद्वैतवादी विचारधारा का प्रभाव है, कवि रहस्य के आवरण में रहता है---

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके।

शेफाली को वासकसज्जा नायिका (आत्मा) के रूप में चित्रित कर प्रेमी गगन (परमात्मा) से मिलने का संकेत कवि ने किया है। इसके

अतिरिक्त प्राकृतिक सौन्दर्य के स्वतंत्र वर्णनों की भी निराला की कविता में कमी नहीं है। दिवसावसान के समय मेघमय आसमान से उतरती हुई परी सी सुन्दरी संध्या-सुन्दरी का आलंकारिक वर्णन देखिए—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
यह संध्या सुन्दरी परी-सी, धीरे, धीरे, धीरे।

संध्या का दूसरा वर्णन और देखिए—

अस्ताचल ढले रवि, शशि छवि विभावरी में।
चित्रित हुई है देख, यामिनी गंधा जगी॥

प्रगति और प्रयोग की दृष्टि से निराला का काव्य अन्य कवियों से सदैव दस वर्ष आगे रहा है। जिसे आज के युग में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद कहकर व्यवहृत किया जाता है वह निराला की कविता में अपने आगमन से दस वर्ष पहले झाँकने लगा था। प्रयोगों की बहुलता देखनी हो तो निराला की 'नये पत्ते' शीर्षक रचना अनुशीलन के योग्य है। इन कविताओं के विषय प्रगतिशील विचारधारा के हैं और प्रक्रिया की शैली प्रयोगवादी कही जा सकती है।

सामाजिक एवं राजनीतिक व्यंग्य की कविताओं के साथ मार्क्सवादी विवेचन को मिलाकर कवि ने इनमें प्रगतिशीलता का अच्छा समाहार किया है। गर्म पकौड़ी और प्रेम-संगीत कविताओं में व्यंग्य की मनोहारी छटा है—

पहले तूने मुझको खींचा दिल देकर कपड़े सा फींचा।

इन प्रयोगों में कवि के अन्तर्मन पर पड़े संस्कार भी हैं और युग-संघर्ष से उद्भूत मनोविकार भी। सामन्तवादी युग की प्रथा-परम्पराओं पर चोट करते हुए कवि की वाणी में मार्क्सवाद का गुंजन सुनाई पड़ता है, किन्तु दूसरी ओर मार्क्सवाद को भी कवि अछूता नहीं छोड़ता। कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो वर्तमान युग में हुए विविध आन्दोलनों का आभास देती हैं। 'स्फटिक शिला' एक अनूठी कविता है जिसमें कवि ने अनेक सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। ग्रामीण युवती का एक स्थान पर वर्णन करते हुए उस पर सीता का आरोप करके कवि ने अपने मन की अवदात भावना का परिचय दिया है—

वर्तुल उठे हुए उरोजों पर जड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयन्त की, नहीं जैसे कोई चाह
देखने की मुझे और कहा तुम राम की॥

गीति काव्य को समृद्ध बनानेवाली विविध रचनाओं के साथ आख्यानक गीति (खंड-काव्य), प्रबंध-काव्य, नाट्य कविता और रेखाचित्र भी कवि ने लिखे हैं। इनमें पंचवटी-प्रसंग, राम की शक्ति-पूजा, तुलसीदास और अणिमा (रेखाचित्र, श्रद्धांजलि आदि) उल्लेखनीय हैं।

नाटक-काव्य के अन्तर्गत पंचवटी-प्रसंग पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक है। पंचवटी-प्रसंग पाँच दृश्यों में विभक्त नाट्य-काव्य है। इसमें राम-सीता के प्रेम-संवाद अति मर्मस्पर्शी शब्दावली में अंकित हुए हैं। इस प्रसंग की मुख्य घटना है शूर्पणखा का आगमन और रूप-वर्णन। शूर्पणखा के रूप का वर्णन सुनिए:—

मीन मदन फाँसने की वंशी सी विचित्र नासा
फूल दल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल
चिवुक और हँसी बिजली सी
योजन गंध पुष्प जैसा प्यारा वह मुख-मंडल
फैलते पराग दिङ्‌मंडल आमोदित कर
खिंच आते भौंरे प्यारे।

पंचवटी प्रसंग लिखते समय निराला के सामने मानव-कथा का पहलू रहा है। निराला ने कथा को ईश्वरीय या अतिमानवीय नहीं बनाया है। इस प्रसंग का काव्य-शिल्प अति समृद्ध और छायावादी उपलब्धियों से भरा हुआ है।

'राम की शक्ति-पूजा' निराला की सबसे प्राणवान, ओज गुण-प्रधान रचना है। इस कविता की टक्कर की दूसरी कविता हिन्दी में नहीं मिलती। पौराणिक कथानक को कवि ने अपनी कल्पना और काव्य-सौष्ठव द्वारा पल्लवित करके जो रूप दिया है वह सर्वथा नूतन है। जिस छन्द, लय, स्वर और पदावली में कविता बाँधी गई है वह प्रक्रिया ही हिन्दी के लिए अभिनव है। द्वन्द्व और संघर्ष नाटक के प्राण तत्व होते हैं। इस कविता में वर्णित राम का अन्तर्द्वन्द्व नाटकीयता में अपने चरम बिन्दु को स्पर्श करनेवाला है। नाटक की पाँचों कार्यावस्थाओं का विधिवत् पालन करते हुए कवि ने इस कविता को उत्कर्ष के सर्वोच्च धरातल पर ले जाकर खड़ा किया है। युद्ध के वातावरण की उत्तेजना और उसकी भूमिका में राम की सभा का विषादपूर्ण चित्रण प्रारम्भ है; राम की निराशा, हनुमान की उत्तेजना और विभीषण के द्वारा उद्बोधन प्रयत्न हैं, जाम्बवन्त के द्वारा राम को शक्ति-पूजा का परामर्श (है राम द्वारा पूजा का

विधान नियताप्ति है और अन्त में शक्ति द्वारा विजय-मंगल का वरदान फलागम है।

कविता का प्रारम्भ और अन्त एक ऐसे नाटकीय ढंग से होता है कि पाठक के मन में कुतूहल, विषाद, हर्ष, उत्कंठा, औत्सुक्य आदि नाट्य संचारियों का ताँता बँधा रहता है। भाषा और शैली में आदि से अन्त तक महाकाव्य सदृश उदात्त गरिमा अनस्यूत है। भाषा को महाप्राण वर्णों के प्रयोग द्वारा ओजस्वी बनाया गया है। दीर्घ समासों की छटा से वाक्यावली को युद्ध-संघर्ष के अनुकूल किया गया है; अमूर्त अन्तर्द्वन्द्व को सघन एवं सुदृढ़ प्रतीकों द्वारा मूर्तिमान किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

है अमा-निशा, उगलता गगन घनांधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध हैं पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।।

संक्षेप में, 'राम की शक्ति-पूजा' केवल एक लम्बी आख्यानक कविता ही नहीं अपितु वह अभिव्यंजना-सौष्ठव का चरम उत्कर्ष प्रस्तुत करनेवाली ऐसी कविता है जिसे छायावादी अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम निदर्शन कहा जा सकता है।

'तुलसीदास' निराला का प्रबंध-काव्य है जिसमें कवि ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास पर नये दृष्टिकोण से विचार किया है। हिन्दू-संस्कृति के पतन का चित्र अंकित करते हुए कवि ने तुलसीदास को उस पतनोन्मुखी संस्कृति का रक्षक बताया है। संध्या के वर्णन से कविता प्रारम्भ होती है, जैसे भारतीय गगन पर संध्या के बादल छा गये हों। प्रकृति के परिवेश में जो संश्लिष्ट वर्णन है उसमें संस्कृति के पतन का अध्याहार करके पाठक मध्ययुग के ह्रास को अपने मानस में देखने लगता है। मुगल-सभ्यता के विकास से कवि का अन्तर इसलिए समाहित है कि वह भारतीय हिन्दू-संस्कृति के विनाश पर पनप रही हैं। कुसंस्कारों की कालिमा देश पर छा रही है, मतमतांतरों के घटाटोप से देश आच्छन्न है। इस वर्णन के बाद कवि ने रत्नावली के प्रेम का चित्र खींचा है। रत्नावली के नारी भाव को निराला नवीन दृष्टिकोण से परखते हैं और उन्होंने रीतिकालीन परम्पराओं को समाप्त कर दिया है। तुलसी के मन को ऊर्ध्वगामी बनने की प्रेरणा कवि ने दी है और उसे एक ऐसी भूमि पर ले जाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से उनका कवि सार्वभौम रूप भास्वर हो उठा है।

तुलसीदास का काव्य-शिल्प निराला की सामर्थ्य के सर्वथा अनुकूल है। तुलसी का वर्णन देखिए—

भारत के नभ का प्रभा पूर्य शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य।
अस्तमित आज रे, तमस्तूर्य दिङ् मंडल।

संक्षेप में, निराला ने छायावादी कविता में नूतन भाव-वस्तु के साथ कला के रूप-विधान में भी नवीनता का वरदान दिया। उनकी भाषा, उनके छन्द, उनकी वर्ण-योजना, सब कुछ मौलिक होने के साथ दीप्ति और कान्ति के उस शिखर को स्पर्श करती है जिसे प्रसाद की 'कामायनी' को छोड़कर और किसी कवि का काव्य नहीं कर सका।

मुक्तक छन्द का श्रीगणेश निराला जी ने किया, छन्दों की विविधता और प्रयोगवादी परम्परा उन्होंने प्रारम्भ की। तुक और लय-स्वर में नूतनता का प्रवेश करने में निराला सबसे आगे हैं। स्वच्छन्द छन्द तो उनकी कविता का प्राण रहा है। छन्द के बंधनों में निराला जी का प्रयत्न जागरूकतापूर्ण है।

भाषा को सँवारने और प्रसंगानुकूल ढालने की कला तो निराला को बँगला और संस्कृत-ज्ञान के कारण सिद्ध हो गई थी। जटिल, दुर्बोध, दुरूह, क्लिष्ट, सब प्रकार के शब्दों से अनमिल वाक्यावली बनाने की त्रुटि होने पर भी निराला की शक्तिमत्ता इसमें है कि वे भाव की जटिलता को तथा वर्णन की संश्लिष्टता को शब्दों के चयन से पूरा कर देते हैं।

संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग कविता को जटिल भले ही बना दे, किन्तु प्रसंगानुकूल गति और प्रवाह अवश्य देता है। 'राम की शक्ति-पूजा' कविता इस कथन का प्रमाण है। युद्ध-वर्णन के प्रसंग की शब्दावली ध्यान देने योग्य है—

आज का तीक्ष्ण शर, विधृत क्षिप्रकर, वेग प्रखर
शत शैल संवरणशील, नील नभ गर्जित स्वर
प्रति पल परिवर्तित, व्यूह भेद कौसल समर ॥

निराला जी लगभग पिछले पैंतालीस वर्ष तक काव्य-सृजन में लीन रहे। शारीरिक एवं मानसिक रुग्णता के दिनों में भी उनकी लेखनी ने विराम लेना स्वीकार नहीं किया। अस्वस्थ दशा में भी शेर और गजल लिखकर उन्होंने अपनी गतिशीलता का परिचय दिया। निराला का महाप्राण व्यक्तित्व इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी भाषा में अभिव्यंजना की पूर्ण शक्ति विद्यमान है- आवश्यकता है प्रतिभाशाली कवि और लेखक द्वारा उसके उपयोग की

छायावादी कवियों में निराला का स्थान अपनी कई विलक्षणताओं के कारण सबसे अलग दिखाई देता है। वे छोटे से छोटे विषय को अपनी प्रतिभा और काव्यमेधा के बल पर मूर्तिमान बनाकर खड़ा करने में समर्थ हैं। चित्रमयता का प्रभाव सभी छायावादी कवियों पर पड़ा है, किन्तु प्रसाद और निराला ने इस कला को पूर्णता पर पहुँचाया है। छन्दों में अनुप्रास, लय, स्वर की रक्षा वे इस शैली से करते हैं कि मुक्त छन्द भी छन्द के सौन्दर्य का उदाहरण बन जाता है। महाकाव्य की उदात्त शैली पर कविता लिखने का श्रेय निराला को ही है। पंचवटी-प्रसंग और 'राम की शक्ति-पूजा' में यह तथ्य देखा जा सकता है। जितना विरोध निराला ने सहन किया वैसा किसी और कवि को नहीं देखना पड़ा, किन्तु वे पर्वत की भाँति अटल खड़े रहे और अन्त में सभी विरोधियों को उनके सामने झुक कर उनके महत्व को स्वीकार करना पड़ा। उनके निधन से हिन्दी साहित्य का एक सुदृढ़तम गौरव स्तम्भ टूट गया है, किन्तु उनकी कृतियों की गौरव-गरिमा सदैव अक्षुण्ण रहेगी।

— —

निराला का काव्यादर्श

छायावाद के अन्य कवियों की तुलना में काव्य-चिंतन में अपेक्षाकृत कम भाग लेने पर भी 'निराला' ने समकालीन साहित्य पर अपने काव्यादर्श की अमिट छाप छोड़ी है। वे स्वतंत्रचेता कवि थे, अतः उन्होंने परम्परा-प्राप्त काव्य-सिद्धान्तों को यथावत् ग्रहण करके ही संतोष नहीं किया, अपितु अपनी काव्य-प्रवृत्तियों के अनुकूल मौलिक सिद्धांत-स्थापना भी उन्हें इष्ट रही। उन्होंने काव्य-भावों के संस्कारक उपादानों की अपेक्षा काव्य-शिल्प के उन्नायक तत्वों का विशेष विदग्ध विवेचन किया है, तथापि यहाँ दोनों पक्षों पर विचार करना उचित होगा।

भाव-संस्कारक उपादान

निराला जी के काव्यादर्श पर विचार करने से पूर्व यह उचित होगा कि काव्य-हेतु के विषय में उनकी धारणाओं का अध्ययन कर लिया जाय। वे कवि-प्रतिभा को परमात्म-प्रसाद मानते थे,[1] इसलिए उन्होंने एक स्थान पर उसे मानव-मन का उत्कर्ष करनेवाली बंधन-विहीन शक्ति-विशेष कहा है—"कली की सुगंध की तरह महाकवि की प्रतिभा भी अपनी छोटी सी सीमा के भीतर संतुष्ट नहीं रहना चाहती। वह हर एक मानवीय दुर्बलता को परास्त करना चाहती है। यह उसका स्वाभाविक धर्म भी है। क्योंकि दैवी शक्ति वही है जो मानवीय बंधनों का उच्छेद कर देती है"।[2] प्रतिभा का आवेग कवि को काव्य-रचना में निपुणता प्रदान करता है और इससे कवि को लोकवृत्त के ज्ञान और विवेकपूर्ण अध्ययन में अपेक्षाकृत सुविधा रहती है। 'निराला' ने लोक-दर्शन अथवा प्रकृति-निरीक्षण को कवि-धर्म मानते हुए यह प्रतिपादित किया है कि कवि को काव्यानुशीलन

---

१. देखिए 'अर्चना', भूमिका, पृष्ठ 'क'

२. रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ४२।

अथवा रचनाभ्यास द्वारा शब्द-योजना की विशिष्ट मार्मिकता से भी परिचित रहना चाहिए ; यथा—"प्रकृति का पर्यवेक्षण करने वाला ही कवि नहीं हो जाता, उसे और भी बहुत-सी बातों की नाप-तौल करनी पड़ती है। किस शब्द का प्रयोग उचित होगा, किस शब्द से कविता में भाव की व्यंजना अधिक होगी, इसका भी ज्ञान कवियों को रखना पड़ता है"।[१] लोक-व्यवहार और शब्द-रहस्य के ज्ञान के अतिरिक्त 'निराला' ने पूर्ववर्ती काव्य-रचनाओं से सुन्दर भावों को प्रतिबिम्बवत् ग्रहण करना कविमात्र का स्वभाव माना है। उनके अनुसार, "उत्तमोत्तम भावों को ग्रहण करने की शक्ति रसग्राही कविहृदय में ही हुआ करती है, वे चाहे दूसरे के ही भाव हों, उनकी सहृदयता से धुलकर नवीन युग की नवीन रश्मि से चमकते हुए फिर वे उसी के होकर निकलते हैं।"[२] इस उक्ति में अध्ययन (प्राचीन और नवीन कवियों से प्रेरणा-ग्रहण) के काव्य-साधनत्व की निर्भ्रान्ति स्थापना हुई है, किन्तु उन्होंने अन्यत्र मौलिकता की प्रवृत्ति को काव्य के औज्ज्वल्य के लिए श्रेयस्कर माना है[३] जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे मौलिकता को काव्य का गुण मानने पर भी अन्य कवियों के प्रभाव को यत्र-तत्र छाया-रूप में ग्रहण करने को दोष नहीं मानते थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'निराला' ने कवि के लिए जागरूक प्रतिभा, लोक-वृत्त की अनुभूति, शब्दों के मर्मज्ञान और मौलिकता की साधना को सापेक्षिक तत्त्व माना है। इनमें से लोकानुभूति रस-धारा के प्रवाह में सहायक होती है और शब्द-योजना-संबंधी कौशल काव्य में रीति के महत्व की ओर संकेत करता है। स्वभावतः 'निराला' ने रस को काव्य का जीवन माना है—"नव रसों को समझाने और उन्हें उनके यथार्थ रूप में दर्शाने की शक्ति जिसमें जितनी ज्यादा है, वह उतना सी बड़ा कवि है।"[४] पंत जी के काव्य की समीक्षा करते हुए उन्होंने काव्य-श्री के संवर्द्धन में शब्द-कौशल के योग को स्वीकार करके रीति को; और शब्दों

---

१. वही, पृ० ११८।

२. पंत और पल्लव, पृ० ७९।

३. देखिए (अ) 'परिमल', भूमिका, पृ० २३।
(आ) महाकवि निराला, संस्मरण : श्रद्धांजलियाँ (सं० राजकुमार शर्मा), पृ० ४२।

४ रवींद्र-कविता-कानन, पृ० ५२।

क अतिरिक्त जीवन को महत्व देकर ध्वनि को भी गौरव दिया है,[1] किंतु इस विषय में उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप में ही मत-प्रतिपादन किया है ।

अब तक के विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि काव्य में मौलिकता के समावेश के लिए केवल रीति और ध्वनि का आश्रय पर्याप्त नहीं है, अपितु कवि को अनुभूति की गम्भीरता और व्यापकता के प्रति विशेष सजग रहना चाहिए । इसीलिए 'निराला' ने जगत के विविध दृश्यों की स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति को कवि का आदर्श माना है । यथा—"साहित्यिक संसार की अच्छी चीजों का समावेश अपने साहित्य में करते हैं और उनके प्राणों में रंग से रंगीन होकर वे चीजें साधारणों को भी रँग देती हैं" ।[2] प्राणों का रंग स्पष्टत: अनुभूति की आन्तरिकता से सम्बद्ध है । अनुभूति की विशदता और अभिव्यक्ति की पावनता के संयोग से ही काव्य सहृदय-संवेद्य बन पाता है । इसीलिए उन्होंने 'तुलसीकृत रामायण का आदर्श' शीर्षक लेख में यह प्रतिपादित किया है कि अनुभूति के बल पर लोक-मार्ग का प्रशस्तीकरण कवि का धर्म है—"कवियों के हृदय-निर्गत कविता-रूपी उद्गार में इतनी शक्ति होती है कि उसका प्रवाह जनता को अपनी गति की ओर खींच लेता है । कवि की सुझाई हुई बात जनता के चित्त में पैठ या बैठ जाती है, प्रतिकूल विचारों का बल घटा देती है । जनता प्रायः वही सम्मति सच मानती है जो कवि से प्राप्त होती है[3]" । यह दृष्टि-कोण आचार्य राजशेखर की उक्ति 'कविवचनायत्ता लोक यात्रा'[4] के अनुकूल है । इस विचार-धारा के फलस्वरूप 'निराला' ने विविध प्रसंगों में यह प्रतिपादित किया है कि कवि को युग-चेतना की अनुभूति के बल पर सार्वभौम विचारों को लोक-मंगलकारी रूप में व्यक्त करना चाहिए[5] । इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए कवि को केवल मधुर और कांत का ही आश्रय नहीं लेना चाहिए, अपितु ओजमयी भाव-धारा के बल पर जन-प्रभविष्णु काव्य की युगान्तरकारी सृष्टि करनी चाहिए । इसके लिए भावना की भाँति कला का प्रकर्ष भी समान रूप से वांछित है । इसीलिए निराला

---

१. देखिए 'पंत और पल्लव', पृ० ८० ।
२. गीतिका, भूमिका, पृ० ५ ।
३. माधुरी, अगस्त १९२३, पृष्ठ ४८९ ।
४. काव्य-मीमांसा, षष्ठ अध्याय, पृष्ठ ६६ ।
५. देखिए (अ) प्रबन्ध-प्रतिमा, पृष्ठ २५८-२५९, (आ) माधुरी, अगस्त १९२३, पृष्ठ ५०, (इ) चयन, पृष्ठ १०३ ।

ने लिखा है—"हिंदी को मधुरता के साथ इस समय विशेष ओज की भी जरूरत है। विश्व-साहित्य के कवि-समाज पर उसी तरह के कवि का प्रभाव पड़ सकता है, जो भावना के द्वारा मन को आकर्षक रीति से उन्नत से उन्नत विचार कला के मार्ग से चलकर दे सके"[1]।

'निराला' ने काव्य में राष्ट्रीय मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति पर विशेष रूप से बल दिया है,[2] किंतु अधिकांश कवियों की भाँति वे भी कविता के द्वार को प्रत्येक विषय के लिए उन्मुक्त मानते थे। उन्होंने विषय-वैविध्य को रचनागत सजीवता और आनन्द-सृष्टि में सहायक माना है—"साहित्य को जीवित रखने के लिए उसमें अनेक भाव, अनेक चित्रों का रहना आवश्यक है, और जब कि अपने-अपने स्थान पर सभी भाव आनन्दप्रद हैं[3]"। इस दृष्टिकोण की सार्थकता असन्दिग्ध है, क्योंकि रचना की परिस्थितियों, रचनाकार की क्षमता और प्रदाता की रसास्वादन-सम्बन्धी योग्यता के फलस्वरूप सभी विषय किसी न किसी रूप में आकर्षक हो सकते हैं; तथापि इस प्रभाव-सृष्टि के लिए यह आवश्यक है कि कवि अनुभूति के आलोक से वंचित न रहे। इसीलिए उन्होंने अनुभव-प्राप्ति के प्रति प्रयत्नशील कवि के मानस में लौकिक दृश्यों के संचित प्रतिबिम्बों की अभिव्यक्ति को कवि का आदर्श माना है। दूसरे शब्दों में, वे अनुभूतिपुष्ट लोक-हित के विधान को काव्य का अनिवार्य प्रयोजन मानते हैं। इस सम्बन्ध में छायावादी कविता का विरोध करके ब्रजभाषा-काव्य का समर्थन करनेवाले व्यक्तियों के यिषय में उनकी यह उक्ति द्रष्टव्य है—"वे तो सिर्फ मनोरंजन के लिए काव्य-साधना करते हैं, किसी उत्तरदायित्व को लेकर नहीं, उनकी आँखों में दूर तक फैली हुई निगाह नहीं है।.........कौन से भाव सार्वजनिक और कौन से एकदेशीय हैं, उन्हें पता नहीं"।[4] यहाँ विश्व को प्रभावित कर सकने अथवा उत्तरदायित्वपूर्ण सूक्ष्म सत् चिन्तन को प्रोत्साहन देने को काव्य का लक्ष्य माना गया है। इस उक्ति में एक ओर काव्य से प्राप्य स्व-संवेद्य आनंद की ओर संकेत किया गया है और दूसरी ओर मानवतावाद को गौरव दिया गया है। इस प्रसंग में यह उल्लेख्य है कि 'निराला' आंतरिक गुणों से समृद्ध रचना के लिए यश को स्वतः प्राप्य मानते थे।

---

१. पन्त और पल्लव, पृष्ठ ८८।
२. देखिए 'रवीद्र-कविता-कानन', पृष्ठ ५२।
३ चयन, पृष्ठ ६३।
४ चाबुक पृष्ठ ४६।

उनका मत था कि कवि का धर्म यही है कि वह सात्विक हृदय से काव्य-सृजन करे, यश के पीछे भटकना शोभा नहीं है। 'मेरे गीत और कला' शीर्षक लेख में उन्होंने इस मत को इन शब्दों में प्रकट किया है—"विज्ञ जन जानते हैं, प्रसिद्धि का भीतरी अर्थ यशोविस्तार नहीं, विषय पर अच्छी सिद्धि पाना है[1]।" अतः यह स्पष्ट है कि वे यश-लालसा की अपेक्षा रचनागत भावों की युगचेतनानुकूल अनुमति-समृद्ध रसात्मक अभिव्यक्ति को कवि-कर्म का आदर्श मानते थे।

काव्य-शिल्प-सम्बन्धी विचार—

आलोच्य कवि ने काव्य को कला-समृद्धि प्रदान करने वाले उपकरणों में से एक ओर काव्य के रूपों का विवेचन करते हुए गीतिकाव्य में कवित्व, मौलिकता, संगीत और भावानुरूप भाषा की योजना पर बल दिया है और दूसरी ओर काव्य-शिल्प के अन्तर्गत भाषा की स्वाभाविकता तथा भावानुरूपता एवं मुक्त छन्द की सहजता का प्रतिपादन किया है। इनमें से गीतिकाव्य के विषय में उनके विचार अपेक्षाकृत संक्षेप में प्राप्त होते हैं। उन्होंने प्रगीत-रचना में कवित्व और संगीत की समानुरूप योजना पर बल देते हुए यह प्रतिपादित किया है, "प्राचीन गवैयों की शब्दावली, संगीत की संगति की रक्षा के लिए, किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसीलिए उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था।········ मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है। ह्रस्व-दीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्दकारों पर जो लांछन लगता है, उससे भी बचने का प्रयत्न किया है। दो-एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्दःशास्त्र की अनुवर्तिता की है। भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिए हुए हैं।········ जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है[2]।"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि गीतिकाव्य में इन गुणों की स्थिति होनी चाहिए—काव्य-माधुरी, संगीत-संबन्धी नियमों की अनुवर्तिता, मौलिकता और भावानुकूल भाषा। हिन्दी-कवियों द्वारा गीति-काव्य के स्वरूप का यह प्रथम तात्विक विवेचन है। इनमें से मौलिकता और भावानुरूप भाषा तो काव्य-मात्र के लिए वांछित हैं, किन्तु संगीत द्वारा लयादर्श

---

१. प्रबन्ध प्रतिमा, पृष्ठ २६५।
२. गीतिका, भूमिका, पृष्ठ ६।

की योजना गीतिकाव्य की निजी विशेषता है। संगीत-शास्त्र के ज्ञाता होने के कारण उन्होंने इस सिद्धान्त को अधिकारपूर्वक प्रतिपादित किया है और संगीत-कला से अनभिज्ञ कवियों द्वारा प्रवाहपूर्ण कविताओं में भी गीति-तत्त्व के समावेश के विफल प्रयास को अनुचित माना है—"शब्द-शिल्पी संगीत-शिल्पियों की नकल न करें तो बहुत अच्छा हो। कविता भावात्मक शब्दों की ध्वनि है, अतएव उसकी अर्थ-व्यंजना के लिए भावपूर्वक साधारणतया पढ़ना भी ठीक है, किसी अच्छी कविता को रागिनी में भर कर स्वर में माँजने की चेष्टा करके उसके सौन्दर्य को बिगाड़ देना अच्छी बात नहीं[1]।"

आलोच्य कवि ने काव्य-भाषा का विवेचन करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि कवि को भावानुरूप भाषा का प्रयोग करना चाहिए, अतः उच्च भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा में क्लिष्टता का समावेश दोष नहीं है। इस सम्बन्ध में उनकी ये उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

(अ) हमारा यह अभिप्राय भी नहीं कि भाषा मुश्किल लिखी जाय, नहीं, उसका प्रवाह भावों के अनुकूल ही रहना चाहिए। आप निकली हुई और गढ़ी हुई भाषा छिपती नहीं। भावानुसारिणी भाषा कुछ मुश्किल होने पर भी समझ में आ जाती है[2]।

(आ) किसी भाव को जल्दी और आसानी से तभी हम व्यक्त कर सकेंगे जब भाषा पूर्ण स्वतन्त्र और भावों की सच्ची अनुगामिनी होगी[3]।

इन उद्धरणों में दो बातों पर बल दिया गया है—(अ) कवि को भावों के अनुसार ही भाषा का प्रयोग करना चाहिए, (आ) गम्भीर भावो की अभिव्यक्ति में भाषा का किंचित् क्लिष्ट हो जाना स्वाभाविक है। वस्तुतः वे काव्य-भाषा में कृत्रिमता लाने के विरुद्ध थे। इसीलिए संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रयोग का समर्थन करने पर भी उन्होंने जटिल शब्दावली को कविता का अनिवार्य गुण नहीं माना, अपितु वे भाषा की सहज स्वाभाविकता और उसकी सरल विभूति की ओर भी सजग रहे।

---

१. रवीन्द्र-कविता-कानन, पृष्ठ १४०।
२. विश्लेषण, जनवरी १९५८, पृष्ठ ३, 'साहित्य और भाषा' शीर्षक लेख।
३ चयन, पृष्ठ २६।

'निराला' ने काव्य-शिल्प के संयोजक तत्वों में से मुख्यतः मुक्त छन्द का विवेचन किया है। यद्यपि 'बेला' की भूमिका में उन्होंने फारसी-छन्द-शास्त्र के अनुसार गजल-रचना को स्वीकृति देकर उदारता का परिचय दिया, तथापि हिन्दी को उनकी देन मुक्त छन्द के क्षेत्र में ही मान्य है। इस सम्बन्ध में उनकी निम्नोक्त उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

(अ) मुक्त छन्द,
सहज प्रकाशन वह मन का—
निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र।[१]

(आ) मुक्त काव्य..........से साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।..........मुक्त छन्द भी अपनी विषम गति में एक ही साम्य का अपार सौन्दर्य देता है।..............................इस तरह की (छन्दोबद्ध) कविता अतुकान्त काव्य का गौरव-पद भले ही अधिकृत करती हो, वह मुक्त काव्य या स्वच्छन्द छन्द कदापि नहीं।..........मुक्त छन्द तो वह है, जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्त है।..........मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।[२]

(इ) मुक्त छन्द की रचना में मैंने भाव के साथ रूप-सौन्दर्य पर ध्यान रखा है, बल्कि कहना चाहिए ऐसा स्वभावतः हुआ, नहीं तो मुक्त छन्द न लिखा जा सकता, वहाँ कृत्रिमता नहीं चल सकती।[३]

(ई) मुक्त काव्य में वाह्य समता दृष्टिगोचर नहीं हो सकती, बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह में जो सुख मिलता है, उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध-धारा प्राणों को सुख-प्रवाह-सिक्त निर्मल किया करती है, वही इसका प्रमाण है।[४]

उपर्युक्त अवतरणों में दो बातों पर विशेष बल दिया गया है—(अ) हृदय में उठनेवाले भाव-प्रवाह की स्वाभाविकता को अक्षुण्ण रखने के लिए कवि मुक्त छन्द में शिल्प-रूढ़ियों से मुक्ति को अनिवार्य मानता है, (आ) वाह्य रूप से लघु-दीर्घ पंक्तियों की विषमता होने पर भी इस

---

१. परिमल, पृष्ठ २६४।
२. परिमल, भूमिका, पृष्ठ १४, १८ तथा २१।
३. प्रबन्ध-प्रतिमा, पृष्ठ २७५।
४ पन्त और पल्लव, पृष्ठ ४४।

छन्द में वर्ण-मैत्री और लय के फलस्वरूप काव्य-गति की अभिनन्दनीय स्वतन्त्रता रहती है। मुक्त छन्द के इस स्वरूप-निर्धारण में संस्कृत के 'विषम छन्द' और अँग्रेजी के 'फ्री वर्स' से समान रूप में लाभ उठाया गया है। छन्द-रूढ़ियों के त्याग से उनका अभिप्राय वर्णों अथवा मात्राओं की निश्चित संख्या एवं गण-क्रम के प्रति विरोध प्रकट करने से है। इसीलिए मुक्त छन्द में चरणों की संख्या एवं विस्तार के विषय में किसी निश्चित नियम को नहीं अपनाया गया है। लघु-दीर्घ पंक्तियों के वाह्य वैचित्र्य का यही रहस्य है, किन्तु उनमें लय-संस्कारों का अभाव नहीं होता। गेय गुण से युक्त होने के कारण इस छन्द में वर्ण-मैत्री अथवा ध्वनि-माधुरी पर आधृत विषयानुकूल शब्द-संगठन का आन्तरिक महत्व है। लय का निश्चयात्मक निर्वाह मुक्त छन्द का प्राण है, किन्तु लय-संस्कारों से प्राय अप्रत्यक्ष रूप से वर्णों एवं मात्राओं के क्रम का भी निर्धारण हो जाता है।[1] अतः यह स्पष्ट है कि मुक्त चन्द का आधार दोषपूर्ण नहीं है। काव्य-क्षेत्र में इस छन्द के प्रवर्तन का श्रेय 'निराला' को ही देना होगा। नूतन काव्य-पथ का निर्देश करने के कारण उन्हें प्रारम्भ में छन्द-प्रेमियों के वाक्-प्रहारों का भी सामना करना पड़ा। तथापि जन-जागरण की नवीन भूमिकाओं एवं जीवन-संघर्ष की मुक्त अभिव्यक्ति में इस छन्द ने जो सफलता प्राप्त की है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

मूल्यांकन—

आलोच्य कवि की काव्य-धारणाओं का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने भावना और कला के संयोजक उपादानों पर मौलिक रीति से विचार किया है। उन्होंने काव्य में भाव-गरिमा के संचार के लिये कवि को इन बातों की ओर ध्यान देने का परामर्श दिया है—(अ) काव्य में राष्ट्रीयता, युगचेतना और प्रकृतिगत जीवन को अनुभूति और चिन्तन के आधार पर स्वाभाविक, शिवत्वमय और सार्वभौम रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए, (आ) उसमें रस (आनन्द) की मधुर और ओज-सम्पन्न अभिव्यक्ति विशेष अभीष्ट है, किन्तु रीति भी कवि के लिए अनुपेक्षणीय है। इन धारणाओं में या तो पूर्ववर्तियों की स्थापनाओं पर मौलिक रीति से पुनर्विचार हुआ है अथवा विषय-सिद्धि को यज्ञ-विधायिनी मानने जैसी नवीनताओं का परिचय दिया गया है। उनकी

---

१ देखिए 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना', डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृष्ठ ४१२

अन्य उपपत्तियों का सम्बन्ध गीति-काव्य और शिल्प से है। हिन्दी-कवियों की शृंखला में गीति-काव्य का प्रथम तात्त्विक और प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करने का श्रेय उन्हीं को है। इस प्रसंग में काव्य के नाद-सौन्दर्य पर प्रकाश डालकर उन्होंने महत्वपूर्ण उद्‌भावना की है। रस को काव्य का प्राण मानने पर भी पदावली में नाद-संगीत की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी प्रकार मुक्त छन्द का सशक्त प्रवर्तन भी उनकी मौलिक विशेषता है। वस्तुतः उनका मुक्तछन्दात्मक काव्य छायावादी कवियों और उनके अन्य समकालीन कवियों के लिए सिद्धान्त और व्यवहार, दोनों की दृष्टि से आदर्शवत् रहा है। अतः यह सिद्ध है कि हिन्दी-काव्य-शास्त्र में 'निराला' का काव्य-चिन्तन ऐतिहासिक महत्व रखता है।

निराला के मुक्त छंद एवं उनका रचना-विधान

हिन्दी छंदों की स्वच्छन्दता का निराला-पूर्व रूप—

हिंदी और संस्कृत के छंद-विधान में मौलिक अन्तर है। हिंदी के छन्द मूलतया और मुख्यतया मात्रिक हैं। जो गणवृत्त (सवैये) अथवा मुक्तक (घनाक्षरी) आदि वर्णिक छन्द हिंदी में प्रयुक्त होते हैं, उनमें भी मात्रिक छंदों की सी लचक होती है और गुरु को लघुवत पढ़ने की छूट है। इसी प्रकार संस्कृत वर्ण-वृत्तानुगामिनी है। वहाँ मात्रिक छन्द बहुत कम हैं। मात्रिक एवं वर्णिक के इस अन्तर के अतिरिक्त एक और महान अंतर जो स्पष्टतया परिलक्षित होता है वह है तुक का। मात्रिक छन्द अन्त्यानुप्रासपूर्ण अथवा तुकान्त होते हैं, वार्णिक छन्द अन्त्यानुप्रास-हीन अथवा अतुकान्त। वर्ण-वृत्तों में अपना स्वतः का नाद-सौंदर्य होता है जो किसी अन्त्यानुप्रास का महताज नहीं। मात्रिक छन्दों में उस नाद-सौंदर्य की सृष्टि अन्त्यानुप्रासों द्वारा की जाती है।

अँग्रेजी के 'ब्लैक वर्स' (Blankverse) की देखादेखी हिंदी में जब अतुकान्त कविता का प्रारम्भ हुआ, तब लोगों ने अनुदारतापूर्वक उसका अनादर किया और कहा कि जो लोग तुकान्त कविता नहीं लिख सकते, वे ही सरलता के इस पथ की सृष्टि कर रहे हैं और यह अन्त्यानुप्रास-हीनता हिंदी की प्रकृति के प्रतिकूल है। आधुनिक युग में छन्दों के सम्बन्ध में जो पहली स्वच्छन्दता ली गयी, वह तुकों की इस हीनता की ही थी। हिंदी के आदिकाल में ही जगनिक ने यह स्वच्छदन्ता आल्हखंड की रचना में ले ली थी जिसका अनुकरण आज तक आल्हा गानेवाले और बीर छन्द की रचना करनेवाले बराबर लेते आये हैं। सोरठा छन्द भी अन्त्यानुप्रास हीन होता है, ऐसा किसी अंश तक कहा जा सकता है। कृष्णगढ़-नरेश महाराज सावतसिंह हरि-सबंध-नाम , ने 'बाल-

विनोद' नामक एक ग्रंथ दोहों में लिखा था। यह हास्यरस का ग्रंथ है औ आदि से अंत तक अतुकांत है। केवल कवि की ओर से जो कुछ कहा गय है वही सतुक है। सभा में सभी बालक बैठे हैं। मधुमंगल नायिका क वर्णन करता है। गबंदराम उस नायिका को देखना चाहते हैं। तब बाल वृन्द एक महिषी (भैंस) दिखाते हैं। ग्रन्थ की रचना संवत् १८०६ आश्विन शुक्ल ८ भृगुवार को हुई। इसका एक अंश देखें—

अथ नायका मुख बर्नन
मधु मंगल वाक्य—दोहा

बेंनी आई उलटि कें, रही भाल पर झूलि
मनौं जती के सीस पें, बैठे बगुला पाँति ॥३॥
फटक रंग की भौंह हैं, धूम धौरहर नैंनि।
मन मांनक चहलें परयौ, देखत चंचल कांन ॥४॥
पटकी ली सी नासिका, अधरावलि रहि झूलि।
दसन जीभ रहि लटकि कें, लखि अटक्यो मन मोर ॥५॥
आगे चिबुक कपोत परि, पीतरंग के केस।
मानौं कली अनारपरि, भँवर रहे लपटाय ॥६॥

आधुनिक युग में सबसे पहले भारतेन्दुकालीन पं० अम्बिकादत्त व्यास (१८१५-१८५७ वि०) ने अतुकांत कविता का असफल प्रयोग किया। इस तथ्य का उल्लेख आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास (पृष्ठ ५८६) में इन शब्दों में किया है—

"एक बार उन्होंने कुछ बेतुके पद्य भी आजमाइश के लिए बनाये थे पर इस प्रयत्न में उन्हें सफलता नहीं दिखाई पड़ी थी, क्योंकि उन्होंने हिंदी का कोई प्रचलित छन्द लिया था।"

संस्कृत के वर्ण-वृत्त संस्कृत में बराबर अन्त्यानुप्रासहीन रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। हिन्दी की प्रवृत्ति यद्यपि छन्दों की रही है, पर आदि काल से ही वर्णवृत्तों का प्रयोग भी होता आया है, भले ही वह उल्लेखनीय मात्रा में न हो। चन्दबरदाई के रासो में भुजंगी आदि व्यवहृत हैं। नागरीदास ने भी यत्रतत्र इस छन्द का प्रयोग किया है। आधुनिक युग में आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत के वृत्तों का बहुत प्रयोग किया। यहाँ दो बातें ध्यान देने की हैं, पुराने कवियों ने गण-वृत्तों के प्रयोग में गणों का कड़ाई से पालन नहीं किया है। शब्दों का रूप भी उन्हें विकृत करना पड़ा है। द्विवेदी जी ने गण-वृत्तों का छन्द की दृष्टि से शुद्ध प्रयोग किया है। हिंदी में जब भी किसी कवि ने गणवृत्तों का उपयोग किया, उसने उन्हें

हिंदी की तुकान्त-प्रवृत्ति के अनुसार तुकान्त रूप दिया। छन्द के प्रथम दो चरणों का एक तुक और तीसरे और चौथे चरण का दूसरा तुक। आचार्य द्विवेदी ने गण-वृत्तों का जो बहुत प्रयोग किया, उसमें यही तुक-प्रणाली स्वीकार की गयी थी। 'द्विवेदी काव्य-माला' (पृष्ठ २९१-'९५) में एक ही कविता 'हे कविते!' है जो अन्त्यानुप्रासहीन है और संस्कृत-पद्धति पर है। यह रचना जून १९०१ की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी और सम्भवतः हिंदी की वर्ण-वृत्तों में लिखी पहली अतुकान्त कविता थी। उदाहरण के लिए इसका एक छंद लें—

'सुरम्य रूपे! रस राशि रंजिते!
विचित्रवर्णाभरणे कहाँ गई?
अलौकिकानन्द विधायिनी महा
कवीन्द्र-कान्ते कविते! अहो कहाँ?

संस्कृत के गणवृत्तों के एवं उनके अनुप्रासहीन रूप के प्रयोग का प्रथम विशाल प्रयोग कविसम्राट अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' (१९०९-'१४ ई०) में हुआ। फिर तो अतुकान्त गण-वृत्तों का द्वार खुल गया और अनूपशर्मा ने 'सिद्धार्थ' तथा 'वर्द्धमान' जैसे महाकाव्य इसी शैली में प्रस्तुत किये। अन्य लोगों ने भी ऐसे अनेक सफल प्रयास किये।

संस्कृत के 'गण-वृत्त' तो अतुकान्तता के उपयुक्त हैं ही, उनकी यह परम्परा ही रही है, उन्हें अतुकान्त साँचे में ढालना कठिन नहीं था। मात्रिक छन्दों को अतुकान्त रूप देने के प्रयास में संस्कृत के पंडित अंबिका दत्त व्यास को विफलता ही हाथ लगी थी, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। मात्रिक छन्दों को अतुकांत रूप देने का दूसरा प्रयास जयशंकर 'प्रसाद' द्वारा हुआ। उन्होंने २१ मात्राओं के अरिल्ल छन्द को अतुकान्त रूप में सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया। उनकी इस प्रकार की पहली रचना 'भरत' नाम की है, जो जनवरी १९१३ के 'इन्दु' (कला ४, खण्ड १, किरण १) में सर्वप्रथम प्रकाशित हुई थी। स्पष्ट ही यह १९१२ की रचना है। इसका एक अंश यह है—

हिम गिरि का उत्तुंग शृंग है सामने
खड़ा बताता है भारत के गर्व को,
पड़ती इस पर जब माला रवि-रश्मि की
मणिमय हो जाता है नवल प्रभात में।

'बाद में प्रसाद जी ने इस छन्द में अनेक चतुर्दशपदियों एवं 'करुणालय' तथा 'महाराणा का महत्व' काव्य की सृष्टि की। शीघ्र ही प्रसाद जी ने एक और हिंदी छन्द का अतुकान्त प्रयोग अपने प्रसिद्ध काव्य 'प्रेम-पथिक' में किया। इसमें ३० मात्राओं का ताटंक या लावनी छन्द प्रयुक्त हुआ है। इस छन्द के अन्त में सदैव गुरु होना है। इस तुक के आगे यदि एक लघु जोड़ दिया जाय तो यह वीर अथवा आल्हा छन्द बन जाता है और वीर छन्द तो अपनी अतुकान्तता के लिए अपनी उपयुक्तता आदि काल से सिद्ध करता ही आ रहा है। इस ग्रन्थ का एक अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

> इस पथ का उद्देश्य नहीं है, श्रान्त भवन में टिक रहना
> किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं
> अथवा उस आनन्द भूमि में जिसकी सीमा कहीं नहीं
> यह जो केवल रूप-जन्य, है मोह, न उसका स्पर्धी है,
> यही व्यक्तिगत होता है—पर प्रेम उदार, अनन्त अहो
> उसमें इसमें शैल और सरिता का सा कुछ अन्तर है।'

प्रेम-पथिक का प्रथम संस्करण माघ शुक्ल ५ सं०१९७० वि० (जनवरी १९१४ ई०) में प्रकाशित हुआ था।

प्रसाद जी ने अपनी इन अतुकान्त रचनाओं के द्वारा अनुकान्तता के अतिरिक्त छन्द की स्वच्छंदता में एक और भी योग दिया। अभी तक हिंदी में जितनी भी रचनायें हुई थीं, सबमें अर्थ की समाप्ति चरणान्त में हो जाती थी और चरणान्त में पूर्ण विराम रख दिया जाता था। हिन्दी में पूर्ण विराम के अतिरिक्त और कोई विराम पहले होता भी नहीं था। ऐसे चरण अंग्रेजी में 'स्टाप्ड-ऐट' (Stopped-at) कहलाते हैं। अंग्रेजी में एक दूसरे प्रकार के भी चरण 'ब्लैंक-वर्स' (Blank Verse) में प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें 'रन-आन' (Run-on) कहा जाता है। इन्हें हिंदी में 'अचल-चरण' एव 'चल-चरण' नाम दिया जा सकता है। चल चरणों में विराम चिह्नों का प्रयोग चरण के अंत के अनुसार न होकर अर्थ के अनुसार होता है और पूर्ण विराम चरण के मध्य में भी पड़ सकता है। प्रसाद जी ने अपनी अतुकान्त रचनाओं के द्वारा चल चरणों का भी प्रवेश हिंदी जगत में किया।

अभी तक सामान्यतया चार-चार चरणों के छन्द (Stanza) स्वीकृत थे अधिक चरणों वाले छन्द विषम माने जाते थ। 'प्रसाद' ने अपने इन

ग्रंथों द्वारा छंद की इस सीमा को भी तोड़ा। इन अतुकान्त छंदों के बंदो की चरण-संख्या का कोई नियत परिमाण नहीं। वे अनिश्चित चरणों के होते हैं। जहाँ भी भाव समाप्त हो जाता है; अनुच्छेदों के समान ये पद भी वहीं समाप्त हो जाते हैं। इस दृष्टि से ये छंद विषम कोटि में आयँगे।

मुक्त छन्द के सम्बन्ध में निराला के विचार—

छंद को स्वच्छंद करने में सर्वाधिक योग 'निराला' जी ने दिया। 'निराला' जी पर गंगाप्रसाद पाण्डेय ने जो विशाल ग्रंथ 'महाप्राण निराला' नाम से प्रस्तुत किया है, उनके अनुसार 'जुही की कली' निराला जी की पहली रचना है और इसका रचनाकाल सन् १९१६ ई० है, यद्यपि यह रचना पर्याप्त बाद में प्रकाश में आई। 'अपरा' में भी इसका यही रचनाकाल दिया गया है। निराला जी ने तब अपना यह नाम नहीं रखा था। निराला जी जब आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की संस्तुति पर रामकृष्ण आश्रम से निकलने वाले दार्शनिक मासिक पत्र 'समन्वय' के सम्पादक होकर कलकत्ता गये, तब इनका सम्पर्क महादेव सेठ से हुआ। 'महावीर' के पश्चात् 'महादेव' ने सूर्यकान्त की प्रतिभा पहचानी। उस समय तक 'निराला' जी की निराली रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं से अस्वीकृत होकर लौट आया करती थीं। महादेव सेठ ने इस कवि को प्रकाश में लाने के लिए ही 'मतवाला' निकाला और 'मतवाला' के वजन पर कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी ने अपना उपनाम 'निराला' रखा। इसी में पहली बार उनकी निराली रचनायें प्रकाशित हुईं, जिन्हें उन्होंने 'मुक्त-छंद' की संज्ञा दी। छंद-जगत् में निराला जी की ये रचनायें क्रांति उत्पन्न करने वाली थीं। 'निराला' की निराली रचनाओं का एक लघु संग्रह १९२२ ई० में 'अनामिका' नाम से निकला था। पर हिंदी जगत् ने उसका स्वागत नहीं किया। १९२९ ई० में निराला जी का दूसरा काव्य-संग्रह 'परिमल' निकला। 'परिमल' में उक्त 'अनामिका' की प्रायः सारी अच्छी रचनायें संकलित कर ली गयीं; अधूरी निकाल दी गयीं। इसके सात वर्ष पश्चात् १९३६ ई० में कवि का गीत-संग्रह 'गीतिका' छपा। पर कवि को 'अनामिका' नाम कुछ इतना प्रिय था कि उसने १९३७ ई० में इसी नाम से अपना सबसे बड़ा और प्रौढ़तम काव्य संग्रह पुनः प्रस्तुत किया। इस 'अनामिका' में प्रथम 'अनामिका' का कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं, सिवा नाम के। यह नाम भी कवि ने पुनः इसलिए स्वीकार किया क्योंकि वह इस ग्रंथ को अपने परम प्रिय मित्र महादेव सेठ को समर्पित करना चाहता था और उसने ऐसा किया भी

.प्रथम काव्य संग्रह 'अनामिका' का आलोचकों ने आदर नहीं किया। उसमें प्रयुक्त छंद को 'रबर छंद', 'केंचुआ छंद', 'स्वच्छंद छंद' कह कर उन्होंने उसकी हँसी उड़ाई। वे इस छंद को छंद मानने के लिए तैयार नहीं थे, किन्तु नामकरण करने में सबसे आगे थे और नाम में 'छंद' शब्द जोड़कर एक तरह से जान-अनजान में इसे छंद स्वीकार कर ही लेते थे। इसी लिए 'परिमल' की भूमिका में निराला जी ने मुक्त छंद के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार किया और विरोधियों को उत्तर भी दिये। निराला जी के कथन का सार यह है—

"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना। मुक्त काव्य साहित्य के लिए कभी अनर्थकारी नहीं होता। उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है। प्रसिद्ध गायत्री मंत्र मुक्त छंद में है। वेदों के ९५ फी सदी मंत्र मुक्त हृदय के परिचायक हैं—चरण परस्पर असमान; कविता तीन-तीन और पाँच-पाँच सतरों की भी"। 'निराला' जी ने वेद से ऐसे उदाहरण उद्धृत भी किये थे।

तदनंतर निराला जी ने हिंदी के अतुकांत छंदों पर विचार किया और उनके चार प्रकार दिखलाये। पहला प्रकार प्रसाद द्वारा प्रवर्तित २१ मात्राओं के अरिल्ल छंद का है; जिसका बहुल प्रयोग पं० रूपनारायण पाण्डेय ने अपने बँगला से अनूदित काव्यों में किया। दूसरा प्रकार वह है जिसे मैथिलीशरण जी गुप्त ने अपने बँगला से अनूदित 'वीरांगना' में प्रस्तुत किया। यह भिन्न अतुकान्त वर्णिक है। प्रत्येक चरण में १५ वर्ण हैं। यह वस्तुतः कवित्त के चरणों का उत्तरार्द्ध है। अन्तिम वर्ण सदैव गुरु है। यह हिंदी के लिए कोई नया छंद नहीं है। इसका उपयोग तुलसी आदि भक्त कवियों ने भी किया है। अन्तर केवल तुकान्त-अतुकान्त का है। उदाहरण के लिए विनय-पत्रिका का यह पद देखिए—

कहाँ जाउँ ? कासों कहौं ? कौन सुनै दीन की ?
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीन की ।।
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधार को अधार गुनगन तेरे हैं ।।
गजराज काज खगराज तजि धायो को ?
मोसे दोष-कोस पोसे, तोसे माय जायो को ।।

मोसे क्रूर कायर कुपूत कौडी आध को।
किए बहुमोल तू करैया गीध साध को।।
'तुलसी' की तेरे ही बनाये बलि बनैगी।
प्रभु की विलम्ब अंब दुख दोष जनैगी।।१७९।।

विनय पत्रिका के ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७३, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२ आदि संख्यक पद इसी छंद में हैं। इस छंद का मैथिली शरण जी द्वारा लिखित और 'निराला' जी द्वारा उद्धृत अतुकांत रूप देखिये—

सुनो अब दुःख कथा! मंदिर में मन के
रख यह श्याम मूर्ति—त्यागिनी तपस्विनी
पूजे इष्टदेव को ज्यों निर्जन गहन में—
पूजती थी नाथ को मैं। अब विधि दोष से
चेदीश्वर राजा शिशुपाल जो कहाता है
लोक रव सुनाती हूँ, हाय! वर वेश से
आ रहा है शीघ्र यहाँ बरने अभागी को।

इसी छन्द का प्रयोग मैथिली बाबू ने 'मेघनाद-वध' (१९२७ ई०) में भी किया है। आगे चलकर हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र ने भी इसी छन्द का उपयोग अपने अपूर्ण प्रकाशित महाकाव्य 'सेनापति कर्ण' में किया। पर मिश्र जी को भ्रम है कि उन्होंने यह रचना मात्रिक छन्दों में की है। भक्त-गोष्ठी के एक अधिवेशन में मिश्र जी ने अपने अप्रकाशित ग्रंथ के कुछ अंश पढ़े थे। मैंने उस समय इसे मुक्त-वर्ण-वृत्त कहा था। मिश्र जी ने कहा था, 'यह मात्रिक छन्द है, यही आप लोग विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं ?' अस्तु।

'निराला' जी ने तीसरे प्रकार के अतुकांत में 'प्रियप्रवास' के छन्दों का उल्लेख किया है और चौथे प्रकार के भी एक १९ मात्राओं के अतुकान्त का उल्लेख उन्होंने किया है। 'निराला' जी के अनुसार इस प्रकार के अतुकान्त छन्द के प्रथम प्रयोक्ता सियारामशरण गुप्त हैं। उनकी ऐसी रचना पहली बार 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी और इसी छन्द में सुमित्रानन्दन 'पंत' ने भी अपना प्रसिद्ध प्रेम-काव्य 'ग्रंथि' लिखा है जिसकी दो पंक्तियाँ ये हैं—

विरह अहह कराहते इस शब्द को
निठुर विधि ने आँसुओ से है लिखा।

अतुकान्त कविता के एक पाँचवें प्रकार का भी उल्लेख 'निराला' जी ने किया है। यह प्रयोग महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' द्वारा किया गया था। इसकी गति कवित्त छन्द की सी है। हर एक पद आठ-आठ वर्णों का होता है। 'मेरे पंख मुरदार'—इस तरह हर पंक्ति में आठ-आठ अक्षर रहते हैं।

इस प्रकार अतुकांत कविता हिन्दी गण, मात्रा और वर्ण, तीनों वृत्तों में हुई है। 'निराला' जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं, "इस प्रकार की कविता अतुकान्त काव्य का गौरव-पद भले ही अधिकृत करती हो, वह मुक्त काव्य या स्वच्छंद छंद कदापि नहीं। जहाँ मुक्ति रहती है वहाँ बंधन नहीं रहते, न मनुष्यों में न कविता में। यदि किसी प्रकार का शृंखलाबद्ध नियम कविता में निकलता गया तो वह कविता उस शृंखला से जकड़ी हुई ही होती है। अतएव उसे हम मुक्ति के लक्षणों में नहीं ला सकते। मुक्त छद तो वह है जो छंद की भूमि में रहकर भी मुक्त है। इस प्रकार की कवितायें 'परिमल' के तृतीय खण्ड में संकलित हैं। उनमें नियम कोई नहीं। केवल प्रवाह कवित्त छंद का सा जान पड़ता है। कहीं कहीं आठ अक्षर आप ही आप आ जाते हैं। मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छंद सिद्ध करता है और उसका नियमराहित्य उसकी मुक्ति। हिन्दी में मुक्त काव्य कवित्त छंद की बुनियाद पर सफल हो सकता है। नाटकों में सबसे अधिक रोचकता इसी कवित्त की बुनियाद पर लिखे गये स्वच्छन्द छन्द द्वारा आ सकती है। स्वच्छन्द छन्द नाटक पात्रों की भाषा के लिए ही है, यों चाहे उसे जो कुछ भी लिखा जाय"।

'परिमल' की भूमिका में 'निराला' जी ने इस प्रकार अपने मुक्त छंद या स्वच्छंद छंद का रहस्य-भेद कर दिया है। उसकी कुंजी है हिंदी का प्रसिद्ध छंद कवित्त।

निराला के मुक्त छंद पर विचार—

'छंदः प्रभाकर' में छन्द का लक्षण यों दिया गया है—

"मात्रा, वर्ण की रचना, विराम, गति का नियम और चरणान्त में समता जिस कविता में पायी जाती है उसे छंद कहते हैं।"

उक्त लक्षणों में गति का नियम ही प्रधान है। जिसने 'निराला' जी के मुख से इस निराले छंद का पाठ श्रवण किया है, वह जानता है कि इस छंद में कितनी गति है, कितनी संगति है। मात्रा, वर्ण की रचना, विराम और में समता जिन छंदों में नहीं होती उनके लिए

पिंगलाचार्यों को एक और नाम ढूँढ़ना पड़ा है और इस प्रकार की स्वच्छंदता का उपभोग करने वाले छंद विषम के अन्तर्गत आते हैं। 'छन्दः प्रभाकर' में लिखा है—

"मात्रिक विषम छंद उसे कहते हैं जिसके चारों चरणों की मात्रा अथवा नियम भिन्न-भिन्न होते हैं या जिसके सम-सम एवं विषम विषम पद न मिलते हों इसी प्रकार जिसके विषम-विषम पद मिलते हों, परन्तु सम-सम न मिलते हों अर्थात् जो छंद मात्रिक सम अथवा मात्रिक अर्द्धसम न हों, वही मात्रिक विषम हैं। चार चरणों से कम अर्थात् तीन वा चार चरणों से अधिक चरण जिन छंदों में हों उनकी भी गणना विषम छन्दों में होती है।

'जब चारों वर्णों की मात्रिक संख्या एक समान हो तो वह छंद अर्द्ध-सम या विषम न कहायेंगे। परन्तु वर्णवृत्तों में इसके विपरीत वर्ण-संख्या एक समान रहने पर भी अर्द्धसम या विषम वृत्त हो सकते हैं"—'छंदः प्रभा-कर', पृष्ठ १७६"

"विषम छंद अथवा विषम वृत्त की यह भी पहचान है कि जो सम अथवा अर्द्धसम न हों वही विषम हैं"—'छन्दः प्रभाकर', पृ० २८०।

इस प्रकार गति ही एक ऐसी बात है जो गद्य और पद्य में अंतर डालती है। वर्णिक विषम में भी यहीं बात होती है। वहाँ चारों चरणों में वर्णों की संख्या समान हो सकती है, किन्तु गणों का विभेद यह भेद डाल देता है। इस प्रकार 'जुही की कली', 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'पंचवटी-प्रसंग' आदि को विषम वृत्त के अंदर ले सकते हैं।

अब मुक्त छंद के व्याकरण पर विचार करना चाहिए। जैसा कि देखने ही से प्रकट होता है, इसकी कोई पंक्ति दो वर्णों की है और कोई सोलह की अर्थात् इसमें रबर की सी लचक और केंचुए की बढ़ने-घटने की क्षमता है। अतः रबर छंद अथवा केंचुवा छंद, दोनों यथा गुणः तथा नामः हैं।

इस छंद के अन्तर में हिंदी का एक अत्यन्त प्रसिद्ध छंद कवित्त काम कर रहा है। घनाक्षरी, मनहर अथवा कवित्त ३१ वर्णों का एक दण्डक है, जिसमें १६, १५ वर्णों पर विराम होता है। इस मुक्त छंद में घनाक्षरी के चरण के चरण उठाकर रख दिये जाते हैं जैसा कि 'प्रसाद' जी ने 'प्रलय की छाया' में ये दो पंक्तियाँ प्रयुक्त की हैं

आ आकर चूम लेतीं अरुण अधर मेरा।
जिसमें स्वयं ही मुसकान खिल पड़ती।

आधे चरण तो प्रायः सर्वत्र बिखरे रहते हैं। छोटे से छोटे चरण कम से कम दो वर्णों के हैं। यों तीन, चार, पाँच, दस, चौदह आदि किसी भी संख्या के अक्षरों के चरण इन कविताओं में मिल जायँगे। किन्तु जैसा कि कहा गया है, उनमें गति होनी चाहिए। उदाहरणार्थ 'अनामिका' की प्रथम 'प्रेयसी' का प्रारंभ का अंश देखिए—

घेर अंग अंग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की
ज्योतिर्मयि-लता-सी हुई मैं तत्काल
घेर निज नद-तन।
खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगंध के,
प्रथम बसंत में गुच्छ गुच्छ।
दृगों को रँग गई प्रथम प्रणय रश्मि—
चूर्ण हो विच्छुरित
विश्व ऐश्वर्य को स्फुरित करती रही
बहु रंग-भाव भर
शिशिर ज्यों पत्र पर कनक प्रभात के
किरण संपात से।

प्रथम चरण में ७, द्वितीय में १५, तृतीय में १३, चतुर्थ ८ पंचम में १५, षष्ठ में ११, सप्तम में १५, अष्टम में ७, नवम में १४, दशम में ८, एकादश में १५ और द्वादश में ७ वर्ण हैं। यहाँ न तो मात्राओं का विचार है, न वर्णों की संख्या का; केवल गति के प्रवाह का विचार है। यह छंद वर्णिक मुक्तक के अन्तर्गत आयगा।

'विशाल भारत', जनवरी' ३८ के अंक में एक कवित्त निकला था, जिसकी प्रथम पंक्ति है—

झूम झूम हरित लता की मंजु गोद मध्य
सौरभ से भरकर रम्य उपवन को,

यह पूरी की पूरी पंक्ति मुक्त छंद में इसी रूप में रखी जा सकती है। उक्त पंति से तोड़ तोड़ कर कम से कम इतनी पंक्तियाँ और बनायी जा सकती हैं—

(१) वन को
(२ उपवन को

(३) पवन को
(४) रम्य उपवन को
(५) कर रम्य उपवन को
(६) भर कर रम्य उपवन को
(७) सौरभ से भर कर रम्य उपवन को
(८) सौरभ से भर कर
(९) हरित लता की मंजु
(१०) झूम झूम
(११) लता की मंजु गोद मध्य
(१२) हरित लता की मंजु गोद मध्य
(१३) झूम झूम हरित लता की मंजु गोद मध्य
(१४) गोद मध्य
(१५) मंजु गोद मध्य

ये सब केवल गति पर निर्भर करती हैं। यह गति कवित्त के अन्तिम शब्दों की—बन को, पवन को, उपवन को आदि आदि उठाकर रख देने से अपने आप आ जाती है अथवा कवित्त के चरणों के चार अष्टकों में से कोई अष्टक उठाकर रख देने से भी। गति, लय के लिए संयुक्ताक्षरों का प्रयोग अवांछनीय है। वे ऐसे जान पड़ते हैं जैसे ओजस्विनी के पथ में कोई वज्र कठोर चट्टान। उदाहरणार्थ 'प्रसाद' की 'प्रलय की छाया' की यह पंक्ति—

निर्जन जलधि बेला रागमयी संध्या से

इस चरण में 'निर्जन' शब्द का प्रयोग अत्यन्त कर्ण कटु मालूम होता है और गति में वाधा देता है और संध्या को यदि 'सनध्या' पढ़ा जाय तो गति और ठीक हो जाती है।

एक चरण में १६ से भी अधिक वर्ण रखे जा सकते हैं, किन्तु एक साथ कई ऐसे चरण न रखे जायँ अन्यथा वे वस्तुतः दण्डक हो जायँगे। चरणों की लम्बाई भावपूर्णता पर निर्भर करती है। 'दिल्ली' (अनामिका) में निम्नांकित पंक्तियों में १५ से अधिक वर्ण हैं—

(१) अविश्वस्त संज्ञाहीन पतित आत्मविस्मृतकर—१८ वर्ण।
(२) बदले किरीट जिसने सैकड़ों महीप-भाल ?—१७ वर्ण।
(३) मुग्ध हो रहे थे जहाँ प्रिय मुख अनुरागमय ?—१८ वर्ण।
(४) कहती सुकुमारियाँ थीं कितनी ही बातें जहाँ १७ वर्ण

निराला जी ने मुक्त छन्द को यत्र-तत्र तुकान्त रूप भी दिया है जैसे 'अनामिका' में संकलित 'सेवा-प्रारंभ'—

अल्प दिन हुए
भक्तों ने राम कृष्ण के चरण छुये
जगी साधना
जन जन में भारत की नवाराधना।

यह छन्द कवित्त के आधार पर नहीं है।

पश्चात्कालीन अन्यों के मुक्त छन्द—

छायावादी युग के प्रारम्भ में ही निराला जी ने अपने मुक्त छंदों का सर्जन किया। पहले उनका घोर विरोध हुआ, उपहास हुआ; पर बाद में लोगों ने उनका अनुकरण प्रारम्भ किया। इस छंद पर उस समय प्रामाणिकता की मुहर लग गयी, जब प्रसाद जी ऐसे समर्थ कवि ने 'प्रलय की छाया', 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' और 'पेशोला की प्रतिध्वनि' में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया। प्रसाद जी की उक्त तीनों रचनायें 'लहर' के अन्त में संकलित हैं। छायावाद युग के पश्चात् कुछ समय के लिए प्रगतिवाद-युग आया था, उसके बाद प्रयोगवाद और नयी कविता का काल आया। प्रयोगवाद और नई कविता के इस युग में तो उक्त छंद का धड़ल्ले से प्रयोग होता रहा है। नये कवियों पर तो इस छन्द का असाधारण मोह छा गया है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि या तो वे सीधे-सादे छन्दों को मुक्तछन्द घोषित कराने के लिए चरणों को तोड़-तोड़कर लिख देते हैं अथवा छन्द के रचना-तंत्र से अनभिज्ञ रहने के कारण विशुद्ध गद्य को मुक्त छन्द के नाम से प्रचारित-प्रसारित करना चाहते हैं। हँसी तब आती है जब वे इन रचनाओं को कवि-सम्मेलनों में भी पढ़ने का साहस करते हैं। दूसरे प्रकार के उदाहरण तो आज की पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः मिल जाते हैं; अतएव यहाँ केवल पहले प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

विजन रेती
पार अंकित शीर्ण सरिलेखा
कुछ क्षणों को रह गया
वह दूर दृश्य अनदेखा
हो उठी दृढ़ उँगलियों की फाँस
गति ढीली
जमी

(३) पवन को
(४) रम्य उपवन को
(५) कर रम्य उपवन को
(६) भर कर रम्य उपवन को
(७) सौरभ से भर कर रम्य उपवन को
(८) सौरभ से भर कर
(९) हरित लता की मंजु
(१०) झूम झूम
(११) लता की मंजु गोद मध्य
(१२) हरित लता की मंजु गोद मध्य
(१३) झूम झूम हरित लता की मंजु गोद मध्य
(१४) गोद मध्य
(१५) मंजु गोद मध्य

ये सब केवल गति पर निर्भर करती हैं। यह गति कवित्त के अन्तिम शब्दों की—बन को, पवन को, उपवन को आदि आदि उठाकर रख देने से अपने आप आ जाती है अथवा कवित्त के चरणों के चार अष्टकों में से कोई अष्टक उठाकर रख देने से भी। गति, लय के लिए संयुक्ताक्षरों का प्रयोग अवांछनीय है। वे ऐसे जान पड़ते हैं जैसे ओजस्विनी के पथ में कोई वज्र कठोर चट्टान। उदाहरणार्थ 'प्रसाद' की 'प्रलय की छाया' की यह पंक्ति—

निर्जन जलधि बेला रागमयी संध्या से

इस चरण में 'निर्जन' शब्द का प्रयोग अत्यन्त कर्ण कटु मालूम होता है और गति में बाधा देता है और संध्या को यदि 'सनध्या' पढ़ा जाय तो गति और ठीक हो जाती है।

एक चरण में १६ से भी अधिक वर्ण रखे जा सकते हैं, किन्तु एक साथ कई ऐसे चरण न रखे जायँ अन्यथा वे वस्तुतः दण्डक हो जायँगे। चरणों की लम्बाई भावपूर्णता पर निर्भर करती है। 'दिल्ली' (अनामिका) में निम्नांकित पंक्तियों में १५ से अधिक वर्ण हैं—

(१) अविश्वस्त संज्ञाहीन पतित आत्मविस्मृतकर—१८ वर्ण।
(२) बदले किरीट जिसने सैकड़ों महीप-भाल ?—१७ वर्ण।
(३) मुग्ध हो रहे थे जहाँ प्रिय मुख अनुरागमय ?—१८ वर्ण।
(४) कहती सुकुमारियाँ थीं कितनी ही बातें जहाँ १७ वर्ण।

निराला जी ने मुक्त छन्द को यत्र-तत्र तुकान्त रूप भी दिया है जैसे 'अनामिका' में संकलित 'सेवा-प्रारंभ'—

अल्प दिन हुए
भक्तों ने राम कृष्ण के चरण छुये
जगी साधना
जन जन में भारत की नवाराधना।

यह छन्द कवित्त के आधार पर नहीं है।

पश्चात्कालीन अन्यों के मुक्त छन्द—

छायावादी युग के प्रारम्भ में ही निराला जी ने अपने मुक्त छंदों का सर्जन किया। पहले उनका घोर विरोध हुआ, उपहास हुआ; पर बाद में लोगों ने उनका अनुकरण प्रारम्भ किया। इस छंद पर उस समय प्रामाणिकता की मुहर लग गयी, जब प्रसाद जी ऐसे समर्थ कवि ने 'प्रलय की छाया', 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' और 'पेशोला की प्रतिध्वनि' में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया। प्रसाद जी की उक्त तीनों रचनायें 'लहर' के अन्त में संकलित हैं। छायावाद युग के पश्चात् कुछ समय के लिए प्रगतिवाद-युग आया था, उसके बाद प्रयोगवाद और नयी कविता का काल आया। प्रयोगवाद और नई कविता के इस युग में तो उक्त छंद का धड़ल्ले से प्रयोग होता रहा है। नये कवियों पर तो इस छन्द का असाधारण मोह छा गया है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि या तो वे सीधे-सादे छन्दों को मुक्तछन्द घोषित कराने के लिए चरणों को तोड़-तोड़कर लिख देते हैं अथवा छन्द के रचना-तंत्र से अनभिज्ञ रहने के कारण विशुद्ध गद्य को मुक्त छन्द के नाम से प्रचारित-प्रसारित करना चाहते हैं। हँसी तब आती है जब वे इन रचनाओं को कवि-सम्मेलनों में भी पढ़ने का साहस करते हैं। दूसरे प्रकार के उदाहरण तो आज की पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः मिल जाते हैं; अतएव यहाँ केवल पहले प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

विजन रेती
पार अंकित शीर्ण सरिलेखा
कुछ क्षणों को रह गया
वह दूर दृश्य अनदेखा
हो उठी दृढ़ उँगलियों की फाँस
गति ढीली
उगी

अधरों पर कुटिल
मुसकान की रेखा।

—स्वर्गीय सूर्यप्रतापसिंह कृत 'आस्था', पृष्ठ ७।

नौ चरणों में लिखी गई मुक्त छन्द का अभास प्रकट करनेवाली यह रचना वस्तुतः चार चरणों का यह छन्द है—

विजन रेती पार अंकित, शीर्ण सरि लेखा
कुछ क्षणों को रह गया वह, दृश्य अनदेखा
हो उठी दृढ़ उँगलियों की, फाँस गति ढीली
उगी अधरों पर कुटिल मुसकान की रेखा।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में २३ मात्रायें हैं, चौदहवीं मात्रा पर यति है। तुक-प्रणाली रुबाई की है, चरण १, २, ४ का एक तुक; तृतीय चरण बेतुका। चतुर्थ चरण में यतिभंग दोष है। मुसकान का 'मुस' एक ओर रह गया है और 'कान' कट कर दूसरी ओर चला गया है।

समर्थ कवियों ने निराला द्वारा चलाई कवित्त पद्धति के मुक्त छन्दों के अतिरिक्त अन्य छन्दों की भी उद्भावना की है। 'तार-सप्तक' के किसी कवि ने—नाम स्मरण नहीं आ रहा है—सवैयों को मुक्त छन्द में सफलतापूर्वक ढाल दिया है। आज तो 'निराला' द्वारा प्रचलित मुक्त छंद दिग्विजयी है।

निराला के अक्षर-मात्रिक मुक्त-छन्द

नवीन छन्दों के प्रयोग की दृष्टि से निराला जी का योग-दान सर्व-स्वीकृत है। विशेषतः मुक्त छन्दों के प्रयोग में वे प्रवर्त्तक-रूप में मान्य हैं और उन्हीं के कृतित्व में इन छन्दों को अभिनन्दनीय विकास-स्थिति भी प्राप्त हुई है। इन छंदों का शास्त्रीय अध्ययन 'आधुनिक हिंदी-काव्य में छंद योजना' के चतुर्थ अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रसंग में अन्त्यानु-प्रास-मुक्त वृत्त-प्रयोग और अतुकांत मात्रिक छन्दों के प्रयोग की, खड़ीबोली कविता की विशद परम्परा का भी निर्देश है, जिससे निराला जी के संस्कारों का निर्माण हुआ था। 'परिमल' की भूमिका में स्वयं निराला जी ने संक्षेप में इस परम्परा का निर्देश किया है और अप्रत्यक्षतः उस ऋण को स्वीकार किया है। उस पीठिका को विस्तार से पुनरावृत्त करना इष्ट नहीं है। पर संक्षेप में यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्रतिभा कितनी ही बड़ी क्यों न हो, बिना भूमि के वह अवतरित नहीं हो सकती। 'मेघनाद-वध' के अनुवाद में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने घनाक्षरी के उत्तरार्द्ध के १५ वर्णों की इकाई के आधार पर सफल पदान्तर प्रवाही प्रयोग करके मुक्तक वर्णिक छन्दों की प्रयोग-सम्भावनाओं का द्वार खोला था। प्रस्तुत लेखक ने इसे 'मैथिली' छन्द नाम दिया है। सूर और तुलसी तुकान्त के साथ ऐसे प्रचुर प्रयोग कर चुके थे और इसके लिए वे ध्रुपद के गायकों और संगीत-परंपरा के ऋणी थे। मध्यकालीन परम्परा से भी पूर्ववर्ती इस छंद की लम्बी परम्परा है, जो साहित्य और संगीत के परस्पर अनुभावन से विकसित होती रही थी, पर उसका निर्देश अवान्तर उपस्थित करेगा। निराला जी ने अपने वर्णिक मुक्तक छन्दों में घनाक्षरी के उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध चरणों की पूरी और आधी लयों का संयोग-विनियोग पर्याप्त रूप में किया है, जिसका संक्षिप्त शास्त्रीय निर्देश आगे किया जायेगा इसके

पहले हरिऔध जी 'प्रिय-प्रवास' में वृत्त-प्रयोग करके अन्त्यानुप्रास के अनुशासन से मुक्ति प्रदान कर चुके थे। इसके अतिरिक्त भिन्न तुकान्त मात्रिक छन्दों का प्रयोग हो चुका था। प्रसाद जी और पं० रूपनारायण पांडेय जी ने प्लावंगम छंद (८+८+५ मात्राएँ, अन्त में रगण या उसका प्रस्तार एवं आदि के दोनों अष्टक सम-प्रवाही) का अतुकान्त एवं अवतरण-बद्ध रूप में प्रयोग किया था। नाटककार पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने सन् १८ की 'प्रतिभा' पत्रिका में 'कंटक' कविता में अतुकान्त सखी छंद (१४ मात्राएँ समप्रवाही, त्रिकलारंभ निषेध) का प्रयोग किया था। श्री सुमित्रानन्दन पंत ने 'ग्रन्थि' में और श्री सियारामशरण गुप्त ने 'प्रभा' पत्रिका में पीयूषवर्ष छन्द (१९ मात्राएँ—SISS+SISS+SIS) का अतुकांत प्रयोग किया था। पं० श्रीधर पाठक ने 'सान्ध्य-अटन' (भारत-गीत) में मात्रिक स्रग्विणी या अरुण छन्द का पदान्तर प्रवाही अतुकान्त प्रयोग किया था। पं० गिरधर शर्मा ने 'सती सावित्री' में चौपाई छन्द का पदान्तर प्रवाही अतुकान्त मात्रिक प्रयोग किया था और रवीन्द्रनाथ की वर्णिक छंद निर्मित बँगला कविता का घनाक्षरी अष्टवर्णिक खण्ड में अनुवाद किया था। पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'नागरी प्रचारक' में 'संसार' नामक अतुकान्त कविता लिखने के बाद 'इन्दु' में 'हिंदी में तुकान्तहीन पद-रचना अथवा ब्लैंक वर्स' लेख में इस विषय में अपने विचार प्रकट किए थे और कुछ प्रश्न भी उठाये थे।

निराला जी के सामने हिंदी के अतिरिक्त बँगला के भी प्रयोग थे। बँगला में मुक्तक वर्णिक छंद के अनेक भेदों का प्रयोग होता है। माइकेल का अभिन्नाक्षर पदान्तर प्रवाही चतुर्दश वर्णिक पयार का प्रयोग स्तुत्य माना गया है। श्री नवीनचंद्र सेन ने 'प्लासीर युद्ध' और 'अमिताभ' में इस छंद का और श्री गिरीशचन्द्र ने नाटकों में पयार छंद पर आधृत स्वच्छन्द छंद का प्रयोग किया था। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर 'पयार' के लय खण्डों के विनियोग से अनेक छन्दों का प्रयोग कर चुके थे। इन दोनों परम्पराओं का उत्तराधिकार निराला के लिए संस्कार-गत था, और मिल्टन एवं शेक्सपियर के अतुकान्त 'इआम्बिक् पेंटामीटर' के प्रयोग का प्रभाव बुद्धि-गत था। अँगरेजी मुक्त-छंद का प्रभाव सूचनात्मक बौद्धिक था, उसमें वे रमे न थे। प्रस्तुत लेखक निराला के मुक्त छंदों को हिंदी के विकासमान छंदों का परिणाम मानता है और अंशतः बँगला का प्रभाव स्वीकार करता है अँगरेजी का प्रभाव विशेषकर अमरीकी कवि वाल्ट् ह्विट्मैन का प्रभाव सिद्ध करना दूर की कौड़ी लाना है। निराला के मुक्त छन्द वाल्ट् ह्विट्मैन की

तरह गद्यात्मक नहीं हैं, उनमें सर्वत्र लय है। निराला जी ने पुस्तकों में छपी अँगरेजी 'फ्री वर्स' की छोटी-बड़ी पंक्तियाँ तो देखी थीं, पर उनके 'रिद्मपैटर्न' से उनका आन्तरिक परिचय नहीं था, अतः मैं उनके मुक्त छंदों पर अँगरेजी का प्रभाव स्वीकार करने में सदा संकोच करता रहा हूँ। उनके अक्षरमात्रिक स्वच्छंद छंद के विश्लेषण को समझकर पाठक यह स्वीकार करेंगे कि ये प्रयोग पूर्णतया हिंदी की काव्य-परम्परा में आते हैं और उनके छांदसिक संस्कार हिंदी छंदःशास्त्र की लयों से परिपुष्ट हैं।

घनाक्षरी के चतुर्वर्णिक गण के मात्रिक रूपों में ८, ७, ६, ५, ४ मात्राएँ होती हैं। ःवर्णिक और चतुर्वर्णिक लय-खण्डों के मात्रिक रूपों का प्रयोग वर्णिक लय खण्डों के साथ प्रचुर रूप में किया गया है।

प्रस्तुत लेखक ने 'आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना', पृ० ४२४ पर इस बात का निर्देश किया था कि चतुर्वर्णिक प्रस्तार के तीन भेद (ISSS; ISSI; ISII) घनाक्षरी में बाधक होते हैं, शेष तेरह (SSSS; SISS, IISS; SSIS; ISIS; SIIS; IIIS; SSSI; SISI; IISI; SSII; SIII, IIII) सहायक होते हैं। निषिद्ध पर्वों का प्रयोग अष्टक पर्वों के उत्तरार्द्ध में तो खींचतान कर किया भी जा सकता है, पर पूर्वार्द्ध में वे स्पष्ट बाधा डालते हैं और घनाक्षरी के प्रथम और तृतीय अष्टक के आरम्भ में इनका प्रयोग नितान्त वर्जित है। पर निराला जी ने स्वच्छन्द छन्द में चतुर्वर्णिक पर्व के सोलहों भेदों का प्रयोग किया है। निषिद्ध पर्व भी चरणारंभ में प्रयुक्त हुए हैं, क्योंकि स्वच्छन्द छन्द के छतुष्क, पूर्ववर्ती और परवर्ती पर्वों को प्रभावित किये बिना ही, स्वाधीन रह सकते हैं, और घनाक्षरी में अनिवार्यतः प्रत्येक पर्व को आगे-पीछे पर्व से यथास्थान सम्बन्ध रखना पड़ता है। पंचवटी-प्रसंग से इन सोलहों पर्वों का निर्देश पाठकों की जिज्ञासा को तृप्ति देगा—

(१) SSSS—है माता का (परिमल, पृ० २४२, पं० २) (अन्य स्थानों पर चार गुरु षाण्मात्रिक लय में आये हैं)।

(२) ISSS—इन्हीं दोनों (परि०, पृ० २४७, पं० २२), सुखाशाएँ (पृ० २४३, पं० १९)।

(३) SISS—जानने की (परिमल, पृ० २४२, पं० ५), धन्य हूँ मैं पृ० २४२, पं० ६)।

(४) IISS मिलता है (परिमल, पृ० २४२, पं० १७), चुनता हूँ पृ० २४२ प० ३

(५) ऽऽ।ऽ—पीता रहूँ (परिमल, पृ० २४४, पं० ४), माया जिसे (पृ० २५०, पं० ६) ।

(६) ।ऽ।ऽ—मिले हुए (परि० २४२, पं० १३), इसीलिये (पृ० २५३, पं० १७) ।

(७) ऽ।।ऽ—जीवन का (परि०, पृ० २४२, पं० १), भक्ति रहे (पृ० २४३, पं० २२) ।

(८) ।।।ऽ—प्रणव से (परि०, पृ० २४३, पं० ७), प्रगति की (पृ० २४४, पं० १८) ।

(९) ऽऽऽ।—माँ की प्रीति (परि०, पृ० २४२, पं० ३), सूक्ष्माकार, (पृ० २४४, पं० ११) ।

(१०) ।ऽऽ।—बड़ी देर (पृ० २४५, पं० २१), गले डाल (पृ० २४५, पं० ६) ।

(११) ऽ।ऽ।—कोटि-कोटि (परि०, पृ० २४२, पं० ११), आदि शक्ति (पृ० २४३, पं० ३) ।

(१२) ।।ऽ।—गृहहीन (परि०, पृ० २४३, पं० १५), दृढ़ छाप (पृ० २४३, पं० ८) ।

(१३) ऽऽ।।—श्रेयस्कर (परि०, पृ० २४४, पं० ८), तारा गृह (पृ० २४२, पं० ११) ।

(१४) ।ऽ।।—सुधाधर—(परि०, पृ० २४४, पं० १), चलूँ अब (पृ० २४५, पं० २०), सुरासुर (२४२, १२) ।

(१५) ऽ।।।—देखकर (परि०, पृ० २४५. पं० ५), नीलनभ (पृ० २४७, पं० १३) ।

(१६) ।।।।—सलिल प्रवाह में ज्यों (पृ० २४३, पं० १४), धन-जन (पृ० २४३, पं० २०) ।

घनाक्षरी के लय-खण्ड[१]

(१) घनाक्षरी—८, ८, ८, ७ वर्ण (अंत में अश्लिष्ट मगण (ऽऽ+ऽ), रगण, सगण मान्य) ।

---

१. घनाक्षरी और उसके लय-खण्डों के विवेचन के लिए जिज्ञासु पाठकों को 'अनूप शर्मा-कला और कृतियाँ' पुस्तक में 'महाकवि अनूप की छन्द-योजना' लेख का घनाक्षरी-प्रसंग देखना चाहिये । इसमें 'घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर' की अपेक्षा अधिक नवीन, मौलिक एवं शास्त्रीय विवेचन किया गया है—लेखक ।

(२) रूप-घनाक्षरी—८, ८; ८, ८ वर्ण (अन्त में अश्लिष्ट तग और जगण मान्य)।

(३) जलहरण घनाक्षरी—८, ८; ८, ८ वर्ण (अन्त में दो लघु हों अर्थात् नगण या अश्लिष्ट भगण (ऽ+।।) मान्य।

(४) मैथिली घनाक्षरी—८, ७ वर्ण (अन्त में अश्लिष्ट मगण (ऽऽ+ऽ), रगण, सगण मान्य)।

(५) चन्द्राकर घनाक्षरी—८, ८ वर्ण (अन्त में जगण और अश्लिष्ट तगण (ऽ+ऽ।) मान्य)।

(६) शंख घनाक्षरी—१२, ११ वर्ण (८+४ वर्ण; ८+३ वर्ण अथवा ४+८ वर्ण, ४+७ वर्ण)।

(७) राम घनाक्षरी—७, ७, ७, ७ वर्ण (अन्त में अश्लिष्ट मगण, रगण,सगण मान्य)।

निर्दिष्ट यतियों के अतिरिक्त घनाक्षरी में अन्तर्यतियाँ भी प्रयुक्त होती हैं, और इस दृष्टि से वर्णिक अष्टक पर्व—चार-चार वर्णों के दो भागों में विभक्त होता है और वर्णिक सप्तक पर्व—चार और तीन वर्णों में विभक्त होता है। अष्टक पर्व के अखण्ड निर्माण में ३+३+२ वर्णों का योग उत्तम, २+३+३ वर्णों का योग मध्यम और ३+२+३ वर्णों का योग निकृष्ट और निन्द्य है। सप्तक पर्व के निर्माण में ४+३ एवं २+२+३ तथा ३+३+१ वर्णों के योग उत्तम हैं, ३+१+३ वर्णों का योग मध्यम है और २+३+२ तथा ५+२ वर्णों के योग निकृष्ट एवं वर्जित हैं।

यति-खण्डों और अन्तर्यति के खण्डों के आधार पर घनाक्षरी निम्न वर्णों के वर्णिक मुक्त चरण सम्भव हैं—

(१) ३ वर्ण (राम घनाक्षरी के अन्तिम तीन वर्ण)
(२) ४ वर्ण (चन्द्राकर घनाक्षरी के अन्तिम चार वर्ण)।
(३) ७ वर्ण (४+३ वर्ण)।
(४) ८ वर्ण (४+४ वर्ण)।
(५) ११ वर्ण (८+३ वर्ण)।
(६) १२ वर्ण (८+४ वर्ण)।
(७) १५ वर्ण (८+७ वर्ण)।
(८) १६ वर्ण (८+८ वर्ण)।

जब ५ ६, ९, १०, १३ और १४ वर्ण के चरण आयेंगे, तो उनमें

११, १२, १५, १६ वर्णों के चरण आयँगे, तो घनाक्षरी-लय का ही आवर्तन होगा। 'वर्णिक स्वच्छन्द छन्द' में यह सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है।

घनाक्षरी के अन्तिम त्रिवर्ण के त्रिक पर्व का प्रयोग घनाक्षरीवत् स्वच्छंद छंद में किया गया है। घनाक्षरी के अन्तिम तीन वर्णों में अश्लिष्ट मगण (SS+S), रगण (SIS), और सगण (IIS) का प्रयोग होता है। इन तीनों प्रकार के पर्वों का प्रयोग स्वच्छंद छंद में प्रचुरता से हुआ है, साथ ही यगण (ISS) का भी प्रयोग हुआ है, जो घनाक्षरी के अंत में अपवादतः ही रीतिकाल में प्रयुक्त हुआ है। घनाक्षरी के चरणान्त में तगण, जगण और नगण के प्रयोग असंभव हैं, पर स्वच्छंद छंद में यत्र-तत्र ऐसे भी प्रयोग हुए हैं, पर हैं वे अपवादरूप ही। यहाँ चरणान्त के त्रिवर्गिक प्रयोगों का निर्देश किया जाता है—

(१) SSS—(मेरी वे, परिमल, पृ० २४३, पं० ५), काफी है (परि० २४३, पं. २२), देती है (पृ. २५१, पं. २२)।

(२) ISS—(तुम्हीं हो, परि०, पृ. २५७, पं. २०), खुला था (परि०, पृ. २६५, पं. ६) अनुचरी है (पृ. २४७ पं ३)

(३) SIS—(सिद्धियाँ, परि०, पृ. २४२, पं. ७) रूपिणी (परि० पृ. २४३, पं. ३), अंग में (परि०, पृ. २४६, पं. ८)

(४) IIS—उनका (परि०, पृ० २५७, पं० १५), गगन के (परि०, पृ० २६३, पं. ६), मनका (परि०, पृ० २६४, पं० ८)

(५) SSI—संसार (परि०, पृ० २६०, ८ पं०, लय की दृष्टि यह तगण न होकर षाण्मात्रिक निपात है) सागराम्बरा भूमि (परि०, पृ० २१९, पं० ९—यह भी त्रिवर्णिक न होकर षाण्मात्रिक है)

(६) ISI—प्रसून (परि०, पृ० २४५, पं० २०)—(यह जगण भी 'बड़ी देर हुई' से मिलकर षाण्मात्रिक प्रवाह ही स्थापित करता है)

(७) SII—(प्रयोग अप्राप्त)।

(८) III—झपट (परि०, २१७, पं० १८) (इसे भी शुद्ध त्रिवर्णिक निपात नहीं माना जा सकता, अगले चरण से मिलाकर षाण्मात्रिक प्रवाह मानना पड़ेगा)।

त्रिवर्णिक पर्व के चरणान्त प्रयोग में घनाक्षरी के ही नियमों को स्वीकार गया है, केवल यगण का प्रयोग अधिक है, जो मगण का स्थानापन्न होकर ही आया है। तगण, जगण, नगण पर्व मुद्रण की दृष्टि से ही त्रिवर्णिक निपात लग रहे हैं, लय की दृष्टि से षाण्मात्रिक प्रयोग में ही

आते हैं। इन गणों के प्रयोग बहुत कम हैं, अपवाद ही हैं, और मुक्त-छन्द की नियमावली में इन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता।

वर्णिक पर्वों की मात्रिक समकक्षता

अक्षर मात्रिक स्वच्छन्द छन्द में केवल शुद्ध वर्णिक लय का प्रयोग नहीं होता, बीच-बीच में उसके समान वजन के मात्रिक रूपों का प्रयोग भी होता चलता है। चार वर्णों के SISI के स्थान पर मात्रिक रूप ।।।, ।।। या SI, ।।। या ।।।, SI प्रयुक्त होते हैं। SISS या ।।SS या SSI। आदि चतुर्वर्णिक पर्व के स्थान पर तीन गुरु (SSS—मगण) का प्रयोग प्रायः हुआ है। चार वर्णों के पर्व का स्थानापन्न षाण्मात्रिक पर्व है। कहीं-कहीं षाण्मात्रिक पर्व की आवृत्ति होती है, और बीच में चतुर्वर्णिक SISS या SSIS पर्व के स्थान पर सात मात्राओं का पर्व बन जाता है, जो लयात्मक दृष्टि से षाण्मात्रिक ही होता है। ऐसे अपवाद प्रचुर हैं। चतुर्वर्णिक ।।SI या S।।। ।।।S या ।S।। का मात्रिक रूप पंचमात्रिक हो जायगा और इन पर्वों के स्थान पर ।।। ।। या S।।। या SIS का प्रयोग होता है और लय में कोई भेद नहीं आता। सारिणी में चतुर्वर्णिक पर्व के स्थान पर ५, ६ और ७ मात्राओं का प्रयोग प्रायः देखा जा सकता है। स्वच्छन्द छन्द में कहीं शुद्ध घनाक्षरी लय-चरण, कहीं शुद्ध षाण्मात्रिक लय-चरण, कहीं पंचक और सप्तक-मिश्रित षाण्मात्रिक लय-चरण और कहीं वर्णिक एवं मात्रिक पर्वों का सांम्मिश्रण रहता है, पर उस प्रत्यक्ष भेद में आन्तरिक लय का भेद नहीं आता।

चतुर्वर्णिक पर्व और भारतीय संगीत

चतुर्वर्णिक पर्व और षाण्मात्रिक पर्व की समकक्षता संगीत द्वारा भी सिद्ध होती है। संगीत में ध्वनि का वजन महत्वपूर्ण है, चाहे 'आलाप' की प्रत्यक्ष निरर्थक शब्दावली हो, या अर्थ-सम्मत शब्दावली, वहाँ ध्वनियों के माध्यम से लय को जन्म दिया जाता है, जिसे संगीत की भाषा में ताल कहते हैं। वहाँ छन्दःशास्त्र के समान वर्णिक लय और मात्रिक लय का स्पष्ट भेद नहीं माना जाता, क्योंकि वहाँ केवल लय प्रमुख है, उसमें उपादान-रूप में वर्णिकता भी आती है और मात्रिकता भी। वस्तुतः वर्ण और मात्रा तत्वतः एक ही हैं, लयों का स्वरूप-भेद पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए छन्दःशास्त्र को वर्ण-लय और मात्रा-लय के भेद को बड़े आग्रह और सबलता से मानना पड़ता है, अन्यथा प्रतिपादन में और छात्र के अवबोधन में कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जायँगी गणित का लेकर नाना लय भेदों को वस्तुगत बनाकर उनके सूक्ष्म भेदों को स्पष्ट करने में

व्याख्याता को भी सुविधा हो जाती है और विद्यार्थी भी क्रमिक रूप से सुविधापूर्वक उसे ग्रहण करने लगता है। संगीत में वर्ण और मात्रा का ऐसा भेद नहीं होता। वहाँ शुद्ध की प्रमुखता होती है चाहे समाज में प्रयुक्त शब्दोच्चारण में कितना ही अन्तर करना पड़े। वहाँ रिक्त स्थानों को केवल ध्वनि मात्र से भर दिया जाता है, लय में स्थानाभाव हुआ तो अर्थगत वर्णों को संकुचित कर दिया जाता है या सत्वरित।

भक्ति-काल में ध्रुपद पर्याप्त विकसित और प्रचलित हुआ था, इसके बोलों में चतुर्वर्णिक पर्व और षाण्मात्रिक पर्वों का साथ-साथ प्रयोग होता था, अतः लय की दृष्टि से उनकी समकक्षता स्पष्ट है।

ध्रुपद— अंग-अंग रंग रानी।
अतिहि श्याय पिया,
जिया मन मानी रे।
सोलहों कला सुहानी,
बोलत अमृत बानी,
तेरो मुख देख चन्द्र,
ज्योति हूँ लजानी री।
कटि केसर कदली खंभ,
कीर की सी नासिका,
सिरीफल उरज जाके
सोभा हूँ आनी री।
कहै मियाँ तानसेन,
सुनो हो सुघर नार,
तेरो राज रहे जौलौं,
गंगा जमुना पानी। (तानसेन)

प्रस्तुत ध्रुपद में घनाक्षरी के अष्टवर्णिक पर्व और सारस छन्द (२४ मात्राएँ), कुण्डल (२२ मात्राएँ), श्येनिका (१७ मात्राएँ) के समान षाण्मात्रिक पर्व की गति स्पष्ट है। प्रति चरण में घनाक्षरी की वर्णिक लय है और १२ मात्राओं का विस्तार भी। स्पष्ट है कि चार वर्णों का स्थान ६ मात्राएँ ले रही हैं।

'तू दयालु/दीन हौं तू/दानि हौं भि/खारी'।
हौं प्रसिद्ध/पातकी तू/पाप-पुञ्ज/हारी॥ (तुलसीदास)

× × ×

हुआ प्रात/प्रियतम तुम/जावगे च/ले।

कैसी थी/रात बन्धु/थे गले ग/ले ।।

(गीतिका, गीत ८१, निराला)

ऊपर के दोनों उदाहरणों में चतुर्वर्णिक पर्व और षाण्मात्रिक पर्व सफलता के साथ प्रयुक्त हुए हैं, जो संगीत के पूर्णतया अनुकूल है।

निराला जी के संस्कारों में भारतीय संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है, गीतिका में इसका प्रमाण भी है। यह षाण्मात्रिक पर्व संगीत संस्कार के कारण उनके मन में गंभीर रूप में व्याप्त है। अक्षर मात्रिक स्वच्छन्द छन्द में वे चतुर्वर्णिकता की अपेक्षा षाण्मात्रिकता का प्रयोग बहुत अधिक करते हैं। षाण्मात्रिक पर्व में उनके बहुत से गीत और कई कविताएँ हैं। 'शक्ति-पूजा छन्द' तीन अष्टकों (ऽऽ।ऽऽ × ३) से निर्मित है, उसके स्थान पर निराला जी चार षाण्मात्रिकों का प्रयोग कर गये हैं, जो इष्ट नहीं था, पर इससे उनके संस्कारों में षाण्मात्रिक लय की गंभीर व्याप्ति का पता चलता है—

ऐसे क्षण/अन्धकार/घन में जै/से विद्युत/ षाण्मात्रिक पर्व
जागी पृ/थ्वी-तनया/-कुमारिका/-छवि, अच्युत/ ,, ,,
देखते हुए निष्पलक याद आया उपवन (अष्टक पर्व)
विदेह का/प्रथम स्नेह/कालतान्त/राल मिलन/ षाण्मात्रिक पर्व
नयनों का/नयनों से/गोपनप्रिय/सम्भाषण/ ,, ,,
पलकों का/नव पलकों/पर प्रथमो/त्थान-पतन/ ,, ,,
काँपते हुए किसलय-झरते पराग-समुदय, (अष्टक पर्व)
गाते खग/नवजीवन/-परिचय, तरु/मलय-वलय। षाण्मात्रिक पर्व

(अनामिका, पृ० १५१)

चतुर्वर्णिक पर्व में अपेक्षाकृत पातात्मकता अधिक होती है, और षाण्मात्रिक पर्व में गीतात्मकता अधिक होती है। इसीलिए ओजपूर्ण कविता 'महाराज शिवा जी का पत्र' में वर्णिक चरण अधिक हैं, और 'सेवा-प्रारम्भ' में केवल षाण्मात्रिक ही आधार है, अतः यह कविता अक्षरमात्रिक न होकर मात्रिक स्वच्छन्द छन्द की कोटि में आती है। 'परिमल' के तृतीय खण्ड की समस्या कविताएँ अक्षर मात्रिक स्वच्छंद छंद में हैं। 'अनामिका' की 'प्रेयसी', 'खँडहर के प्रति', 'वही', 'दिल्ली', 'रेखा', 'गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को' कविता में; और 'अणिमा' में 'उद्बोधन' और 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' में अक्षर मात्रिक स्वच्छन्द छन्द का प्रयोग है।

अपवाद-लय-खण्ड-निरूपण

सप्त मात्रिक—जहाँ ।SSS ; SISS ; SSIS ; SSSI इन चार चतुर्वर्णिक पर्व का मात्रिक विस्तार होता है, वहाँ छह के स्थान पर सात मात्राएँ हो जाती हैं—

(१) वल्लरी पर (परि० पृ० १८१, पं० १) का वर्णिक रूप SISS है।
(२) में था पवन (परि० पृ० १८१, पं० ७) का वर्णिक रूप SSSI है।
(३) मिलन की वह (परि० पृ० १८१, पं० ८) का वर्णिक रूप SISS है।
(४) फिर क्या ? पवन (परि० पृ० १८२ पं० २) का वर्णिक रूप SSSI है।
(५) पहुँचा जहाँ (परि० पृ० १८२, पं० ५) का वर्णिक रूप SSIS है।
(६) आगमन वह (परि० पृ० १८२, पं० ८) का वर्णिक रूप SISS है।
(७) मदिरा पिये (परि० पृ० १८२, पं० १४) का वर्णिक रूप SSIS है।
(८) चकित चितवन (परि० पृ० १८२, पं० २२) का वर्णिक रूप ।SSS है।

चतुर्वर्णिक पर्व के उक्त चार भेदों के अन्तर्गत समस्त सप्तमात्रिक अपवाद आयँगे।

पञ्चमात्रिक—जहाँ ।।।S ; ।।S। ; ।S।। ; S।।। इन चार चतुर्वर्णिक पर्वों से मात्रिक रूप बनता है ; वहाँ षाण्मात्रिक पर्व के स्थान पर पञ्च मात्रिक पर्व आता है—

(१) विजन वन (परि० पृ० १८१, पं० १) का वर्णिक रूप ।S।।।
(२) पार कर (परि० पृ० १८२, पं० ४) का वर्णिक रूप S।।। है ही।
(३) नियत निठु···/ (परि० पृ० १८२, पं० १७) का वर्णिक रूप ।S।। है।
(४) गोरे क/ (परि० पृ० १८२, पं० २०) का वर्णिक रूप ।।S। है।
(५)- /यङ्क पर/ (परि० पृ० १८६, पं० ३) का वर्णिक रूप S।।। है ही।
(६) पहुँचकर (परि० पृ० १८७, पं० १) का वर्णिक रूप ।S।। है।

पञ्चमात्रिक चरणान्त पर्व

घनाक्षरी के अन्त में खण्डित मगण (SS+S), रगण (SIS) और सगण (।।S) ही नियमतः आते हैं। जहाँ अक्षरमात्रिक स्वच्छंद छंद के चरणान्त में मगण वाला रूप आता है ; वहाँ अन्त षाण्मात्रिक होता है और जहाँ रगण वाला वर्णिक रूप और मात्रिक रूप होता है, वहाँ पञ्चमात्रिक पर्व आता है—

(१)/त्रांक में (परि० १८१ पं० ४) निपात रगण रूप है ;
(२) विहग से (परि० १८४, पं० २) निपात रगण का मात्रिक रूप है।
(३) शान्ति थी (परि० १८५ पं० ७) निपात रगण है।

(४) कक्ष म (परि० १८६ प० ७) निपात रगण है

(५) /सार की (परि० १८६ पं० ११) निपात रगण है।

चरणान्त में निराला जी ने रगण के स्थान पर बहुत बार यगण का भी प्रयोग किया है, और अपवादतः तगण (ऽऽ।) का प्रयोग किया है। ऐसे स्थानों पर चरणान्त में ५ मात्राएँ हो जाती हैं। प्रस्तुत लेखक ऐसे स्थानों पर यगण को मगण का स्थानापन्न और तगण को षाण्मात्रिक (ऽ।ऽ।) का संक्षिप्त रूप मानता है और ऐसे प्रयोगों को मूल नियमों का अपवाद समझता है—

(१) निशा थी (परिमल, पृ० १८१ पं० ५) यगण रूप—मगणस्थानापन्न।

(२) हिंडोल (परि० पृ० १८२ पं० १०) तगण रूप—षाण्मात्रिकस्थानापन्न

(३) कहेंगे (परि० पृ० २१८ पं० १५) यगण रूप—मगणस्थानापन्न।

आवर्तक पञ्च मात्रिक पर्व

कहीं-कहीं निराला जी अक्षर मात्रिक स्वच्छंद छंद में पञ्चमात्रिक (सृग्विणी रूप में या सारंग छंद रूप में) आवृत्ति देते हैं। चूँकि ऐसे स्थान पर लय तो रहती ही है, चाहे वह भिन्न छंद की हो, इससे कवि और श्रोता, दोनों को यह बात अखरी नहीं, पर 'अक्षर मात्रिक स्वच्छंद छंद के छंदशास्त्र' की दृष्टि से इसे अपवाद ही मानना पड़ता है। पंचमात्रिक की दो दो आवृत्तियाँ तो नियमित हैं, पर जब ३, ४ से अधिक आवृतियाँ होती हैं, तब सृग्विणी का प्रवाह आ जाता है। पंचमात्रिक आवृत्ति में निराला जी को सृग्विणी ही प्रिय है (४ रगण), सारँग (४ त) कहीं ही आया है और भुजंगप्रयात (४ य) कहीं नहीं।

(१) प्रखर से/प्रखर-तर/प्रखर-तम/दीखती/ ! (परि० पृ० २१६, पं० ४)
सृग्विणी रूप।

(२) वक्ष पर/सन्तरण/आश आ/काश है/। (परि० पृ० १८३, पं० ८)
सृग्विणी रूप ।

(३) मिला ला/वण्य ज्यों/मूर्तिको/मोहकर/। (अनामिका, पृ२, पं० ११)
य+३ र।

(४) तिमिर आ/वरण+ ५+३ य+ ५+५+
+फट/जायगा/मिहिर से/ +२+५+५+ ५+५+
भीति उ/त्पात सब/रात के/दूर हों/गे। ५+५+५+५+२
५+५+५+५+१२ मात्राएँ।

(परि० पृ० २३१ पंक्ति १८, १९, २०)

परिमल

जुही की कली

पंक्ति	पृ० १६१	पृ० १६२
१	५+७ मा	४ व+६+६+६मा
२	८ व+६+३ मा	७ मा
३	+३+६मा+८ व	६+६+६ मा
४	२+६+५+५ मा	६+६+५ मा
५	६+५ मा	७+६+३ मा+
६	६+६+३ मा	+३+६ मा
७	+३+३+७ मा	६ मा
८	३+६+६ मा	८ व+७ मा
९	४ व+६+७+६ मा	४ व+६ मा (यक=१ वर्ण)
१०	१६ व	१२ व+५ मा
११		६ मा+४ व
१२		८ व
१३		१६ व
१४		६+६+६+७ मा
१५		६ मा
१६		६+६ मा
१७		५ म+३ व+
१८		+१ व+६+६ मा
१९		६+६+६ मा+४व
२०		६+५+६ मा
२१		७ व
२२		७ मा+८ व

शेफालिका

पंक्ति	पृ० १९६	पृ० १९७
१	१५ व	५+७ मा
२	७ व	७ व
३	६+५+६+५ मा	८ व
४	५+६ मा+७ व	७+६ मा

५	८ व	६+६+७+६ मा
६	१५ व	५+६+६+६ मा
७	६+६+६+५ मा	
८	५+५+५+५ मा (मात्रिक स्रग्विणी)	
९	७+५ मा	
१०	६+६ मा	
११	६+६+६+५ मा	
१२	४ व	

आगो फिर एक बार

प्रथम

	पृ० १९८	पृ० १९९	पृ० २००	पृ० २०१
१	६+६ म	६+७ म	६+६ म	८ व
२	५ म+१२ व	६+६ म	६+४ म+	४ व+५+६+६म
३	६+६ म	६+५ म	२+६+५ म	७+६ म
४	८ व	५ म+४ व	६+६+४ म+	६+६ म
५	६+६ म	८ व	२+६+५ म	
६	६+४ म+	५ म+४ व	६+३ म+	
७	२+६ म+४ व	५+६+६ म	३+६+५ म	
८	६ व+	६+६+६+६म	५+६ म	
९	+८ व+	६+५+५ म	६ म+८ व	
१०	१ व+७ म+४ व	६+६ म	६+३ म+	
११		६+६ म	+२+६+५ म	
१२		६+७ म	८ व	
१३		६+६ म	६+६ म	
१४		६+६ म	११ व	
१५		५+६+६ म	५+६ म	
१६		१२ व	६+७ म	
१७		८+८ व	६+६ म	
१८		६+७ म	७+६ म	
१९		५+५ म	४ व+६+५ म	
२०		६+६ म	६+६ म	

२१	६+६ म	४ व+५ म
२२	५ म+४ व	८ व

द्वितीय

	पृ० २०२	पृ० २०३	पृ० २०४	पृ० २०५
१	६+६ म	४ व+६ म	६+६ म	६ म+८ व
२	८+२ व+	६+६ म	६+६ म	८+६ व+
३	+२+७ व	५ म+४ व	६ म	+१ व+६+६ म
४	८ व	७ व	६+५ म	६+७ म
५	८ व	६+५ म	५+६+३ म+	७ म
६	८ व	६+६ म	+३+५+६ म	६म+४ व+८ व
७	८ व	६+६ म	५ म	६+६ म
८	७ व	२+६ म	५+६ म	
९	५+५ म	६ म+८ व	६+६ म	
१०	६+६ म	८ व	६+६ म	
११	८ व	८ व	६+६ म	
१२		६+६ म	६+६ म	
१३		६+६+६ म	५+५ म	
१४		५+६ म	६+६ म	
१५		५+७+६ म	८ व	
१६		४+४+२ व	५+६+५+३+म	
१७		२ व+६+६ म	+२+४ म+	
१८		६+६ म	+२+६+६ म	
१९		५+५ म	८ व	
२०		८ व	५+६+५ म	
२१		४ व+६ म	६+५+५+६ म	
२२		७+६ म	६+६ म	

पंचवटी-प्रसंग

पंक्ति	पृ० २३७	२३८	२३९	२४०
१	६, ६, ६, म	६, ५, ७, ६म	+१व,४व,६म	१२ व
२	४ म.	१२ व	४व, ७म, ४व	६, ७म
३	५ म, ८ व	१६ व	११ व.	४व, ६ म
४	४ व	७ व, ६, ६ म	४म, ७म	७, ६म ४व

५	५, ६, ६, ६म	८ व	६, ६ म	१२ व
६	६, ५ म	८ व, ५, ६ म	६, ६ म	१६ व
७	१६ व	६, ६, ५, ६म	४व, ५म, ८व	८, ७ व +
८	१६ व	६, ६, ६, ६म	४, ४व, ६, ३म	+ १व, ४, ८व
९	७ म, ४, ३ व	६, ६ म	१२ व	५, ५, ३; ६, ३म
१०	७ म, ८	१२ व.	१६ व	४, ४व, ६, ६म
११	८ व, ६, ६ म	७ म, ४ व	८ व	८ व
१२	१२ व.	६, ६, ६ म	७, ४व, ७ म	४, ४, ३ व
१३	१२ व,	५, ६ म	६, ६ म	६, ६, ६म
१४	७ म	७ व	७, ६ म	५, ६ म
१५		१२ व	६, ६, ६ म	८, ६ व
१६		७, ७ म	६, ५, ६म	८ व
१७		१६ व.	४व, ७, ६, ६म	७ व
१८		१६ व.	६म, ८व	५, ६ म
१९		६, ६ म	८ व	७ व
२०		५, ६ म	८ व	७ व
२१		५म, २, ८ व	८ व	———
२२		७म, ३ व +	८व, ६म, ४व	———

पंक्ति	२४१	२४२	२४३	२४४
१	६, ७, ७, ५ म	६, ५, ५, ६म	६, ७, ६, ५म	४, ४, ४व, ७म
२	६ म, ४, ४व	४, ६, ६म	६म, १२ व	८ व
३	१२ व	१२व, ५म	७ व	६, ५, ६, ६म
४	६, ६, ६, ६ म	७, ७, ५म	१५ व	८व, ६, ७म
५	६, ६म, ७व	१२ व	६, ६, म	७, ७ म
६	६म, ४व, ६म, ४व	६, ६, ७, ५म	६, ६, ६, ६म	६, ६म
७	६, ५, ६, ६म	६म, ११ व	५, ६, ५, ५म	५, ६, ५म
	(वैसी ही)			
८	६, ६, ६, ६म	६म, १२ व	८ व	६, ५. ६म
९	७, ६, ६, ६म	४ व	८ व	८व, ६, ६म
१०	४व, ७, ६, ५म	१६ व	६, ६ म	६, ५ म
११	६, ६म	१२ व	४व, ६, ६, ६म	८ व
१२	४व, ७, ६, ६म	८ व	१६ व	८ व
१३	७ ६म	६ ६ ५ म	६ ६ म	७, ८ व

१४	७, ६म	————	१६ व	४व,६,६,६म
१५	————		१२ व	७,६,६,६ म
१६			४व, ६म, ८व	७, ६ म
१७			१६ व	४व, ६, ६ म
१८			६म, ४व	४व,६,६,६म
१९			१२ व	१२ व
२०			४ व	६ म, १२ व
२१			६, ६, ६, ६य	५, ७म
२२			१५ व	८,४व,३,६म

पंक्ति	पृ० २४५	२४६	२४७	२४८
१	८ व, ७, ६ म	८ व	५, १२ व	६ म, ४व, ८व
२	६, ५, ५ म	५,६ म,४व,७म	६ म	४व,७म, ८ व
३	६, ७, ६ म	४ व	७, ७ म	६ म, ८ व
४	७म,४व, ५,६म	१६ व	५, ६, ६, ६म	७म, ८व, ६म
५	४व, ६,६,५ म	७ म, ४ व	१६ व	६, ५, ६, ६म
६	४व,६ म, ८ व	४ व, ७ म	७, ८ व	८ व
७	८ व	७,५, ६, ६ म	४, ७ व	६, ६ म
८	१६ व	६, ६, ७, ५ म	१२ व	४ व, ६ म
९	१२, ८ व	३ व	५, ५, ७ म	८ व, ५ म+
१०	१६ व	७, ६, ६ म	१६ व	+१म,६,५,३म+
११	४ व, ६, ५ म	७, ६ म, ८ व	८ व, ६म,४व	+२, ६ म
१२	२,७म, ४ व	७ म, ११ व	६, ६ म	१२ व
१३	६, ५ व	७ म, ४ व	४ व,६,६,५म	७, ७ व
१४	८ व	————	४व,६,७म,४व	१२ व
१५	६, ६ म		७ म	८ व
१६	७ व+		८ व	८ व, ७, ६म
१७	+९ व		१२ व	७, ५ म
१८	८ व+		४व,७, ६,६म	६, ६ म
१९	+७ व		६, ६, ६, ६म	८ व
२०	४व, ६, ३ म+		६म,४व,६म,४व	१२ व
२१	+३,६ म		७ म, १२ व	६, ५ म
२२			७, ७ व	६म,४व,६,७म

पंक्ति	पृ० २४९	२५०	२५१	२५२
१	५, ६, ६, ७म	६, ६ म	६, ६, ७, ७म	७ व
२	४ व, ७ म	८ व, ७म, ४व	६ म, ११ व	८ व
३	६, ६, ६, ६म	६, ३, ६, ६म	१६ व	७, ७ म
४	१२ व	१२ व	४ व	७, ७, ६, ५म
५	५ म, ८ व	८ व	१६ व	६, ६, ५ म
६	६, ६, ६ म	८ व	७, ५, ६, ६म	६, ६ म
७	८ व, ६, ६ म	६, ६ म	१२ व, ६ म	६, ६, ६, ५म
८	८व, ६, ६ म	५, ७ म, ८ व	१६ व	२, ७, ६, ६म
९	४व,६,७, ५म	७ म, १२ व	६ म, ४ व	६,६,५,५,४म
१०	८ व, ६,६ म	१६ व	४ व, ६ म	६ म, ४ व
११	६, ६ म	६, ६ म	८ व	५,६, ६, ६ म
१२	८ व	———	५, ५, ६ म	७ म, ४ व
१३	१५ व		८ व	५, ६ म
१४	६ म, ४ व		७, ६, ६, ५म	४ व, ६ म
१५	४व, ७, ४ म,		६, ७ म	७, ५ म
१६	+३, ६ म, ४व		११ व	१५ व+
१७	२, ७ व		१२ व	+१ व, १६ व
१८	६, ६ म		७ म, ४ व	७ म, ४ व
१९	७, ६ म		६, ६, ६, ५म	५,७, ६म, ५व
२०	४व,६म,४व,६म		६, ५ म	४ व
२१	———		८ व, ७ म	६, ६, ६, ६म
२२	———		६, ६, ६, ६म	८ व

पंक्ति	पृ० २५३	२५४	२५५	२५६
१	७ व	६, ६, ६ म	४ व, ५ म	६म, ४, ४व, ७ म
२	८ व	५, ६, ६, ६म	४ व, ७ म	८ व
३	७ म, ४ व	४ व, ७ म	७ व	८ व
४	७, ६ व	७, ५ म	८ व	५, ७ म
५	५, ६, ६, ६ म	४ व, ७ म, ७ व	८ व	८ व
६	७, ६ म	४ व, ६ म, ४ व	४व,६,७,७म	४ व
७	६, ६ म	६, ६ म	४, ८ व	६, ६म
८	१२ व	———	१५ व	८ व

९	६म, ४व, ६म,४व	८ व
१०	१२ व	
११	८ व	
१२	४ व	
१३	८ व	
१४	७, ६ म	
१५	८ व, ६ म	
१६	८ व	
१७	१२ व	
१८	८ व	
१९	८ व	
२०	७ व+	
२१	१, ७ व	
२२	२, ६ म	

पंक्ति	२५७	२५८
१	८ व	७, ६ म
२	४ व	७, ५ म
३	४ व, ७, ६, ६ म	८, ४ व, ४म+
४	६, ६ म	+२ म, ५ म
५	५, ६, ६ म	८ व
६	१२ व	४ व, ७ म
७	५, ७म	८ व
८	७, ४ व, ७ म	६ म, ४ व
९	७म, ४, ८व	६ म, ४ व
१०	५, ६, ६, ६ म	३ व
११	८ व	६म, ४ व, ६, ६म
१२	७ व	५, ७म, ८ व
१३	४ व, ७ म	६, ४ म+
१४	५, ६, ६ म	+२ म, ६, ४ म,
१५	४, ३, ३ व	+२, ६म, ४व
१६	४, ४ व, ६म	४, २ व+
१७	८व, ६, ६म	+२व, ६ व+

१८	६, ६ म	+२ व, ७ व
१६	५, ६, ६, ५म	६, ६म
२०	४ च, ५ म	६, ७म
२१	६, ६ म	८ व
२२	६, ६, ६ म	४व, ४ व, ६म

प्रेयसी-अनामिका

पंक्ति	पृ० १	२	३
१	७ व	५, ६, ५, ५ म	१६ व
२	१५ व	६, ५, ५ म ४ व	८ व
३	७ व, ४, २ व	१५ व	१६ व
४	८ व	८ व	८ व, ५, ५ म
५	१५ व	८ व	६ व+
६	७, ४ व	७, ८ व	+२, ४, ४ व
७	७, ८ व	७ व	६, ५ म
८	५, ५ व	६, ४ म+	४व, ५, ५, ५म
६	५, ५, ५, ५ म	+२, ५, ५ म	८ व
१०	५, ५ म	६, ५ म	५म, ४व
११	१५ व	५, ५, ५, ५म	४व, ६म
१२	५, ५म	५, ७ म, ८ व	८ व
१३	१५ व	५ म	५, ५ म, ८ व
१४	८ व	११ व	७व, ६म, ४ व
१५	८ व	५, ६ व	६, ५ म, ७ व
१६	५, ५, ५, ५ म	८ व, ६, ५म	३ व
१७	——	१५ व	११ व
१८	——	८ व	७ व

पंक्ति	४	५	६
१	५, ६म	१५ व	८६, ५, ५म
२	८व	४, ४, ४, ४व	१५व
३	४, ४, २व +	८ व	६, ५म, ८व
४	+२ व, ४व	८ व	८व
५	७व	६व+	६, ५म

६	६, ५म	+२व, ७व	६म, ४व
७	६, ६म	४म+	६, ५म, ८व
८	४म, ४व	१म, ५, ५, ५म	१६व
९	८व	५म, ४व	७व, ८ व
१०	८व, ५, ५म	४, २व+	६, ५, ५, ५म
११	८व, ५, ५म	+२व, ५, ५म	६, ५म
१२	५, ५, ५, ५म	८ व	६म, ४व
१३	५म, ४, ७व	८, ४व, ५म	८ व
१४	१५ व	१५ व	८ व
१५	८व	१५ व	६व+
१६	८व	५, ५, ६, ५म	+२व, ७व
१७	५, ६म	६, ५, ६, ५म	७, ८व
१८	७व	८व	५, ६, ५, ५म

पंक्ति	७	८	९
१	१६ व	५, ५, ६, ५म	५, ६, ५, ५म
२	८व, ५, ५म	८व	६, ५म, ८व
३	१५ व	६, ५म, ८व	४, ४व, ६, ५म
४	१५ व	४व, ५म, ८व	७व
५	६, ६म	८व	७व
६	८व	८व	८व, ६, ५म
७	५, ६, ६, ५म	८व	६, ६म
७	६, ६, ६, ६म	६, ५, ६ ,५म	६, ५म
९	६, ५म	७व	५, ५म
१०	४व, व, ५, ६म	७व	७व, ७व
११	८व	५, ५, ६, ५म	५, ५म
१२	५, ५म	६, ६म	७, ७व
१३	६, ६म	७ व	५, ५म
१४	८व	६, ५म	५, ५म
१५	५, ५म	६, ५, ६, ६म	७, ८व
१६	४व	६, ५म	४, ५म
१७	८ व	७, ८व	५, ५, ५, ७म
१८	८ व	१६व	- -

आँकड़ों का अध्ययन

कविता	पंक्ति संख्या	शुद्ध वर्णिक पंक्ति संख्या	शुद्ध मात्रिक पंक्ति संख्या	अन्तर मात्रिक पंक्ति संख्या	पंचक पद संख्या	समक पद संख्या	लयापवाद
जुही की कली	३५	५	१८	१२	८	८	
शेफालिका	१८	७	१०	१	११	४	१
जागो फिर एक बार–१	५८	१०	३८	१०	१०	७	
जागो फिर एक बार–२	६२	१६	३८	८	१९	२	
पंचवटी-प्रसंग–१	९२	३३	३३	२६	१७	२२	
पंचवटी-प्रसंग–२	७८	३०	२६	२२	२१	१५	
पंचवटी-प्रसंग–३	७७	२३	२३	३१	१५	२६	
पंचवटी-प्रसंग–४	८४	३१	३३	२०	१९	२६	
पंचवटी-प्रसंग–५	८५	४०	२४	२१	९	१७	
योग	५५९	१९५	२४३	१५१	१२९	१२७	
		३१·१%	४१·२५%	२५·६%			

इन नौ कविताओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि समस्त अक्षरमात्रिक मुक्त छन्द चरणों में ३१·१ प्रतिशत चरण शुद्ध वर्णिक है, अर्थात् घनाक्षरी लयाधार पर हैं, ४१·२५%चरण शुद्ध मात्रिक हैं अर्थात् षाण्मात्रिक लयाधार पर हैं और २५·६% चरण अर्थात् केवल चौथाई चरण संख्या 'अक्षर मात्रिक' है, जिनकी लय में घनाक्षरी के चतुर्वर्णिक पर्वों और षाण्मात्रिक पर्वों एवं उसके वैविध्य (पंचक एवं सप्तक पर्व) का मिश्रण है। चूँकि, तीनों प्रकार के चरणों का इन कविताओं में मिश्रण है, अतः इनका नाम 'अक्षर मात्रिक स्वच्छन्द छन्द' उपयुक्त ही है।

इससे यह भी स्पष्ट है कि कवि के मानस में वर्णिकता की अपेक्षा मात्रिकता के संस्कार अधिक हैं। इसे आलंकारिक भाषा में यों कहा जा सकता है कि निराला जी की मानस भूमि में पौरुष की अपेक्षा नारीत्व का अधिक राज्य था, जब कि उनके वाह्य व्यक्तित्व में पौरुष ८० प्रतिशत था और नारीत्व केवल १० प्रतिशत। निराला जी का दावा इन कविताओं के विषय में यह था कि इनमें 'आँर्ट् अव् रीडिंग' (परिमल-भूमिका, पृ० २३) है, पर इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि इनमें पाठ्यात्मकता की अपेक्षा गेयात्मकता अधिक है, यद्यपि यह गेयात्मकता गीत-वाली न होकर छन्दवाली ही है।

सबसे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष इस अध्ययन से यह निकला है कि निराला जी के 'अक्षर मात्रिक स्वच्छन्द छन्द' भारतीय छन्दःशास्त्र की परम्परा में हैं, अन्यथा छन्दः शास्त्र के प्रतिष्ठित मानदण्डों के अनुसार इनका पूर्ण शास्त्रीय अध्ययन न हो पाता। उनका यह प्रयोग हिन्दी-छन्दों के प्रयोग में स्तुत्य विकासमान चरण है, जिससे हिन्दी का छन्दःशास्त्र भी समृद्ध हुआ है। कवि हिन्दी की दोनों छन्द-शैलियों—वर्णिक और मात्रिक—की परम्परा को आत्मसात करके नवीन सृष्टि करने में समर्थ हुआ है, वह विधाता और निर्माता है, विद्रोही नहीं है। वह क्रान्तिदर्शी है, क्रान्तिकारी नहीं है। 'बाजारू आलोचकों' ने उसके लिए सस्ते और भड़कीले शब्दों का प्रयोग करके सुसंस्कृत साहित्य-समाज में उसके साहित्य के प्रति स्थायी निष्ठा जागरित करने में बाधा उपस्थित की है। वस्तुतः भारतीय साहित्य, संगीत, काव्यशास्त्र और व्यापक संस्कृति की परम्परा के सन्दर्भ में ही निराला का वास्तविक एवं पूर्ण न्याय-संगत मूल्यांकन संभव है।

निराला की दार्शनिक पृष्ठभूमि

निराला के समस्त साहित्य के सूक्ष्म परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि उनके समस्त साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि आध्यात्मिक और अद्वयवादी है, भौतिक और भेदवादी या जड़वादी नहीं। वस्तुतः इनके समस्त चिंतन के मूल में दो दृष्टियाँ हैं—पारमार्थिक दृष्टि और व्यावहारिक दृष्टि। पहली का संबंध अद्वयवाद से है और दूसरी का संबंध मानवतावाद से। दूसरी का भी मूल स्रोत पहली ही दृष्टि है। कुछ लोग आंशिक रूप से आध्यात्मिक और भौतिक—दोनों को इनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि स्वीकार करते हैं—मेरा इससे विरोध है। कारण, दोनों परस्पर बेमेल और भिन्न दृष्टियाँ हैं। दूसरे यह भी कि जब एक ही मूल दृष्टि और तत्प्रसूत दृष्टि से ही उनके समस्त साहित्य की व्याख्या हो जाती है, तो क्या आवश्यकता है—इस वक्र-पंथ को ग्रहण करने की ?

निराला जी का विचार है कि विचाराभिव्यक्ति के अन्य स्रोतों की अपेक्षा साहित्य अंशों में विचार नहीं करता, इसीलिये वहाँ पार्थक्य और कमजोरी नहीं आती। वह समष्टिगत मानस-शुद्धि में क्षम हो सकता है बशर्ते कि वह किसी सीमित भावना पर न खड़ा हो। जब हर व्यक्ति हर व्यक्ति को अपनी अविभाजित भावना से देखेगा—तब विरोध में खंड क्रिया होगी ही नहीं। यही वह मूल दृष्टि है जिससे आधुनिक साहित्य अपने ध्येय की प्राप्ति कर सकता है। स्पष्ट है कि तथोक्त अविभाजित भावना का आधार भेदवादी दर्शन नहीं हो सकता, अभेदवादी ही हो सकता है।

भारतवर्ष में दार्शनिकों ने पाँच प्रकार के अद्वैतवादी दर्शनों की चर्चा की है विज्ञानवाद शून्यवाद ब्रह्मवाद अर्थात् शांकर अद्वैतवाद ईश्वराद्वयवाद तथा । देखना यह है कि निराला जी का

पक्षपात इनमें से किस तरह के अद्वयवाद का है। उक्त वादों में से प्रथम दो को नास्तिक बौद्ध दर्शन और शेष तीन को आगमिक तथा नैगमिक आस्तिक दर्शन से संबद्ध किया जाता है। बौद्ध दर्शन में विज्ञानवाद की अपेक्षा मूर्द्धन्य स्थान नागार्जुन ने अपनी आध्यात्मिक कारिका द्वारा शून्य-वाद को दिया है। आचार्य शंकर ने औपनिषद् ब्रह्मवाद की प्रस्थानत्रयी के भाष्यों द्वारा चतुष्पाद प्रतिष्ठा की है। आगमिकों ने एक ही तत्व के दो पक्ष स्वीकार किये हैं—प्रकाशमय पर निष्क्रिय तथा विमर्शमय सक्रिय। पहले तत्व को प्रधानता देने वाले शैववादी या ईश्वराद्वयवादी और दूसरे पक्ष को महत्व देनेवाले शाक्त अथवा शाक्ताद्वयवादी हैं। इस प्रकार मुख्यत तीन ही ठहरते हैं—शून्यवाद, औपनिषद् शांकर अद्वैतवाद अथवा शांतब्रह्म-वाद और आगमिक अद्वयवाद अथवा पूर्ण ब्रह्मवाद।

जहाँ तक निराला जी का संबंध है उनके साहित्य में तीनों प्रकार के वादों के अनुरूप प्रचुर सामग्री उपलब्ध हो जाती है। प्रबंध पद्म गत 'शून्य और शक्ति' शीर्षक लेख में उन्होंने माना है कि मूल तत्व शून्य ही है। वे मानते हैं कि संसार की व्यक्त और अव्यक्त—सभी भावनायें शून्य में ही पर्यवसन्न हैं। विंदु या शून्य सब शास्त्रों में, सब तरफ, सब समय स्वयं सिद्ध है। उद्भव, स्थिति और प्रलय का शून्य ही मूल रहस्य है। शून्य के सिवा कुछ नहीं। इस प्रकार वे एकत्र शून्याद्वयवाद के प्रति आस्था प्रदर्शित करते हैं। अन्यत्र शांकर ब्रह्मवाद पर तो इतने रीझे हुए हैं कि 'पंत जी और पल्लव' में वे लिखते हैं—ब्रह्मवाद की एक उत्कृष्ट कविता मेरी नजर से गुजर जाती है और मैं इसके कवि को उसी क्षण हृदय का सभी कुछ दे डालता हूँ। 'परिवर्तन' नामक पंत जी की कविता इसीलिये उन्हें ज्यादा पसंद है कि वह शांकर ब्रह्मवाद के अनुरूप पड़ती है। स्वंय 'पंचवटी-प्रसंग', 'जागरण' आदि ऐसी कितनी कविताएँ हैं जहाँ प्रस्तुत, अप्रस्तुत, मूल ढाँचा और उपसंहार रूप में उन्होंने शांकर अद्वैतवाद के अनुरूप सामग्री दी है। उनका दावा है कि उन्होंने अद्वैत विवेकानंद के पूरे 'वर्क' को हजम कर लिया है। शांकर अद्वैत के अनुसार वे 'जगज्जाल' छाया है—माया ही माया—कहते हैं। समस्त संसार को नश्वर और भ्रमात्मक बताते हैं। रामकृष्ण तथा वंगीय संस्कृति तीसरी ओर उनसे 'शक्ति' की 'अर्चना और आराधना' कराती है। उनके राम भी 'शक्ति' की पूजा करते हैं—चक्रवेध एवं पुरश्चरण जैसे आगमिक साधन अपनाते हैं। 'अर्चना' में उसी के लिये कहते हैं—'तुम्हीं में है—महामाया'। शांकर अद्वैत की माया से यह महामाया बहुत ऊँची है कारण वह जड़ है

और यह चिन्मयी . इसी महामाया की कृपा हो जाने पर माया हो गई भली' की स्थिति आगमिकों के 'विकल्पोऽप्यमृतायते' का स्मरण दिलाती है। इसी के लिये रोमा रोल्यां ने 'Thh Life of Ramkrishna.' में कहा है—'The Devine Mother and Barhman are one'.

इस प्रकार समस्त विकास के मूल में शक्ति को माननेवाले निराला जी शाक्ताद्वयवाद की ओर भी झुकते हैं। इस स्थिति में प्रश्न यह है कि किस अद्वयवाद को इनकी मूल दार्शनिक पृष्ठभूमि कहा जाय?

मूर्द्धन्य दार्शनिकों का विचार है कि दार्शनिकों का उपर्युक्त विरोध, बुद्धि की अतिवादी भूमिका पर प्रतीत होता है और वह भी आपातत। कुछ लोगों ने स्तर-भेद की दृष्टि से इन विरोधों का परिहार किया है। स्वयं शंकराचार्य के समस्त साहित्य को देखा जाय तो प्रस्थानत्रयी के भाष्यों में वे अद्वैतवादी, सौंदर्यलहरी में शाक्ताद्वयवादी तथा यों शून्यवाद की बहुत सी बातों को अपना लेने से ये प्रच्छन्न बौद्ध भी कहे गये हैं। बौद्ध दर्शन के आधुनिक मनीषियों की धारणा उत्तरोत्तर यह बँधती जा रही है कि बौद्ध दर्शन में जो लक्षण शून्य तत्व के बताये गये हैं—वे सब शांकर ब्रह्म में भी संगत हो जाते हैं। और शांकर ब्रह्म ही, जब चिन्मयी क्रिया शक्ति-समन्वित हो जाता है तो वही—आगमिकों का पूर्णतत्व माना जाता है। इस प्रकार बौद्धिक अतिवादिता के कारण आपाततः विरोध जिस पकार यहाँ समाप्त हो जाता है और सब मिलाकर शंकराचार्य अद्वयवादी हैं—साधना और उपासना के वैयक्तिक उद्‌गारों द्वारा काव्यभूमि पर ये विरोध लक्षित नहीं होते—उसी प्रकार कवि निराला की भी अद्वयवादी स्थिति को समझना होगा। उन्होंने 'शून्य और शक्ति' में कहा है—शास्त्रानुसार शून्य एवं शक्ति में अभेद है। फर्क इतना ही है कि जब शून्य में स्थिति है तब शक्ति का ज्ञान नहीं, 'क्योंकि वह नहीं काँपता'—सिद्ध है और जब शक्ति का परिचय है तब शून्य का ज्ञान नहीं—क्योंकि 'वह काँपता है'—सिद्ध है (प्र. प., पृ. १७)। इस प्रकार ऊपर शाक्ताद्वयवाद को समझाते हुए एक तत्व के संबंधित दो पक्षों को समझाया गया है। दोनों को दो रूप से कहने में केवल दृष्टिभेद है। एक-एक दृष्टि को पकड़ने से विरोध हो जाता है। समष्टि को लेकर चलनेवाले साहित्यिक उद्‌गारों में यह दब जाता है। उपनिषद् भी प्रथम कवि के उद्‌गार हैं—'तदेजति तन्नेजति'—वह काँपता भी है, नहीं भी काँपता है—दार्शनिक भले ही विरोध देखें पर अविरोधी दृष्टिसंपन्न क्रांतिदर्शी कवि इसे दृष्टि-भेदमात्र कहेगा। आगमिक स्पंद-विज्ञानवालों ने भी शक्ति को स्पंदात्मक

ही बताया है और उसके भी तह में एक निःस्पंद तत्व ऊपरी तरल लहरों के भीतर शांत एवं स्थिर समुद्र की भाँति पड़ा हुआ कहा है। निराला जी ने शून्य की परम आस्तिक और नास्तिक व्याख्या करते हुए बताया है कि पहला शून्य में ही सब कुछ का अस्तित्व कहेगा और दूसरा शून्य का अर्थ कुछ नहीं समझेगा—पर इन दोनों तर्कों से सिद्ध यही हुआ कि तत्व महतोमहीयान् और अणोरणीयान्—दोनों हैं। उनमें कोई विरोध नहीं। इस प्रकार समझना यही चाहिये कि निराला की दार्शनिक पृष्ठभूमि अद्वयवाद ही है और उसका किसी भी प्रकार के अद्वयवाद से विरोध नहीं। प्रस्तुत पंक्तियाँ सभी मतों का अविरोधी रूप उपस्थित करती हैं—

इच्छा हुई सृष्टि की,
प्रथमतरंग वह आनंद सिंधु में,
प्रथम कम्पन में सम्पूर्ण बीज सृष्टि के
पूर्णता से खुला मैं पूर्ण सृष्टि शक्ति ले
× × ×
बीचियाँ ही हैं अगनित शुचि सच्चिदानंद की।

इसमें शांकर अद्वैती और शाक्ताद्वैती दृष्टियों का अविरोधी रूप सृष्टि के विषय में लक्षित होता है। शून्य पक्ष, निष्क्रिय पक्ष, प्रकाशात्मक तथा निःस्पंद पक्ष का ही दूसरा पक्ष पूर्णतादायक, क्रियात्मक विमर्शमय तथा स्पंदात्मा है। यही दूसरा पक्ष शांत समुद्र की प्रथम तरंग है—आद्या शक्ति है—प्रथम इच्छा है—प्रथम स्पंद है--उसी के कारण शून्य पूर्ण है—उसी में सृष्टि के बीज निहित हैं।

(२)

प्रस्तुत स्थापना कि निराला के समस्त साहित्य की मूलतः दार्शनिक पृष्ठभूमि अध्यात्मवादी और अद्वयवादी है—में कुछ लोग असहमति भी प्रकट कर सकते हैं और कह सकते हैं कि ३९ के बाद के रूढ़ि-विरोधी साहित्य की सृष्टि आध्यात्मिक नहीं, भौतिक और जड़वादी भूमिका पर ही संभव है। कुल्लीभाट की सृष्टि इस दृष्टि से नहीं हो सकती और कुल्लीभाट से ही अपने समर्थन में यह उद्धृत कर सकते हैं—अधिक न सोचा। मालूम किया जो कुछ पढ़ा है कुछ नहीं। जो कुछ किया है व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है स्वप्न है। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है—और इसी के साक्ष्य पर यह कह सकते हैं कि पहले का अद्वैतवादी दर्शन और संन्यासियों के बीच का जीवन तथा चिन्तन और तन्मूलक साहित्य सब व्यर्थ है। अद्वयवादी दर्शन की माया के प्रति

या कि भव-रण-सग से भागे हुए
कायरों के चित्त की तू भीति है ? (परिमल)

इन पंक्तियों से अनास्था भी व्यक्त की जा सकती है और यह भी कहा जा सकता है कि जब संसार को अद्वयवादी दर्शन के अनुसार वे भ्रम ही समझते हैं, तब दुखियों के झूठे दुख से वे दुखी क्यों होते—ऊँची भूमिका से इस नीची भूमिका की ओर कदम क्यों बढ़ाते—गोर्की का उल्लेख क्यों करते ? ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि वे जब सेठ महादेव बाबू द्वारा हिन्दी साहित्य और उसके प्रगतिशील पक्ष से परिचित कराये गये तब उनकी आँख खुली और भौतिकवादी दार्शनिक पृष्ठभूमि पर परवर्ती साहित्य की प्रतिष्ठा की।। उन्होंने मानव प्रेम बनाम ब्रह्मवाद—इस समस्या को पहचाना है और उसका समाधान ढूँढ़ने की कोशिश की है।

जहाँ तक '३८ के परवर्ती साहित्य को जड़वादी भूमि पर प्रतिष्ठित करने का सवाल है—अर्चना, आराधना उसका विरोध करती हैं। कानों में तालों की ताला' का हुंकार ऐसी आवाजों का उत्तर है। कुल्लीभाट का उद्धरण केवल इतना ही तात्पर्य पूर्वापर संगति को देखकर रख सकता है कि पहले का चिन्तन और जीवन पारमार्थिक दृष्टिभाव से और कुछ कुछ निवृत्ति मार्गियों का सा था, पर उन्होंने जब अपनी आँखों को खोला और बाहरी संसार को देखा तो व्यावहारिक दृष्टि और प्रवृत्तिमार्ग पर आरूढ़ हुए। उन्होंने मुक्ति के लिये बंधन को साधन माना और ज्ञान के लिये चित-शुद्धि में अपेक्षित निष्काम कर्म का माध्यम आवश्यक समझा। दुखी मानव की सेवा में सच्चिदानंद विघ्न नहीं डाल सकता। भ्रम के पार जाना है तो भ्रम के द्वारा ही। असत्य के द्वारा ही सत्य की प्राप्ति संभव है। रहा यह कि जब संसार झूठा है तो दुखियों के झूठे दुख के निवारण में अपना समय क्यों नष्ट किया जाय—तो इसका उत्तर पक्के अद्वयवादियों—बुद्ध, स्वामी रामकृष्ण, विवेकानंद, तिलक—से लीजिये। इन कर्मठ और व्यावहारिक वेदान्तियों से पूछिए—वे बतायेंगे कि जब तक आत्मबोध नहीं है तब तक व्यावहारिक जगत् सत्य ही है और हाथ-पाँव की सत्ता कर्म करने में प्रमाण है। जहाँ तक माया को कायरों का भय कह कर अनास्था व्यक्त करने वाली बात है—उसके संबंध में यह समझना चाहिए कि इस पंक्ति में शांकर माया के प्रति नहीं, प्रत्युत निवृत्ति मार्ग का दंभ भरने वालों की माया के प्रति अनास्था व्यक्त की गई है। वेदांती भी 'व्यवहारं भाट्टनमः' का उद्घोष कर प्रवृतिमार्गी धर्म का समर्थन करते ही हैं और प्रवृत्तिमार्गी मीमांसक भी अंतत: अद्वैत

की ओर झुकते हैं। कहा जा सकता है कि यदि निराला जी अध्यात्मवादी अद्वैती होते तो श्रुति-स्मृति और धर्मशास्त्रीय निबंधों में कहे हुए वर्णाश्रमानुरोधी आचारों में आस्था रखते। पर इस आक्षेप का भी उत्तर निराला जी ने अपने वक्तव्यों द्वारा दिया है और कहा है कि युग-धर्म परिवर्तित होता रहता है। वर्णाश्रमानुरोधी आचार आज जर्जर निर्मोक की भाँति 'शक्ति' के विकास में बाधक है। हम समाज और साहित्य में बहुत दिनों से 'जागो फिर एक बार' द्वारा इसी भूली आत्मा-शक्ति को पुनः नए कलेवर में आमंत्रित करना चाहते हैं। 'साहित्य का फूल अपने ही वृंत पर'—में उन्होंने सनातन धर्म की प्रगतिशील व्याख्या यही की है और कहा है कि हमारी ज्ञान-भूमि की व्याख्या 'पूर्णता' में है और हमारे समस्त आचारों के मूल में वही पूर्णता रस देती है। 'समाज'—शब्द का ही अर्थ है कि जो उसी पूर्णता की ओर सम्यक अजनगमन शील रहे।

निराला जी की दार्शनिक दृष्टि भौतिक और जडवादी नहीं हैं। इन्होंने तो माना है कि सारा बाहरी पसारा भीतरी दोष का है, अतः उसे भीतरी सुधार द्वारा ही सुधारा जा सकता है। दूसरे, 'कुकुरमुता' द्वारा भी उन्हें (साम्यवादियों को) बकवादी ज्यादा बताया है। तीसरे, 'भगवान बुद्ध के प्रति' वाली कविता देखिये—

> आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
> गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
> स्पष्ट दिख रहा
> केवल पैसे, आज लक्ष्य में हैं मानव के
> विमुख भोग से, राजकुँवर, त्यागकर सर्वस्थित
> एक मात्र सत्य के लिये, रूढ़ि से विमुख रत
> कठिन तपस्या में, पहुँचे लक्ष्य को तथागत ॥

महाप्राण 'निराला' का जीवन-दर्शन

निराला जी का जीवन-दर्शन उनकी परम्परागत परिवारिक परिस्थितियों की उपज नहीं है। राम, कृष्ण एवं हनुमान की उपासना सामाजिक मान्यताओं का अन्ध श्रद्धा के साथ पालन तथा विभिन्न धार्मिक विश्वासों की शांति का जो घरेलू वातावरण निराला जी को मिला था, उससे उनका साहित्यिक व्यक्तित्व किसी प्रकार का समझौता न कर सका। कवीन्द्र रवींन्द्र की सास्कृतिक चेतना तथा विवेकानंद के श्रीरामकृष्ण-मिशन ने उनको नई जीवन-दृष्टि प्रदान की। परिणाम-स्वरूप काव्य-सृजन के प्रारंभकाल में ही व्यक्ति और समाज के प्रति निराला जी के दो निश्चित दृष्टिकोण बन गए। प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार उन्होंने मनुष्य में संन्यास-वृत्ति और अद्वैत भावना को आदरणीय माना तथा द्वितीय दृष्टिकोण के अनुसार समाज में दासता एवं रूढ़ियों का विरोध किया। जहाँ उनकी प्रथम जीवन-दृष्टि मनुष्य के गौरव और स्वाभिमान को अत्यंत उदात्त भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित करती है, वहाँ उनकी दूसरी जीवन - दृष्टि उसके सामाजिक पक्ष को अत्यंत उज्ज्वल तथा जागरूक बनाती है।

'परिमल' की कविताओं में निराला जी का उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों पर आधारित जीवन-दर्शन अत्यंत प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त हुआ है। जिन आलोचकों ने इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया, उन्हें 'परिमल' के कवि का व्यक्तित्व परस्पर दो विरोधी धाराओं में विभक्त तथा विरोधाभास लिए हुए प्रतीत होता है। ऐसे आलोचकों को एक साथ ही पुस्तक में निराला जी को अद्वैतवादी एवं समाजवादी चेतनाओं का प्रतिपादन करते देख उनके औचित्य का आधार उन्हीं में निहित दिखाई नहीं देता। फलतः वे अपनी ओर से नए आधार प्रदान करते हैं। परन्तु निराला जी के जीवन-दर्शन की परोक्ष भूमिका इस बात को स्पष्ट कर देती है कि परिमल में

अभिव्यक्त जीवन-दर्शन ही उस विरोधाभास का मूल आधार है। ध्यान देने की बात है कि निराला जी व्यक्ति और समाज, दोनों की समान चेतना के पक्षपाती हैं, वे किसी एक अंग की उपेक्षा करके दूसरे को परिपुष्ट एवं स्वस्थ बनाने की भूल नहीं करते। उनके जीवन-दर्शन में प्रारम्भ से ही व्यक्ति और समाज के सम विकास का ध्येय निहित है। 'परिमल' की विवादास्पद निम्नांकित पंक्तियों को इसी दृष्टिकोण से देखना चाहिए—

कहाँ ?
मेरा अधिवास कहाँ ? ?
क्या कहाँ ? रुकती है गति जहाँ ?
भला इस गति का शेष संभव है क्या,
करुण स्वर का जब तक मुझमें रहता है आवेश ?
मैंने 'मैं' शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
उसकी छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई।
उसके निकट गया मैं धाय
लगाया उसे गले से हाय
फँसा माया में हूँ निरुपाय
कहो फिर कैसे गति रुक जाय ?
उसकी अश्रु-भरी आँखों पर, मेरे करुणाञ्चल का स्पर्श।
करता मेरी प्रगति अनन्त, किंतु तो भी मैं नहीं विमर्श।
छूटता है यद्यपि अधिवास
फिर भी न मुझे कुछ त्रास।

निराला जी के जीवन-दर्शन की व्यक्ति एवं समाज को एक साथ साम्य की भूमिका पर देखने वाली यह निराली जीवन-दृष्टि ही परिमल की प्रेम एवं सौंदर्य सम्बन्धी कविताओं में उन्हें प्रियतमा की व्यक्ति-गत विरह-वेदना के परिवेश में समष्टि-गत असीम प्राकृतिक प्रेम-सौंदर्य का आह्लाद प्रदान करती है। वे जीवन को एक हरा-भरा उपवन बनाना चाहते हैं; अद्वैतवाद के निकट रहकर वे विराग की दृष्टि से जीवन को नहीं देखते, अपितु राग की आँखों से देखते हैं। यही तो उनके जीवन-दर्शन की वह नवीनता एवं मौलिकता है, जो विचार-जगत् में उनकी अपनी निधि मानी जानी चाहिए।

निराला जी की जिन कविताओं को क्रान्तिकारी रूप में देखा गया है, उनमें भी उनका पूर्वोक्त जीवन-दर्शन ही एक आधार के रूप में निहित है। उनके 'बादल-राग' का बादल उसी अद्वैत व्यक्ति का अदम्य पौरुष है, जिसके रस-सिंचन के बिना सामाजिक जीवन दुख-दग्ध, सन्तप्त एवं भयंकर विषमताओं से आक्रान्त हो जाता है, किंतु जिसकी विप्लवी गर्जना सिंहासनों को कँपाती हुई किसानों की जीर्ण बाहुओं के संकेतों पर जीवन का पारावार दान करती है—

रुद्धकोष, है क्षुब्ध तोष,
अङ्गना-अङ्ग से लिपटे भी
आतंक अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जना से बादल !
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है जीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही है आधार,
ए जीवन के पारावार !

निराला जी के जीवन-दर्शन में आशा और पौरुष के स्वर साथ-साथ चलते हैं। उसमें कहीं किसी ओर से भी निराशा नहीं, इसका कारण उनके पूर्वोक्त दृष्टिकोण में ही निहित है। उनकी छायावादी कविताओं में अन्य छायावादी कवियों की भाँति निराशा और पलायन की कुत्सित प्रवृत्तियों को इसीलिए कोई स्थान नहीं मिल सका।

निराला जी का विश्वास है कि अपने पैरों पर खड़ा होनेवाला तथा साहसी व्यक्ति अपने एवं दूसरों के जीवन को सुन्दर एवं मंगल-मय बना सकता है। 'कुकुरमुत्ता' का यह कथन इसी जीवन-दृष्टि को व्यक्त करता है—

देख मुझको, मैं बढ़ा
डेढ़ बालिश्त और ऊँचे चढ़ा;
और अपने से उगा मैं,
बिना दाने का, चुगा मैं;
कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता

तू है नकली, मैं हूँ मौलिक,
तू है बकरा, मैं हूँ कौलिक;
तू रँगा और मैं धुला,
पानी मैं, तू बुल्बुला;
तूने दुनिया को बिगाड़ा,
मैंने गिरते से उभाड़ा;
तूने रोटी छीन ली जनखा बनाकर,
एक की दी तीन मैंने गुन सुनाकर।

वे जीवन के यथार्थ की उपेक्षा नहीं करते। उन्हें वह दर्शन और चिन्तन स्वीकार नहीं जो जीवन की इस स्थिति से आँखें फेर लेता है—

बाग के बाहर पड़े थे झोपड़े,
दूर से जो दिख रहे थे अधगड़े,
जगह गंदी, रुका, सड़ता हुआ पानी
मोरियों में, जिन्दगी की लन्तरानी—
बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियाँ,
सेलरों की, परों की थीं गड्डियाँ,
कहीं मुर्गी, कहीं अण्डे
धूप खाते हुए कण्डे।
हवा बदबू से मिली
हर तरह की बासीलीं पड़ गईं। (कुकुरमुत्ता पृ० १९)

वस्तुतः निराला जी की जीवन-दृष्टि बहुत निर्मल तथा तल-दर्शिनी है। वह जाति-पाँति, वर्ग, सम्प्रदाय, धर्म आदि की पर्तों को भेद कर उस गहराई तक पहुँचती है, जहाँ सभी प्रकार के चिन्तन को धरती मिली है, जहाँ जीवन के समस्त सत्यों की जड़ें हैं तथा जिनको छोड़कर इधर-उधर देखने वाला हर दर्शन अभावों के आकाश में भटकता हुआ संसार को भ्रम में डाले हुए है। निम्नांकित पंक्तियाँ बहुत सामान्य जान पड़ती हैं, किंतु उनमें निराला जी की यही गंभीर एवं व्यापक जीवन-दृष्टि समाई हुई है—

इक खासा हिन्दू-मुस्लिम खानदान,
एक ही रस्सी से किस्मत की बँधा
काटता था जिन्दगी गिरता-सधा

बच्चे, बुड्ढे, औरतें और नौजवान
रहते थे उस बस्ती में, कुछ बागबान
पेट के मारे यहाँ पर आ बसे,
साथ उनके रहे, रोए और हँसे। (कुकुरमुत्ता, पृ० २०)

जीवन की धरती से कुकुरमुत्ता के समान स्वयं उगने और बढ़ने वाले आत्म-निर्माता स्वच्छंद व्यक्तित्व किसी के पोषण-रक्षण की अपेक्षा नहीं रखते। जीवन के मौलिक स्वाद को वे ही पहचानते हैं तथा दूसरों को भी जीवन के वास्तविक आनंद की अनुभूति वे ही कराते हैं। कुकुरमुत्ता के महत्व को न समझने वाले साधन-सम्पन्न मनुष्य अपनी समृद्धि पर अभिमान भले ही करते रहें, परन्तु वे गुलाव की तरह जब और जहाँ चाहें वहाँ कुकुरमुत्ता को उगा नहीं सकते। जो व्यक्ति उपेक्षाओं में जन्म लेकर भी किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता निराला जी के निम्नांकित शब्दों में वही स्वयं को दूसरों का निर्माता एवं भाग्य-विधाता समझने वाले अहंकारियों को अपने अस्तित्व के प्रति लालायित कर सकता है। देखिए, कुकुरमुत्ता की कहानी में निराला की यह जीवन-दृष्टि कितनी गहरी और सधकर प्रविष्ट हुई है---

कुकुरमुत्ते की कहानी
सुनी जब बहार से
नव्वाब के मुँह आया पानी।
बाँदी से की पूछताछ,
उनको हो गया विश्वास।
माली को बुला भेजा
कहा, 'कुकुरमुत्ता चलकर ले आ तू ताजा-ताजा'
माली ने कहा, 'हुजूर,
कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा है, अर्ज हो मन्जूर,
रहे हैं अब सिर्फ गुलाब।'
गुस्सा आया, काँपने लगे नव्वाब।
बोले, 'चल, गुलाब जहाँ थे, उगा,
सब के साथ हम भी चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता',
बोला माली 'फरमाए मुआफ खता,
कुकुरमुत्ता अब उगाया नहीं उगता।' (कुकुरमुत्ता, पृ० २१)

निराला जी को व्यक्ति या समाज का आडम्बर एक क्षण भी सह्य नहीं है। वे दूसरों को अपने बौद्धिक बल से मूर्ख बनाने वालों पर व्यंग्य

का तीक्ष्ण कुठार चलाते हैं। ऐसा करते समय वे यह चिन्ता नहीं करते कि उनका प्रहार किस 'वाद' पर हो रहा है। और चिन्ता भी क्यों हो, वे किसी 'वाद' के प्रचारक थोड़े ही हैं। वे तो सब वादों को जीवन के लिए मानते हैं। यदि किसी 'वाद' के आडम्बर में व्यक्ति या समाज को कोई पीड़ित करता है, तो वे उसे क्यों सहन करें? 'मास्को डायलाग्ज' में उन्होंने अपनी इसी निष्पक्षता का परिचय देकर यह सिद्ध कर दिया है कि उनके काव्य में जीवन को, आँखें बंद करके किसी वाद-विशेष के चश्मे से नहीं देखा गया। वे एक आडम्बरी समाजवादी पर अपना व्यंग्य-कुठार चलाते हुए लिखते हैं—

> मेरे नए मित्र हैं श्रीयुत गिडवानी जी
> बहुत बड़े सोश्यलिस्ट
> 'मास्को डायलाग्ज' लेकर आए हैं मिलने।
> बोले, 'यह देखिये, मास्को डायलाग्ज है,
> श्री सुभाषचंद्र ने जेल में मँगाई थी,
> भेंट की फिर मुझसे जब थे पहाड़ पर।
> '३५ मुश्किल से पिछड़े इस देश में,
> दो प्रतियाँ आई थीं'।
> फिर बोले, 'वक्त नहीं मिलता,
> बड़े भाई साहब का बँगला बन रहा है,
> देख-भाल करता हूँ।'
> फिर कहा, मेरे समाज में
> बड़े-बड़े आदमी हैं
> एक से हैं एक मूर्ख;
> फाँसना है उन्हें मुझे;
> ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का।
> उपन्यास लिखा है, जरा देख लीजिए
> अगर कहीं छप जाय,
> तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर;
> मनमाना रुपया फिर लेलूँ इन लोगों से।.......आदि।

निराला जी ने सदैव सामाजिक अन्याय तथा आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए आवाज उठाई है। वे मानव-जीवन को शोषण मुक्त सुन्दर रूप में देखना चाहते हैं उनका विश्वास है कि वैज्ञानिक

जिस आडम्बर और बौद्धिक छल-छद्म को जन्म दे
.। का नाश हो रहा है। 'नए पत्ते' संकलन में वे कहते

घूहों और गुफाओं और पत्थरों के घरों से
आज कल के शहरों तक, दुनिया ने चोली बदली।
बिजली और तार और भाप और वायुयान
उसके वाहन हुए।
जान खींची खानों से
दल और कारखानों से।
रामराज के पहले के दिन आए।
बानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया।
टापू में चलकर रखा और कैद किया।

× × ×

गोल बाँधे, घेरे डाले, अपना मतलब गाँठा
फिर आँखें फेर लीं।
जाल भी ऐसा चला
कि थोड़ों के पेट में
बहुतों को आना पड़ा।

नेराला जी के जीवन-दर्शन में ऐसी किसी विचार
ान नहीं जो मनुष्य के भाल को झुकाती है, उसे
तथा समाज के मंगल-विधान में बाधक बनती है
कामना करते हैं—

प्रति जन को करो सफल।
जीर्ण हुए जो यौवन
जीवन से भरो सकल।
रँगे गगन, अन्तराल,
मनुजोचित उठे भाल,
छल का छुट जाय जाल,
देश मनाए मंगल।

'बेला' संग्रह की कविताओं से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता ै
र आस्था में जीवन की सुख-समृद्धि निहित मानते ह
पहुँचने पर मनुष्य-जीवन की समस्त विपन्नता नष्ट
त पंक्तियाँ उनके इसी दृष्टिकोण को व्यक्त करती ह

नाथ, तुमने गहा हाथ, वीण बजी;
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।
खुल गए डाल के फूल, रँग गए मुख
विहग के, धूल मग की हुई विमल सुख;
शरण में मरण का मिट गया महा दुख।

जीवन को निराला जी जीवन की तरह जीने की प्रेरणा देते हैं। वे उसमें आध्यात्मिक उदासीनता का समावेश नहीं करते। जीवन की समरसता के क्षणों की उपेक्षा न करके वे स्पष्ट कहते हैं—

हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन।
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन।
× ×
कहीं की बैठी हुई तितली पर जो आँख गई
कहा, सिंगार के होते हैं ये बहार के दिन।
(बेला, पृष्ठ २३)

'अणिमा' की कई कविताओं में यह जीवन-विश्वास गूँज रहा है कि जो मृत्यु को वरण कर सकता है, वही जीवन का शाश्वत वरदान प्राप्त करता है—

मरण को जिसने वरा
उसी ने जीवन भरा है।

अर्चना और आराधना तक निराला जी अपने इसी जीवन-विश्वास को लेकर आस्था और आस्तिकता की सुदृढ़ भाव-भूमि पर चलते आए हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' और 'तुलसीदास' में कथा का आश्रय लेकर उन्होंने अपने इसी जीवन-दर्शन को वाणी दी है। इस वाणी में भारत का वह सांस्कृतिक वैभव छिपा है, जिसकी गौरव-पूर्ण एक ऐसी परम्परा रही है, जिसे शताब्दियों का रूढ़ियों और आडम्बरों का अन्धकार भी धूमिल नहीं बना सका। उनका तुलसीदास भारतीय सांस्कृतिक अभ्युत्थान का वह उद्घोष है, जो चिरकाल तक मानवता के आकाश में गूँजता रहेगा। इस काव्य की 'रत्नावली' नारी प्रकाश की वह अद्भुत किरण है, जो मानव-जीवन के हर अंधकार को हर परिस्थिति में मिटाती रहेगी, 'राम की शक्ति-पूजा' के अनुसार तमोगुणी विघ्न-बाधाएँ रावण के समान जीवन के समस्त शिव एवं शक्ति को अपने पक्ष में करके भी आस्था-पूर्ण मानव-मन को पराजित नहीं कर सकतीं। जिसका जीवन की पावनता तथा विश्व-मगल में दृढ़ विश्वास है, उसी को एक दिन शक्ति और शिव

वरण करेंगे तथा रावण रूपी समस्त तमोगुण समाप्त होकर रहेगा। निराला जी का यह आशावादी जीवन-दर्शन उनके कथा-प्रधान काव्य का प्राण है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि निराला जी मनुष्य और ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्थावान हैं। वे मानव-जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाने के लिए जहाँ एक ओर उसके आध्यात्मिक बल-वैभव में विश्वास करके उसके अद्वैत शिव रूप को स्वीकार करते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे सब प्रकार के आडम्बरों, अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और छल-छद्मों का डटकर विरोध करते हैं। वे व्यक्ति और समाज के समस्त प्रकार के बन्धनों के विरोधी तथा प्रेम से अध्यात्म तक सर्वत्र पूर्ण स्वाधीनता के समर्थक हैं। जीवन की यथार्थ भूमि पर मानवता की पूर्ण प्रतिष्ठा करके वे विश्व-मंगल की कामना करते हैं। उनकी जीवन-दृष्टि अत्यन्त तीक्ष्ण, अन्तर्व्यापिनी, विराट् परिवेश में फैली हुई तथा मानवतावादी चेतना से समुज्ज्वल है। वे सदैव यह कामना करते रहे हैं—

दूर हो अभिमान, संशय
वर्ण-आश्रम-गत महा भय
जाति-जीवन हो निरामय,
वह सदाशयता प्रखर दो।

निराला—मानवतावाद और सौंदर्य-तत्व

हर कवि की प्रारम्भिक कविताओं में मात्र भावानुभूतियाँ और भावुकता के ही अधिक अंश होते हैं। उत्तरोत्तर विकास के साथ विचार दिशा अधिक स्पष्ट होती जाती है। किन्तु सर्वत्र एक विरोध-सा दृष्टिगत होता है; क्योंकि भावुकता से अन्तर्निहित विचार विकास-सोपनों वाले विचार से कदाचित् भिन्न होता है—भिन्न ही नहीं, उनकी आधारभूतियों का ही विरोध तीव्र हो उठता है। निराला की कविताओं में इसी द्वन्द्व का अन्वेषण हमें करना है। वहाँ विचार के कई सोपान हैं। उनका वर्गीकरण किया जा सकता है। वर्गीकरण का आधार कृतियाँ हो सकती हैं या समय जो समान रूप से विचारधाराओं का जनक है या फिर वे प्रभाव जो कवि पर पड़े हों। निराला जी जब पैदा हुए थे, हिन्दी कविता अपने आरम्भ पर थी। उनके रचनाकाल के साथ ही एक विशिष्ट विचार चलने लग गया था। काव्य का ध्येय 'कान्ता सम्मति·······' जैसा कुछ था, अर्थात् काव्य की उपयोगिता मानी गई थी। पार्थिव स्तर पर वह अध्मात्म संकेत करनेवाली हो, जीवन को उदात्त तत्व देनेवाली—इत्यादि। इस प्रकार रचना का महत्व सौन्दर्य की दृष्टि से न परखकर ध्येय या उद्देश्य की दृष्टि से प्रमुख माना गया। उसमें शिवं तत्व हो। सत्यं और सुन्दरम् दोनों ही शिवं में हैं। इससे प्रत्यक्षतः निराला जी ने विद्रोह किया, उनकी प्रारम्भिक कविताओं में बहुत-कुछ यही स्वर छिपा है, यद्यपि केवल कविता इसी बात के लिए नहीं मानी उन्होंने—अपितु कवितात्मक ढाँचे के अन्दर अपनी बातों की पुष्टि के लिए स्थान रखा। यहीं से विचार-द्वन्द्व आरम्भ होता है और उसके वर्ग या स्तर बनते हैं।

कविता आगे बढ़ जाती है और विचार पीछे छूट जाता

है। लेकिन पीछे छूटे विचार का महत्व नगण्य नहीं होता। अपितु वह बहुत-कुछ कविता के मूल्य के लिए उत्तरदायी है। कविता में सापेक्ष मूल्य आता ही तब है। जब उसमें विचार तत्व का समावेश हो। विचार-प्रक्रिया सायास रूप नहीं है, वरन् वह अनायास आगमन है। विचार का आयास रूप सूखा होता है। उसमें कठोरता होती है। वह गद्य के लिए उपयुक्त है; किन्तु पद्य में सर्वत्र कोमलता है। कोमलता के अन्दर भी विचार गुच्छ होते हैं। वे अपने आप में पूर्ण होते हैं तथा स्वाधीन भी होते हैं। उन विचारों की स्वाधीनता उसी कोमलता तक सीमित रहती है। विचार कविता पर हावी नहीं हो जाते; अपितु कविता के मूल संघर्ष की आधार-शिला होते हैं विचार। उनमें द्वन्द्व होता है। इसीलिए काव्य में दो विचार रह जाते हैं। एक, मान्यता का विचार; दूसरा, अमान्यता का। एक का ही प्रभुत्व होता है जो भी मान्य होता है।

कविताओं के विकास के आधार पर विचारधारा के तीन सूत्र हो सकते हैं—

(१) प्रारम्भिक विचार—

(अ) वातावरण के प्रभावस्वरूप।

(आ) अध्ययन के प्रभाव स्वरूप।

तथा—

(इ) वैयक्तिक व्यक्तियों का प्रभाव।

(२) विचारधारा का श्रीगणेश—

(अ) जीवन के प्रति दृष्टिकोण।

(आ) मिलीजुली विचारधारा का ध्येयोन्मुखी पथ।

तथा—

(इ) अपने व्यक्तित्व के अनुरूप मान्य विचार।

(३) परिपक्व विचारधारा अथवा दृढ़ जीवन-दृष्टि अथवा सामान्य तर्क सिद्ध बौद्धिक दृष्टिकोण।

(अ) बौद्धिकता के प्रति आग्रह।

(आ) बौद्धिक तर्काधार पर जीवन की व्याख्या एवं कुछ निष्कर्ष।

(इ) समन्वित रूप।

(१) प्रभाव।

(२) अध्ययन।

३ व्यक्तित्व।

प्रारम्भिक विचार स्पष्ट नहीं हैं। अर्थात् विचार-तत्व प्रमुख नहीं है। इसलिए यों भी कह सकते हैं कि भावना के स्पष्टीकरण के कारण विचार अस्पष्ट हो गया है। विचार-तत्व आंशिक है। किन्तु फिर भी प्रारम्भ में वातावरण का प्रभाव अवश्य है। उसमें युग की राजनीति, युग का समाज और युग के व्यक्ति का अर्थ के प्रति विद्रोह है। ऐसे विद्रोही वातावरण में विचार-तत्व की भी विद्रोहात्मक स्थिति है अर्थात् उनमें रूढ़ि के प्रति विद्रोह है, विचार स्वातन्त्र्य के प्रति विद्रोह है। भावुक स्थितियों में विद्रोह भावना का है। अर्थात् भावना ही विद्रोह की कड़ी है। उससे विद्रोह की स्थिति मजबूत होती है। अर्थात् विद्रोह है हर स्थिति में, हर स्वर में; और वह भावनात्मक विद्रोह हर धरातल पर है। कविता के नीरस रूप से प्रारम्भ होता है। जीवन तक चलता है। निराला का विद्रोह सृजनात्मक है। विचार में सृष्टि को बना-बिगाड़ देने की शक्ति होती है। निराला के प्रारम्भिक विचार में निर्माण-शक्ति है। वह हर रूप से रचनात्मक है।

उसमें रचनाशक्ति है। इस सम्बन्ध में कई प्रमाण हैं। निराला ने सर्वप्रथम विचाररूप में 'स्वातन्त्र्य' दिया। कविता मुक्त और स्वतंत्र होनी चाहिए। केवल रूढ़ि का ही अनुकरण नहीं। नया विचार था यह जिसने पूर्ण आन्दोलन का रूप लिया। इसका अनुकरण लेखों ने किया। निराला जी के व्यक्तित्व की छाप मिलती है हमें—वही मस्त भोलापन, एक प्रवाह, गतिशीलता इत्यदि; तथा विचार में स्पष्टता—साधारण से ऊपर।

यह विद्रोह असाधारणत्व वातावरण का था। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों से प्रभावित मनुष्य का। बीसवीं शताब्दी की चेतना थी उसमें स्वाधीनता के लिए चीखपुकार। निराला जी ने अप्रकट रूप से इस तत्व को लिया। किन्तु मूलवत विद्रोह सर्वत्र वर्तमान है। उसमें उन्होंने साधारण मानव को लिया। यही साधारण मानव बाद के काव्य-जगत का आधार बना। एक 'कानसेप्ट' के रूप में आगे आनेवालों ने इसे स्वीकारा, विचार-रूप में लिया और बुद्धि की तुला पर तोला। तथा उसे बौद्धिक पूर्वग्रहों से लपेट दिया। इस 'कानसेप्ट' को विचार तत्व का 'कानसेप्ट' माना गया; इसलिए कि इसमें स्पष्टता के नाम पर कुछ शेष था। निराला ने सभी कुछ ग्रहण किया—वातावरण का अवशेष भी तथा जीवन का अनुभव भी। और अगर यही कहा जाय कि निराला का मुख्य विचार जीवनानुभव से प्राप्त है तो अत्युक्ति न होगी। वह

जीवन का अनुभव ही अध्ययन है। उसी में निजीपन है। उसी के द्वारा व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

इधर-उधर से लेकर अपनेपन में ढाल देना ही व्यक्तित्व की छाप नहीं कही जा सकती। अपनापन छाप तो है, किन्तु उसमें निजी अपनापन हो, मौलिक हो ; तब उपलब्धि होती है। निराला जी के बारे में यह सत्य है। उनकी कविताएँ ही उनका व्यक्तित्व हैं। व्यक्तित्व ही कविता है—ऐसी कविता जो प्रेषणीय है।

निराला जी कवि हैं। कविता में चिन्तन की प्रवृत्ति उनकी अपनी है। उसी चिन्तन ने आगे चल कर उन्हें आदर्शवादी पथ दिया। वह आदर्श दर्शन का आदर्श है। और वह परम्परा का पोषक इतना नही, जितना उसमें समन्वय की चेतना और तीव्रता है। वे मात्र दार्शनिक शब्द नहीं देते ; अपितु दर्शन को कविता का माध्यम् देते हैं। हृदय के भावों को दार्शनिकता देते हैं, यह भी कह सकते हैं। चिन्तन की इसी भूमि पर विचारधारा का दार्शनिक रूप उद्घाटित होता है। उनका आगामी काव्य विचार को दृढ़ता देता है। कवि यथार्थ के अनुभव लेता है। यथार्थ के अनुभवों को आदर्श भूमि देता है। सर्वत्र यही है—वहाँ तक जहाँ वे आदर्शवादी स्वर में कुछ दुहराते होते हैं। लेकिन यह आदर्श का दर्शन—कुल मिलाकर मानवतावाद ही है।

उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी मानवतावादी था। उनके जीवन की कई घटनाएँ इसकी साक्षी हैं। निर्धन और गरीब को देखकर उसके हृदय में दया और सहानुभूति का भाव उठता था। निर्धनों को धनादि बाँट देने की तो.कई कथाएँ प्रचलित हैं। इसीलिए उनकी कविताओं में हमें गहराई मिलती है साम्यानुभूति की। और उनमें आक्रोश झलकता है छिपा हुआ। निराला जी में अद्वैतवाद का दर्शन छाँटने की बहुत कोशिशें की गईं। मनुष्य का बन्धन से मुक्त हो जाना यदि अद्वैतवाद है तो ठीक है। लेकिन व्यवहार में अद्वैतवाद को मान्यता कम है। यहाँ सर्वत्र द्वैत है। निराला अद्वैतवादी हैं किन्हीं अंशों में। लेकिन पूर्णतया नहीं। वे अद्वैत वेदान्त का आधार तो लेते हैं—यह अद्वैत अध्ययन का परिणाम है या प्रभावों का ; किन्तु मिली-जुली विचारधाराओं का एक परिणाम है समन्वय का क्रम। और निराला ने समन्वय किया भी विचारों का। उनसे आगे काव्य का भी। और आगे का काव्य व्यक्तित्व है अर्थात् व्यक्तित्व की प्रकट छाप है। उस व्यक्तित्व में समन्वय है। विरोधी और प्रतिरोधी से मिलकर समरोधी हो जाता है निराला वही

समरोवी हैं जिसने समान रूप से मिलाकर उनका विरोध किया है। यहाँ विचार तत्व का केन्द्र अन्तस है।

बाद में आकर निराला जी की विचारधारा स्पष्ट हो गई, परिपक्वता लक्षित होने लगी। सामान्य रूप में विचार द्वन्द्व के रूप में उनकी कविताओं में निहित विचार का अवलोकन करना समीचीन होगा। प्रथमतः उनकी दृष्टि किस आधार पर है ? फिर वे उस आधार का उम्र के साथ कैसा कैसा संयोग दिखाते हैं, या स्वीकारते हैं अथवा उसे अपने अनुरूप पाते हैं ?

मैंने यहाँ उम्र की बात की। संभवतः यह बात बहुत आत्मगत (सब्जेक्टिव) हो जायगी। किन्तु विचार के साथ सम्बन्ध है। स्वीकारने-अस्वीकारने का प्रश्न तब खड़ा होगा जब कि उम्र के साथ का विचार—समानान्तर चलता रहे, विचार से अपने को तोले या अपने अस्तित्व के प्रति संशक रहे—तब निश्चय दे कि विचार का क्या अग्रिम महत्व है—अपने आत्मगत विचार का ; क्योंकि वह ही एकमात्र विकास है,जिस पर हम कोई परीक्षा कर सकते हैं।

आरम्भिक कविताओं में प्रगतिवादी स्वर प्रमुख हैं। इसके कई कारण हैं। बाद में प्रगत्योन्मुख आदर्शवादी विचारक बन जाते हैं निराला। और अन्त में दार्शनिक आदर्शवादी, यह कह कर 'कभी न होगा मेरा अन्त'- -एक चुनौती दे जाते हैं सभी प्रश्नों को—जीवन-मृत्यु के दो कगारों को एक चुनौती। और यहाँ पर आकर एक सौन्दर्य हो जाता है—ठहराव, गहरा ठहराव। वहाँ आशावादी तत्व प्रबल हो जाता है। दुःख सह कर भी आशा का स्रोत सूख नहीं पाता, नैराश्य नहीं है। लेकिन दर्द में तो नैराश्य की झलक है ही, वह दर्द ही है—जो समभाव के आदर्श में पलता है। लेकिन उसका नैराश्य कमजोर हैं और आशा सबल। यह आशा भी किसी ठोस की नहीं है—इस आशा का रूप अति सूक्ष्म है—घुलीमिली भावना और विचार। किन्तु इस भावना और विचार का आधार प्रतिक्रिया है जो व्यक्ति अपने चारों ओर के अस्वीकार के खिलाफ करता है। एक ओर निराला वेदान्त से प्रभावित हैं, ब्राह्मणवाद की पावनता को मानते हैं ; उसके प्रति उनकी आस्था है, दूसरी ओर वे युगयथार्थ से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। कहीं वे शंकर के अद्वैत को मान्यता देते हैं तो कहीं पार्थिव सृष्टि के महत्व को भी भाव मान लेते हैं। यह विचार-तत्व दो धाराओं से सम्बंधित है। एक ओर अतिरिक्त चेतना है जो स्थिर, जड-जगत के तत्वों पर लागू होती है, दूसरी ओर चेतना

का अन्तरम स्तर है जो केवल सूक्ष्म को छूने, पाने की कोशिश में लगा है। यह सब एक मिश्रण के रूप में सामने आ जाता है—वह है मानवतावाद। और निराला के विचार-संघर्ष का परिणाम यही मानवतावाद है। इसमें एकत्व है—एकरसता है। विचार-द्वन्द्व का अन्तिम पक्ष है—द्वन्द्व की स्थिति से समन्वय की ओर जाना। और निराला की अन्तिम कविताएँ समयोचित समन्वय की ओर जाती हैं। द्वन्द्व से समन्वय का पथ मिल जाता है।

× × ×

निराला जी की कविताएँ स्पष्ट नहीं रही हैं। इसका कारण वर्तमान जीवन की जटिलता भी हो सकता है। उसी के अनुरूप निराला जी की कविताओं में निहित मानवीय मूल्य तत्वों में उलझाव है—कुछ व्यक्तिनिष्ठ या व्यक्त्योमुखी कविताओं में और भी अधिक अस्पष्टता है। उसका कारण कुछ भी हो। वैयक्तिकता का अलग दर्जा है। और उस अलग अस्तित्व के अलगाव की सत्ता में ही सौंदर्य तत्व है। काव्य सौंदर्य स्थायित्व का प्रतीक है। मेघदूत, कुमारसम्भव अथवा उत्तररामचरित या रामचरित मानस की प्रियता का भी यही कारण है। उनमें वह मूल तत्व है जो सदैव एक समान रहता है, जिसमें युगों की अदला-बदली का अन्तर नहीं पड़ता। वह मूल तत्व होता है अनुभूति की एकरसता का, अनुभूति के सौदर्य का। यही तत्व अभिव्यक्ति को भी सुन्दर बना देता है। मूल की प्रतिच्छाया होकर अभिव्यक्ति तत्व भी सुन्दर हो जाता है।

निराला जी की कविताओं का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी अन्तरंगी दृष्टि मूल के उस सौन्दर्य की भावानुभूति है। यही अनुभूति खण्ड जीवन के साथ चलकर व्यक्त हुए हैं। व्यक्तीकरण की प्रक्रिया में अनुभूति जैसी सहजता ही सौन्दर्य है और वह इनमें सर्वत्र प्राप्त है। सर्वत्र अनुभूति का सहजपन है और व्यक्तीकरण का सहजपन भी जो गांभीर्य की ओर इंगित करता है। आगे चलकर वही तत्व सागर जैसी गहराई से रत्नों का अन्वेषक होता है, निराला जी की कविताएँ उसी सागर के मोतियों और रत्नों की तरह हैं, जो सहसा साहित्य के विशाल भंडार से चुने जा सकते हैं।

अन्तरंगी दृष्टि के आधार भी मूल सौन्दर्य से प्रेरित होंगे; क्योंकि कवित तभी उसने अपना साम्य स्थापित कर पाता है। अनुभूति के आधारों की ओर कवि की दृष्टि अत्यन्त कोमल होती है; किन्तु उनके व्यक्त स्वरूप परुष ही सकते हैं या होते हैं। लेकिन कवि की स्वीकृति उन्हें

कोमल रूप में ही मिलती है। इसे हम दृष्टिसाम्य कह सकते हैं। यही दृष्टि-साम्य सौन्दर्यवादी परख की पहली सीढ़ी है। यहाँ कवि, कोमलता, वातावरण और कृति है। चारों के बीच एक रास्ता है, एक दूरी। उसे व्यक्तीकरण के क्षण पूरा करते हैं। अर्थात उसे हम रचना - प्रक्रिया के क्षणों की बात कहते हैं, जब कवि और कृति में अन्तर नहीं रह जाता। बीच का कृत्य ही सौन्दर्यानभूति है और अन्त है सौन्दर्य की अभिव्यक्ति—पहले अनुभूति, बाद में व्यक्तीकरण। दोनों का मिलाजुला सौंदर्य रूप है कृति। एक प्रतिमा के समान, यहाँ अनुभूति के महत्व को माना जाता है।

कृति-अनुभूति का महल है। अनुभूति की कड़ियों की शृंखला की गाँठ है कृति। और उसमें वह मूल सौन्दर्य शिल्प के आधार पर चमक उठता है। एक नई गरिमा झलकती है उसमें। उसे भारतीयशास्त्र के अनुसार रस-परिपाक की स्थिति भी मान सकते हैं; क्योंकि साधारणीकरण की स्थिति में ही सौन्दर्य-भावना कहीं छू जाती है। विचार एकान्तिक होते हुए भी मान्य हो सकता है, किन्तु भावना तो सर्वमान्य होती है। भावना की भूमिका पर सबकी एक सी स्थिति होती है। कृतिकार में कुछ तीव्रता होती है। किन्तु हो सकता है सौन्दर्यानुभव की क्षमता अधिक रखनेवाले पाठक में वह तीव्रता अधिक व्याप जाय। सौन्दर्यानुभव की क्षमता का मूल आधार कृति है। किन्तु कभी-कभी वह कृति से बदल कर कृतिकार के व्यक्तित्व, वातावरण इत्यादि पूर्वगुणों के कारण उस अनुभव में अधिक तीव्रता आ जाय। अथवा पाठक में सौन्दर्य की पकड़ इतनी गहरी हो कि वह सहज से असाधारण सौन्दर्य प्राप्त कर ले। पाठक की सौन्दर्य 'एप्रोच' दो तरह से बनती है। या तो उसका वातावरण अनुकूल हो अथवा साहित्यिक कृतियों की परम्परा और संस्कारों से उसमें ज्ञान राशि हो—एक भण्डार के रूप में; और पीढ़ियाँ उनका उपयोग कर आई हों, तब सौन्दर्य की पकड़ के बीज जमते हैं। यों अपवाद हर जगह होते हैं। पाठक के लिए लेखक को दोनों बातों या दोनों तथ्यों से गुजर जाना पड़ेगा कि वह एक 'अंडरस्टैंडिंग' पैदा करे।

कृतिकार की कृति के सौंदर्य की बात कहेंगे तो वह ठीक नहीं होगी। कृति में जो भी सौंदर्य है—वह कृतिकार ने उसे दिया है, या उसे पाठक अनुभव करता है, अथवा कृति में ही सौंदर्य है; ये तीन प्रश्न हैं। अकेले कृति के सौंदर्य पर प्रश्न नहीं उठ सकता। कृति, पाठक और कृतिकार, तीनों का महत्व है—सौंदर्य के मूल्यांकन में। निराला जी की कविताओं की बात लीजिए। अनुभूति की तीव्रता सर्वत्र है। कविता में निजीपन है।

और निराला जी की व्यक्तित्व की छाप उसे हम कह डालते हैं। यह व्यक्ति की छाप निजी अनुभवों के कारण है। अनुभवों की आत्मीयता उसे मैं कहूँगा। जितना निकटतर कृतिकार होगा—उतने ही निकटतर वह अभिव्यक्ति (कृति) को भी ले आएगा। निराला की सौन्दर्य 'एप्रोच' बहुत समर्थ है—कला और अनुभूति, दोनों रूप में। कलान्तर्गत छंद, अलंकार आदि आते हैं। अलंकार आदि भाषा के गुण हैं। छन्द प्रवाह रूप में वर्तमान है। तथा भाषा के प्रेषण प्रश्न पर प्रश्न उठ सकता है। किंतु वह दृष्टिभेद है। कला सौंदर्य के कई स्तर हैं। वह अनुभूति के स्तरों से लेकर चलते हैं। और अभिव्यक्ति के स्तरों में उनकी इतिश्री होती है। कलागत अनुभव—कलागत तीव्रता, कलागत इच्छादि इसके अंतर्गत हैं। निराला जी में तीव्रता अधिक है। तीव्रता का स्तर ही सौंदर्य में आकर्षण और चमत्कार लाता है। वह चमत्कार या आकर्षण कला की क्रिया है। कला क्रिया के अंतर्गत ही सौंदर्य-प्रक्रिया आ जाती है। या दोनों को एक साथ चलती हुई क्रिया मान सकते हैं; क्योंकि दोनों साथ-साथ होती हैं। कला में उसका आरोपण है, व्यक्त रूप है—सूक्ष्म और अव्यक्त होते हुए भी। निराला जी की कविताओं में यह सूक्ष्मता बराबर बनी रही है। आंतरिक-सूक्ष्मता के आधार पर ही बाहर शिल्पगत सौंदर्य का प्रभाव पड़ता है।

यहाँ हम निराला जी की कुछ कविताओं को लेकर उन पर विचार करेंगे। उनकी पूर्ण काव्य-प्रक्रिया के माध्यम से उनके समग्र काव्य का मूल्यांकन संभव है; क्योंकि फिर उसी आधार पर अन्य कविताओं का मूल्यांकन सहज हो जाएगा। उनकी कविताओं में भाषादुरूहता के अतिरिक्त कोई ऐसी बात नहीं जो आगे चलनेवाली काव्यधारा से सम्बन्ध न रखती हो। आनेवाली काव्यधारा उनकी ऋणी है; क्योंकि उनमें सांस्कृतिक चेतना के बीज हैं, विचार का स्रोत है और सौंदर्य का आदर्श है। यही सौन्दर्यादर्श सभी चीजों का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें स्वीकार्य युग की परिस्थितयों का समन्वय तक है। अन्तिम विन्दु है सौंदर्यादर्श का और वह सौंदर्यादर्श ही पराकाष्ठा है।

परिमल की कविताओं को लें। छन्दोबद्ध कविताएँ शास्त्रीय दृष्टिकोण से ठीक हैं, लेकिन उनमें विचार-सौंदर्य की नवीनता है। मात्र उपदेश नहीं; नीरसता नहीं, अपितु लगता है अन्तर्मन की अनुभूतियाँ नृत्य कर रही हैं। कविता में होता ही यही है।

लेकिन जिनमें शुद्धतः नया स्वर है, बौद्धिक आग्रह है, उनमें कविता का सौंदर्य बदल गया है। मूल तो सुन्दर है ही—उससे अलग कह

नहीं जा सकता; किंतु आधार और माध्यम बदल गये हैं। तीव्रता बहुत है—भाव और विचारों की।

जूही की कली इन कविताओं में श्रेष्ठ है। और उसमें सौंदर्यानुभव की तीव्रता होते हुए भी सौंदर्य अनुभूति (Aesthetic experience) अपने आप में पृथक है। इसमें लौकिक रति है। और लौकिक रति को अलौकिकता दे दी गई है। कविता दिव्य धरातल पर उतर आती है। महत्व की बात वह नहीं है। महत्व है सृजन-प्रक्रिया का।

जूही की कली में दूसरी बात है उसका व्यक्त सौंदर्य। कदाचित कठिन कविता है, लेकिन प्रेषण धर्मिता बराबर बनी रहती है। थोड़ी भाषा की 'एप्रोच' अवश्य चाहिए। उससे कविता के मर्म तक पहुँच जाने में सरलता होती है। या फिर व्यक्ति उसी प्रकार के Aesthetic experiences में से गुजरा हो अथवा व्यक्ति में उस स्तर के अनुभवों के अर्थ-ज्ञेयता की पूर्ण क्षमता हो।

जूही की कली में कवि 'सब्जेक्टिव' कम है। इसमें यौवन की सारी उद्दामता और उष्मा का व्यक्तीकरण है, ललित भावनाओं की अभिव्यक्ति है तथा एक वस्तुगत 'नैरेशन' है—

विजन वल वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी स्नेह-स्वप्न-मग्ना
अमल कोमलतनु तरुणी-जुही की कली

जूही की कली में मूर्त सौंदर्य ही कवि का इष्ट है। वह अमूर्त भावों की प्रतिमा है। प्रारंभ में सौंदर्य सृष्टि है। वह सयत्नज है। उसमें 'नैरेशन' की भावना है; क्योंकि व्याकरण की दृष्टि से 'थी' सहायक क्रिया भूतकाल से सम्बिधित है। कवि एकाएक भूत की घटना को क्रम देता है, एक सौन्दर्य-अनुभव मानकर और वह सौंदर्य-अनुभव अपने आप में पूर्ण है। आगे चलकर वह अनुभव खण्डों में विभाजित हो जाता है। यहाँ भी खण्ड-स्मृति वाली बात है। एक खण्ड अनुभव का चित्र और ही है और दूसरे का बिल्कुल पहले से परिवर्तित। इन अनुभव-खण्डों के माध्यम मूर्ति के अंग-उपांग बने हैं। इन अनुभव-खण्डों का पूर्ण संयोजन एक है। और इनमें पृथक 'एसोसियेशंस' हैं। खंडित 'एशोसियेशंस' जो कृति के पूर्ण विकास के लिए अपेक्षित हैं। क्योंकि वह खंड का सौंदर्य प्रस्तुत करता है खंड के पृथक्त्व के रूप में, और फिर उसे सम्पूर्ण रूप देता है। जूही की कली में यही कुछ है। कवि अपनी ओर से स्मृति रस देता है, खंड के रूप में—और सम्पूर्ण संयोजन के आधार भूत रूप में—उसमें ही सौंदर्यतत्व है

संयोजना का सौंदर्य शिल्प का सौन्दर्य है जो कवि-प्रतिभा पर उतना अधिक आधारित नहीं, जितना 'टेस्ट' पर है। और 'टेस्ट' का प्रश्न सौन्दर्यानुभव के स्तर का भी हो सकता है, या सौन्दर्य को महसूस करने के स्तर का भी। वरन् यह प्रश्न तो 'विजीवल एप्रोच' का है। जो दीख सके सुन्दर—उसमें जान डालना, आरोपण करना। ध्येयोन्मुखी कला का यही उद्देश्य है—बाहर से जान डालना, दीख रही वस्तु को और चमकीली बनाना। और यह प्रयास मूल्य स्थापन का है। सौन्दर्य-सम्बन्धी सभी मूल्यों की स्थापना हो जाती है। सौन्दर्य का ध्येय—सौन्दर्य की उपलब्धि और साम्यानुभूति के स्तर पर आकर स्थापना हो जाती है, शेष रह जाता है मूल्यांकन का प्रश्न। मूल्यांकन का आदर्श कुछ भी हो सकता है, लेकिन यहाँ विवेच्य है सौन्दर्य तत्व। अतः सौन्दर्यतत्व की ओर एक वस्तुपक्षीय दृष्टि डालना आवश्यक है। सौन्दर्य को 'निरपेक्ष' माननेवालों के मतानुसार कई समाधान प्रस्तुत हो जाते हैं। कविता का ध्येय ही सौन्दर्य है—निरपेक्ष सौन्दर्य की स्थापना, उसमें सम्बन्धता या सापेक्षता नहीं। विषयवस्तु व्यक्ति से, समाज तक से निरपेक्ष भी हो सकती है। विषय-वस्तु में नवीनता का प्रश्न उठ सकता है। वह एक पूरे युग के साथ होता है। लेकिन विन्यास की नवीनता सौन्दर्य का प्राण होती है, ऐसा सौंदर्य-वादी लोग मानते हैं। विन्यास की नवीनता के आधार पर ही निराला का नया मूल्यांकन माँगा जा सकता है। 'कार्य' की विशेष दृष्टि निराला को प्राप्त थी, तभी तो पुराने को एक दम ठुकरा कर निराला ने कार्य की नवीन दृष्टि का आश्रय लिया। लेकिन सौन्दर्य-दृष्टियाँ अलग-अलग हैं—(१) एक के अनुसार प्रतिभा, ज्ञान या 'इंट्यूशन' ही सर्वश्रेष्ठ सुन्दरतम रचना है—उसके बाद सौन्दर्य नहीं है। (२) कुछ के मतानुसार क्वालिटी या गुण में सौन्दर्य है। (३) कुछ लोगों ने मंगल प्रवृति को सौन्दर्य माना है। (४) तथा अनेकों के मत से सिर्फ कल्पना में सौन्दर्य है। इन सबका निष्कर्ष 'कार्य' या विषय-विन्यास पर आकर टिक जाता है। तब (१) अनुभूति की नवीनता, (२) तीव्रता, (३) सार्वभौमिकता, (४) सत्यता, (५) और ग्राह्यता के आधार पर सौन्दर्य-मूल्यों का अन्वेषण किया जाता है। निराला की कविताओं में इन बातों का जिक्र हमने संक्षेप में किया है। सौन्दर्य मूल्यों का स्थापन—आज की आवश्यकता है। उससे हम कविता-दृष्टि पा सकते हैं—अनुभूति के समान स्तर की जो हमें निराला में उसे दुरूह कहकर छोड़ देनी पड़ती है। निराला में वस्तुगत और विकासगत, दोनों आधार पर्याप्त मात्रा में हैं

× × ×

तुम्हीं रहो, मिल जाय जगत सब
एक तत्त्व में, ज्यों भव-कलरव।
ज्योत्स्नामयि, तम को किरणासव
पिला, मिला उर लो।

—'गीतिका', पृ० १८।

इसी स्थिति में विचारक के लिए ब्रह्म और जगत में कोई अन्तर नहीं रह जाता, प्रत्युत उसे उभय पक्षों में एक ही तत्व के अस्तित्व की अनुभूति होती है—

जग का एक देखा तार।
कण्ठ अगणित, देह सप्तक।
मधुर स्वर-झंकार।

बहु सुमन, बहु रंग, निर्मित एक सुन्दर हार,
एक ही कर से गुँथा उर एक शोभा-भार!
गन्ध-शत अरविन्द-नन्दन विश्व-वन्दन-सार
अखिल-उर-रंजन निरंजन एक अनिल उदार
सतत सत्य, अनादि निर्मल सकल-सुख विस्तार:
अयुत अधरों में सुसिंचित एक किंचित प्यार
तत्व-नभ-तम में सकल-भ्रम-शेष, श्रम निस्तार
अलक-मंडल में यथा मुख-चन्द्र निरलंकार।

—'गीतिका', पृ० २४।

आत्मा और परमात्मा में एकात्मकता की अनुभूति के अनंतर कवि को सर्वत्र केवल 'मैं' ही 'मैं' दिखायी देता है—

वहाँ कहाँ कोई है अपना? सब,
सत्य नीलिमा में लयमान।
केवल मैं केवल मैं, केवल
मैं, केवल ज्ञान।

इसी समय कवि के मन में एक नया प्रश्न उठता है। वह सोचने लगता है कि जब चर, अचर, सबमें व्याप्त तत्व एक ही है, तो द्वैत या भेद-भाव कैसा और क्यों है? निराला जी की यही जिज्ञासा निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यंजित हुई है—

तुम हो अखिल विश्व में
या अखिल विश्व है तुममें,
अथवा अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूँ तुममें भेद अनेक।

इस भेद-दर्शन का कारण है व्यक्ति का अज्ञानता-जनित अंधकार। अंधकार के कारण जिस प्रकार प्राणी को सत्पथ नहीं मिलता और वह उसकी खोज में इधर-उधर भटकता रहता है, यहाँ तक कि कभी-कभी ऐसे बीहड़ स्थान पर पहुँच जाता है कि उसके प्राण संकट में पड़ जाते हैं, उसी प्रकार अज्ञानता के वशीभूत हो व्यक्ति अपने को स्वार्थ, और आत्महित की संकुचित सीमाओं में आबद्ध कर लेता है और फिर उसे प्रति क्षण मृत्यु का भय भयभीत किया करता है—

कर लिए बन्द तूने अपार
उर के सौरभ के सरण द्वार,
है तभी मरण रे अन्धकार
घेरता तुझे आ क्षण-क्षण।
देख ले, सकल जल बंधन-बल
पार कर खिला वह श्वेतोत्पल।

—'गीतिका', पृ० ५२।

तात्पर्य यह कि जो अंधकार प्राणी के भय का कारण है, वह किसी दूसरे की देन नहीं है। किसी भवन में स्वस्थतादायी प्रकाश आने के जितने द्वार हैं, उन्हें यदि कोई स्वयं बंद करके अपने आवास को अंधकारमय बना ले और अस्वस्थ वातावरण के फलस्वरूप प्रतिक्षण मृत्यु की ओर बढ़ता जाय तो किसी का क्या दोष? उन द्वारों को खोलने पर ही तो प्रकाश के साथ-साथ स्वस्थता का संचार करनेवाली सौरभमय वायु हृदय-भवन में प्रवेश पास सकेगी; अस्तु।

उस अज्ञान-तिमिर को नष्ट करने का दूसरा उपाय है सत्य ज्ञान की प्राप्ति, जिससे तमसान्धकार को पारकर प्राणी जीवन-मरण के रहस्य को जानने में समर्थ होता है। ज्ञान का यह महत्व समस्त दार्शनिक विचारधाराओं में सामान्य रूप से मान्य है। साधना की परमावस्था की प्राप्ति का एकमात्र उपकरण यही है। ज्ञान की प्राप्ति से स्थिति सर्वथा बदल जाती है कि ज्ञान-चक्षुओं को खोलने पर जिस नियामक को देखकर

हम मुग्ध होते थे, वही हमें देखकर मुग्ध होगा और तब हम सहज ही ऊर्ध्वगमन की स्थिति प्राप्त कर सकेंगे—

खोलो दृगों के द्वय द्वार
मृत्यु-जीवन ज्ञान-तम के
करण, कारण पार।

उधर देखोगे, सुघर तर तुम्हीं दर्शन सार,
मोह में थे भ्रम, जग परितृप्त बारम्बार।
यवनिका नत्र खोल देना नाट्य सूत्राधार।
लुब्ध करता जो सदा, वह मुग्ध होगा हार।
लखोगे उर कुंज में निज कुंज पर निर्भार,
अखिल ज्योतिर्गठित छवि, कच पवन-तम-विस्तार।
बहिर्-अन्तर एक पर होंगे, खिलेगा प्यार;
ऊर्ध्व-नभ-नग में गमन कर जायगा संसार।

—'गीतिका', पृ० ४८।

ब्रह्म की विद्यमानता प्राणि-मात्र में उसी प्रकार मानी जाती है जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी; फिर भी तीर्थस्थानों आदि में उसे खोजने के स्वभाव पर मानव विजय नहीं प्राप्त कर पाता। निराला जी ऐसे नादान खोजियों को प्रबोध देते हैं कि ब्रह्म निकट ही है; उसे खोजने में व्यर्थ परेशान होना निरर्थक है। अखिल जग अंधकूप जैसा है; उसमें सत्य का रूप खोजना हास्यास्पद ही है—

पास ही रे, हीरे की खान,
खोजता कहाँ और नादान?

कहीं भी नहीं सत्य का रूप,
अखिल जग एक अन्ध-तम कूप,
ऊर्मि घूर्णित रे, मृत्यु, महान,
खोजता कहाँ यहाँ नादान?

—'गीतिका', पृ० २७।

इस दार्शनिक चिन्तन की सफलता होती है मुक्ति तत्व की प्राप्ति में; माया-रहित ब्रह्मतत्व की प्राप्ति ही मुक्ति कहलाती है। इस स्थिति को प्राप्त करते ही जीव की क्लान्ति दूर हो जाती है, उसका अहंकार मिट जाता

पहुँचा मैं लक्ष्य पार
अविचल निज शांति में,
क्लांति सब खो गयी,
डूब गया अहंकार,
पाया स्वरूप निज,
मुक्ति रूप से हुई।
ज्योतिर्मय चारों ओर,
परिचय सब अपना ही !

'परिमल' में भी कवि ने जग के पार जाने की कामना इसीलिए व्यक्त की है; क्योंकि वहाँ उसे 'ज्योति के सहस्र रूप' खिले होने का विश्वास है—

हमें जाना है जग के पार,
जहाँ नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले
वहीं जाना इस जग के पार।

चिंतन की गहन अनुभूतियों के पश्चात कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आत्मा और ब्रह्म में कोई ठोस अन्तर नहीं है—अन्तर है केवल आकार का। यदि वह हिमालय सा विशाल है तो आत्मा-सरिता के समान लघु ! इससे कवि का संकेत यह है कि सरिता का मूल हिमगिरि ही है; उसी से वह जीवन और शक्ति प्राप्त करके जगत में अवतीर्ण होती है। इसी प्रकार ब्रह्म को भव-सागर, नभ, बाल-इंद्र आदि तथा आत्मा को सागर पार जाने की अभिलाषा, नीलिमा, 'निशीथ-मधुरिमा' आदि मानने के मूल में भी भाव यह है कि ब्रह्म के बिना जीवात्मा का अस्तित्व ही संभव नहीं है—

तुम तुंग-हिमालय-शृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।

+ × ×

तुम भव-सागर दुस्तार,
पार जाने की मैं अभिलाषा।
तुम नभ हो, मैं नीलिमा

तुम शरत काल के बाल-इन्दु,
मैं हूँ निशीथ मधुरिमा।

—'अपरा', पृ० ६८।

तात्पर्य यह कि निराला का रहस्यवाद चिन्तन-प्रभूत है; कबीर की भाँति वह साधनात्मक न था। परंतु कुछ स्थलों पर कवि ने योग-साधनों का भी उल्लेख किया है जिससे अनुमान होता है कि कवि ने ज्ञान के इस पक्ष पर भी विचार अवश्य किया था यद्यपि उससे वह विशेष प्रभावित न हो सका। 'राम की शक्ति पूजा' में इस योग-ज्ञान के दर्शन होते हैं। राम योग-साधना के द्वारा अपना ध्यान त्रिकुटी पर केंद्रित करते हैं, और जप के स्वरों के साथ ही उनका मन ऊर्ध्व स्थिति को प्राप्त करता है—

गहन से गहनतर होने लगा समाराधन।
क्रम क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस,
चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलश;

+ × ×

प्रति जप से होने लगा महाकर्षण;
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी-पद पर।

—'अनामिका', पृ० १२७।

कवि के विचार से इस योग-साधना द्वारा व्यक्ति आत्मभाव की स्थिति को प्राप्त करने में समर्थ होता है। इसी प्रसंग में कवि कहता है—हे नादान! यह सम्पूर्ण सृष्टि तुझमें समायी है। यदि इसे पाना है तो विविध चक्रों को पार करके सिद्धि की प्राप्ति में समर्थ हो—

चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार,
बेधता तुझे मीन शर मार,
चित्र के जल में चित्त निहार,
कर्म का कार्मुक कर में धार।
मिलेगी कृष्णा सिद्धि महान,
खोजता कहाँ उसे नादान।

—'गीतिका', पृ० २८।

अपनी कतिपय रचनाओं में निराला जी विशुद्ध भक्त-कवि प्रतीत होते हैं। ऐसी रचनाओं के आधार पर कवि को सहज ही सगुणोपासक भारतीय सन्तों की श्रेणी में रखा जा सकता है। अशरण शरण राम की

करनेवाले कवि की अवतारी राम में पूर्ण श्रद्धा प्रतीत होती है, इ
वह कहता है—

अशरण-शरण राम,
काम के छबि धाम।
ऋषि - मुनि - मनोहंस,
रवि वंश अवतंस,
कर्म रत निश्शंस,
पूरो मनस्काम।

जानकी - मनोरम,
नायक सुचारुतम,
प्राण के समुद्यम,
धर्म धारण श्याम।

—'आराधना', पृ० ४८।

किन्तु निराला के राम श्रद्धा के समान निःस्पृह, निःस्व, निरामय
लेंप हैं जिनसे लाग लग जाने पर जग की वासना नष्ट हो जाती
व्यक्ति को मानसी मुक्ति की प्राप्ति होती है—

तुमसे लाग लगी जो मन की
जग की हुई वासना बासी।
गंगा की निर्मल धारा की
मिली मुक्ति, मानस की काशी।

× × ×

निःस्पृह, निःस्व, निरामय निर्मम,
निराकाङ्क्ष, निर्लेप, निरुद्गम,
निर्भय, निराकार, निःसम, राम,
माया आदि पदों की दासी।

—'आराधना', पृ० ५०।

पने इस परमाराध्य के प्रति निराला के हृदय में अगाध विश्वास
विश्वास की झाँकी 'अर्चना' के निम्नलिखित गीत में मिलती है—

तुम ही न हुए रखवाल, तो उसका कौन होगा?
फूली फली तरु डाल, तो उसका कौन होगा?

राध्य के प्रति इस अनन्यता और जग से विरक्ति का

एक मात्र साधन है 'सत्संग'। निराला जी ने साधना के इस तथ्य को पहचाना था ; इसी से उन्होंने प्रभु से कामना की है—

दो सदा सत्संग मुझको
अनृत से पीछा छूटे
तन हो अमृत का रंग मुझको।

× × ×

शांत हों कुल धातुएँ ये
बहे एक तरंग
रूप के गुण गगन चढ़कर
मिलूँ तुमसे ब्रह्म।

प्रभु-कृपा-प्राप्ति की कामना के साथ ही कवि मानव को उपदेश देता है कि हरि-भजन करके, भवसागर से उद्धार पाओ और निर्भय होकर सन्मार्ग पर विचरण करो। हरि-भजन के द्वारा ही व्यक्ति मोह-बंधन को त्याग कर दुख में भी सुख का अनुभव करने लगता है—

हरि - भजन करो भू-भार हरो,
भव-सागर निज उद्धार करो।
गुरुजन की आशिष सीस धरो,
सन्मार्ग अभय होकर विचरो।
परकाल कराल सम्हाल करो,
यह लोक न शोक हरे, सँवरो,
भ्रम के भुज भूल न दाँव धरो।
अभया-पद-आसन साँस भरो।
सुख के अनुरंजन दुःख महा,
दुख से सुख है यह सत्य कहा ;
तन मानव क्या, हत ज्ञान रहा,
सुरलोक विधान विमान वरो।

—'आराधना', पृ० ५१७।

प्रभु का भजन करने से ही मानव अपने अभीप्सित लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। अतः अत्यंत दुर्लभ मानव-जन्म पाकर समय रहते ही प्रभु का भजन करना चाहिए। किन्तु यह भजन आदि निष्काम होना चाहिए। इसीलिए कवि केवल कर्म करने की प्रेरणा देता है, फल की

कामना से निर्लिप्त रहने का उपदेश देता है। यहाँ पर उसके विचारों प 'गीता' के कर्मवाद का प्रभाव प्रतीत होता है—

रहते दिन दीन शरण भज ले।
जो तारक सत वह पद-रज ले।
दे चित अपने ऊपर के हित,
अन्तर के बाहर के प्रवसित,
उसको जो तेरे नहीं सहित,
यों सज तू, सत की धज ले।
जब फले न फल, तू हो न विकल,
करके ठग करतब को करकल,
इस जग के नग तू ऐसे चल
नूपुर जैसे उर में बज ले।

—'आराधना', पृ० ६८।

केवल कर्म के संबंध में ही नहीं, कवि के मृत्यु-संबंधी विचारों पर भी भारतीय आध्यात्मिकता की छाया दिखायी देती है। 'मरण दृश्य' शीर्षक कविता में कवि मृत्यु को मुक्ति का दूसरा रूप कहता है—

कह रही हो हँस—पियो, प्रिय,
पियो, प्रिय निरुपाय।
मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु मैं,
आई हुई, न डरो।

—'अनामिका', पृ० १२६।

इसी प्रकार आत्मा की मुक्ति के लिए तर्पण आदि कर्मों का भी कवि ने उल्लेख किया है। 'सरोज-स्मृति' में निराला जी ने 'तर्पण' की चर्चा करके तत्संबंधी भारतीय आचार-परम्परा के प्रति आस्था की सूचना दी है, यद्यपि तर्पण के उपकरण कवि-स्वभावानुसार नवीन ही हैं। पुत्री के निधन पर निराला जी ने लिखा है—

कन्ये, गत कर्मों का अर्पण,
कर करता मैं तेरा तर्पण।

—'अनामिका', पृ० १२४।

परिशिष्ट

निराला : एक झलक

पात्र—

निराला : महाकवि।

जयदेव : महाकवि के प्रति श्रद्धा रखनेवाला एक अध्यापक।

रामानंद : प्रयाग-निवासी एक दक्षिण भारतीय युवक।

एक वृद्ध, एक युवक, एक चपरासी, एक भिखारिणी, एक डाकिया, एक फलवाला और एक किशोर।

[दारागंज, प्रयाग, की एक सँकरी गली का साधारण-सा इकमँजला मकान। उसके बाहरी कमरे में दो ही द्वार हैं—एक गली में खुलता है और दूसरा मकान के भीतर जाने के लिए है। कमरे की सामने की दीवार में तीन ताख हैं जिनमें बीचवाला बड़ा है। बाहरी दरवाजे के दाहनी ओर की दीवार में भी एक ताख है। सबमें कुछ किताबें, कागज, पत्र-पत्रिकाएँ बेतरतीबी से ठुँसी हुई है। कमरे की दीवारें सफेदी से पुती हैं जिसका मैलापन बताता है कि सफेदी हुए काफी दिन हो चुके हैं। तीन दीवारें सादी हैं, केवल सामने की दीवार पर ताख के ऊपर निराला जी का ही एक बड़ा चित्र काले फ्रेम में जड़ा लगा है। हाँ, दो कलेंडर इस कमरे में अवश्य हैं—एक घर के भीतर पहुँचानेवाले द्वार के ऊपर सरस्वती जी के चित्र वाला सन् १९६१ का और दूसरा उसके ठीक सामने जिसमें भारत माता का चित्र बना है। इस कलेंडर में तिथियों के कागजों का स्थान खाली है जिससे जान पड़ता है कि यह पिछले वर्ष का या उससे भी पुराना है।

सामने के ताख के नीचे एक लंबा तखत पड़ा है जिस पर एक मोटी चटाई बिछी है। चटाई तखत से कुछ छोटी है जिसके एक किनारे पर दो

तकिये रखे हैं जिनके गिलाफ कुछ-कुछ मैले हैं। तखत पर इधर-उधर किताबें और पत्र पत्रिकाएँ पड़ी हुई हैं। तखत के एक कोने पर निराला जी का कुर्ता रखा है जो मोटे कपड़े का और कुछ-कुछ मैला भी है।

निराला जी तखत के ऊपर दीवार से पीठ लगाये पालथी मारे बैठे बाहर की ओर देख रहे हैं। उनका पूरे छह फीट का शरीर बैठने पर भी अपनी ऊँचाई की ओर देखनेवाले का ध्यान आकर्षित कर लेता है। उनके चेहरे पर और भुजदंडों में भी कुछ-कुछ झुर्रियाँ-सी पड़ने लगी हैं और गालों की हड्डियाँ उभर सी आयी हैं। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें कौड़ियों सी फैली हैं जिनमें कभी कुछ चमक आती है, कभी हल्की लालिमा झलकने लगती है और कभी दृष्टि में इतनी तीक्ष्णता आ जाती है जैसे सामने के दृश्य जगत को भस्म कर देना चाहती हों।

निराला जी के बाल लंबे और रूखे हैं। दाढ़ी अधपकी और बढ़ी हुई। केवल एक बनियायन और तहमत पहने हैं जो आज ही धोई गयी जान पड़ती हैं, क्योंकि दोनों में लोहा किया हुआ नहीं है। उनके हाथ में कोई पुस्तक है जिसे वे पढ़ रहे थे कि नेपथ्य से एक गीत सुनायी देता है। गीत सुनते ही खुली की खुली पुस्तक लिये दोनों हाथ सामने टिका लेते हैं। उनके मुख की मुद्रा सहज हो जाती है।

नेपथ्य से सुरीले कंठ में लय-तान के साथ गाया गया गीत—]

वर दे, वीणावादिनि वरदे !
प्रिय स्वतन्त्र-रव अमृत-मन्त्र नव
भारत में भर दे !

काट अन्ध उर के बन्धन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव ;
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे !

[निराला जी सारा गीत बड़े ध्यान से सुनते हैं। उससे उन्हें जैसे आत्मिक संतोष होता है। उनकी मुखाकृति पर प्रफुल्लता झलकने लगती है। दृष्टि में एक प्रकार की दीप्ति दिखायी देती है। गीत समाप्त होने के बाद

भी वे कुछ क्षण वैसे ही बैठे रहते है। फिर कैलेंडर में बने देवी सरस्वती के चित्र की ओर देखते-देखते उठ खड़े होते हैं और बड़े भक्तिभाव से उनको प्रणाम करते हैं। तदुपरांत सामने आकर तनकर खड़े होते हैं। पुस्तक उनके दाहने हाथ में इस प्रकार बंद है कि जो पृष्ठ पढ रहे थे, वहाँ उँगली लगा रखी है। कुछ देर भावपूर्ण मुद्रा से सामने देखते रहने के पश्चात्—]

निराला—(स्वगतकथन) सरस्वती के साधकों के सामने लक्ष्मी के उपासक सदा से झुकते आये हैं। यही किसी देश की स्वस्थतम सांस्कृतिक परंपरा हो सकती है जिसका पालन होते रहने तक किसी भी प्रकार का कष्ट जन-साधारण को नहीं हो सकता। (परिवर्तित स्वर में) आज इस देश में······· इस देश की जनता जो तरह-तरह के कष्टों से पीड़ित है, वह इसी कारण कि यहाँ सरस्वती से बढ़कर महत्व लक्ष्मी को दिया जाने लगा है—सरस्वती के पुत्रों की अपेक्षा यहाँ लक्ष्मी के लालों की प्रतिष्ठा होने लगी है। जब तक यह विपर्यय इस देश में बना रहेगा, नैतिक दृष्टि से इसका पतन कैसे रोका जा सकता है ? (विचार-मग्न होकर इधर-उधर एक दो कदम घूमते हैं। पुनः) 'पशु' कहकर तिरस्कार करते हैं हम जिस प्राणी का, उसके स्वभाव की एक ही दुर्बलता है—वह 'स्व' में केंद्रित रहता है और 'स्व'-सुख का आयोजन करता है। और मानव ? मानव उस पशु से बड़ा है; क्योंकि उसके स्वभाव को विस्तार देकर वह 'स्व' की परिधि बढ़ा लेता है; अर्थात् केवल 'अपने' को ही नहीं, अपनों को भी सुखी बनाने का वह उपक्रम करता है और जो संचय-वृत्ति पशु में नहीं है, वह भी अपने में लाकर भावी सुख के साधनों का संग्रह करता है। (सहसा हँस पड़ते हैं) मानव ! धन्य है तू ! कितने क्षुद्र कार्य हैं तेरे ! और अपनी क्षुद्रता पर आवरण डालने में कितना चतुर है तू ! धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र रचने में कितनी आतुरता दिखाता रहा है तू ! (गंभीर होकर) इस मानवीय प्रकृति के अपवाद भी उत्पन्न होते हैं—नित्यप्रति नहीं, शताब्दियों में। इनके 'स्व' की परिधि तो बढ़ती है, परंतु सामान्य मानवों की रीति से नहीं। उनके 'स्व' में 'पर' इस रूप में समा जाता है कि उनके कोश में 'पर' शब्द रह ही नहीं जाता। वे 'पर' के सुख की चिंता में ही जीवन बिताते हैं और 'पर' को सुखी देखकर ही 'स्व' जीवन की सार्थकता समझते हैं। समाज में 'पर' के इन पुजारियों को ही 'पीर', 'महात्मा' आदि कहा जाता है। (परिवर्तित स्वर में) युवावस्था में पदार्पण करते ही मैंने भी इसी आदर्श को अपना लिया था, इसे ही अपना परम पुरुषार्थ मान लिया था किसी को सुखी तो मैं कभी क्या कर

सका होऊँगा, हाँ इस बात का संतोष मुझे अवश्य है कि किसी को जान-बूझकर दुखी बनाने का प्रयत्न मैंने नहीं किया। मैं........।

[किसी कार्यालय के एक चपरासी का प्रवेश। वह हाथ में एक पत्र लिये है। प्रवेश करते ही निराला जी को प्रणाम करता है। निराला जी अन्यमनस्क भाव से हाथ जोड़ देते हैं।]

चपरासी—(लिफाफा बढ़ाकर) जी, एक पत्र है आपका।

[निराला जी पत्र लेकर एक सरसरी निगाह डालते हैं। चपरासी जेब में हाथ डालकर कुछ निकालने का उपक्रम करता है।]

निराला—रुपये लाये हो ?

चपरासी—(जेब से निकालकर) जी, ढाई सौ हैं।

[गिनकर निराला जी को देता है। वे लेकर बिना गिने चटाई के नीचे खिसका देते हैं—एक रुपया निकाल लेते हैं।]

चपरासी—(टिकट लगी एक रसीद निकालकर) इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए।

[निराला जी हस्ताक्षर करके रसीद वापस करते हैं और एक रुपया भी चपरासी को देते हैं। वह सलाम करके जाता है।

इसी समय सामने से एक वृद्ध के साथ एक युवक का प्रवेश। वृद्ध जाति का ब्राह्मण जान पड़ता है। उसकी अवस्था सत्तर वर्ष से भी ऊपर की है। हाथ में मोटी लकड़ी लिये है और जान पड़ता है कि उसके सहारे के बिना वह खड़ा भी नहीं हो सकता। उसकी वेश-भूषा सामान्य है और मुख पर दीनता की छाप है। युवक की अवस्था चौबीस पच्चीस वर्ष की होगी। बदन इकहरा है, रंग साँवला है, वस्त्र साधारण हैं।

वृद्ध पर दृष्टि पड़ते ही निराला जी स्वयं पहले हाथ जोड़ते हैं; परंतु वे उससे परिचित नहीं हैं। वृद्ध आशीर्वाद देता है—कल्याण हो, कीर्ति बढ़े। युवक सामना होते ही निराला जी को प्रणाम करता है और ये हाथ जोड़कर उसका उत्तर देते हैं।

वृद्ध और युवक कमरे में आ जाते हैं।]

निराला—(स्वयं खड़े-खड़े वृद्ध से) बिराजिए। (युवक से) बैठिए।

वृद्ध—(बैठता हुआ) आप भी बिराजें।

निराला—(अपने स्थान पर बैठकर वृद्ध से) कैसे कृपा की ?

वृद्ध—(हाथ जोड़कर) महाराज ! एक याचना लेकर आया था आपके दरबार में।

निराला (मुस्कराकर दरबार राजाओं-महाराजाओं का होता है

मैं तो सरस्वती का एक साधारण पुजारी हूँ। (गंभीर होकर) आज्ञा कीजिए—क्या सेवा करूँ ?

वृद्ध—(हाथ जोड़कर) बेटी के विवाह के लिए यह निर्धन ब्राह्मण कुछ धन की आशा से, आपका बड़ा नाम सुनकर आया है।

निराला—(गंभीरता से) कितने से काम चल जायगा आपका ?

वृद्ध—(बड़ी आशा से पुनः हाथ जोड़कर) बस दीनबंधु ! ढाई तीन सौ की सहायता हो जाती तो बेटी के ऋण से उद्धार हो जाता।

निराला—(कुछ क्षण मौन रहकर चटाई के नीचे से अभी-अभी पाये हुए रुपये निकालकर) लीजिए—ये ढाई सौ हैं।

वृद्ध—(रुपये लेकर अत्यंत गद्‌गद् हो) सचमुच आप दीनबंधु हैं। बेटी के उद्धार का सारा पुण्य आपको ही अर्पित है।

निराला—(सहसा खड़े होकर) और कोई आज्ञा ?

वृद्ध—(खड़ा होता हुआ) बस, दीन-बंधु इतनी ही याचना थी। (आशीर्वाद देता हुआ) माता सरस्वती आपके यश की सदैव वृद्धि करें।

[वृद्ध हाथ जोड़ जाता है। दोनों को खड़े देखकर युवक भी खड़ा हो गया था। निराला जी उसकी ओर न देखकर सामने देखते-देखते खो जाते हैं। कुछ क्षण बाद—]

निराला—(स्वगतकथनवत्) बेटी का ऋण ! कितने पुण्य और सौभाग्य का अवसर है बेटी का विवाह और जाति के कुलांगारों ने कितना कष्टदायी बना दिया है कि अभागे पिता को दर-दर याचना करनी पड़े !

[निराला जी कुछ क्षण ऐसी ही बातें करते रहते हैं। उनका स्वर धीरे-धीरे अस्पष्ट हो जाता है। विचारों में खोये-खोये से तख्त के नीचे उतरकर टहलने लगते हैं। कुछ क्षण बाद वे प्रकृतिस्थ हो जाते हैं और उनकी दृष्टि युवक पर पड़ती है जो अब तक उनकी ओर एकटक देख रहा था। निराला से आँखें मिलते ही वह सिहर-सा जाता है।]

निराला—(खड़े-खड़े ही) कहिए, कैसे पधारे आप ?

युवक—(सहमे हुए स्वर में) जी, दर्शन करने चला आया।

[निराला जी फिर जैसे खो जाते हैं। न उनको अपने प्रश्न का ध्यान रहता है और न युवक के उत्तर का। दो-एक बार इधर-उधर घूमकर।]

निराला—(युवक पर दृष्टि टिकाकर) क्या आज्ञा है ?

युवक—(जैसे सूत्र पाकर, हाथ जोड़कर) आज्ञा आपकी चाहिए।

निराला—(कुछ कुँझलाकर) तो बताइए न, क्या चाहते हैं मुझसे ?

युवक—(हाथ जोड़कर) दसवाँ दर्जा पास कर चुका हूँ। नौकरी मिलती नहीं। कुछ सहायता कर दें मेरी भी।

निराला—(तेज स्वर में) एक डिब्बी पालिश और एक ब्रुश दिलवा दूँ तुम्हें तो जूतों पर पालिश कर सकते हो ?

[युवक यह बात सुनकर अचकचा जाता है। उसको कोई उत्तर नहीं सूझता। निराला की दृष्टि उसके मुख पर गड़ी रहती है।]

निराला—(और तेज स्वर में) भंगी का काम कर सकते हो ? डलिया ढो सकते हो ? चिलचिलाती धूप में बैठकर पत्थर तोड़ सकते हो ? (युवक को चुप देखकर और भी उत्तेजित स्वर में) बस, भीख माँगने के लिए बोलने की शक्ति मिली है तुम्हें, स्वावलंबी बनानेवाले कामों की हामी भरने के लिए नहीं ? (स्वर को कुछ संयत करके) जाइए, जब स्वावलंबी बनने का विचार जाग्रत हो मन में, तब आइएगा। (युवक को स्थिर देखकर) जाइए। (युवक सर झुकाये जाने लगता है। उसे दरवाजे के बाहर निकल जाते देखकर) सुनिए। (युवक मुड़ता है) बिना नमस्कार किये किसी के यहाँ से नहीं जाना चाहिए। (युवक यह सुनकर हाथ जोड़कर नमस्कार करता है। निराला जी कुछ द्रवित हो जाते हैं। स्नेहपूर्ण स्वर में—) मेरी बातों से अप्रसन्न मत होइए। मैंने आपको बड़ी ऊँची सलाह दी है। उस पर विचार कीजिए, गहराई से सोचिए। निश्चय ही आपका कल्याण होगा ! अच्छा, नमस्कार !

[निराला जी तुरंत मुँह फेरकर अपनी जगह जा बैठते हैं। युवक धीरे-धीरे चला जाता है।

द्वार के सामने एक बूढ़ी भिखारिणी लकड़ी के सहारे आ खड़ी होती है। अपनी झुकी पीठ को सीधा करने का प्रयत्न करती हुई दृष्टि उठाकर वह निराला को देखती है। निराला जी की विचार-माला टूट जाती है। वे एकटक भिखारिणी की ओर देखने लगते हैं।]

भिखारिणी—बेटा ! दाता तेरा भला करे। कुछ दे दो ! बेटा ! बड़ी भूखी हूँ।

निराला—(चौंककर) कौन है तू 'निराला' को 'बेटा' पुकारनेवाली ! (जोर से) 'निराला' को 'बेटा' मानकर भी भीख माँगती है तू ?

भिखारिणी—(सहमकर गिड़गिड़ाते हुए) बेटा ! बेटा !! बहुत भूखी हूँ। कल से कुछ नहीं खाया है बेटा !

निराला—(तखत पर हाथ की पुस्तक डालकर और कुर्ता उठाकर

उसकी जेब में हाथ डालते-डालते भिखारिणी के निकट आकर) बोल क्या चाहती है ?

भिखारिणी—दो आने पैसे बेटा ! बस, बूढ़ी का पेट भर जायगा बेटा !

निराला—(जेब में हाथ डाले-डाले ही) फिर कल क्या करेगी ?

भिखारिणी—(दीनता से) कल फिर भीख माँग लूँगी बेटा ! किसी से !

निराला—(चौंककर) कल फिर भीख ! (कुछ सोचकर) और जो तुझे एक रुपया दे दूँ तो कब तक भीख नहीं माँगेगी ?

भिखारिणी—(जैसे बात न समझी हो) बेटा ! तब चार दिन भीख नहीं माँगूँगी ।

निराला—और जो तुझे दस रुपये दे दूँ ?

भिखारिणी—(चकित होकर) तब ! तब ! बेटा ! महीना भर नहीं माँगूँगी !

निराला—(जेब में हाथ डाले-डाले ही जोर से) और जो तुझे पचास दे दूँ ? सौ दे दूँ ? (एक जेब से रेजगारी, रुपये, नोट जो हाथ में आता है, उसकी झोली में डाल देते हैं। तब दूसरी भी इसी तरह खाली करके) बोल ! बोल, अब भी भीख माँगेगी ? बोल ! निराला को 'बेटा' बनाकर भी भीख माँगना नहीं छोड़ेगी ?

भिखारिणी—(भरी झोली निहारकर पागल सी) नहीं माँगूँगी, अब कभी नहीं माँगूँगी । (रोकर) बेटे को खोकर माँ भीख माँगती है, खोये बेटे को पाकर कोई भी माँ कभी भीख नहीं माँगेगी—कभी नहीं माँगेगी (आँसू पोंछते-पोंछते गद्‌गद् कंठ से) जुग जुग जियो बेटा !

निराला—(मुस्कराकर) ठीक है, जा, अब भीख न माँगना ।

भिखारिणी—(जाते-जाते) कभी नहीं, बेटा ! कभी नहीं ! यह बुढ़िया अब कभी नहीं भीख माँगेगी ।

[भिखारिणी धीरे-धीरे चली जाती है। निराला जी कुछ देर तक उसकी ओर देखते रहते हैं, फिर कमरे में आकर टहलने लगते हैं और कहते हैं—]

निराला—(स्वगतकथन) माँ का ममतामय दुलार जिसने नहीं जाना, वह भूखा हृदय उसकी खोज में न जाने कहाँ कहाँ भटकता

. ! 'माँ' शब्द उसके हृदय को किस तरह आकर्षित कर लेता (कुछ रुककर) और यह बूढ़ी माँ! अपने पुत्रों से तिरस्कृता, उपेक्षिता बूढ़ी माँ! (भाव-विभोर होकर) इसे देखकर भारतमाता की याद आ गयी जिसके सपूत स्वार्थ के वशीभूत हो संपत्ति के बँटवारे के लिए तो लड़ रहे हैं; परंतु जिनको न माता के सुख-दुख का ध्यान है और न उसी की तरह उपेक्षित, तिरस्कृत और दीन-हीन उसके अगणित पुत्रों की ही कुछ चिंता है। (एकाएक भारतमाता वाले कलेंडर की ओर ध्यान से देखने लगते हैं। कुछ क्षण बाद धीरे-धीरे चलकर उसके पास पहुँच जाते हैं और हाथ जोड़कर कहते हैं—) माता! तेरा वात्सल्य मानव-हृदय में सोती हुई ममता को जाग्रत करे, माँ, हमारा जीवन-पथ प्रशस्त करे; माँ, हमें मानव बनने की प्रेरणा दे। (वे कुछ देर बाद चुप होकर चित्र की ओर देखते रहते हैं। फिर धीरे-धीरे गुनगुनाते हैं—)।

नर-जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ,
मेरे श्रम सञ्चित सब फल।

जीवन के रथ पर चढ़कर
सदा मृत्यु-पथ पर बढ़कर
महाकाल के भी खर शर सह
सकूँ, मुझे तू कर दृढ़तर;
जागे मेरे उर में तेरी
मूर्ति अश्रु-जल-धौत विमल,
कल पाकर बल बलि कर दूँ
जननि, जन्म-श्रम-सञ्चित फल।

[निराला जी तब कुर्ता तख्त पर डाल देते हैं और पुस्तक उठाकर खोलते हैं। कुछ सोचकर उसे बंद कर देते हैं और गंभीर भाव से कहने लगते हैं—]

निराला—(स्वगतकथन) अमित सुख है जगती पर और अमित दुख भी। सभी प्राणी सुख के लिए ललकते हैं, दुख से सर्वदा बचते हैं, यद्यपि बच नहीं पाते। प्राणी का यही प्रकृत स्वभाव है। सुखों से मुख मोड़, दुखों का सहर्ष आलिंगन करने को जो सर्वदा तत्पर रहे—वही सच्चा मानव है। (कुछ सोचकर) जीवन में अपना आदर्श ऐसा ही

मानव बनने का बनाया था। परंतु कहाँ पूरा हो सका वह ? सुखों की आसक्ति से मुख मोड़ दुखों का आलिंगन करने को कहाँ तत्पर हो सका मैं ? मेरा जीवन तो.........

[सामने से एक प्रौढ़ और एक युवक का प्रवेश। उनमें एक की अवस्था लगभग पैंतालीस वर्ष की है और दूसरे की लगभग तीस वर्ष की। पहले का नाम जयदेव है और दूसरे का रामानंद। दोनों समीप आकर निराला जी के चरण स्पर्श करते हैं। निराला जी उनके शिष्टाचार से संतुष्ट हो पूर्व मुद्रा में बैठ जाते हैं और दोनों से बैठने के लिए संकेत करते हैं। जिस आत्मीयता से निराला जी ने उनका स्वागत किया है, उससे जान पड़ता है कि एक से वे पूर्वपरिचित तो हैं ही, स्नेह भी करते हैं। दूसरे की मुद्रा से अवश्य स्पष्ट होता है कि वह उनसे परिचित नहीं है। अतएव वह उनकी ओर बार-बार श्रद्धा से देखता है, परंतु निराला जी से आँख नहीं मिलाता।]

निराला—आइए अध्यापक जी। सकुशल तो हैं ?

जयदेव—(हाथ जोड़कर) दया है आपकी।

निराला—(कुछ स्मरण करके) ध्यान है उस दिन मैंने कहा था—इस भूमि पर माता की ममता, पिता का वात्सल्य, आत्मीयों का स्नेह और गुरुजनों की शुभाकांक्षा का राशिकृत पुंज होता है अध्यापक। ब्रह्मा और सरस्वती का वरदहस्त जिसके मस्तक पर सदा रहता है, उसी को अध्यापक बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। विष्णु उसको अपना जगद्‌गुरुत्व प्रदान करते हैं और शिव अपनी शक्ति। जिसका स्वाभिमान हिमगिरि सदृश ऊँचा हो, जिसका पांडित्य सागर की तरह अगाध हो, जिसके अंत:करण में आकाश की विशालता और पृथ्वी की सहिष्णुता समायी हो, वही सच्चा अध्यापक है। भू-लोक में नित्य नव सुधा सुलभ करने का अधिकारी यदि कोई है तो अध्यापक ही। (परिवर्तित स्वर में) यही कहा था न ?

जयदेव—(स्वीकृतिसूचक सर हिलाकर) जी, और यह भी कि आज............।

निराला—(सूत्र पाकर) हाँ, हाँ, आज का अध्यापक अपना वह गौरव भुला चुका है, अपना दायित्व भुला चुका है। वह भूल गया है कि भूमि के सर्वप्रथम गौरव-ग्रंथ वेदों के रचयिताओं में अनेक का वह उत्तराधिकारी है। (सहसा मौन हो जाते हैं ; फिर स्वगतकथनवत्—) पूर्वजों की गौरवपूर्ण परंपरा को मिटानेवाला आज का अध्यापक चिंतन और मनन के उच्च धरातल से गिरकर पैसे का लोभी बन गया है। जो

जगद्गुरु था, वह धन का दास है! आज के व्यवसायी युग में वह भी अपनी विद्या बेचता फिरता है! (कुछ क्षण मौन रहते हैं। तभी उनकी दृष्टि रामानंद पर पड़ती है। तब जैसे सचेत होकर जयदेव से) इनका परिचय ?

जयदेव—मेरे पड़ोसी हैं। रहनेवाले दक्षिण के हैं, इधर कुछ मास से प्रयाग में रहने लगे हैं। आपके दर्शन के लिए बहुत दिन से आना चाहते थे। आज ला सका इन्हें।

निराला—क्या करते हैं ?

जयदेव—लिखने-पढ़ने का शौक है। दो-तीन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकीय विभाग में काम कर चुके हैं। इन्हीं के लिए आपसे कहा था जब पिछली बार दर्शन करने आया था। बहुत सी बातें जानने की अभिलाषा से आपकी सेवा में आये हैं।

निराला—(मुस्कराकर) पूछिए रामानंद जी! क्या जानना चाहते हैं ?

रामानंद—लगभग पचास वर्ष हो गये आपको हिंदी साहित्य की साधना करते। किसकी प्रेरणा से यह क्षेत्र चुना था आपने ?

निराला—(चौंककर) साहित्य-साधना की प्रेरणा! (कुछ खोये-खोये से स्वर में सामने की ओर देखते हुए) मैं तो हिंदी जानता भी नहीं था। पत्नी ने उसको सीखने की बात कही। (कुछ क्षण चुप रहकर) कुछ दिन पढ़ता रहा, फिर लिखने लगा। मेरी साधना देखने को पत्नी तो जीवित रही नहीं, परंतु मेरी लगन देख उसे संतोष अवश्य हुआ था। (चुप होकर फिर सामने देखने लगते हैं) अपनी मृत्युशैया पर मेरा विवाह कविता से होने की शुभ कामना व्यक्त कर गयी थी वह। (कुछ भाव-विभोर से हो जाते हैं) इसे आशीर्वाद, प्रेरणा जो कुछ समझो—जो कुछ कर सका मैं, उस कामना की पूर्ति का प्रयत्न भर रहा है।

[निराला जी मौन हो जाते हैं। रामानंद और जयदेव, दोनों कभी उनकी ओर देखते हैं, कभी परस्पर दृष्टि-विनिमय करते हैं। महाकवि से कुछ पूछने का सूत्र नहीं मिलता उन्हें।]

निराला—(प्रकृतिस्थ होते हुए) लगभग चालीस वर्ष पहले की बात याद आ गयी, जिससे कुछ खो-सा गया मैं। (रामानंद से) हाँ, और पूछिए ?

रामानंद—(ससंकोच) आपको अपनी कौन-कौन कृतियाँ पसंद हैं ? किनसे आपके व्यक्तित्व का पूरा परिचय मिल सकता है ?

निराला—(मुस्कराकर) माँ से पूछने हो—तुझे अपनी कौन सी संतान प्यारी है ? (अपर्णा और रामानंद भी मुस्कराने लगते हैं) जैसे माता की ममता तो सभी संतानों के प्रति होती है, परंतु गर्व वह एक या दो पर ही कर सकती है, वही दशा प्रत्येक साहित्यकार की होती है। मुझे भी अपनी कुछ कृतियाँ विशेष प्रिय हैं—मुझे गर्व भी है उन पर; क्योंकि मैं उन्हें संसार की किसी भी उत्कृष्टतम कृति की तुलना में सामने रख सकता हूँ; परंतु वास्तविकता यह है कि दीर्घ काल तक साहित्य-सेवा करनेवाला साहित्यकार एक विशाल वृक्ष के सदृश होता है जिसकी छोटी-मोटी शाखाएँ—उसकी कृतियाँ—उसके सहज व्यक्तित्व को दर्शनीय सुडौलता प्रदान करती हैं। किसी शाखा को हटा देने से जैसे वृक्ष में कुछ खाली-खाली सा लगता है, उसी प्रकार किसी कृति को सामान्य मानकर अलग कर देने से साहित्यकार का व्यक्तित्व भी अपूर्ण-सा प्रतीत होता है। यही बात मेरी कृतियों में समाहित मेरे व्यक्तित्व के संबंध में भी सत्य समझो।

रामानंद—(पुनः संकोच के साथ) आपका धर्म क्या है............ मेरा मतलब यह है कि आप किस धर्म में विश्वास करते हैं ?

निराला—(गंभीरता से) तुम्हारा आशय हिंदू, बौद्ध, मुसलिम, ईसाई आदि धर्मों से है न ?

रामानंद—(धीरे से) जी !

निराला—मैं मानव हूँ; मेरा विश्वास मात्र मानव-धर्म में है और मानव धर्म का केवल नियम है—दूसरे की सेवा। यह वह धर्म है जिसका जन्म और विकास मानव के जन्म और विकास के साथ-साथ हुआ, जिसका प्रचार करने के लिए सृष्टि के आदि से आज तक किसी प्रवर्तक या प्रचारक की आवश्यकता नहीं पड़ी, परंतु जिसके माननेवाले हर युग में, हर देश में होते आये हैं। यह वह धर्म है जिसकी विधि बताने के लिए आज तक कोई मान्य शास्त्रीय ग्रंथ लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि संसार के सभी धर्मग्रंथों का उपयोगी अंश मानव धर्म की ही चर्चा करता दिखाई देता है। यह वह धर्म है जिसके लिए कभी वैर-विरोध नहीं हुआ, रक्त-पात नहीं हुआ, अन्याय अत्याचार नहीं हुआ। इस धर्म में दीक्षित होने के लिए न वय का प्रतिबंध है, न वर्ण का और न किसी दीक्षा गुरु की ही आवश्यकता होती है। मानव का अंतःकरण ही इस धर्म के अनुयायी का सदैव पथ-प्रदर्शन करता है।

[निराला जी यह कहते-कहते सहसा चुप हो जाते हैं। जयदेव और रामानंद, दोनों की आँखें प्रसन्नता से चमकने लगती हैं ।]

जयदेव—(अत्यंत श्रद्धावेश में) बड़ी सुंदर व्याख्या कर दी आपने मानव-धर्म की।

निराला—(उसकी बात का कोई उत्तर न देकर) हाँ रामानंद जी! और क्या पूछना चाहते हैं ?

रामानंद (ससंकोच) आप जीवन की समान्य आवश्यकताओं के प्रति उदासीन क्यों हैं ?

निराला—उदासीन! उदासीन कब रहा मैं उनके प्रति ? सुना नहीं है तुमने कि किसी भी सार्वजनिक उत्सव या कवि-सम्मेलन में जाने के पूर्व अपनी 'वृत्ति' लेता रहा हूँ और वह भी बिना किसी रियायत के ?

जयदेव—(हँसकर) परंतु वह धन आपके काम कब आया ? आप तो सदा माध्यम भर रहे—कभी 'क' के पर्स में पहुँच गया वह, कभी 'ख' की जेब में।

निराला—अर्थ-वितरण में हम सभी तो माध्यम हैं। एक से लेकर दूसरे को कौन नहीं देता ? कौन सब कुछ बचाकर रखता है या कौन साथ ले जाता है ? (गंभीर होकर) किसी से कुछ लेने में जो सुख है, उससे कहीं अधिक सुख दूसरों को कुछ देने में है। स्वयं खाने में तृप्ति का जो रस मिलता है, उससे कहीं अधिक रस दूसरों को खिलाने में है। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि 'पाने' में जो सुखानुभव मनुष्य को होता है, उससे कहीं अधिक सुख का अनुभव कभी-कभी जान-बूझकर 'खोने' में होता है। जिसे इस परम रस का एक बार भी आस्वादन हो जाता है, वह फिर स्वयं लेने, खाने और पाने की बात भूलकर दूसरे को देने, खिलाने और खोने के क्रम में ही लगा रहता है। और ऐसा करने में कोई विशेषता की बात भी नहीं है; हाँ, न करने में खटकने वाली बात अवश्य है। (स्वर परिवर्तन) मैंने तो.............. मैं तो...............कर ही क्या सका ? मेरी तो तमन्ना मन में ही रह गयी...............काश कि अपना सब-कुछ लुटाकर भी किसी को सुखी कर पाता !

[निराला जी के नेत्रों में एक ज्योति सी आ जाती है जिससे उनका मुख दमक उठता है। दोनों अतिथियों की बात जैसे भूलकर वे एकटक सामने की ओर देखने लगते हैं। दोनों अतिथियों की दृष्टि निराला जी के मुख पर

गइ जाती है—जयदेव की दृष्टि में मात्र श्रद्धा है, रामानंद की दृष्टि में श्रद्धा है और आश्चर्य भी।

क्षण भर यही स्थिति रहती है। पश्चात्—]

जयदेव—आप अपने शरीर की रक्षा अपने लिए न करें, न सही; परंतु हमारे लिए, हमारे लाभ को ध्यान में रखकर, जो आपसे कुछ पाने की कामना रखते हैं, कम से कम उनके लिए तो आपको इस शरीर की इतनी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि गर्मी, बरसात या जाड़े की परवाह न करें, अपने खान-पान का, पहने-ओढ़ने का कोई ध्यान न रखें। इसमें तो"" यह तो अपने शरीर पर नहीं, हमारे लाभ के मूल पर आघात है, अत्याचार है आपका!

निराला—मैं अपने शरीर पर अत्याचार करता हूँ! किसने कहा तुमसे? (हँसकर) मैंने तो इस शरीर का इतना दुलार किया है कि क्या कोई करेगा! पसेरियों साबुन की स्वच्छ किया इसे और सेरों तेल-फुलेलों से सुवासित किया, अच्छे से अच्छे वस्त्रों से अलंकृत किया और बढ़िया से बढ़िया भोजन से पुष्ट कर चुका हूँ इसे मैं। (कुछ सोचकर) परंतु"""" परंतु""""यह सब किया अनजान में ही, तभी तक इन बातों में रुचि रही जब तक यह ज्ञान नहीं हुआ कि भारतीय संस्कृति का मूल तत्व कुछ और है। (गंभीर स्वर में) इस देश के करोड़ों व्यक्तियों की तरह सादे जीवन और सरल व्यवहार की बात सुनी-पढ़ी मैंने भी, परंतु तदनुसार आचरण न करके सदैव शरीर के पोषण और अलंकरण में लगा रहा। विश्वास कर रहे हो न तुम मेरी बात का?

जयदेव—(विनय के साथ) यह तो सहज स्वभाव है मानव का। इसमें विश्वास न करने की क्या बात है?

निराला—(हँसकर) परंतु जो मानवीय स्वभाव की सहजता का निर्वाह करके चलेगा, वह 'निराला' कैसे होगा?

[तीनों जन हँस पड़ते हैं। निराला जी हाथ की पुस्तक एक किनारे रखकर दूसरे आसन से बैठते हैं।]

निराला—हाँ, तो वही क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। आँखें खुलीं मेरी उस दिन, जब भारतीय संस्कृति का रहस्य मेरी समझ में आया। किसी ने जैसे मुझे सचेत किया—'निराला! कितने भ्रम में पड़ा है तू जो लौकिक बाह्याडंबरों की आसक्ति के पंक में डूब रहा है। जिस देश में करोड़ों बिना अन्न के भूख से तड़पते हों, बिना वस्त्र के जीवन के कष्ट

[निराला जी यह कहते-कहते सहसा चुप हो जाते हैं। जयदेव और रामानंद, दोनों की आँखें प्रसन्नता से चमकने लगती हैं।]

जयदेव—(अत्यंत श्रद्धावेश में) बड़ी सुंदर व्याख्या कर दी आपने, मानव-धर्म की।

निराला—(उसकी बात का कोई उत्तर न देकर) हाँ रामानंद जी! और क्या पूछना चाहते हैं?

रामानंद (ससंकोच) आप जीवन की समान्य आवश्यकताओं के प्रति उदासीन क्यों हैं?

निराला—उदासीन! उदासीन कब रहा मैं उनके प्रति? सुना नहीं है तुमने कि किसी भी सार्वजनिक उत्सव या कवि-सम्मेलन में जाने के पूर्व अपनी 'वृत्ति' लेता रहा हूँ और वह भी बिना किसी रियायत के?

जयदेव—(हँसकर) परंतु वह धन आपके काम कब आया? आप तो सदा माध्यम भर रहे—कभी 'क' के पर्स में पहुँच गया वह, कभी 'ख' की जेब में।

निराला—अर्थ-वितरण में हम सभी तो माध्यम हैं। एक से लेकर दूसरे को कौन नहीं देता? कौन सब कुछ बचाकर रखता है या कौन साथ ले जाता है? (गंभीर होकर) किसी से कुछ लेने में जो सुख है, उससे कहीं अधिक सुख दूसरों को कुछ देने में है। स्वयं खाने में तृप्ति का जो रस मिलता है, उससे कहीं अधिक रस दूसरों को खिलाने में है। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि 'पाने' में जो सुखानुभव मनुष्य को होता है, उससे कहीं अधिक सुख का अनुभव कभी-कभी जान-बूझकर 'खोने' में होता है। जिसे इस परम रस का एक बार भी आस्वादन हो जाता है, वह फिर स्वयं लेने, खाने और पाने की बात भूलकर दूसरे को देने, खिलाने और खोने के क्रम में ही लगा रहता है। और ऐसा करने में कोई विशेषता की बात भी नहीं है; हाँ, न करने में खटकने वाली बात अवश्य है। (स्वर परिवर्तन) मैंने तो............मैं तो...............कर ही क्या सका? मेरी तो तमन्ना मन में ही रह गयी...............काश कि अपना सब-कुछ लुटाकर भी किसी को सुखी कर पाता!

[निराला जी के नेत्रों में एक ज्योति सी आ जाती है जिससे उनका मुख दमक उठता है। दोनों अतिथियों की बात जैसे भूलकर वे एकटक सामने की ओर देखने लगते हैं। दोनों अतिथियों की दृष्टि निराला जी के मुख पर

गड़ जाती है—जयदेव की दृष्टि में मात्र श्रद्धा है, रामानंद की दृष्टि में श्रद्धा है और आश्चर्य भी।

क्षण भर यही स्थिति रहती है। पश्चात्—]

जयदेव—आप अपने शरीर की रक्षा अपने लिए न करें, न सही; परंतु हमारे लिए, हमारे लाभ को ध्यान में रखकर, जो आपसे कुछ पाने की कामना रखते हैं, कम से कम उनके लिए तो आपको इस शरीर की इतनी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि गर्मी, बरसात या जाड़े की परवाह न करें, अपने खान-पान का, पहने-ओढ़ने का कोई ध्यान न रखें। इसमें तो······ यह तो अपने शरीर पर नहीं, हमारे लाभ के मूल पर आघात है, अत्याचार है आपका!

निराला—मैं अपने शरीर पर अत्याचार करता हूँ! किसने कहा तुमसे? (हँसकर) मैंने तो इस शरीर का इतना दुलार किया है कि क्या कोई करेगा! पसेरियों साबुन की स्वच्छ किया इसे और सेरों तेल फुलेलों से सुवासित किया, अच्छे से अच्छे वस्त्रों से अलंकृत किया और बढ़िया से बढ़िया भोजन से पुष्ट कर चुका हूँ इसे मैं। (कुछ सोचकर) परंतु········ परंतु········यह सब किया अनजान में ही, तभी तक इन बातों में रुचि रही जब तक यह ज्ञान नहीं हुआ कि भारतीय संस्कृति का मूल तत्व कुछ और है। (गंभीर स्वर में) इस देश के करोड़ों व्यक्तियों की तरह सादे जीवन और सरल व्यवहार की बात सुनी-पढ़ी मैंने भी, परंतु तदनुसार आचरण न करके सदैव शरीर के पोषण और अलंकरण में लगा रहा। विश्वास कर रहे हो न तुम मेरी बात का?

जयदेव—(विनय के साथ) यह तो सहज स्वभाव है मानव का। इसमें विश्वास न करने की क्या बात है?

निराला—(हँसकर) परंतु जो मानवीय स्वभाव की सहजता का निर्वाह करके चलेगा, वह 'निराला' कैसे होगा?

[तीनों जन हँस पड़ते हैं। निराला जी हाथ की पुस्तक एक किनारे रखकर दूसरे आसन से बैठते हैं।]

निराला—हाँ, तो वही क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। आँखें खुलीं मेरी उस दिन, जब भारतीय संस्कृति का रहस्य मेरी समझ में आया। किसी ने जैसे मुझे सचेत किया—'निराला! कितने भ्रम में पड़ा है तू जो लौकिक बाह्याडंबरों की आसक्ति के पंक में डूब रहा है। जिस देश में करोड़ों बिना अन्न के भूख से तड़पते हों, बिना वस्त्र के शीत के कष्ट

झेलते हों, उस देश की संस्कृति का पुजारी और प्रचारक होने का दंभ भरनेवाला तू भोजन और वस्त्रों में इस प्रकार आसक्त है ! धिक्कार है तुझे' !! उसी दिन से मेरी आँखें खुल गयीं अंधकार में भटकता हुआ मैं जैसे आलोक में आ गया। उस दिन से अच्छा वस्त्र या बढ़िया भोजन सामने आते ही मेरा वह सचेतक जैसे छाया-रूप में सामने आ खड़ा होता है, उसकी सतेज वाणी मेरे कानों में गूँजने लगती है और स्वदेश के करोड़ों भूखे-नंगों की तड़पती आत्माएँ जैसे मेरे सामने एकत्र होकर सामूहिक रूप से बिलखने लगती हैं। (क्षण भर मौन रहकर एकटक सामने देखने लगते हैं। दोनों व्यक्तियों की दृष्टि उनके मुख पर गड़ी रहती है। कुछ क्षण पश्चात् निराला जी जैसे प्रकृतिस्थ होते हैं। तब धीमे स्वर में—) इसी से अब मुझे न अच्छे वस्त्रों की कभी कामना होती है और न बढ़िया भोजन की।

जयदेव—क्षमा करें, क्या अब कोई भी साध आपके मन में कभी नहीं होती ?

निराला—साध ! होती है और वह केवल यह कि मैं भले ही भूखा-नंगा रह जाऊँ, पर मेरे सामने, मेरी जानकारी में कोई भूखा-नंगा न रहे; मेरे शरीर को अभावों की कितनी भी पीड़ा सहनी पड़े, पर मुझे कोई तड़पता न दिखायी दे। दूसरों का सारा कष्ट अपने ऊपर ओढ़ लेने को आज मैं तैयार हूँ जिससे वे सुखी हो जायँ। (किंचित परिवर्तित स्वर में) काश, मेरी यह कामना मेरे सर्वस्व का बलिदान लेकर भी पूर्ण हो जाती— मैं अपने चारों ओर सबको हँसते-खेलते देखता, सबको सुखी पाता…… काश……मेरे जीते जी ऐसा हो जाता……

[निराला जी सहसा आवेश में खड़े हो जाते हैं और तख्त से उतरकर कमरे में टहलने लगते हैं। दोनों भक्त भी धीरे-धीरे तख्त से उतरकर सहमे से खड़े हो जाते हैं और दबी-दबी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगते हैं। तभी निराला जी अपने आप ही धीमे स्वर में कहने लगते हैं—]

निराला—(स्वगतकथन) सुख की बात कहते हैं ! कौन सा सुख ऐसा है जो निराला के इस शरीर ने नहीं भोग लिया ? जिस राजसी वैभव की कल्पना तक हिंदी क्या, भारत भर के साहित्यकार नहीं कर सके होंगे, वह सब मैं देख चुका हूँ। शायद इसी से अब उसकी चाह नहीं रह गयी है ……………सुख की चाह ! सुख की चाह मर तो गयी थी पत्नीही के साथ, सर्वथा भस्म हो गयीबेटी के शरीर के साथ। पुनीत प्रणय और पावन स्नेह

की इन प्रतिमाओं को खोकर कौन चाह कर सकता है सांसारिक सुख की ? कौन कर सकता है ?

[निराला जी का टहलना चलना रहता है; परंतु 'स्वगत' की ध्वनि धीमी पड़ जाती है, जैसे उनका आवेश शांत हो रहा हो। दोनों भक्त कभी उनकी ओर देखते हैं, कभी एक दूसरे की ओर। रामानंद कुछ कहना चाहता है कि जयदेव उसे संकेत से मना कर देता है। निराला जी का ध्यान उन दोनों की ओर नहीं है।

इसी समय डाकिया आता है और निराला जी को प्रणाम कर चमड़े के बैग से मनीआर्डर फार्म निकालकर उनकी ओर बढ़ाता है। निराला जी रुककर कुछ देर उसकी ओर देखते हैं, फिर फार्म ले लेते हैं। जयदेव आगे बढ़कर जेब से फाउंटेनपेन निकालकर और खोलकर निराला जी को देता है। 'थैंक्यू' कहकर वे तख्त पर बैठ जाते हैं। रामानंद तभी पुस्तक उठाकर फार्म के नीचे रखने को दे देता है। निराला बिना उसकी ओर देखे ही 'थैंक्यू' कहकर फार्म पर हस्ताक्षर करने लगते हैं। डाकिया रुपये निकालता है—पिचहत्तर रुपये—चौदह नोट पाँच-पाँच के और पाँच एक एक के। निराला जी फार्म उसकी ओर बढ़ा देते और रुपये ले लेते हैं। डाकिया फार्म के नीचे की चिट मोड़कर फाड़ता और उनकी ओर बढ़ाता है। निराला जी चिट ले लेते हैं और एक रुपये का एक नोट डाकिए की ओर बढ़ा देते हैं। डाकिया नोट लेकर और सलाम करके जाता है।

निराला जी प्रकृतिस्थ होकर तखत पर पूर्ववत् बैठ जाते हैं और दोनों व्यक्तियों से भी बैठने का संकेत करते हैं। नोट उन्होंने बिना गिने ही पुस्तक में लगा दिये हैं। उनके साथ बिना पढ़े चिट भी लगा दी गयी है।]

निराला—(रामानंद से प्रसन्न मुद्रा में) और कहिए ?

रामानंद—(उत्साहित होकर) आपकी बहुमुखी प्रतिभा का रहस्य क्या है ?

निराला—(मुस्कराते हुए) बहुमुखी प्रतिभा ! (हँसकर) प्रतिभा कालिदास में थी, तुलसी में थी, रवींद्र में थी—मुझमें प्रतिभा होती तो इन महाकवियों के साथ मेरा नाम भी न लिया जाता ? (गंभीर होकर) मुझमें प्रतिभा होती तो अपने युग का ही सर्वमान्य कवि न होता ! कहाँ मिली वैसी ख्याति मुझे ? किसने मुझे प्रतिभा-संपन्न कहा ? किसने आदर किया मेरा ? कितने पुरस्कार दिये गये मुझको ? कितने साहित्य-सम्मेलनों का सभापति बनाया गया मैं ? मुझमें प्रतिभा थी ही कहाँ.......... कहाँ थी बहुमुखी प्रतिभा .... प्रतिभा .... मुझमें !

झेलते हों, उस देश की संस्कृति का पुजारी और प्रचारक होने का दंभ भरनेवाला तू भोजन और वस्त्रों में इस प्रकार आसक्त है ! धिक्कार है तुझे' !! उसी दिन से मेरी आँखें खुल गयीं अंधकार में भटकता हुआ मैं जैसे आलोक में आ गया। उस दिन से अच्छा वस्त्र या बढ़िया भोजन सामने आते ही मेरा वह सचेतक जैसे छाया-रूप में सामने आ खड़ा होता है, उसकी सतेज वाणी मेरे कानों में गूँजने लगती है और स्वदेश के करोड़ों भूखे-नंगों की तड़पती आत्माएँ जैसे मेरे सामने एकत्र होकर सामूहिक रूप से बिलखने लगती हैं। (क्षण भर मौन रहकर एकटक सामने देखने लगते हैं। दोनों व्यक्तियों की दृष्टि उनके मुख पर गड़ी रहती है। कुछ क्षण पश्चात् निराला जी जैसे प्रकृतिस्थ होते है। तब धीमे स्वर में—) इसी से अब मुझे न अच्छे वस्त्रों की कभी कामना होती है और न बढ़िया भोजन की।

जयदेव—क्षमा करें, क्या अब कोई भी साध आपके मन में कभी नहीं होती ?

निराला—साध ! होती है और वह केवल यह कि मैं भले ही भूखा-नंगा रह जाऊँ, पर मेरे सामने, मेरी जानकारी में कोई भूखा-नंगा न रहे; मेरे शरीर को अभावों की कितनी भी पीड़ा सहनी पड़े, पर मुझे कोई तड़पता न दिखायी दे। दूसरों का सारा कष्ट अपने ऊपर ओढ़ लेने को आज मैं तैयार हूँ जिससे वे सुखी हो जायँ। (किंचित परिवर्तित स्वर में) काश, मेरी यह कामना मेरे सर्वस्व का बलिदान लेकर भी पूर्ण हो जाती— मैं अपने चारों ओर सबको हँसते-खेलते देखता, सबको सुखी पाता·······
काश·······मेरे जीते जी ऐसा हो जाता·······

[निराला जी सहसा आवेश में खड़े हो जाते हैं और तख्त से उतरकर कमरे में टहलने लगते हैं। दोनों भक्त भी धीरे-धीरे तख्त से उतरकर सहमे से खड़े हो जाते हैं और दबी-दबी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगते हैं। तभी निराला जी अपने आप ही धीमे स्वर में कहने लगते हैं—]

निराला—(स्वगतकथन) सुख की बात कहते हैं ! कौन सा सुख ऐसा है जो निराला के इस शरीर ने नहीं भोग लिया ? जिस राजसी वैभव की कल्पना तक हिंदी क्या, भारत भर के साहित्यकार नहीं कर सके होंगे, वह सब मैं देख चुका हूँ। शायद इसी से अब उनकी चाह नहीं रह गयी है ·············सुख की चाह ! सुख की चाह मर तो गयी थी पत्नीही के साथ, सर्वथा भस्म हो गयीबेटी के शरीर के साथ। पुनीत प्रणय और पावन स्नेह

की इन प्रतिमाओं को खोकर कौन चाह कर सकता है सांसारिक सुख की? कौन कर सकता है?

[निराला जी का टहलना चलना रहता है; परंतु 'स्वगत' की ध्वनि धीमी पड़ जाती है, जैसे उनका आवेश शांत हो रहा हो। दोनों भक्त कभी उनकी ओर देखते हैं, कभी एक दूसरे की ओर। रामानंद कुछ कहना चाहता है कि जयदेव उसे संकेत से मना कर देता है। निराला जी का ध्यान उन दोनों की ओर नहीं है।

इसी समय डाकिया आता है और निराला जी को प्रणाम कर चमड़े के बैग से मनीआर्डर फार्म निकालकर उनकी ओर बढ़ाता है। निराला जी रुककर कुछ देर उसकी ओर देखते हैं, फिर फार्म ले लेते हैं। जयदेव आगे बढ़कर जेब से फाउंटेनपेन निकालकर और खोलकर निराला जी को देता है। 'थैंक्यू' कहकर वे तख्त पर बैठ जाते हैं। रामानंद तभी पुस्तक उठाकर फार्म के नीचे रखने को दे देता है। निराला बिना उसकी ओर देखे ही 'थैंक्यू' कहकर फार्म पर हस्ताक्षर करने लगते हैं। डाकिया रुपये निकालता है—पिचहत्तर रुपये—चौदह नोट पाँच-पाँच के और पाँच एक एक के। निराला जी फार्म उसकी ओर बढ़ा देते और रुपये ले लेते हैं। डाकिया फार्म के नीचे की चिट मोड़कर फाड़ता और उनकी ओर बढ़ाता है। निराला जी चिट ले लेते हैं और एक रुपये का एक नोट डाकिए की ओर बढ़ा देते हैं। डाकिया नोट लेकर और सलाम करके जाता है।

निराला जी प्रकृतिस्थ होकर तखत पर पूर्ववत् बैठ जाते हैं और दोनों व्यक्तियों से भी बैठने का संकेत करते हैं। नोट उन्होंने बिना गिने ही पुस्तक में लगा दिये हैं। उनके साथ बिना पढ़े चिट भी लगा दी गयी है।]

निराला—(रामानंद से प्रसन्न मुद्रा में) और कहिए?

रामानंद—(उत्साहित होकर) आपकी बहुमुखी प्रतिभा का रहस्य क्या है?

निराला—(मुस्कराते हुए) बहुमुखी प्रतिभा! (हँसकर) प्रतिभा कालिदास में थी, तुलसी में थी, रवींद्र में थी—मुझमें प्रतिभा होती तो इन महाकवियों के साथ मेरा नाम भी न लिया जाता? (गंभीर होकर) मुझमें प्रतिभा होती तो अपने युग का ही सर्वमान्य कवि न होता! कहाँ मिली वैसी ख्याति मुझे? किसने मुझे प्रतिभा-संपन्न कहा? किसने आदर किया मेरा? कितने पुरस्कार दिये गये मुझको? कितने साहित्य-सम्मेलनों का सभापति बनाया गया मैं? मुझमें प्रतिभा थी ही कहाँ.........कहाँ थी बहुमुखी प्रतिभा .... प्रतिभा .... मुझमें!

[निराला जी की मुद्रा देखकर रामानंद सहम सा जाता है। उनसे आँखें मिलाने का साहस उसको नहीं होता। वह उनके हाथ की किताब पर दृष्टि गड़ा लेता है। तभी—]

जयदेव—(स्थिति सम्हालता हुआ) आप मानें या न मानें, हिंदी में सभी आपका लोहा मानते हैं।

निराला—मेरा लोहा ! हिंदी वाले !! (परिवर्तित स्वर में) हिंदी वाले किसी का लोहा तब मानते हैं जब कोई विदेशी मनीषी उसकी प्रशंसा कर दे। (पुनः स्वर-परिवर्तन) किसी विदेशी ने मेरी प्रशंसा नहीं की, तब हिंदी वाले कैसे करते ? (कुछ क्षण रुक कर) मुझसे अनेक मित्रों ने कहा और कभी-कभी मैं भी सोचा करता था--काश ! मैंने अँगरेजी में लिखा होता ! परंतु""परंतु""""अब सोचता हूँ कि वैसा विचार मन में आने देना, वह मेरी दुर्बलता थी। (सावेश स्वर में) मुझे गर्व है कि मैंने हिंदी में लिखा, मुझे गर्व है कि मैंने मातृभाषा की सेवा की, मुझे गर्व है कि मैंने अपना सर्वस्व उसकी सेवा में होम कर दिया""""कोई मेरी प्रशंसा करे या न करे""""कोई मुझे""""परंतु""""। (कुछ क्षण रुककर) और लोहा ! लोहा तो संसार ने माना था नैपोलियन का जिसको उसने एक दिन एक टापू में बन्दी बना कर संतोष की साँस ली थी। मुझे भी उसने""""" मैं भी आज एक गली में बंद हूँ""" इससे"""" मेरे इस जीवन को देखकर यह अवश्य कहा जा सकता है कि सबने मेरा लोहा मान लिया है; क्योंकि जिसका वह लोहा मानता है, उसको इसी दशा में पहुँचा कर संतोष की साँस लेता है।

[निराला जी पुनः आवेश में आ जाते हैं; परंतु इस बार वे अधिक उत्तेजित नहीं होते।]

जयदेव—अच्छा, अपने देश के नवोदित साहित्यकारों के लिए आपका क्या संदेश है ?

निराला—(तटस्थ स्वर में) संदेश महापुरुष देते हैं; मैं तो साधारण मनुष्य हूँ।

रामानंद—फिर भी, कुछ तो"""""।

निराला—मेरे समस्त संदेश मेरी कृतियों में हैं। देश की नयी पीढ़ी उनका अध्ययन करे—उसे सब कुछ मिल जायगा।

जयदेव—आपकी सम्मति में साहित्यकार का क्या आदर्श होना चाहिए ?

निराला—आदर्श तो संस्कारों से संबंधित रहता है। एक व्यक्ति का आदर्श दूसरे का लक्ष्य नहीं बन सकता।

रामानंद—तब साहित्य-सृजन करते समय आपने अपना आदर्श क्या बना रखा था ?

निराला—अच्छा ? मेरा आदर्श ? मेरा आदर्श साहित्य में ही नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में यही रहा है कि अपनी आत्मा नहीं बेचूँगा। संसार के वैभव या विलास के उपकरणों का प्रलोभन मुझे लुभा नहीं सकेगा, सेवा-पथ से डिगा नहीं सकेगा; भावी समृद्धि का स्वप्न न मुझे विमुग्ध कर सकेगा और न कर्तव्य-निर्वाह से च्युत ही कर पायगा। सरस्वती-साधना—एक मात्र सरस्वती-साधना—मेरे जीवन का चरम लक्ष्य होगा, परंतु उसके माध्यम से लौकिक उपलब्धियों के लिए मैं लालायित न रहूँगा। (कुछ क्षण रुककर, सामने देखते हुए, परिवर्तित स्वर में) ममता और आत्मीयता के अमूर्त तंतु वर्षों मुझे अपने बंधन में जकड़े रह सकते हैं; परंतु प्रभाव, पद और मान की लौह शृंखलाएँ क्षण भर में तोड़ डालने का आत्मबल सदैव सजग रखूँगा।

जयदेव—कितना ऊँचा आदर्श है यह ! शताब्दियों में कहीं एक व्यक्ति निर्वाह कर पाता होगा इसका !

निराला— स्नेह से) एक नहीं, सैकड़ों होते हैं ऐसे आदर्श का निर्वाह करनेवाले हर देश में, हर युग में। हम उनका नाम नहीं जानते, उनकी साधना की कहानी नहीं जानते; क्योंकि वे स्वयं अपनी गाथा गाते या प्रशंसा करते नहीं फिरते।

रामानंद—(विनम्रता से) क्षमा करें तो इसी प्रसंग में एक बात और पूँछ लूँ।

निराला—(मुस्कराते हुए) क्षमा उसको किया जाता है जिसने कोई अपराध किया हो और जिसके प्रति कोई रोष हो। तुमने कोई अपराध नहीं किया और मैंने कभी किसी पर रोष नहीं किया—रोष जब जब मुझे आया, अपने पर आया और ....(हँसकर) अपने को दंड भी मैंने सदा दिया है। ....सुना तो होगा तुमने कि इस शरीर ने कितने कष्ट सहे हैं ! समाज, धर्म या राज्य की मजाल नहीं थी जो मेरे शरीर को किसी प्रकार का कष्ट दे सकता........मैंने, स्वयं मैंने ही इसे अनेक कष्ट दिये हैं........ और इस प्रकार ....। (सहसा रुककर) हाँ, तो तुम क्या पूछ रहे थे ?

रामानंद—लोग कहते हैं कि आप किसी को अपने बराबर नहीं समझते—किसी सामने कभी नहीं झुकते।

निराला—(गंभीर होकर) अपने हिसाब से ठीक कहते हैं वे। (सहसा उत्तेजित होकर और तनकर) देखते हो यह शरीर जो किसी समय इतना हृष्ट-पुष्ट था कि खुली छाती पर लौह फलक और वज्राघात सहकर भी अविचलित रह सकता था ? इस शरीर में जो आत्मा है, वह किस आत्मा से हीन है जो मैं किसी के सामने झुककर इसका अपमान कराऊँ ? (स्वर-परिवर्तन) समाज तो पद और स्थिति के अनुसार किसी को छोटा और किसी को बड़ा समझता है। मेरी दृष्टि में, आत्मा की एकता के कारण, न कोई बड़ा है, न छोटा—सब समान हैं। (पुनः स्वर-परिवर्तन) किसी को मैं इसलिए अपने से बड़ा नहीं मान सकता कि वह राजा-महाराजा है, उसका वंशज है, बड़ा राज्याधिकारी है, लक्षाधीश या धर्म-मठाधीश है। (संयत स्वर में) रही झुकने की बात, तो झुकता मैं भी हूँ, बड़े के ही नहीं, छोटे के आगे भी झुकने में मुझे संकोच नहीं होता। मेरा मस्तक त्यागी, तपस्वी और साधक मात्र के आगे अनायास झुक जाता है; परंतु तब जब उसके त्याग, उसकी तपस्या या साधना में उसका कोई स्वार्थ निहित न हो। (स्वर-परिवर्तन) साधना-सिद्धि के किसी प्रलोभन के आगे मैं नहीं झुक सकता, कदापि नहीं। मेरी आत्मा अजेय है; समाज, धर्म और राज्य की कोई शक्ति उसे जीत नहीं सकती, झुकने को विवश नहीं कर सकती।

रामानंद—तब इस युग के किन-किन महापुरुषों का आप सम्मान करते हैं ?

निराला—(निःसंकोच) मैं गाँधी का सम्मान करता हूँ, राजर्षि का सम्मान करता हूँ, रवीन्द्र का सम्मान करता हूँ, राजेंद्र बाबू का सम्मान करता हूँ और नेहरू का भी सम्मान करता हूँ। इस कारण नहीं कि उनकी आत्मा मुझसे सशक्त है, या पद-मान में वे मुझसे बड़े हैं; परंतु इस कारण कि उन्होंने महान साधना की है। मैं व्यक्ति का नहीं, उसकी साधना का पुजारी हूँ। इसी तरह पद, मान आदि में किसी को बड़ा मानकर न उसकी हाँ में हाँ मिला सकता हूँ और न उनके सामने झुक ही सकता हूँ। (स्वर-परिवर्तन) जब जब इनमें से किसी ने कुछ ऐसा कहा या किया है, जिससे मैं सहमत नहीं हो सका, तब-तब मैंने उसका डटकर विरोध भी किया है और सदैव करता रहूँगा। उनका पद-मान न मुझे आज तक कभी आतंकित कर सका है और न आगे कर सकेगा। परंतु विरोध भी मैं व्यक्ति

नहीं, उसकी उस बात का करता हूँ जो मुझे मान्य नहीं होती। अर्थात् जिसका मैं विरोध करता हूँ, उससे न स्वयं शत्रुता रखता हूँ और न चाहता हूँ कि वह ही मुझे अपना शत्रु समझे। दूसरे, किसी व्यक्ति की यदि एक बात मुझे नहीं रुचती तो उसका यह तात्पर्य भी नहीं है कि अब मुझे उसकी कोई बात रुचेगी ही नहीं (हँसकर) मेरी समझ में तो प्रत्येक व्यक्ति को इसी प्रकार स्वतंत्र विचार रखने का ही नहीं, उनको व्यक्त करने का भी अधिकार होना चाहिए—फिर चाहे आलोच्य व्यक्ति कोई भी क्यों न हो।

जयदेव—यह तो कुछ-कुछ वैसी ही बात हुई जैसा उपदेश दिया जाता है कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।

निराला—(जयदेव के कथन पर ध्यान न देकर स्वगत कथनवत्) एक से एक भयानक आघात करके विधाता तक जिसे न झुका सका, वह किसी मानव को अपने से बड़ा मानकर उसके सामने झुक जायगा ? असंभव ! वह टूट जायगा, पर झुकेगा नहीं, नहीं झुकेगा !

[इतना कहते-कहते निराला जी तनकर बैठ जाते हैं। उनका मुखमंडल असाधारण तेज से दीप्त हो उठता है और उनके विशाल स्वप्निल नेत्रों की दृष्टि भी सतेज हो जाती है। दोनों व्यक्ति मन ही मन श्रद्धा से अभिभूत हो जाते हैं और सविनय सर झुका लेते हैं। कुछ देर यही स्थिति और निस्तब्धता रहती है।]

जयदेव—धन्य है महाकवि ! आपका यह गर्वोन्नत मस्तक इस देश के साहित्यकारों को सदैव स्वाभिमान से जीने का संदेश देता रहेगा।

[निराला जी जयदेव पर एक दृष्टि डालते तो हैं; परंतु कुछ कहते नहीं। पश्चात् वे रामानंद की ओर इस प्रकार देखते हैं जैसे उसके दूसरे प्रश्न की प्रतीक्षा कर रहे हों।]

रामानंद—(उनका भाव समझकर) रेडियो के कवि-सम्मेलनों में कभी भाग नहीं लेते आप ? उनसे क्यों असंतुष्ट हैं ?

निराला—(जैसे चौंककर) रेडियो ? (कुछ क्षण मौन रहकर) रेडियो-वाले अपने को लेखकों और कवियों का आश्रयदाता .... आश्रयदाता क्या, अन्नदाता समझते हैं ! वे समझते हैं कि पैसा देकर किसी भी साहित्यकार को खरीदा जा सकता है ! (स्वर-परिवर्तन) पैसा दूसरे का, सिर्फ बाँटने भर के नौकर हैं वे ! लेकिन समझते हैं अपने को .... (हँसकर) कैसा खेल खिलाता है पैसा !

जयदेव—क्षमा कीजिएगा; रेडियोवाले गर्व क्यों न करें जब हर लेखक, कवि और कलाकार उनके इशारे पर नाचने को तैयार तो रहता

ही है, बिना इशारे के भी नाचकर रिझाता है, चाटुकार-जैसा रेडियो अधिकारियों की दरबारदारी करता है और उनकी उलटी-सीधी सभी आज्ञाओं का पालन करता है। (स्वर-परिवर्तन) मैं तो कहता हूँ, इन सब लोगों ने, सब कलाकारों और साहित्यकारों ने ही उनका दिमाग सातवें आसमान पर पहुँचा दिया है।

निराला—'सब लोग' मत कहो। मैं नहीं हूँ 'सब लोगों' में.......... और मैं ही क्यों, किसी भी स्वाभिमानी को तुम 'सबके' साथ नहीं गिन सकते। (स्वर-परिवर्तन) रेडियोवालों का यही गर्व तोड़ने के लिए तो मैंने उसका बहिष्कार कर दिया। मैं उनको दिखा देना चाहता हूँ कि एक साहित्यकार ऐसा भी है जिसे खरीद पाने का दंभ नहीं सकते वे। (मुस्कराकर) उन्होंने जब तीस देने को कहा, मैंने सौ माँगे; जब वे सौ देने को तैयार हुए, मेरी माँग दो सौ की हो गयी! दो सौ के लिए सहमत हुए तो मैंने हजार कह दिये—मतलब यह कि उन्हें कम से कम इतना तो मालूम ही हो क्या होगा कि हिंदीवालों में एक व्यक्ति तो ऐसा है जो उनके पैसे को ठुकरा सकता है। (परिवर्तित स्वर में सावेश) रेडियोवालों ने हिंदी की इज्जत कब की? उसे कब दूसरी भाषाओं के समकक्ष समझा? कब हिंदी के साहित्यकार को दूसरी भाषाओं के साहित्यकारों के या दूसरे क्षेत्रों में ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों के समकक्ष माना उन्होंने? (स्वर-परिवर्तन) उनके हर प्रस्ताव में मुझे साहित्यकार के अपमान की ध्वनि सुनायी पड़ी, हिंदी की उपेक्षा का संकेत दिखायी दिया। (स्वर-परिवर्तन) और मैं? न साहित्यकार का अपमान सहन कर सकता हूँ, न हिंदी का।

जयदेव—परंतु रेडियोवाले ....।

निराला—(बात काटकर) रेडियोवाले तो फिर क्षम्य हैं। इस देश का तो प्रत्येक धनी अपने को लेखकों-कवियों का जन्मजात आश्रयदाता समझता है; क्योंकि आश्रयदाताओं के यहाँ साहित्यकारों के रहने-बसने की परंपरा उसने सुनी है। (स्वर-परिवर्तन) ऐसे लोगों ने भी मुझे न जाने कितने प्रलोभन दिये, उन्होंने और उनके मुसाहबों ने न जाने कैसे-कैसे सब्ज बाग दिखाये; परंतु .... मैंने .... मतलब यह कि मेरा स्वाभिमान उनके सामने भी न झुक सका—उनका प्रस्ताव भी स्वीकार न कर सका मैं।

जयदेव—(कुछ क्षण मौन रहकर) क्या कभी लक्ष्मी की इस उपेक्षा पर आपको पश्चा .... मेरा मतलब है कि कभी आपके मन में यह भाव नहीं आया कि हमारे पास भी ।

निराला—(बीच ही में) काफी पैसा होगा—यही न ?

जयदेव—जी। मेरा तात्पर्य यह है कि धन से कुछ ऐसी सुविधाएँ सहज ही में मिल जाती हैं जिनसे जीवन-यापन और साहित्य-सेवा अधिक व्यावहारिक और सुचारु रूप से हो सकती है।

निराला—(गंभीरता से) धन सुख तो नहीं खरीद सकता; हाँ, उससे सुविधाएँ अवश्य प्राप्त की जा सकती हैं। (स्वर-परिवर्तन) धन का यह लाभ या उसकी यह शक्ति .... एक दिन, केवल एक दिन अनुभव की थी मैंने। (सामने ऐसी दृष्टि से देखते-देखते कि दृश्य जगत को भेदकर कुछ और दिखायी दे रहा हो) बेटी सरोज जब रोग से विकल थी, रोग की भयंकर पीड़ा जब उसके रोम-रोम को बेचैन किये थी, और मेरी बेटी उस मर्मांतक पीड़ा को दबाकर इस कारण हँसने का विफल प्रयास करती हुई अपने निर्धन पिता की ओर दबी-दबी दृष्टि से देख रही थी कि कहीं अपनी निर्धनता और अभाव-जन्य असहाय अवस्था पर उसे क्षोभ न हो। (विचलित-से होकर) बेटी की वह दृष्टि .... आह ! उस दिन मेरा स्वाभिमान डिगने लगा था—निश्चय ही डिग गया था .... निर्धनता पर मैं मन ही मन रो उठा था। (नेत्रों में अश्रु छलक आते हैं) मेरे हृदय ने उस दिन मेरे स्वाभिमान की भर्त्सना की थी ! (अश्रु पोंछते हैं और कुछ क्षण मौन रहते हैं। दोनों उनकी ओर श्रद्धा और सहानुभूति से देखते है। निराला जी प्रकृतिस्थ होकर कहते हैं—) उस दिन के बाद धन का उपयोग ही क्या रह गया मेरे लिए ? धन का अभाव जब बेटी का ही काल बन गया, तब किसकी रक्षा के लिए कामना करूँ अब उसकी ? (कुछ क्षण मौन रहकर) अपनी बेटी अब मुझे इस देश के ही असंख्य निर्धन बेटे-बेटियों में दिखायी देती है। धन हाथ में आते ही अब उन्हीं पास पहुँचा देने की मुझे जल्दी रहती है—शायद उस धन से किसी का अभाव दूर हो जाय, शायद उससे किसी को रोग से मुक्ति मिल जाय, शायद उससे कोई अभागा पिता अपनी बेटी को मृत्यु के मुख से बचा सके जिससे वह जीवन भर मेरी तरह बिलखने से .... ।

[निराला जी का कंठ रुँध जाता है। नेत्र पुनः साश्रु हो जाते हैं। वे जोर से आँखें मीच लेते हैं जिससे अश्रुओं की हलकी-हल्की बूँदें टपक पड़ती हैं। दोनों व्यक्ति भी व्यथित हो जाते हैं। परंतु अपनी समवेदना व्यक्त करने का उन्हें कोई सूत्र नहीं मिलता।

सहसा निराला जी उठ खड़े होते हैं और जल्दी-जल्दी दो-चार पत्र

पत्रिकाएँ दोनों सज्जनों के सामने डालकर 'अभी आया मैं' कहते हुए, रुपए वाली पुस्तक हाथ में लिये बाहर चले जाते हैं। यह सब इतनी शीघ्रता से होता है कि दोनों व्यक्ति न कुछ कह पाते हैं और न खड़े ही हो पाते हैं। वे बस एक दूसरे की ओर देखते रह जाते हैं।]

रामानंद—(साश्चर्य) कहाँ चले गये महाकवि सहसा ?

जयदेव—(विश्वास के साथ) हम लोगों के जलपान का प्रबंध करने गये होंगे। मुझे तो यही आश्चर्य है कि इतने समय तक उनका ध्यान इस बात की ओर आज गया कैसे नहीं; नहीं तो आगन्तुक के आते ही वे पहले उसके जलपान का प्रबंध करने लगते हैं सदा।

रामानंद—सुना था कि अस्वस्थ हैं इधर निराला जी; मुझे तो अस्वस्थता का कोई लक्षण नहीं दिखायी दिया इनमें।

जयदेव—इनके बार-बार उत्तेजित हो उठने पर ध्यान नहीं दिया तुमने ? यह भी नहीं देखा कि हम लोगों की उपस्थिति में ही 'स्वगत-कथन' जैसे वाक्य बोलने लगते हैं वे और कभी-कभी तो जैसे बिलकुल खो जाते हैं ? बस यही इनकी अस्वस्थता है।

रामानंद—कारण क्या हो सकता है इसका ?

जयदेव—मैं जहाँ तक समझ सका हूँ, इसका कारण एक ओर इनका 'अहं' है और दूसरी ओर हम हिंदी वालों की मनोवृत्ति की वह क्षुद्रता है जिसके फलस्वरूप उनकी प्रतिभा और साधना की प्रशंसा हम मन ही मन तो करते रहे; परंतु उसको व्यक्त इस भय से नहीं किया कि निराला जी का मान हमसे या हमारे प्रिय साहित्यकारों से बढ़ न जाय। यही नहीं, कुछ साहित्यिकों ने तो इनके चिढ़ने का मज़ा लेने के लिए इनका जब-तब उपहास भी किया। महाकवि का सरल अंतःकरण इस क्षुद्रता को न समझ सका और न सहन कर सका। यही इनकी सारी अस्वस्थता का मूल कारण है।

रामानंद—(खिन्न स्वर में) काश, साहित्यकारों ने महाकवि के प्रति ऐसी क्षुद्रता न दिखायी होती !

जयदेव—(कुछ सोचकर) एक बात और है।

रामानंद—(उदासी के स्वर में) क्या ?

जयदेव—निराला जी का स्वास्थ्य बिगाड़ने का दायित्व नहीं, 'श्रेय' कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी है जिन्हें वे तो अपना हितैषी समझते रहे, परंतु उन्होंने महाकवि को सदा अपने मनोरंजन का एक पात्र समझा। महाकवि में जो व्यसन आ गये, उनको बढ़ाने में ऐसे ही लोगों ने योग

दिया। ये लोग उनके काव्य और संगीत की प्रशंसा करके कभी उनको चंग पर चढ़ा देते, कभी उनके अहम् को सजग कर देते। तदनंतर भाँग के गोले और शराब के प्याले खिला-पिलाकर वे महाकवि की चेतना को सुप्त करने का कुचक्रपूर्ण उपक्रम करते। और तब? कहते दुख होता है कि जब महाकवि अपने को और अपने व्यक्तित्व को भूल जाते, तब कठपुतली की तरह उनको ये लोग नचाते, गवाते और स्वयं कहकहे लगाते। (कहते-कहते रुककर और रामानंद को साश्चर्य अपनी ओर देखते पाकर, उसका मनोभाव समझकर) न अविश्वास करो और न आश्चर्य; जो कुछ कह रहा हूँ, सर्वथा सत्य है।

रामानंद—सरस्वती की कठोर साधना में लगे एक साधक को लक्ष्य-भ्रष्ट करनेवाले ऐसे व्यक्तियों के हथकंडे महाकवि कभी समझ नहीं पाये?

जयदेव—बहुत दिनों तक तो नहीं ही समझे, बाद को ....।

[इतने में निराला जी हाथ में एक बड़ा दोना भर मिठाई लिये आते हैं। उनके आते ही दोनों व्यक्ति उठकर खड़े हो जाते हैं। निराला जी 'बैठिए'-'बैठिए' कहते हैं और स्वयं अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। दोनों व्यक्ति भी यथास्थान बैठते हैं। निराला जी के मुख पर संतोष का भाव है। अस्फुट स्वर में वे कुछ गुनगुना भी रहे हैं।]

निराला—(स्नेह से देखते हुए दोना बढ़ाकर) लीजिए, कुछ जलपान कर लीजिए।

जयदेव—(हाथ न बढ़ाकर) यह तो बहुत है हम लोगों के लिए।

निराला—(मुस्कराकर) जवान आदमी होकर कैसी बात करते हो! अपनी जवानी में इसकी दुगनी मिठाई तो मैं खाना खाने के बाद उड़ा जाता था। उसी जमाने की खिलाई-पिलाई आज काम आ रही है जो तरह-तरह के रोगों के भीषण आघातों को भी हँसते-हँसते झेल जाता हूँ। (आत्मीयता से) खूब खाइए-पीजिए और खूब काम कीजिए। सत्साहित्य-सृजन के लिए स्वस्थ मस्तिष्क चाहिए और मस्तिष्क स्वस्थ होगा, जब शरीर पुष्ट होगा। लीजिए!

जयदेव—(पुनः ससंकोच हाथ जोड़कर) हम लोग तो आपका प्रसाद लेना चाहते हैं।

निराला—(हँसकर) अच्छी बात है। (दो मिठाइयाँ मुँह में डालकर और दोना बढ़ाकर) अब तो लीजिए।

[जयदेव हाथ बढ़ाकर दोना ले लेता है और रामानंद की ओर कुछ

खिसककर बीच में दोना रखकर खाने का संकेत करता है। दोनों खाने लगते हैं।

निराला जी उठकर दूसरे द्वार से घर के भीतर चले जाते हैं।]

रामानंद—(धीरे से) सेर भर से कम न होगी मिठाई और ताज़ी भी है।

जयदेव—दारागंज का प्रत्येक दूकानदार इन्हें अच्छी तरह जानता है—जानता क्या है, इनका भक्त हो गया है। कभी कोई ख़राब चीज दे ही नहीं सकता इनको।

रामानंद—चार-पाँच रुपये खर्च कर आये होंगे ?

जयदेव—सामान तो चार-पाँच का ही है, पर मूल्य रूप में दस, बीस, जो भी दे आये हों। इस संबंध में इनका व्यवहार हर एक को बड़ा विचित्र लगता है। मोल-भाव तो सबसे करते हैं, लेकिन इच्छानुसार चीज पा जाने पर दाम सदा बेहिसाब और दुगुने-तिगुने दे देते हैं। गिनकर तो कभी देते ही नहीं – जो पास हुआ, दे डाला।

रामानंद—और जो दाम पास न हों तो ?

जयदेव—तब भी चीज तो बढ़िया ही लेंगे और जितनी आवश्यकता होगी, उससे ज्यादा लेंगे ; पर दाम की बात किये बिना ही चल देंगे और दूकानदार को भी साहस नहीं होगा इनको टोककर दाम माँगने का। (रामानंद को चकित भाव से अपनी ओर देखते पाकर) बीस वर्ष हो गये महाकवि को यहाँ रहते, सभी इनका स्वभाव जान गये हैं। सभी समझते हैं कि हमारा रुपया बिना माँगे ही मय सूद-ब्याज के मिल जायगा—कुछ अधिक ही मिलेगा, कम कभी नहीं। हाँ, मिलेगा तब जब इनके पास रुपये होंगे।

[निराला जी आते दिखायी देते हैं। दोनों व्यक्ति चुप होकर खाने की तल्लीनता दिखाते हैं।

निराला जी आकर अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। पानी भरा लोटा और दो गिलास वे लाये हैं।]

निराला—मेरे पड़ोसी सबेरे से बाहर हैं। चाय का प्रबंध नहीं हो सका। और लोटा-गिलास मँजा था नहीं, माँजने में देर लग गयी।

रामानंद—अरे, अरे, आपने यह कष्ट क्यों किया ? हम लोग स्वयं बरतन माँजकर पानी ले लेते। आपके जूठे बरतन माँजना हमारे लिए तो परम सौभाग्य की बात होती।

निराला (हँसकर) अतिथि देव होता है और युवक ? युवकों को

तो मैं देवताओं से भी बढ़कर समझता हूँ। उनको देखकर मैं अपनी अवस्था भूल कर कुछ देर के लिए युवकोचित उत्साह से भर जाता हूँ। (स्वगतवत्) शक्ति और स्फूर्ति की प्रतिमूर्ति युवक ! समाज, राष्ट्र सबके उन्नति के शिखर पर ले जानेवाले युवक ! (स्पष्टता से) युवक मुझे बहुत प्यारे हैं। उनको देखकर मुझे भी जैसे बल मिल जाता है।

[दोनों व्यक्ति मिठाई समाप्त करते हैं। रामानंद पत्तें का दोना फेंकने के लिए बाहर जाता है। जयदेव इतने में पानी पीता है। बाहर से आकर रामानंद भी पानी पीता है। दोनों हाथ धोते हैं और जयदेव बरतन माँजने के लिए भीतर जाने लगता है।

निराला जी मौन भाव से सब कुछ देखते रहते हैं, फिर जयदेव को भीतर की ओर जाते देखकर उठने लगते हैं।]

निराला—(उठने का उपक्रम करते हुए) नहीं, नहीं, यहीं रख दो। माँजने-धोने की चिंता मत करो।

जयदेव—(ठिठककर) इसमें हर्ज ही ....।

निराला—(कठोर स्वर में) नहीं, जो कहता हूँ, वही करो। वहीं रख दो लोटा-गिलास और यहाँ आकर बैठो।

[जयदेव का साहस आगे बढ़ने का नहीं होता। वह सब बरतन एक किनारे रखकर मुख पर सहज भाव लाने का यत्न करता हुआ आकर बैठ जाता है। रामानंद भी उसी का अनुकरण करता है। निराला जी की मुख-मुद्रा भी सहज हो जाती है।]

निराला—हाँ तो और कुछ पूछना चाहते हो तुम ?

रामानंद—(विनम्रता से) क्षमा कीजिए तो एक बात और पूछूँ।

निराला—(सहज स्वर में) निसंकोच पूछो।

रामानंद—आपके दर्शनार्थ जो लोग आते हैं, वे ही अपनी मित्र-मंडली में पहुँचकर आपके लिए अनुचित शब्दों का प्रयोग क्यों करते हैं ? एक, दो में नहीं, पचीसों में यह बात मैंने पायी है।

निराला—(गंभीर होकर) अनुचित शब्द ! जैसे ?

रामानंद—(बड़े संकोच से, सधे हुए स्वर में) उन्हें कभी-कभी मैंने 'सनकी', 'पागल', 'विद्रोही'-जैसे शब्दों का प्रयोग करते सुना है।

निराला—(ठहाका मार कर) तो इसमें संकोच की क्या बात है और क्या बात है बुरा मानने की ? मेरे गाँव के बालक मुझे देखते ही, चिढ़ाने के लिए, 'निराला मतवाला गढ़ाकोला का'; और भी इसी तरह की कुछ बातें कहा करते हैं गंभीर होकर परन्तु तुम्हारे इन साहित्यकारों

में तो इतना भी साहस नहीं है कि इन बालकों की तरह जो कुछ कहना चाहते हैं, मुझसे कहें, खुल कर सामने कहें। (कुछ देर मौन रहकर) मैं सनकी हूँ, पागल हूँ; क्योंकि मैं तुम्हारी थोथी सभ्यता नहीं समझता। (स्वर-परिवर्तन) मेरी परिभाषा में, जिसके मन, वचन और कर्म में एकता नहीं, जो सोचता कुछ, कहता कुछ और करता कुछ और है—या सामने कुछ कहता है और पीठ पीछे कुछ और—वह कायर ही नहीं, नीच भी है। मैं जानता हूँ कि ऐसों की संख्या हमारे समाज में आज बहुत बढ़ गयी है और इसीलिए ....। (अधूरा वाक्य छोड़कर) परमात्मा के पवित्र आवास, अपनी अंतरात्मा की स्वच्छता मलिन करनेवाले! कायर! (निराला जी घृणा से भर जाते हैं। उनका स्वर धीमा होता जाता है। दोनों व्यक्ति कभी उनकी मुद्रा देखते हैं, कभी सर नीचा करके एक दूसरे की ओर कनखियों से देखने लगते हैं। निराला जी कुछ क्षण मौन रहकर पुनः धीरे-धीरे कहने लगते हैं—) मैं मन, वचन और कर्म की एकता बनाये रखना चाहता हूँ। संभवतः इसी से दुरंगी, तिरंगी नीतिवाली दुनिया की समझ में मेरा आचरण नहीं आता। व्यक्तित्व का दोहरापन ही आज की सभ्यता है; परंतु मुझे उस दोहरेपन से घो· अरुचि है।

[निराला जी चुप हो जाते हैं। उनके मुख पर अरुचि का भाव झलकने लगता है। रामानंद को सर उठाने का साहस नहीं होता। जयदेव अवश्य धीरे-धीरे उनकी ओर देखने लगता है।]

जयदेव—(नम्रता, परंतु दृढ़ता से) बिलकुल ठीक कहते हैं आप! आज के समाज में ....।

निराला—(जैसे कुछ न सुनकर अपनी ही तरंग में) मैं मांस खाता हूँ, शराब पीता हूँ—दोनों बातें खुलकर करता हूँ, सर उठाकर करता हूँ, समाज को चुनौती देकर करता हूँ। परंतु कौन नहीं जानता कि तुम्हारे इसी हिंदू समाज में लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो मांस खाते हैं, पर छिपाकर; शराब पीते हैं, वह भी छिपाकर—खुलकर खाने-पीने का उनमें साहस नहीं है! मेरे यहाँ आनेवालों में या मैं जिनके यहाँ जाता हूँ, उनमें अनेक व्यक्ति इसी दुराव-छिपाव के कौशल में लगे रहते हैं। वे मेरी स्पष्टवादिता से घबराते हैं, मुझसे बचकर रहते हैं, मेरे सामने भीगी बिल्ली बने खीसें निपोरते आते हैं और पीठ पीछे निंदा करते हैं। (कुछ देर मौन रहकर) हाँ, मानसिक असंतुलन की बात ठीक है। जिसके हृदय पर एक से एक तीव्र आघात हुए हों, उसका मानसिक संतुलन न बिगड़ने पर आश्चर्य होना चाहिए, बिगड़ना तो स्वाभाविक ही है (परिवर्तित स्वर

मे) और यह भी ठीक है कि मैं विद्रोही हूँ। परंतु मेरा विद्रोह किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, उस व्यवस्था के प्रति है जो सबको सुखी बनाने का प्रयत्न न करके एक को अति सुखी और अनेक को अति दुखी बना रही है। एक को स्वादिष्ट पदार्थों के सेवन से अजीर्ण हो रहा है और अनेक दोनों समय भर पेट नहीं, आधा पेट भी भोजन नहीं पाते। एक के पास वस्त्रों का ऐसा अंबार लगा है कि वर्ष में प्रत्येक को एक बार पहनने का भी नंबर नहीं आता और अनेक भयंकर शीत में पूरा तन ढकने को मोटा सूती कपड़ा भी नहीं पाते। कमर में दर्द होने पर एक तो केसर बिछाकर सोने की हैसियत रखता है और अनेक को उसी दर्द से राहत पाने के लिए पुआल भी नसीब नहीं होता।

जयदेव—(श्रद्धा से) बिलकुल ठीक कहा आपने। सचमुच समाज की यही दशा है आज।

रामानंद—और ऐसी समाज-व्यवस्था के प्रति कौन सहृदय विद्रोही नहीं होगा ?

[निराला जी कुछ उत्तर नहीं देते। इतने में बाहरी दरवाजे के सामने एक संतरेवाला 'संतरे नागपुर के' कहता हुआ आता दिखायी देता है। निराला जी उसे देखते ही सब कुछ भूलकर उठ खड़े होते हैं और द्वार पर खड़े होकर इशारे से संतरेवाले को बुलाते हैं। दोनों व्यक्ति भी उनके दायें-बायें आ जाते हैं। इतने में संतरेवाला निकट आकर अपना झउआ उतारता है। निराला जी आगे बढ़कर संतरे देखने लगते हैं।]

निराला—(संतरे छाँटते हुए झुककर) किस तरह दिये ?

संतरेवाला—चार-चार आने मालिक !

निराला—(एक-एक हाथ में दो-दो संतरे उठाकर) और रुपये के ?

संतरेवाला—(दाहने हाथ में दो बड़े संतरे उठाकर उनकी ओर बढ़ाता हुआ) रुपये के ? रुपये के पाँच ले लीजिए मालिक !

निराला—(हाथ के संतरे जयदेव को देकर और दूसरे छाँटते हुए) यह 'मालिक' ! 'मालिक' ! क्या बकता है ? तू भी इंसान है, हम भी इंसान हैं। मालिक कौन है किसका ?

संतरेवाला—(बड़ी दीनता से) आप गरीबपरवर हैं, देवता हैं। मैं तो आपके पैरों की धूल के बराबर भी नहीं हूँ मालिक !

निराला—(रामानंद को चार संतरे देकर फिर छाँटते हुए) कोई गरीबपरवर नहीं, कोई देवता नहीं ! सब बराबर हैं। खबरदार, जो अब भी 'मालिक' कहा किसी को !

में तो इतना भी साहस नहीं है कि इन बालकों की तरह जो कुछ कहना चाहते हैं, मुझसे कहें, खुल कर सामने कहें। (कुछ देर मौन रहकर) मैं सनकी हूँ, पागल हूँ; क्योंकि मैं तुम्हारी थोथी सभ्यता नहीं समझता! (स्वर-परिवर्तन) मेरी परिभाषा में, जिसके मन, वचन और कर्म में एकता नहीं, जो सोचता कुछ, कहता कुछ और करना कुछ और है—या सामने कुछ कहता है और पीठ पीछे कुछ और—वह कायर ही नहीं, नीच भी है। मैं जानता हूँ कि ऐसों की संख्या हमारे समाज में आज बहुत बढ़ गयी है और इसीलिए .... । (अधूरा वाक्य छोड़कर) परमात्मा के पवित्र आवास, अपनी अंतरात्मा की स्वच्छता मलिन करनेवाले! कायर! (निराला जी घृणा से भर जाते हैं। उनका स्वर धीमा होता जाता है। दोनों व्यक्ति कभी उनकी मुद्रा देखते हैं, कभी सर नीचा करके एक दूसरे की ओर कनखियों से देखने लगते हैं। निराला जी कुछ क्षण मौन रहकर पुनः धीरे-धीरे कहने लगते हैं—) मैं मन, वचन और कर्म की एकता बनाये रखना चाहता हूँ। संभवतः इसी से दुरंगी, तिरगी नीतिवाली दुनिया की समझ में मेरा आचरण नहीं आता। व्यक्तित्व का दोहरापन ही आज की सभ्यता है; परंतु मुझे उस दोहरेपन से घोर अरुचि है।

[निराला जी चुप हो जाते हैं। उनके मुख पर अरुचि का भाव झलकने लगता है। रामानंद को सर उठाने का साहस नहीं होता। जयदेव अवश्य धीरे-धीरे उनकी ओर देखने लगता है।]

जयदेव—(नम्रता, परंतु दृढ़ता से) बिलकुल ठीक कहते हैं आप! आज के समाज में .... ।

निराला—(जैसे कुछ न सुनकर अपनी ही तरंग में) मैं मांस खाता हूँ, शराब पीता हूँ—दोनों बातें खुलकर करता हूँ, सर उठाकर करता हूँ, समाज को चुनौती देकर करता हूँ। परंतु कौन नहीं जानता कि तुम्हारे इसी हिंदू समाज में लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो मांस खाते हैं, पर छिपाकर; शराब पीते हैं, वह भी छिपाकर—खुलकर खाने-पीने का उनमें साहस नहीं है! मेरे यहाँ आनेवालों में या मैं जिनके यहाँ जाता हूँ, उनमें अनेक व्यक्ति इसी दुराव-छिपाव के कौशल में लगे रहते हैं। वे मेरी स्पष्टवादिता से घबराते हैं, मुझसे बचकर रहते हैं, मेरे सामने भीगी बिल्ली बने खीसें निपोरते आते हैं और पीठ पीछे निंदा करते हैं। (कुछ देर मौन रहकर) हाँ, मानसिक असंतुलन की बात ठीक है। जिसके हृदय पर एक से एक तीव्र आघात हुए हों, उसका मानसिक संतुलन न बिगड़ने पर आश्चर्य होना चाहिए, बिगड़ना तो स्वाभाविक ही है (परिवर्तित स्वर

मे) और यह भी ठीक है कि मैं विद्रोही हूँ। परंतु मेरा विद्रोह किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, उस व्यवस्था के प्रति है जो सबको सुखी बनाने का प्रयत्न न करके एक को अति सुखी और अनेक को अति दुखी बना रही है। एक को स्वादिष्ट पदार्थों के सेवन से अजीर्ण हो रहा है और अनेक दोनों समय भर पेट नहीं, आधा पेट भी भोजन नहीं पाते। एक के पास वस्त्रों का ऐसा अंबार लगा है कि वर्ष में प्रत्येक को एक बार पहनने का भी नंबर नहीं आता और अनेक भयंकर शीत में पूरा तन ढकने को मोटा सूती कपड़ा भी नहीं पाते। कमर में दर्द होने पर एक तो केसर बिछाकर सोने की हैसियत रखता है और अनेक को उसी दर्द से राहत पाने के लिए पुआल भी नसीब नहीं होता।

जयदेव—(श्रद्धा से) बिलकुल ठीक कहा आपने। सचमुच समाज की यही दशा है आज।

रामानंद—और ऐसी समाज-व्यवस्था के प्रति कौन सहृदय विद्रोही नहीं होगा ?

[निराला जी कुछ उत्तर नहीं देते। इतने में बाहरी दरवाजे के सामने एक संतरेवाला 'संतरे नागपुर के' कहता हुआ आता दिखायी देता है। निराला जी उसे देखते ही सब कुछ भूलकर उठ खड़े होते हैं और द्वार पर खड़े होकर इशारे से संतरेवाले को बुलाते हैं। दोनों व्यक्ति भी उनके दायें-बायें आ जाते हैं। इतने में संतरेवाला निकट आकर अपना झउआ उतारता है। निराला जी आगे बढ़कर संतरे देखने लगते हैं।]

निराला—(संतरे छाँटते हुए झुककर) किस तरह दिये ?

संतरेवाला—चार-चार आने मालिक !

निराला—(एक-एक हाथ में दो-दो संतरे उठाकर) और रुपये के ?

संतरेवाला—(दाहने हाथ में दो बड़े संतरे उठाकर उनकी ओर बढ़ाता हुआ) रुपये के ? रुपये के पाँच ले लीजिए मालिक !

निराला—(हाथ के संतरे जयदेव को देकर और दूसरे छाँटते हुए) यह 'मालिक'! 'मालिक'! क्या बकता है ? तू भी इंसान है, हम भी इंसान हैं। मालिक कौन है किसका ?

संतरेवाला—(बड़ी दीनता से) आप गरीबपरवर हैं, देवता हैं। मैं तो आपके पैरों की धूल के बराबर भी नहीं हूँ मालिक !

निराला—(रामानंद को चार संतरे देकर फिर छाँटते हुए) कोई गरीबपरवर नहीं, कोई देवता नहीं ! सब बराबर हैं। खबरदार, जो अब कभी 'मालिक' कहा किसी को !

[संतरेवाला सहमकर खड़ा रहता है। निराला जी दो सड़े संतरे छाँटकर गली में फेंक देते हैं।]

निराला—(संतरे छाँटते-छाँटते रुककर) ऐसे सड़े संतरे बेचता है लोगों को बीमार डालने के लिए ?

संतरेवाला—(हाथ जोड़कर) भूल हुई मा········। आप अच्छे-अच्छे छाँट लें।

[निराला जी चार संतरे और छाँटकर बिना कुछ कहे भीतर आकर अपने स्थान पर बैठ जाते हैं और किताब से पाँच का नोट निकालकर संतरेवाले से कहते हैं—ले। संतरेवाला भीतर आकर नोट लेता है और बाकी रुपये निकालने लगता है। निराला जी उसका मतलब समझकर कहते हैं—जा, अब सड़े संतरे मत बेचना। संतरेवाला तुरंत सलाम करके बाहर चला जाता है। निराला जी स्वयं संतरा छीलने लगते हैं और दोनों अतिथियों से भी वैसा ही करने का संकेत करके कहते हैं—खाइए। दोनों वैसा ही करते हैं।]

रामानंद—(आधा संतरा समाप्त करके) आपकी पुस्तकों की संख्या तो बहुत अधिक है; क्या आपको उनकी पूरी रायलटी मिल जाती है ?

निराला—(चौंककर) पुस्तकों की रायलटी ? (कुछ खोये-खोये स्वर में) मिल ही जाती है काम चलाने को। (कुछ सोचकर) हाँ, बचा नहीं पाता कुछ।

जयदेव—कभी-कभी सोचता हूँ कि कैसे क्षुद्र हैं हम लोग ! विदेश में आप जैसा साहित्यकार होता, तो हजारों की पूँजी होती उसके पास। जिस मार्ग से निकल जाता वह, लोग पलकें बिछा देते; जिस संस्था में भाषण दे देता, वह अपने को गौरवान्वित समझती; जिस नवोदित कलाकार पर वह अपना वरद हस्त रख देता, वह धन्य हो जाता। और एक हम हिंदी वाले हैं कि हमारा मूर्धन्य साहित्यकार, जिसने दूसरों की सहायता में ही············।

निराला—(बात काटकर) कौन सहायता करता है किसकी ? जिसका जो प्राप्य है, वो लेता है। (परिवर्तित स्वर में) सहायता मैं क्या करूँगा किसी की ? हाँ, अपने लिए भी किसी की सहायता नहीं चाहता।

रामानंद—(ससंकोच धीमे स्वर में) सुना, आपकी सहायता के लिए कोई विज्ञप्ति············।

निराला—(शीघ्रता से बात काटकर) मेरी सहायता नहीं, मेरा

अपमान करने के लिए कहो, मेरे स्वाभिमान को नष्ट करके मुझे नीचा दिखाने के लिए कहो, मुझे सुख से मरने न देने के लिए कहो।

जयदेव—(श्रद्धा और अधिकार के सम्मिलित स्वर में) मरने की बात न कहें महाकवि! आपको अपने लिए नहीं, हमारे लिए जीना है। और आपकी सहायता? वह सहायता नहीं, आपके भक्तों और सेवकों की कृतज्ञता-सूचक ऋण-स्वीकृति मात्र है।

[निराला जी के मुख पर संतोष का भाव झलकता है। वे कुछ उत्तर नहीं देते। दूसरा संतरा छीलने लगते हैं।]

रामानंद—सुना, सरकार भी आपकी कुछ सहायता.........।

निराला—(बात काटकर सावेश) सरकार की बात मत उठाओ। सरकार ने ही इस देश की जनता को भूखा-नंगा कर रखा है। विदेशी शासक यदि प्रजा को चूसते थे, तो आश्चर्य की बात नहीं थी। परंतु अपने ही भाई-बंधु जब देश के शासक हों और प्रजा तरह-तरह से पीसी जाय, अनेक प्रकार की अनीतियाँ सहने को विवश की जाय, तो उस शासन को धिक्कार है, उन शासकों को धिक्कार है! (स्वर-परिवर्तन) सरकार ने कितने भूखे-नंगों की सहायता की है? कितने दुखियों-पीड़ितों के आँसू पोंछे हैं? कितने रोगियों-अपाहिजों को स्वस्थ किया है? (व्यंग्य से) सरकार मेरी सहायता करना चाहती है! मुझे दरबारी भाट और बंदीजन-वर्ग का समझ रखा है! (परिवर्तित स्वर में रामानंद से) सरकारी सहायता का अर्थ समझते हो? (रामानंद उनकी ओर एकटक देखता-देखता धीरे-धीरे नेत्र झुका लेता है, उत्तर नहीं देता) नहीं समझते? सरकारी सहायता का अर्थ स्पष्ट है कि सहायता पानेवाला दरबारी चाटुकार हो जाय, शासकों की विरुदावलि गाता फिरे। (जयदेव की ओर संकेत करके) सरकारी सहायता का यही अर्थ है या और कुछ?

जयदेव—(सविनय) जी, यही है।

निराला—(पूर्ववत्) प्राचीन दरबारी कवि क्या करते थे? विरुदावलि-गान ही न? जिसने सरकारी सहायता लेकर वैसा नहीं किया, वह अपमानित किया गया, बंदी बनाया गया और मरवा दिया गया। (जयदेव से) गलत है यह?

जयदेव—(पूर्ववत्) जी, ठीक कहते हैं आप।

निराला—(परिवर्तित स्वर में) मानता हूँ कि शासन-तंत्र बदल गया है; परंतु ध्यान रखो कि शासकों की मनोवृत्ति नहीं बदला करती है। (सावेश) तो ये दुष्ट शासक निराला की सहायता का आडंबर रचकर

आशा करते हैं कि वह उनकी विरुदावली का गान करेगा ? (दृढ़ स्वर से) निराला भूखों मर जायगा, पर किसी के आगे हाथ नहीं फैलायगा। (व्यंग्य से) सौ-सौ दो-दो सौ रुपये महीना बांधते फिरते हैं मेरा ये शासक लोग ! सहायतार्थियों की संख्या बढ़ेगी तो सबेरे-शाम रोटियाँ बाँटेंगे ! (स्वर-परिवर्तन) गणतंत्र भले ही हो, परंतु महमूद गजनवी जैसे शासकों की मनोवृत्ति जब अरबों की लूट पाकर एक कवि को दिये हुए वचन का पालन न कर सकी, उसका पारिश्रमिक न दे सकी, तो ये शासक किसी स्वाभिमानी कवि की सहायता क्या करेंगे ? (स्वगत-कथन जैसे स्वर में) फिरदौसी बेचारा। पारिश्रमिक की आशा लिए ही मर गया ………… बेचारा पारिश्रमिक की आशा लिए ही मर गया। (स्वर परिवर्तन) मर भले ही गया, पर अपनी आन को अमर कर गया……… ।

रामानंद—(बहुत डरते-डरते) परंतु ………… क्षमा करें, सरकारी सहायता तो आप ठुकराते हैं लेकिन ……… मेरा मतलब ……… आप जिन व्यक्तियों के यहाँ ………… ।

निराला—(संकेत समझकर व्यथित स्वर में) भाई, अपने मित्रों के यहाँ जो मैं रहा हूँ या अब भी रहता हूँ, सो सहायता पाने के लिए नहीं, मेरे भोजन-वस्त्र का वे प्रबंध कर देंगे, इस लोभ से नहीं। (दीर्घ स्वाँस लेकर) इस विशाल और पुष्ट शरीर में विधाता ने न जाने कितनी ममता भर दी थी, न जाने कितना स्नेह संचित कर दिया था ! इसी ममता और स्नेह के आधार मैं अपने इन मित्रों के यहाँ ढूँढ़ता फिरता हूँ। (धीमे स्वर में) इस बात में, केवल इसी बात में अपने हृदय से हार गया हूँ मैं ! जिस वज्रकठोर हृदय ने विधाता के दारुण आघात सह लिये, उसीने मुझे हरा दिया। (व्यथित स्वर में) अपने संबंधियों और आत्मीयों का वियोग तो सहन किया मैंने; परंतु बेटी सरोज के लिए अपार ममतामय स्नेह जिस हृदय में संचित था, उसका बिलखना आज भी नहीं रुका है। जिस पिता ने माता की सारी ममता और पिता के सारे दुलार से अपनी बेटी को पाला हो, वह उसी बेटी के ऐसे वियोग को कैसे सहन कर सकता है ?

[व्यथित होकर वे मौन हो जाते हैं। दोनों व्यक्ति उनकी ओर देखते रहते हैं।]

जयदेव—(सांत्वना देने के उद्देश्य से) बेटी का वियोग कण्व जैसे महर्षि ………… ।

निराला—(शीघ्रता से) महर्षि कण्व तो पति-गृह जाती बेटी की बिदा से ही विचलित हुए थे। बेटी की विदा का वह अवसर तो किसी

भी पिता के एक की चरम साधना की सिद्धि का सुखद अवसर है परंतु इस अभागे पिता को तो जिन हाथों से बेटी की सेज सँजोयी उन्हीं से उसकी चिता सँजोनी पड़ी ! कितना भाग्यहीन हूँ मैं !

सत्यदेव- (समवेदना के स्वर में) महाकवि !

निराला—(और गंभीर होकर) अपने इन मित्रों के घरों में मैं अपनी उस बेटी को ही खोजता फिरता हूँ। इनके भाई-बहनों और बेटे-बेटियों में मेरे वात्सल्यमय हृदय को बेटी सरोज की मूर्ति दीखती है, इनके स्नेहपूर्ण व्यवहार से मेरे दग्ध हृदय को अपार शीतलता मिलती है। (स्वर-परिवर्तन) मेरा हृदय इतनी ममता और आत्मीयता का भूखा है कि संसार के सारे बेटे बेटियों को पाकर भी जैसे तृप्त न होगा। (विचलित होकर) जिस हृदय ने संसार के अगणित अभावों को अभाव न समझा, वह एक बेटी के स्नेह के अभाव से जैसे कंगाल हो गया। किसी प्रकार ...... किसी प्रकार इस अभाव की पूर्ति मैं नहीं कर पाता, नहीं कर पाता .... आह ! (व्यथित स्वर में) अभागे पिता के इस अभाव को कोई नहीं समझता .... कोई नहीं समझता .... कोई ....।

रामानंद—(साश्रु) मुझे क्षमा करें, मैंने आपके मर्मस्थल को ....।

निराला—(प्रकृतिस्थ होकर) नहीं, नहीं, बेटी सरोज की यह स्मृति मेरे लिए संसार की सबसे मूल्यवान धरोहर है। उसी के लिए मैंने लिखा था—

ऊनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन-सिन्धु-तरण;
तनये, ली कर दृक्पात तरुण
जनक से जन्म की विदा अरुण!
गीते मेरी, तज रूप-नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय,
चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण
कह—'पितः, पूर्ण-आलोक-वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण,
'सरोज' का ज्योतिः शरण-तरण !'—

अशब्द अक्षरों का सुना भाष
मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश

मैंने कुछ, अहरह रह निर्भर
ज्योतिस्तरणा के चरणों पर।
जीवित - कविते, शत-शर-जर्जर
छोड़ कर पिता को पृथ्वी पर
तू गयी स्वर्ग, क्या यह विचार—
'जब पिता करेंगे मार्ग पार
यह, अक्षम अति, तब मैं सक्षम,
तारूँगी कर गह दुस्तर तम ?'—
कहता तेरा प्रयाण सविनय—
कोई न था अन्य भावोदय।
श्रावण - नभ का स्तब्धान्धकार
शुक्ला प्रथमा, कर गयी पार !

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित कर न सका !
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख।
क्षीण का न छीना कभी अन्न,
मैं रख न सका वे दृग विपन्न,
अपने आँसुओं अतः बिम्बित
देखे हैं अपने ही मुख - चित।

कविता लंबी है। तुम लोगों ने तो पढ़ी होगी। उसकी अंतिम पंक्तियाँ ये हैं—

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल,
दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही !
हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर मेरे कार्य सकल

हो भ्रष्ट शीत के-से शतदल !
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण !

[कहते-कहते निराला जी के अश्रु भर आते हैं। दोनों व्यक्ति भी साश्रु नयनों से उनकी ओर देखते रहते हैं।

इसी समय पड़ोस के घर का पंद्रह-सोलह वर्ष का एक किशोर एक ट्रे में चाय और एक प्लेट में जलपान का सामान लिये प्रवेश करता है और द्वार पर रुककर ही सर झुकाकर प्रणाम करता है। तीनों उसकी ओर देखने लगते हैं। किशोर चाय की ट्रे तखत के बीच में रख देता है। निराला जी हाथ पकड़कर उसे अपने पास बैठा लेते हैं।]

निराला—(बड़े स्नेह से) माता जी कब आयीं ?

किशोर—(भोलेपन के साथ) कोई आधा घंटा हुआ। बहुत परेशान थीं वे कि आपकी चाय में बहुत देर हो गयी।

निराला—पगली है वह। कहना—देर जरा भी नहीं हुई। इन लोगों से बातों में ऐसा लगा रहा कि चाय की याद ही नहीं आयी। (केतली से चाय प्याले में डालकर पहला प्याला किशोर की ओर बढ़ाते हुए स्नेहपूर्वक) लो पियो।

[किशोर बहुत सकुचाते हुए धीरे-धीरे हाथ बढ़ाकर प्याला ले लेता है। निराला जी स्नेह से उसकी ओर देखते हुए दूसरा प्याला रामानंद को, तीसरा जयदेव को देते हैं और अंतिम आप लेते हैं। सब पीने लगते हैं।]

निराला—(किशोर के सर पर अत्यंत स्नेह से हाथ फेरते हुए जयदेव से) बड़ा होनहार है हमारा यह किशोर। बिलकुल मेरे ही स्वर में कविता-पाठ करता है। सुनोगे ?

जयदेव—यह तो बड़ी कृपा होगी हम पर आपकी और किशोर जी की भी।

निराला—(सोत्साह किशोर से) बताओ तो कौन-कौन कविताएँ तुम अच्छी तरह सुना सकते हो ?

किशोर—(किन्चित संकोच से) 'बादल राग', 'शिवाजी का पत्र', 'राम की शक्ति-पूजा', 'तुलसीदास' सब कुछ सुना सकता हूँ।

निराला—पूरी कविताएँ नहीं, थोड़ा-थोड़ा ही अंश प्रत्येक का सुना दो—हाँ, उसी स्वर में जैसे मैं पढ़ता हूँ।

[किशोर बड़े उल्लास से 'अपरा' की प्रति उठा लेता है और एक किनारे खड़े होकर उक्त कविताओं का चुना हुआ अंश यथावश्यक स्वर में,

भाव-प्रदर्शक मुद्राओं के साथ पढ़ता है। निराला जी आंतरिक प्रफुल्लता और अत्यंत स्नेह से उसकी ओर देखते हैं। दोनों व्यक्ति पूर्ण भाव-विभोरता की स्थिति में चारों रचनाएँ सुनते हैं। कविताओं की समाप्ति पर किशोर दोनों को प्रणाम कर अपने आसन पर बैठ जाता है।]

रामानंद—(हर्षमिश्रित कौतूहल से) बहुत सुंदर, बहुत सुंदर! आपका कविता-पाठ सुनने का सौभाग्य तो मुझे कभी मिला नहीं; परंतु (किशोर की ओर संकेत करके) इनके कविता-पाठ से ही कृतार्थ हो गया।

निराला—कहीं-कहीं तो मुझसे भी सुंदर पाठ किया इसने। (किशोर के सर पर हाथ फेरकर) भविष्य में यह निश्चय ही सफल गायक होगा। (किशोर) घर जाओ अब बेटा!

[किशोर शीघ्रता से उठकर प्लेट आदि सम्हालकर उठाता और और पहले निराला जी को, फिर अन्य दोनों को प्रणाम करके जाता है।]

निराला—(जयदेव से) तुमने तो मुझे कविता-पाठ करते सुना है। तुम्हारा क्या ख्याल है किशोर के संबंध में ?

जयदेव—(जैसे चौंककर) मेरा ? मैं तो इस संबंध में केवल इतना कह सकता हूँ कि यदि किशोर जी के कविता-पाठ के समय मैं यहाँ उपस्थित न होकर, आसपास से उनका स्वर सुनता तो मुझे निश्चय ही आपका भ्रम होता।

निराला—(रामानंद से) मेरा कविता-पाठ नहीं सुना तुमने ? सुनना चाहते हो ?

रामानंद—(हाथ जोड़कर हर्ष से) मेरा अहोभाग्य! बड़ी कृपा होगी।

निराला—तुम्हें 'जुही की कली' सुनाता हूँ। यह मेरी प्रियतम रचनाओं में है।

[निराला जी बड़ी तन्मयता से 'जुही की कली' का पाठ करते हैं। दोनों व्यक्ति अत्यंत श्रद्धा और विस्मय से कविता सुनते हैं। निराला जी के मुख पर अपूर्व कांति आ जाती है। कविता समाप्त होने पर—]

रामानंद—(श्रद्धा से निराला जी के चरणों पर मस्तक रखकर) मैं कृतार्थ हुआ। पचीसों कवियों का कविता-पाठ सुना है; परंतु ऐसा पाठ .... ऐसा स्वर .... कभी नहीं सुना।

निराला—(भाव में तल्लीन) यह मेरा अंतिम पाठ समझो इस कवि का। आज .... अब से .... पत्नी के प्रणय की जो पावनता

अपार स्फूर्ति मुझमें भरती रही, उससे .... आज उससे विदा लेता हूँ। अब मेरा उत्साह समाप्त हो गया, मुझमें उमंग नहीं रह गयी, काव्य-रचना की कामना ही जैसे निर्मूल हो गयी। और ....।

[सहसा निराला जी मौन हो जाते हैं। दोनों व्यक्ति उनके मुख की ओर देखते रहते हैं। निराला की दृष्टि सामने, एक दम सामने टिक जाती है।]

निराला—(सहसा सचेत होकर रामानंद से) तुम भी कविता करते हो ?

रामानंद—(ससंकोच) जी, कुछ लिखने का अभ्यास तो करता हूँ।

जयदेव—आपके संबंध में एक रचना इन्होंने लिखी है। सुनाने की बड़ी साध लेकर आये हैं।

निराला—मेरे संबंध में ? कविता का विषय बनने की पात्रता कहाँ मुझमें ? परंतु तुमने लिखी है, तो सुनाओ, अवश्य सुनूँगा।

रामानंद—(शीघ्रता से कविता की छोटी कापी जेब से निकालकर) कविता में न भाषा ढंग की है, न आर्थिक चमत्कार ही है। केवल श्रद्धा-भाव की व्यंजना-मात्र है। (कापी खोलकर) सुनिए—

सुधीमान् यशस्वी वरदपुत्र
देवि वीणापाणि के !
जन्मते ही लिखा बीज-मंत्र जो
भारती ने जिह्वा पर तुम्हारी,
सिद्धि शुभाशीर्वाद की उनके
विस्मित-विमुग्ध सदा करती रहेगी—
जिज्ञासुओं को, साधकों को विद्या के !

साधना तुम्हारी माप बनेगी महाकवे !
कृतित्व अनुकरणीय आदर्श होगा।
चलकर चरण-चिह्नों पर तुम्हारे
जन्म निज धन्य मानेंगे—
धीर वीर पुजारी मानवता के,
गायक आन के, स्वाभिमान के,
साधक वरवीर स्वतंत्रता के।

सौभाग्य महा साधना का सरस्वती की
मिलता है मानव को,
पुण्य हों अनंत जब उसके।

जन्म-जन्म के शुभ संस्कारों से
जन्मे थे तुम स्वर्णिम दिवस पर
पूजा के देवि भारती के ।

ईर्ष्या हुई उसी क्षण लक्ष्मी को तव भाग्य से ।
वंचित जिससे हुए तुम स्व-मातृ-वात्सल्य से ।
विश्वास है अपार लक्ष्मी को
निज साधनों की प्रलोभन-शक्ति पर ।
अमित राजसी वैभव भोगते देख तुमको,
तुष्ट हुई वह मन ही मन तुमसे
कि त्याग कर उसको सहसा
पहुँच गये तुम आश्रम में विवेक के ।
फलस्वरूप दंड मिला तुम्हें प्रिया-वियोग का ।
मान लो जिससे भूल तुम अपनी,
कर लो स्वीकार प्रभुता को लक्ष्मी की ।

सहन कर लिया जब तुमने
दारुण आघात वह भी दुर्दैव का—
गा-गाकर गाथा तुलसीदास गोस्वामी की,
प्रहार अंतिम किया गया मर्मस्थल पर तुम्हारे,
अवयस्का आत्मजा-वियोग-रूप में ।
डिगे इस पर भी नहीं तुम
धन्य-धन्य साधक-शिरोमणे !
उपासक अनन्य हो जो शक्ति का,
डिगा उसे कैसे सकती हैं दैवी विपत्तियाँ भी ?
हार यों मानी तुमसे बार-बार
लक्ष्मी ने, लक्ष्मीपतियों ने ।

निर्झर प्रखर हिमगिरि का,
प्रवाहित होता सतत सवेग जैसे,
कविवर ! तव प्रतिभा-प्रवाह भी
निरंतर बढ़ता रहा वैसे ही अनिमंत्रित गति से ।

पत्थर जो मार्ग में अड़े बाधा बन,
चूर-चूर कर उनको बहाया साथ ही ।

गड़े जो रह गये भूमि में,
रखकर चरण उनके उन्नत शीश पर,
बहता रहा अनवरत एक लक्ष्य से—
जीवन-दान से भूमि शस्य-श्यामला करना है
सुख प्रदान-हेतु अंचलवासियों को,
प्राण-संचार करना है पिपासुओं में,
ताप शांत करना है चिर-दग्धों के।

बंधन-मुक्त कविता-कामिनी को
करने में सफल हुए तुम—
स्वयं मूर्ति थे जो स्वच्छंदता की।
बंधन रूढ़ियों के भी काटने में
समर्थ हुए इसीसे अनायास ही
कि पौरुष की प्रतिमा सजीव थे तु

लक्ष-लक्ष भाव-मणियाँ हृदय-कोष में
सँजोये ही नहीं, लुटाते रहकर भी
आजीवन रहे तुम अकिंचन से—
विरोधाभास यह समझ कौन सकता है
लौकिक व्यवहार-पटु समाज में ?

सागर का खारा जल पानकर
जलधर बरसाते जीवन शुचितम,
शस्यदायी, प्राणदायी, तापहर।
परंतु युग की समस्त कुंठाओं का
हलाहल पान कर आजीवन,
अजस्र सुधा-धारा प्रवाहित की ऐस
भारती के प्रांगण में महाकवि !
जो विरोधियों को भी तुम्हारे
अमर कर गयी सदा-सर्वदा को;
तव प्रशंसकों को सुलभ की यदि
नित नव सुधा वसुधा पर, तो आ

अनंत रत्नाकर-सम बिखेरते रहे
भाव-रत्न अमूल्य तुम,
सुलभ जो पारखी-अपारखी, सभी के लिए

भव्य भारती-भवन के सुदक्ष शिल्पी !
युग-युग तक कौशल तव कला का।
चमत्कृत करता रहेगा सुपारखियों को।

दीन-हीन-विपन्नों की रक्षा को,
लौकिक सुख-भोग-कामना के साथ,
अस्थि-चर्म-दान-दाता दधीचि !
त्याग तुम्हारा पथ प्रशस्त करे हमारा।

कल्पतरु सुरम्य नंदनवन का
पूर्ण करता है कामनाएँ अमरों की,
सर्व सिद्धियाँ सुलभ हैं सहज ही जिनको।
भू पर कल्पतरु थे तुम दीन-हीनों के,
धन-वस्त्र ही नहीं, हाड़-मांस भी अपना
देनें को प्रस्तुत रहे जो सदा बिना याचना के।

'नाही' तक किसी को
न दे सकनेवाले कृपण-शिरोमणे !
युग-युग तक चलती रहेगी
रुचिर कहानी तव कृपणता की !

छल-कपट को संज्ञा देता जो कौशल की,
शिष्टाचार की, व्यावहारिक निपुणता की,
युग जो, समझ कैसे सकता है तुमको,
मूर्ति जो साक्षात निश्छलता की,
निष्कपटता व्याप्त रोम-रोम में जिसके,
श्वेतता सहज ज्यों दुग्ध में,
हरीतिमा प्रकृत, पल्लवों में,
शुभ्रता सुखद चंद्रिका में,
शीतलता तापविनाशिनी हिमखंड में।

तव प्रतिभा-सूर्य को हथेली से,
ढकनें के हास्यास्पद प्रयास की
कपट नियोजित बुद्धिमत्ता जो
दिखाते आजीवन रहे विविध कौशल से,

निराश तो हुए ही बार-बार,
उपहास्य भी अंततः बने वे जगत में।

नव भगीरथ! हिंदी-काव्य-धारा को
दिशा नव, गति-प्रवाह नव प्रदान किया तुमने।
शक्ति-पूजक राम से
व्रत लिया शक्ति की साधना का।

देवव्रत-सदृश शर-शैया पर पड़े—
पीड़ा छिपाते रहे गा-गाकर गीत,
निश्चय पर अपने रहकर अटल, अडिग।
दीक्षा ली दीन-सेवा और करुणा की
राज्य-विलास-त्यागी बोधिसत्व से।

आदर्श महान अपनाया प्रताप का—
हिमगिरि-सा उन्नत भाल तव,
झुका नहीं कभी सामने किसी के।

उत्तराधिकारी हो सच्चे सुयोग्य तुम;
ख्यातिनामा भूषण त्रिपाठी के,
पालकी में जिनकी कंधा लगाकर
अहोभाग्य मानते थे अपना
महीपति विख्यात ओरछा-नरेश जैसे।
अभिमान आज किसे नहीं है महाकवि!
तुम्हारे स्वाभिमान पर स्वदेश में?

सुनते हैं, भगवान भी पसीजते नहीं
तब तक स्व-प्रिय जन पर भी,
ध्यान स्व-बल का रहता है जब तक उसको;
अथवा अहं रहता है प्रबल उसका।
पसीजते वे तब हैं
निकलने को अंतिम साँस जब होती है उसकी—
आसन डोलता है तभी उनका।

जनता-जनार्दन का क्रम भी है ऐसा ही।
सहज ही नहीं पूजती वह किसी मानव को।

असाधारण महत्व किसी स्वजातीय को
सहज ही प्रवृत्त नहीं होती वह देने को।
निर्मम हो जाती है इतनी वह
सिद्धांतवादी के प्रति,
कि विविध तापों से उसको
जलाने के उपक्रम करती है अनेक प्रकार के।

विचलित नहीं होती वह किंचित भी
तिल-तिल जलता, तड़पता भी देखकर उसको।
प्रत्युत देखती है ध्यान से उसके मुख को—
कि मर्मांतक पीड़ा का चिह्न तो नहीं कोई
अंकित हुआ मुख-मंडल पर उसके;
सुनती है बड़े मनोयोग से
कि वेदना की अतिशयता से
'आह' तो नहीं निकली मुख से उसके।

पार्थिव शरीर यों झेलता रहता है जब तक,
अविचलित नितांत वह रहती है।
आसन उसका भी डोलता है तब,
अंतिम साँस जब निकलने को होती है
धीर, सहनशील साधक की।

और तब ? भगवान जैसे भक्त को
मनवांछित वरदान से,
सामीप्य, सारूप्य का सुख अमित दे
पठाते निज लोक हैं,
जनता भी उसी प्रकार 'महामानव' कहकर
साधना का उसकी करती सम्मान अपूर्व है।
अत्यंत श्रद्धाभाव से प्रतिष्ठित कर उसे
निज हृदय-आसन पर तभी
पूजती है उसको भाव-विभोर हो,
गानकर कीर्ति का कल कंठ से।

महाकवे ! साधना तुम्हारी सफल हुई आज है।
स्वीकारा है जनता-जनार्दन ने 'महामानव' तुम्हें।
प्रतिष्ठित रहोगे तुम निश्चय ही
हृदय-सिंहासन पर जन-जन के अनंत काल तक।

[निराला जी ध्यानपूर्वक सारी कविता सुनते हैं। रामानंद कविता पाठ करते समय जब उनकी ओर देखता है और दोनों की दृष्टि मिल जाती है, तब निराला जी सर हिलाकर आगे पढ़ने का संकेत करते हैं और वह आगे पढ़ने लगता है। जयदेव कभी निराला जी की ओर देखता है, कभी रामानंद की ओर। कविता समाप्त होने पर—]

निराला—मेरी समझ में तो तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। इसका विषय 'व्यक्ति'-विशेष न होता तो यही कविता लोकप्रिय हो जाती। (जयदेव से) तुम्हारी क्या राय है ?

जयदेव मुझे तो यह रचना बहुत प्रिय है। हाँ, यदि आप इसमें संशोधन कर दें ....।

निराला—नहीं, नहीं, इसमें नहीं। इनकी और रचनाएँ मैं अवश्य देख सकता हूँ। (रामानंद से मुस्कराकर) और कुछ पूछना चाहते हैं मुझसे ?

रामानंद—(हाथ जोड़कर) आपने इतनी कृपा की मुझ पर, जीवन धन्य हो गया। बस एक प्रार्थना है—कृपा करके कुछ ऐसा उपदेश दें जो मेरा ही नहीं, संसार के प्रत्येक युवक का जीवन-सिद्धांत बन जाय।

निराला—मैं क्या उपदेश दूँ ! जीवन भर मैं स्वयं शिक्षार्थी रहा, सबसे सीखता रहा—बड़ों से तो सीखा ही, मित्रों से और छोटों से भी सीखा। (कुछ रुककर) संसार ही व्यक्ति का सबसे बड़ा शिक्षक है। जो कुछ वह सिखाता है, उसकी परीक्षा लेने के लिए 'दुख' को भेजता है। विद्यार्थी की परीक्षा के दिनांक, विषय आदि पूर्वसूचित रहते हैं; इसी से उसकी परीक्षा ठीक-ठीक नहीं हो पाती। परंतु व्यक्ति का सच्चा परीक्षक 'दुख' बिना सूचना के ही आ धमकता है और यों उसको सत्य-सत्य परख लेता है। (स्वर-परिवर्तन) तुम युवक हो—युवक अर्थात् शक्ति से पूर्ण, उत्साह से पूर्ण, स्फूर्ति से पूर्ण। बस रुचि, उमंग और ईमानदारी से कार्य में जुटे रहो। दूसरे का सहारा मत ताको, स्वावलंबी बनो। जीवन में किसी कार्य को छोटा मत समझो। (कुछ स्मरण करके) मेरी 'निरुपमा'

असाधारण महत्व किसी स्वजातीय को
सहज ही प्रवृत्त नहीं होती वह देने को।
निर्मम हो जाती है इतनी वह
सिद्धांतवादी के प्रति,
कि विविध तापों से उसको
जलाने के उपक्रम करती है अनेक प्रकार के।

विचलित नहीं होती वह किंचित भी
तिल-तिल जलता, तड़पता भी देखकर उसको।
प्रत्युत देखती है ध्यान से उसके मुख को—
कि मर्मांतक पीड़ा का चिह्न तो नहीं कोई
अंकित हुआ मुख-मंडल पर उसके;
सुनती है बड़े मनोयोग से
कि वेदना की अतिशयता से
'आह' तो नहीं निकली मुख से उसके।

पार्थिव शरीर यों झेलता रहता है जब तक,
अविचलित नितांत वह रहती है।
आसन उसका भी डोलता है तब,
अंतिम साँस जब निकलने को होती है
धीर, सहनशील साधक की।

और तब ? भगवान जैसे भक्त को
मनवांछित वरदान से,
सामीप्य, सारूप्य का सुख अमित दे
पठाते निज लोक हैं,
जनता भी उसी प्रकार 'महामानव' कहकर
साधना का उसकी करती सम्मान अपूर्व है।
अत्यंत श्रद्धाभाव से प्रतिष्ठित कर उसे
निज हृदय-आसन पर तभी
पूजती है उसको भाव-विभोर हो,
गानकर कीर्ति का कल कंठ से।

महामाते ! [illegible] आज है।
स्वीकारा है [illegible] 'महामानव' तुम्हें।
प्रतिबिम्बित रहोगे [illegible]
हृदय-सिंहासन पर [illegible] अनन्त काल तक।

[निराला जी [illegible] मुस्काते हैं। रामानंद कविता पाठ करते समय जब उनकी ओर [illegible] दोनों की दृष्टि मिल जाती है, तब निराला जी सर हिलाकर, आगे [illegible] का संकेत करते हैं और वह आगे पढ़ने लगता है। जयदेव कभी निराला [illegible] की ओर देखता है, कभी रामानंद की ओर। कविता समाप्त होने पर—]

निराला—मेरी समझ में तो तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। इसका विषय 'व्यक्ति'-विशेष न होना भी [illegible] कविता लोकप्रिय हो जाती। (जयदेव से) तुम्हारी क्या राय है ?

जयदेव—मुझे तो यह रचना बहुत प्रिय है। हाँ, यदि आप इसमें संशोधन कर दें ....।

निराला—नहीं, नहीं, इसमें नहीं। इसकी और रचनाएँ मैं अवश्य देख सकता हूँ। (रामानंद से मुस्कराकर) और कुछ पूछना चाहते हैं मुझसे ?

रामानंद—(हाथ जोड़कर) आपने इतनी कृपा की मुझ पर, जीवन धन्य हो गया। बस एक प्रार्थना है—कृपा करके कुछ ऐसा उपदेश दें जो मेरा ही नहीं, संसार के प्रत्येक युवक का जीवन-सिद्धांत बन जाय।

निराला—मैं क्या उपदेश दूँ ! जीवन भर मैं स्वयं शिक्षार्थी रहा, सबसे सीखता रहा—बड़ों से तो सीखा ही, मित्रों से और छोटों से भी सीखा। (कुछ रुककर) संसार ही व्यक्ति का सबसे बड़ा शिक्षक है। जो कुछ वह सिखाता है, उसकी परीक्षा लेने के लिए 'दुख' को भेजता है। विद्यार्थी की परीक्षा के दिनांक, विषय आदि पूर्वसूचित रहते हैं; इसी से उसकी परीक्षा ठीक-ठीक [illegible] हो पाती। परंतु [illegible] 'दुख' बिना सूचना के [illegible] आ धमकता है और [illegible] परख लेता है। (स्वर-परिवर्तन)-तुम युवक हो—[illegible] लगन और ईमानदारी से पूर्ण, उत्साह से पूर्ण, स्फूर्ति से पूर्ण। बस [illegible], उमंग और ईमानदारी से कार्य में जुटे रहो। दूसरे का सहारा मत ताको, स्वावलंबी बनो [illegible] किसी कार्य को छोटा मत समझो। (कुछ [illegible] करके) मेरे [illegible] [illegible]

का नायक डी. लिट्. होकर भी भरे बाजार में जूते की पालिश करता है—शर्म से नहीं, गर्व से सर उठाकर, समाज को चुनौती देकर और पलकें ऊँची करके। संसार के—और विशेषकर इस देश के—प्रत्येक युवक को मैं उसी रूप में आन का मानी और धुन का धनी देखना चाहता हूँ।

रामानंद—(चरण पकड़कर) आपका उपदेश मेरा पथ प्रशस्त करेगा। आशीर्वाद दें कि तदानुसार आचरण करने की बुद्धि और शक्ति मुझमें सदा बनी रहे।

निराला—(सर पर हाथ रखकर) ईश्वर तुम्हारा सहायक रहे। (सहसा खड़े हो जाते हैं) अच्छा अब ....।

[जयदेव और रामानंद, दोनों खड़े हो जाते हैं। जयदेव अपने साथी को चलने का संकेत करके—]

जयदेव और रामानंद—(सम्मिलित स्वर में) जीवन में आज का दिन धन्य हो गया।

जयदेव—आपको न आज विश्राम करने का अवसर मिला, न कुछ लिखने पढ़ने का। आपका इतना समय लेने की धृष्टता के लिए हम लोग सविनय क्षमाप्रार्थी हैं।

[दोनों झुककर निराला जी के पैर छूते हैं और हाथ जोड़े-जोड़े विदा होते हैं।

निराला जी कुछ देर उनकी ओर देखते रहते हैं; फिर तख्त से उतरकर इधर-उधर टहलते हैं। तभी उनकी दृष्टि सरस्वती के चित्र पर पड़ती है।

वे धीरे-धीरे जाकर उसके सामने खड़े हो जाते हैं और स्वगतरूप में कहते हैं—]

सरस्वती के सपूत का आसन संसार में सबसे ऊँचा है। साहित्य की साधना ही उसका तपश्चर्या है। दिन और रात आत्मतल्लीन रहकर हृदय के रक्त से जो कुछ वह लिखता है, उसका मूल्य धातु के टुकड़ों में नहीं आँका जा सकता। उसके भाव-रत्न अमूल्य होते हैं। और निर्धनता! भारतीय साहित्यकारों की परंपरा ही निर्धनता की है। (कुछ क्षण रुककर परिवर्तित स्वर में) माता, तेरा यह सेवक भी लौकिक समृद्धि नहीं चाहता, पद-अधिकार नहीं चाहता। बस, माता! तुमसे यही माँगता है कि मेरा आत्माभिमान बना रहे, जीवन के बचे हुए दिन स्वांत:सुखाय साहित्य-साधना में लगा सके, (कुछ रुककर पुनः परिवर्तित स्वर में) रामानंद मेरी

प्रशस्ति गाता है। मुझे यह सब नहीं चाहिए। (स्वर-परिवर्तन) मेरे साहित्यिक बंधुओ ! मेरा अभिनंदन मत करो, मेरी जयंतियाँ मत मनाओ। मुझे एकांत में पड़ा रहने दो और आशीर्वाद दो कि अपनी टेक निबाहते-निबाहते मैं अंतिम स्वाँस लूँ। माता सरस्वती का पूत उन्हीं के पुण्य दर्शन करते-करते अपनी आँख मूँद ले।

[निराला जी भाव-विभोर हो सरस्वती के चित्र के नीचे मस्तक टेक देते हैं। उसी समय नेपथ्य से कोई सुरीले कंठ से उनका यह गीत गाता है—]

भारति, जय विजय करे,
कनक - शस्त्र - कमल धरे।

लंका पद - तल - शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु अर्थ - भरे !

तरु तृण वन - लता - वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल - कण
धवल - धार हार गले !

मुकुट शुभ्र हिम - तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख - शतरव, मुखरे !

[निराला जी गीत सुनकर सहसा चौंक उठते हैं। फिर जैसे स्वर पहचानकर प्रसन्नता के साथ स्वयं भी गीत गुनगुनाने लगते हैं। उसकी समाप्ति पर क्षण भर आत्मविस्मृत से खड़े रहते हैं और तब भारतमाता के चित्र की ओर देखकर कहते हैं।]

पुण्यभूमि ! तेरी गोद में जब जन्म लिया था, तू पराधीन थी। पराधीनता के पाश से तेरी मुक्ति के लिए तेरे जिन सपूतों ने अपना जीवन लगाया था, उनमें तेरा यह अकिंचन पुत्र भी था। मेरी साधना से तू संतुष्ट हुई या नहीं, यह तो तू जाने; परंतु उससे मुझे संतोष नहीं है। मैं तो तुझे वास्तविक रूप से स्वतंत्र तब समझूँगा जब तेरी गोद में पले

असाधारण महत्व किसी स्वजातीय को
सहज ही प्रवृत्त नहीं होती वह देने को।
निर्मम हो जाती है इतनी वह
सिद्धांतवादी के प्रति,
कि विविध तापों से उसको
जलाने के उपक्रम करती है अनेक प्रकार के।

विचलित नहीं होती वह किंचित भी
तिल-तिल जलता, तड़पता भी देखकर उसको।
प्रत्युत देखती है ध्यान से उसके मुख को--
कि मर्मांतक पीड़ा का चिह्न तो नहीं कोई
अंकित हुआ मुख-मंडल पर उसके;
सुनती है बड़े मनोयोग से
कि वेदना की अतिशयता से
'आह' तो नहीं निकली मुख से उसके।

पार्थिव शरीर यों झेलता रहता है जब तक,
अविचलित नितांत वह रहती है।
आसन उसका भी डोलता है तब,
अंतिम साँस जब निकलने को होती है
धीर, सहनशील साधक की।

और तब ? भगवान जैसे भक्त को
मनवांछित वरदान से,
सामीप्य, सारूप्य का सुख अमित दे
पठाते निज लोक हैं,
जनता भी उसी प्रकार 'महामानव' कहकर
साधना का उसकी करती सम्मान अपूर्व है।
अत्यंत श्रद्धाभाव से प्रतिष्ठित कर उसे
निज हृदय-आसन पर तभी
पूजती है उसको भाव-विभोर हो,
गानकर कीर्ति का कल कंठ से।

महाकवे ! साधना तुम्हारी सफल हुई आज है।
स्वीकारा है जनता-जनार्दन ने 'महामानव' तुम्हें।
प्रतिष्ठित रहोगे तुम निश्चय ही
हृदय-सिंहासन पर जन-जन के अनंत काल तक।

[निराला जी ध्यानपूर्वक सारी कविता सुनते हैं। रामानंद कविता पाठ करते समय जब उनकी ओर देखता है और दोनों की दृष्टि मिल जाती है, तब निराला जी सर हिलाकर आगे पढ़ने का संकेत करते हैं और वह आगे पढ़ने लगता है। जयदेव कभी निराला जी की ओर देखता है, कभी रामानंद की ओर। कविता समाप्त होने पर—]

निराला—मेरी समझ में तो तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। इसका विषय 'व्यक्ति'-विशेष न होता तो यही कविता लोकप्रिय हो जाती। (जयदेव से) तुम्हारी क्या राय है ?

जयदेव मुझे तो यह रचना बहुत प्रिय है। हाँ, यदि आप इसमें संशोधन कर दें ......।

निराला—नहीं, नहीं, इसमें नहीं। इनकी और रचनाएँ मैं अवश्य देख सकता हूँ। (रामानंद से मुस्कराकर) और कुछ पूछना चाहते हैं मुझसे ?

रामानंद—(हाथ जोड़कर) आपने इतनी कृपा की मुझ पर, जीवन धन्य हो गया। बस एक प्रार्थना है—कृपा करके कुछ ऐसा उपदेश दें जो मेरा ही नहीं, संसार के प्रत्येक युवक का जीवन-सिद्धांत बन जाय।

निराला—मैं क्या उपदेश दूँ ! जीवन भर मैं स्वयं शिक्षार्थी रहा, सबसे सीखता रहा—बड़ों से तो सीखा ही, मित्रों से और छोटों से भी सीखा। (कुछ रुककर) संसार ही व्यक्ति का सबसे बड़ा शिक्षक है। जो कुछ वह सिखाता है, उसकी परीक्षा लेने के लिए 'दुख' को भेजता है। विद्यार्थी की परीक्षा के दिनांक, विषय आदि पूर्वसूचित रहते हैं; इसी से उसकी परीक्षा ठीक-ठीक नहीं हो पाती। परंतु व्यक्ति का सच्चा परीक्षक 'दुख' बिना सूचना के ही आ धमकता है और यों उसको सत्य-सत्य परख लेता है। (स्वर-परिवर्तन) तुम युवक हो—युवक अर्थात् शक्ति से पूर्ण, उत्साह से पूर्ण, स्फूर्ति से पूर्ण। बस रुचि, उमंग और ईमानदारी से कार्य में जुटे रहो। दूसरे का सहारा मत ताको, स्वावलंबी बनो। जीवन में किसी कार्य को छोटा मत समझो। (कुछ स्मरण करके) मेरी 'निरुपमा'

का नायक डी. लिट्. होकर भी भरे बाजार में जूते की पालिश करता है—शर्म से नहीं, गर्व से सर उठाकर, समाज को चुनौती देकर और पलकें ऊँची करके। संसार के—और विशेषकर इस देश के—प्रत्येक युवक को मैं उसी रूप में आन का मानी और धुन का धनी देखना चाहता हूँ।

रामानंद—(चरण पकड़कर) आपका उपदेश मेरा पथ प्रशस्त करेगा। आशीर्वाद दें कि तदानुसार आचरण करने की बुद्धि और शक्ति मुझमें सदा बनी रहे।

निराला—(सर पर हाथ रखकर) ईश्वर तुम्हारा सहायक रहे। (सहसा खड़े हो जाते हैं) अच्छा अब .... ।

[जयदेव और रामानंद, दोनों खड़े हो जाते हैं। जयदेव अपने साथी को चलने का संकेत करके—]

जयदेव और रामानंद—(सम्मिलित स्वर में) जीवन में आज का दिन धन्य हो गया।

जयदेव—आपको न आज विश्राम करने का अवसर मिला, न कुछ लिखने पढ़ने का। आपका इतना समय लेने की धृष्टता के लिए हम लोग सविनय क्षमाप्रार्थी हैं।

[दोनों झुककर निराला जी के पैर छूते हैं और हाथ जोड़े-जोड़े विदा होते हैं।

निराला जी कुछ देर उनकी ओर देखते रहते हैं; फिर तख्त से उतरकर इधर-उधर टहलते हैं। तभी उनकी दृष्टि सरस्वती के चित्र पर पड़ती है।

वे धीरे-धीरे जाकर उसके सामने खड़े हो जाते हैं और स्वगतरूप में कहते हैं—]

सरस्वती के सपूत का आसन संसार में सबसे ऊँचा है। साहित्य की साधना ही उसका तपश्चर्या है। दिन और रात आत्मतल्लीन रहकर हृदय के रक्त से जो कुछ वह लिखता है, उसका मूल्य धातु के टुकड़ों में नहीं आँका जा सकता। उसके भाव-रत्न अमूल्य होते हैं। और निर्धनता! भारतीय साहित्यकारों की परंपरा ही निर्धनता की है। (कुछ क्षण रुककर परिवर्तित स्वर में) माता, तेरा यह सेवक भी लौकिक समृद्धि नहीं चाहता, पद-अधिकार नहीं चाहता। बस, माता! तुझसे यही माँगता है कि मेरा आत्माभिमान बना रहे, जीवन के बचे हुए दिन स्वांत:सुखाय साहित्य-साधना में लगा सके, (कुछ रुककर पुनः परिवर्तित स्वर में) रामानंद मेरी

प्रशस्ति गाता है। मुझे यह सब नहीं चाहिए। (स्वर-परिवर्तन) मेरे साहित्यिक बंधुओ ! मेरा अभिनंदन मत करो, मेरी जयंतियाँ मत मनाओ। मुझे एकांत में पड़ा रहने दो और आशीर्वाद दो कि अपनी टेक निबाहते-निबाहते मैं अंतिम स्वाँस लूँ। माता सरस्वती का पूत उन्हीं के पुण्य दर्शन करते-करते अपनी आँख मूँद ले।

[निराला जी भाव-विभोर हो सरस्वती के चित्र के नीचे मस्तक टेक देते हैं। उसी समय नेपथ्य से कोई सुरीले कंठ से उनका यह गीत गाता है—]

भारति, जय विजय करे,
कनक - शस्त्र - कमल धरे !

लंका पद - तल - शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु अर्थ - भरे !

तरु तृण बन - लता - वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल - कण
धवल - धार हार गले !

मुकुट शुभ्र हिम - तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख - शतरव, मुखरे !

[निराला जी गीत सुनकर सहसा चौंक उठते हैं। फिर जैसे स्वर पहचानकर प्रसन्नता के साथ स्वयं भी गीत गुनगुनाने लगते हैं। उसकी समाप्ति पर क्षण भर आत्मविस्मृत से खड़े रहते हैं और तब भारतमाता के चित्र की ओर देखकर कहते हैं।]

पुण्यभूमि ! तेरी गोद में जब जन्म लिया था, तू पराधीन थी। पराधीनता के पाश से तेरी मुक्ति के लिए तेरे जिन सपूतों ने अपना जीवन लगाया था, उनमें तेरा यह अकिंचन पुत्र भी था। मेरी साधना से तू संतुष्ट हुई या नहीं, यह तो तू जाने; परंतु उससे मुझे संतोष नहीं है। मैं तो तुझे वास्तविक रूप से स्वतंत्र तब समझूँगा जब तेरी गोद में पले

प्रत्येक प्राणी को सब प्रकार से सुखी देखूँगा। पुण्यभूमि ! यदि मुझे अपने इस जीवन-काल में वह दृश्य देखने का सौभाग्य न हो तो मैं मुक्ति नहीं चाहता; मैं चाहता हूँ तेरी ही गोद में अपना पुनः-पुनः जन्म जिससे तेरे अगणित पुत्रों की सेवा में अपने अनेक जन्म लगाकर उन्हें सुखी कर सकूँ।

[जन्मभूमि की भक्ति में विभोर निराला सहसा पलट कर सामने की दीवार पर देखने लगते हैं। उस पर भारतभूमि की छाया-रूप में माता-मूर्ति वरद-मुद्रा में दिखायी देती है। निराला जी कुछ देर तक एकटक उसका दर्शन करते रहते हैं, फिर आगे बढ़कर उसके चरणों पर माथा टेक देते हैं।

तभी परदा गिरता है।]